जिनशासन की महासतियाँ

(कथा संग्रह)

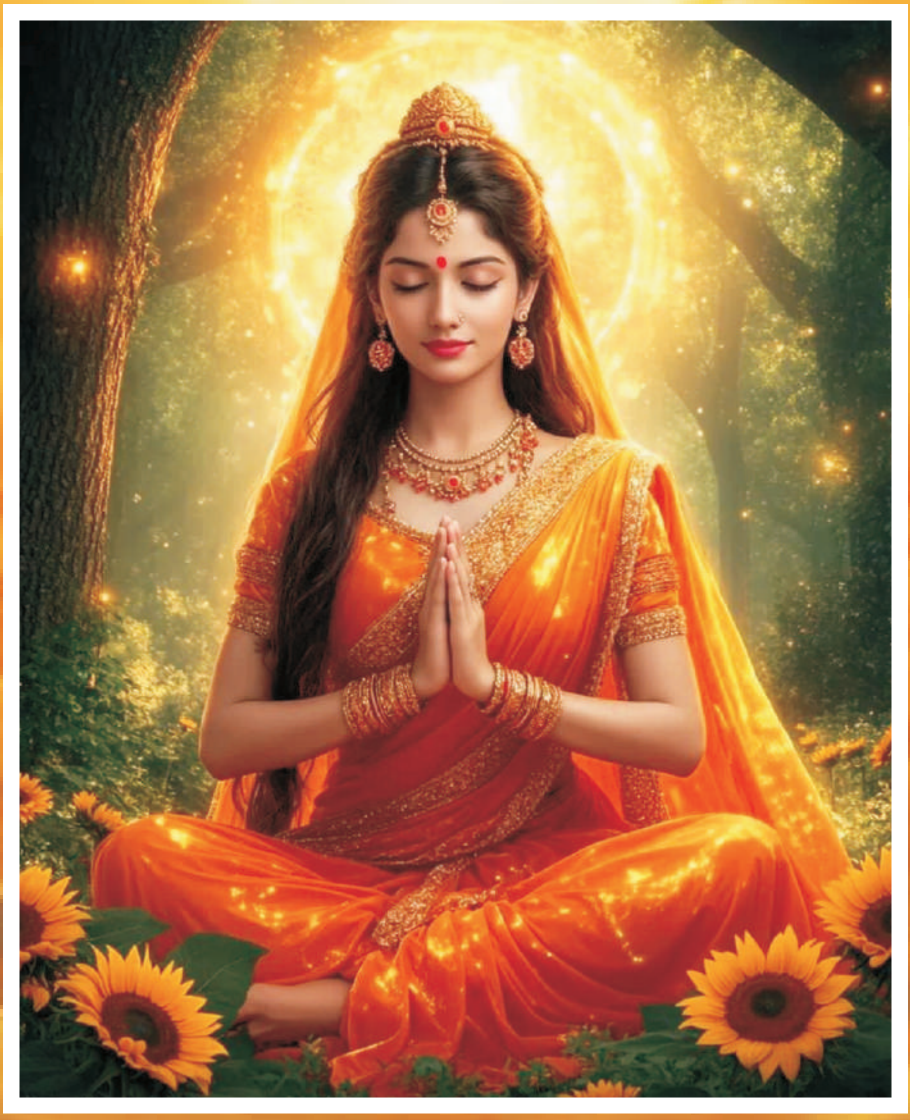

आशीर्वाद

प.पू. उच्चारणाचार्य 108 श्री विनम्रसागर जी महामुनिराज

जिनशासन की महासतियाँ

(कथा संग्रह)

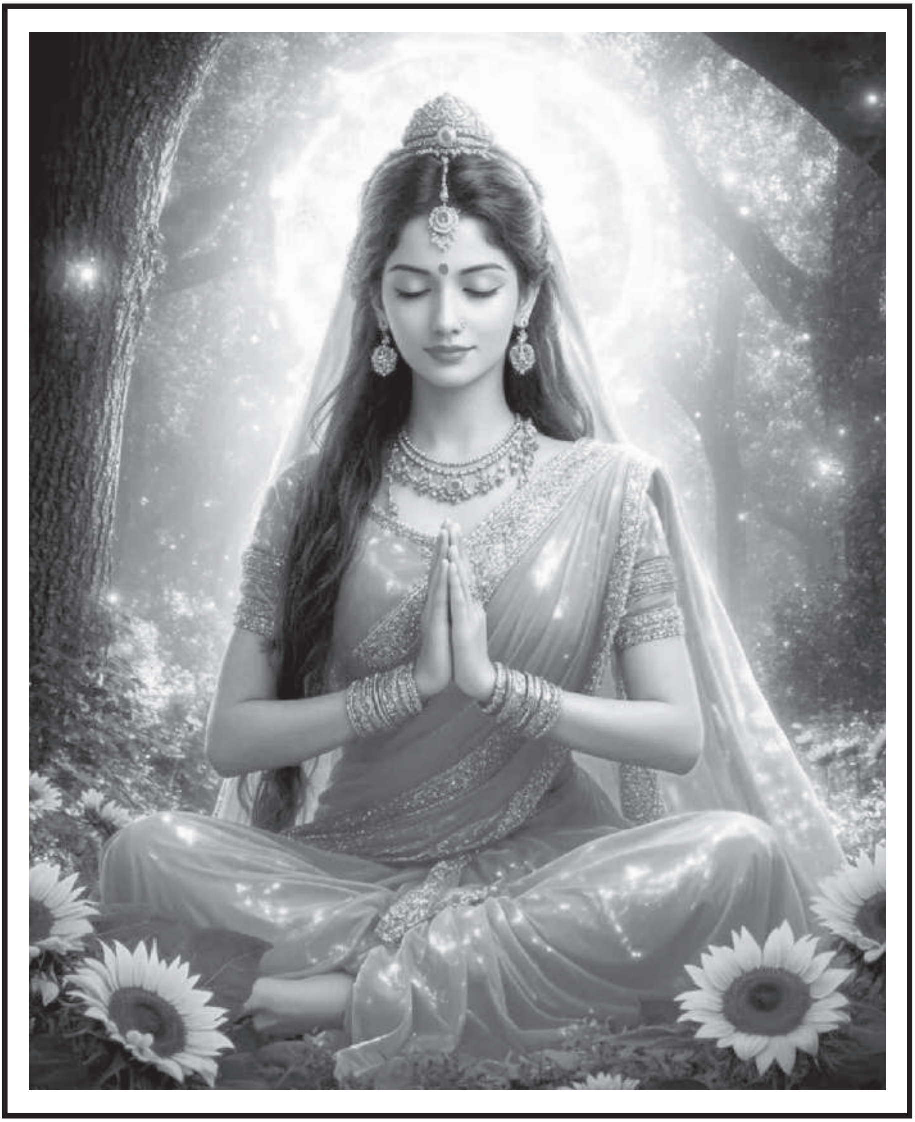

आशीर्वाद

प.पू. उच्चारणाचार्य 108 श्री विनम्रसागर जी महामुनिराज

कृति

जिनशासन की महासतियाँ (कथा संग्रह)

आशीर्वाद	–	प.पू. सिद्धान्तज्ञ उच्चारणाचार्य 108 श्री विनम्रसागर जी महामुनिराज
संपादन	–	श्रमणी आर्यिका 105 विमलश्री माताजी
संकलन	–	श्रमणी आर्यिका 105 विपुलश्री माताजी
सहयोग	–	बा.ब्र. लवी दीदी, बा.ब्र. श्रिया (प्राची) दीदी
पावन प्रसंग	–	परम पूज्य उच्चारणाचार्य श्री 108 विनम्रसागर जी गुरुदेव का 63वाँ अवतरण दिवस
प्राप्ति स्थान	–	धर्म प्रभावना न्यास, भिण्ड मो. 9826801542 देवेन्द्र जैन, बीना (म.प्र.) मो. 9425452825 न्यू इण्डिया ट्रान्सपोर्ट, ललितपुर मो. 9412261044 पंकज जैन सुपाड़ी, भोपाल मो. 9826144810 धर्मेन्द्र जैन (सिन्कम) इन्दौर मो. 8959911401, 9425082826
प्रकाशन	–	श्रमण श्रुत संवर्धन फाउंडेशन
प्रथम संस्करण	–	3100, भक्त्यनुभूति वर्षायोग, इन्दौर 2025
मुद्रक	–	ज्योति ग्राफिक्स, किशनपोल बाजार, जयपुर मो. 8290526049, 8619727900

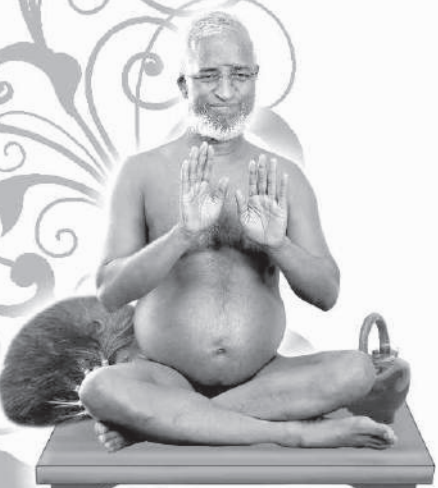

परम पूज्य भक्तामर महोदधि
उच्चारणाचार्य श्री 108 विनम्रसागर जी महामुनिराज

आशीर्वाद

भारत देश में महान–महान महापुरुषों ने जन्म लेकर त्याग–तप–पुरुषार्थ के द्वारा निर्वाण प्राप्त करके इस धरती को पवित्र किया है पुराण पुरुषों की जीवनशैली हमारे जीवन को आनंदित ही नहीं पावन भी बनाती है उनका चारित्र हम सभी के लिए प्रेरणादायी बन जाता है यदि भारत देश की धरती पर तीर्थंकर बलभद्रादि महापुरुष न होते तो आज भारत में धर्म के आचरण देखने को भी नहीं मिलते, इस धरती पर महावीर–राम–हनुमान–भरत जैसे श्रेष्ठ पुरुषों ने उत्तम ध्यान के द्वारा मोक्ष को प्राप्त किया है।

इन्हीं महापुरुषों की शृंखला में महासतियाँ भी हुईं जिन्होंने महासंयम को अंगीकार करके जीवन में इस लोक और परलोक को श्रेष्ठ बना लिया। भयंकर विपरीत दशा में भी जिनने धर्म को स्वीकार किया परिणाम स्वरूप उनके सतीत्व की रक्षा तो हुई ही साथ में धर्म की रक्षा भी हुई। सतियों की कथायें आज की पीढ़ी को संस्कारहीन होने से बचाएँगी और भविष्य को धर्ममय बनाएँगी।

जिनधर्म में बहुत महान सतियाँ हुई हैं उनमें से कुछ विशेष विदुषी सतियों की कथायें इस पुस्तक में संघस्थ श्रमणी आर्यिका श्री विमलश्री, आर्यिका विपुलश्री माताजियों एवं बा.ब्र. शुभी दीदी एवं बा.ब्र. प्राची दीदी के द्वारा संकलित की गई है उनका भविष्य मंगल हेतु मेरा बहुत–बहुत आशीर्वाद है और जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन में पुण्यार्जन किया उनको भी शुभाशीष।

शुभाशीष
आचार्य विनम्रसागर

अन्तस् के उद्गार

"प्रथमं चरणं करणं द्रव्यं नमः"

अनादिकालीन तीर्थंकर देवों की सनातनी अक्षुण्ण परम्परा में उनकी वाणी रूपी गंगा की अविरल धारा इस भू पर प्रवाहमान है। जिसे गणधर देवों ने द्वादशांग रूप गुम्फित किया है और चार अनुयोग रूप विभक्त करके भव्य जीवों के बोधनाथ आचार्य भगवन्तों ने प्रस्तुत किया है–

कहा है–बनती है भूमिका प्रथमनुयोग से,
उगती है योग्यता–चरणानुयोग से,
पकती पात्रता करणानुयोग से,
तब झलकती है आत्म द्रव्यानुयोग से।

यूँ तो प्रथमानुयोग के ग्रन्थों में चारों अनुयोगों के दर्शन प्राप्त हो जाते हैं फिर भी इन ग्रन्थों में 63 शलाका पुरुषों एवं 169 महापुरुषों के जीवन का चरित्र चित्रण का दर्शन होता है। उन्हीं तीर्थंकर कामदेव बलभद्र नारायण प्रतिनारायण आदि पुरुषों के जीवन की झाँकी पर दृष्टिवात् करते हैं तब वहीं कुछ ऐसी महान् अतिशययुक्त विदुषी महिलाओं का जीवनवृत्त भी कहीं न कहीं साथ–साथ चलता है, जिन्होंने अपने जीवन में आयीं विषम परिस्थितियों में भी अपने शील व्रत के साथ–साथ जिनधर्म व जिनदेव के प्रति अपने अटूट श्रद्धान को नियम संयम को जीवन्त रखा और नारी पर्याय की उत्कृष्टता को प्राप्त कर अपने मोक्षमार्ग को प्रशस्त किया है। कहा भी है–

सौ सुत से एक सुता अच्छी, जो जिन दीक्षा धारण करती।
जग को सन्मार्ग दिखा करके, अपने कर्मों का क्षय करती।।

परम पूज्य गुरुदेव के आशीर्वाद से जिनशासन की ध्वजा पताका को ऊर्ध्वता प्रदान करने वाली उन्हीं जिनशासन की महान विभूतियों के जीवनवृत्त को संजोकर कथा रूप देने का प्रयास किया है। हमारी अनुजा श्रमणी आर्यिका विपुलश्री माताजी ने और अपने समय का सदुपयोग करके पूर्ण सहयोग किया बा.ब्र. शुभी दीदी एवं बा.ब्र. प्राची (श्रिया) दीदी ने और आप सभी के समक्ष प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है।

पूर्ण विश्वास है यह कथा ग्रंथ आपके जीवन में उन महासतियों के महान व्यक्तित्व को और आपके व्यक्तित्व को पुष्ट करेगा। जो संघर्षों में भी फूलों से महकने की कीचड़ में कमल सा खिलाने की योग्यता प्रदान करेगा।

।। भद्रं भूयात् ।।

गुरु पादपद्माश्रिता

श्रमणी आर्यिका विमलश्री

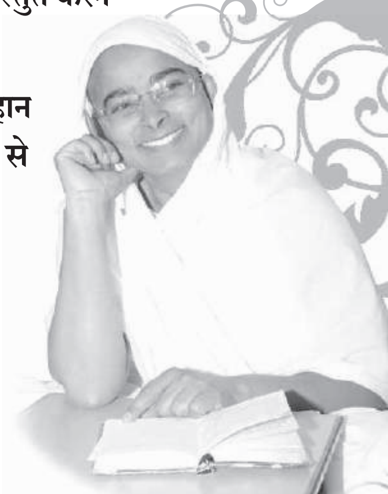

अनुक्रमणिका

1.	सती सीता	1
2.	सती विशल्या	78
3.	सती अंजना	91
4.	सती राजुल	115
5.	सती द्रौपदी	130
6.	सती चन्दनबाला	148
7.	सती मैना सुन्दरी	158
8.	सती अनन्तमती	181
9.	सती मनोवती	191
10.	सती मृगांकलेखा	269
11.	सती राजकुमारी मुण्डिका	328
12.	सती सोमा	334
13.	सती जिनदत्ता	342
14.	सती सुरसुन्दरी	349
15.	सती पद्मश्री	372
16.	सती वृषभसेना	378
17.	सती नीली	381
18.	सती प्रभावती	386
19.	सती मदनरेखा	390
20.	सती नागला	395
21.	सती प्रियंगसुन्दरी	396
22.	सती रानी सिंहिका	397

सती सीता

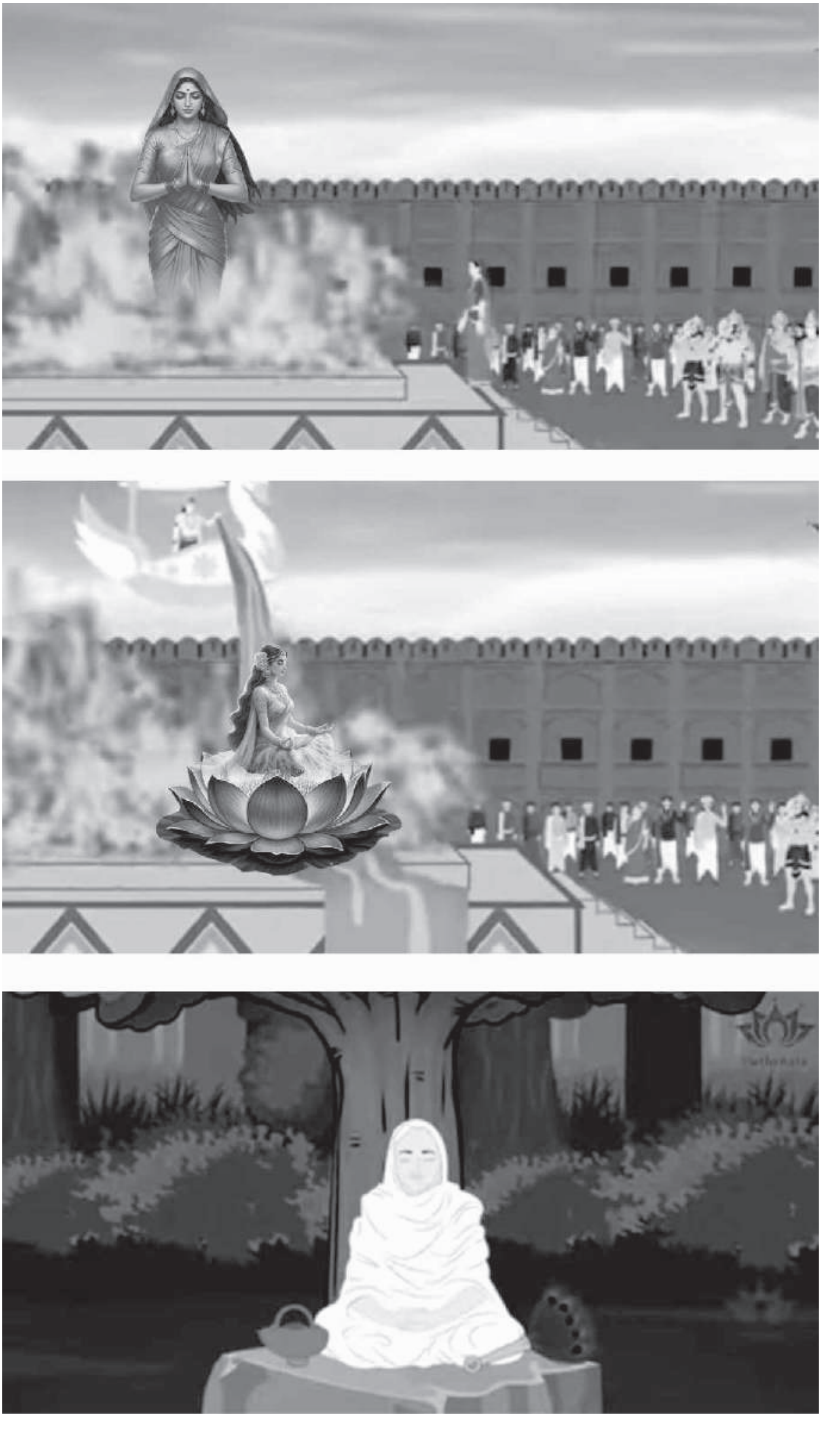

1

सती सीता

जम्बूद्वीप का भरतक्षेत्र सदा ही धर्मात्माओं से भरा धार्मिक क्षेत्र रहा है। इसी भरतक्षेत्र में धनधान्य से सम्पन्न, हरियाली से परिपूर्ण **एकक्षेत्र** नाम का नगर था। इस नगर में धर्मात्मा, ज्ञानी, नीति से सम्पन्न लोग रहते थे। इनमें सागरदत्त नामक व्यापारी रहता था। उसकी पत्नी का नाम रत्नप्रभा था।

सागरदत्त के गुणवती नाम की एक कन्या थी। यह सर्वांग-सुन्दरी कन्या सभी युवाओं की चाहत का विषय थी।। गुणवती का गुणवान नाम का भाई था। सागरदत्त ने गुणवती की युवावस्था देखकर उसके विवाह का विचार किया।

उसी नगर में नयनदत्त नाम का व्यापारी रहता था। उसकी पत्नी का नाम सुनन्दा था। उसके धनदत्त (राम का जीव) तथा वसुदत्त (लक्ष्मण का जीव) नाम के दो बेटे थे। सागरदत्त ने समान हैसियत वाला जानकर धनदत्त के साथ गुणवती का विवाह तय कर दिया था।

इसी नगर में एक अमीर व्यापारी का श्रीकान्त (रावण का जीव) नाम का बेटा रहता था। वह हर पल गुणवती के बारे में सोचता था। जब उसे गुणवती के धनदत्त के साथ विवाह तय होने का पता चला तब वह गुणवती की माँ रत्नप्रभा के पास गया। उसने रत्नप्रभा से मीठी-मीठी लुभावनी बातें की तब लोभी स्वभाव वाली रत्नप्रभा नारीजन दुर्बलता के कारण श्रीकान्त का वैभव देखकर उस पर लट्टू हो गई और उसने श्रीकान्त से ही गुणवती के विवाह का वादा किया।

जब वसुदत्त को यह बात पता चली तब उसे बहुत गुस्सा आया; उसी समय यज्ञबलि (विभीषण का जीव) नामक युवक वहाँ आया। उस यज्ञबलि ने वसुदत्त को श्रीकान्त को मारने के लिये उकसाया।

वसुदत्त कपड़े में तलवार को छिपाकर श्रीकांत के पास गया। श्रीकांत उस समय असावधान था। वसुदत्त ने झट् से तलवार निकाल कर श्रीकांत पर प्रहार किये। श्रीकान्त के पास भी तलवार थी, उसने भी तलवार उठाकर वसुदत्त पर प्रहार किये। उसी समय दोनों का कुमरण हुआ।

मरकर दोनों विंध्याटवी नामक घने जंगल में हिरण बने। वसुदत्त और श्रीकांत के मरण के बाद समाज में पंचायत हुई। पंचायत ने इस सारे माजरे की जड़ धनदत्त और गुणवती को जानकर उनके परस्पर विवाह को अमान्य कर दिया।

धनदत्त समाज में अपनी बदनामी देखकर घर छोड़कर चला गया। इधर उधर भटकता रहा। भटकते-

भटकते एक दिन सूर्यास्त के समय सुनसान जगह पहुँच गया, वहाँ मुनियों का एक संघ ठहरा हुआ था। धनदत्त को प्यास लगी थी। संघ में जाकर उसने पीने के लिये पानी माँगा। सभी मुनि मौन थे। एक क्षुल्लक को उस पर दया आयी, उन्होंने उसे समझाया:-

रात्रावप्यमृतं युक्तं न पातुं, किं पुनर्जलम्।

अर्थ– रात्रि में अमृत भी पीना अच्छा नहीं है, फिर जल की क्या बात? अर्थात् रात्रि में जल भी पीना नहीं चाहिये।

क्षुल्लक ने धनदत्त को धर्म का उपदेश दिया। उसने उसी समय अणुव्रत धारण किये। जीवन भर उनका पालन कर समाधिपूर्वक देह छोड़कर ब्रह्मस्वर्ग में देव बना।

गुणवती घर के कामों में अपने आप को व्यस्त रखने लगी परन्तु वह पंचायत के फैसले को मन से निकाल नहीं पायी थी। उसके स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ गया था। वह भीतर ही भीतर नाराज रहती थी। दया, धर्म उसके चित्त से वैसे ही भाग गये थे जैसे सच्चे श्रद्धानी पुरुष के चित्त से कुदेव, कुगुरु, कुधर्म का श्रद्धान समाप्त होता है। कोई मुनिराज दिखते तब उनकी भक्ति की बजाय वह उनकी निन्दा, हँसी करती थी। उनसे सदा द्वेष रखती थी, तिरस्कार करती थी। इसी तरह के द्वेष भावों के साथ उसने आयु पूरी की। दुष्ट भावों से मरकर विन्ध्याटवी में उसी स्थान पर हिरणी बनी, जहाँ वसुदत्त और श्रीकांत के जीव पहले से ही हिरण बने हुये थे।

पूर्व संस्कारों के कारण श्रीकान्त का जीव हिरण उससे सम्पर्क करना चाहता था, परन्तु पूर्व संस्कारों के कारण ही वसुदत्त के जीव दूसरे हिरण में और पहले हिरण में जोरदार लड़ाई हुई। लड़ाई में दोनों मरे। मरकर क्रमशः सुअर, हाथी, भैंसा, बैल, बंदर, चीता, भेड़िया, काला हिरण बने। हर गति में एक दूसरे से लड़ते हुये मरे, बाद में अनेक जानवर आदि शरीरों को व दुष्प्रभावों को धारण करते रहे।

गुणवती का जीव हिरणी के बाद अनेक पशु शरीरों को धारण करती रही, दुष्टभावों से मरती रही। जब उसका पाप कुछ कम हो गया, तब वह गंगा नदी के तट पर हथिनी बनी। वहाँ भी वह अपने पूर्व पाप के फल को ही भोग रही थी। दूसरी हथिनियाँ उसे सदा सताती रहती थीं।

एक बार चरते-चरते वह कीचड़ में फँस गई थी। ज्यों-ज्यों बाहर निकलने का प्रयत्न करती, त्यों-त्यों वह कीचड़ में धँसती गई। बचने का कोई उपाय न देखकर वह जोर-जोर से चिंघाड़ने व रोने लगी। उसकी करुण आवाज़ सुनकर वहाँ से जा रहे तरंगवेग नामक विद्याधर को उस पर दया आ गई। वह उसके पास गया, उसके कानों में णमोकार मंत्र सुनाया, उसे धर्म का उपदेश देकर प्रत्याख्यान-संयम ग्रहण कराया। हथिनी ने भी अपना अंतिम समय जानकर क्षेत्र संन्यास ग्रहण किया। उसने शांत परिणामों से देह छोड़ी।

वसुदत्त (लक्ष्मण का जीव) हिरण आदि अनेक तिर्यञ्च पर्यायों में भटका। भटकते-भटकते जब उसका पाप क्षीण हो गया, तब वह मृणालकुण्ड नामक नगर में श्रीभूति नाम का ब्राह्मण बना। वह जैनधर्म

श्रद्धानी था। मृणालकुण्ड नगर का राजा वज्रकुम्भ था। श्रीभूति ब्राह्मण उस राजा का राजपुरोहित बना।

श्रीकांत (रावण का जीव) हिरण आदि अनेक तिर्यञ्च पर्यायों में भटकता रहा। भटकते-भटकते जब उसका पाप क्षीण हो गया, तब वह मृणालकुण्ड नामक नगर में ही वज्रकुम्भ राजा का शम्भू नाम का बेटा बना।

हथिनी (सीता) का जीव श्रीभूति पुरोहित की वेदवती[1] नाम की बेटी के रूप में जन्मा। वेदवती सुंदर थी, पर वह मुनियों की हँसी करती थी, उन पर ताने कसती थी। श्रीभूति उसे ऐसा करने से मना करते थे, पर वह नहीं मानती थी।

एक बार मृणालकुण्ड नगर में **सुदर्शन** नाम के मुनिराज का संघ आया था। लोग उनके दर्शन के लिये जाते थे।

एक दिन वंदना कर उपदेश सुनकर लोग चले गये थे। संघ में मुनिराज की सगी बहन सुदर्शना थी। उसने भी भाई के साथ दीक्षा ली थी। सब लोगों के चले जाने पर सुदर्शना आर्यिका और सुदर्शन मुनिराज धर्मचर्चा कर रहे थे। वेदवती ने उनको परस्पर चर्चा करते हुये देखा था। अपने-आपको धर्मात्मा बताने वाली वेदवती ने लोगों से कहा:-

''आप लोग ऐसे साधु के अवश्य दर्शन करो और उन्हें अच्छा मानो, पर मैं न उनके दर्शन करूँगी और न उन्हें अच्छा बताऊँगी मैंने उन्हें एकान्त में एक सुंदर स्त्री के साथ बात करते हुये देखा है।

वेदवती की बातों पर कइयों ने विश्वास नहीं किया; पर कइयों ने विश्वास कर मुनिराज का अनादर किया। मुनिराज ने सोचा कि इस तरह धर्म का अपमान होता रहेगा तो लोग मुनियों पर, धर्म पर विश्वास करना छोड़ देंगे। धर्म से विमुख हो जायेंगे। इस समय उसका कारण मैं बनूँगा, यह सोच उन्होंने प्रतिज्ञा की कि जब तक यह अपवाद दूर नहीं होगा, तब तक आहार ग्रहण नहीं करूँगा। आहार के लिये नहीं निकलूँगा।

मुनि निन्दा के तीव्र पाप से वेदवती का मुँह फूल गया। उसके शरीर में तीव्र पीड़ा होने लगी। नगर देवता व्यंतर ने उसे बहुत डर दिखाया, तब वह मुनिराज के पास गई और उसने अपने अपराध के लिये सबके सामने क्षमा माँगी। सबके सामने उसने कहा:-

''मैंने मुनिराज को शक की निगाह से देखा और उन पर झूठा आरोप लगाया था। जिसका फल मुझे तुरन्त मिल गया, मेरा मुँह सूज गया, शरीर में पीड़ा रहने लगी। व्यंतर देव ने मुझे सच बात बताकर बहुत डराया। आप लोग मेरी बात को सत्य मानो, मुनिराज निर्दोष हैं। मैं ही गुनहगार हूँ, मुनिराज नहीं।

वेदवती ने मुनिराज से क्षमा माँगकर सबको मुनिराज के निर्दोष होने का विश्वास दिलाया।

मुनिराज ने वेदवती को क्षमा कराकर सबसे कहा - **जिससे पापबंध होता हो ऐसा एक शब्द भी नहीं बोलना चाहिये।**

दृष्ट: सत्योऽपि दोषो न वाच्यो जिनमतश्रिता।
उच्चमानोऽपि चान्येन वार्य: सर्वप्रयत्नत:।।

अर्थ– जिनमत के सच्चे श्रद्धानी को किसी का वास्तविक दोष दिखने पर भी उसे नहीं कहना चाहिये। कोई दूसरा उस दोष को कह रहा हो तो उसे रोकने का प्रयत्न करना चाहिये।

ब्रुवाणो लोकविद्वेषकरणं शासनाश्रितम्।
प्रतिपद्य चिरं दु:खं संसारमवगाहते।।

अर्थ– लोक में वीतरागी जिनशासन संबंधी विद्वेष फैलाने वाले दोष को जो कहता है वह दु:ख पाकर संसार में भटकता है। इसलिये हे धर्मवत्सलजनों! दोष करने से एवं कहने से दूर ही रहो।

इस प्रकार सुदर्शन मुनिराज का उपदेश सुनकर प्रसन्न होकर सभी अपने–अपने घर की ओर शान्त मन से गये। मुनिराज भी अपने ध्यान में लीन हो गये।

पूर्व में भी वेदवती के पिता उसे समझाते थे, जब वह मुनियों की हँसी करती थी तब उससे कहते थे कि बेटी **मुनि हम संसारियों से श्रेष्ठ होते हैं, उनकी हँसी नहीं करनी चाहिये। ये वीतरागी मुनि परमपूज्य होते हैं, हम रागियों को राग से मुक्त कराने वाले होते हैं। उन्हीं से धर्म चलता है। यदि ये न हों तो हमें कौन संबोधित करेगा? हमारे दु:ख कौन हरेगा? इनकी हँसी के पाप के फल से जगत् में हम हँसी के पात्र बनते हैं। नरक निगोद आदि गतियों में भटकते हैं। उनकी भक्ति हमें संसार–समुद्र से पार लगाती है। इसलिये इनकी श्रद्धा करो, भक्ति करो, इन्हें आहार दो, इनकी वैयावृत्ति करो। इनके दर्शन भी दुर्लभ हैं, समागम तो और भी दुर्लभ है।**

पूर्व में पिता के उपदेश के स्मरण से तथा प्रत्यक्ष में धर्मनिंदा का प्रत्यक्ष फल देखकर उसे सद्बुद्धि उत्पन्न हुई उसने श्राविका के व्रत लिये। देवगुरुधर्म के प्रति भक्तिमय रहने लगी।

वेदवती अनुपम सुंदरी थी। उसके सौंदर्य की चर्चा चारों ओर होने लगी थी, हर कोई उसे पाना चाहता था, उसे पाने में ही जीवन की सार्थकता समझ रहा था। अनेक राजकुमार भी उसके सौंदर्यजाल में फँसे हुये थे।

मृणालकुण्ड नगर का राजकुमार शम्भू उसे पाने के लिये बहुत लालायित था। पर श्रीभूति की प्रतिज्ञा थी–

''मिथ्यावासनावाला पुरुष भले ही धन में कुबेर के समान हो तो भी उसके लिये अपनी कन्या नहीं दूँगा। मैं अपनी कन्या देव शास्त्र गुरु के श्रद्धानी को ही दूँगा।।

शम्भू को श्रीभूति की प्रतिज्ञा का पता चला तब उसे बहुत गुस्सा आया क्योंकि वह स्वयं मिथ्या–वासना वाला था। वेदवती को पाने के लिये उसने रात में सोये हुये श्रीभूति पुरोहित को मारा श्रीभूति प्रतिज्ञा एवं जिनधर्म के प्रभाव से देव हुआ।

शम्भू ने वेदवती का अपहरण किया। पिता को मारे जाने से वेदवती शम्भू पर बहुत क्रोधित थी ही अपहरण करने पर और भी क्रोधित हुई। शम्भू ने उसके साथ जबरदस्ती कर उसका आलिंगन चुंबन किया तब क्रोध से लाल आँखों वाली वेदवती ने शम्भू से कहा –

अरे पापी, अरे नीच, नराधम? तूने मेरे धर्मात्मा पिता को मारकर पहला महापाप किया है। इच्छा न होते हुये भी मेरे साथ जबरदस्ती कर दूसरा महापाप किया है। यद्यपि मेरे पिताजी परलोक चले गये, परन्तु मैं उनकी इच्छा का मान रखूँगी मिथ्या वासना वाले पुरुष को चाहने की अपेक्षा मर जाना पसंद करूँगी और सुन तेरे विनाश का कारण मैं ही बनूँगी इतना कहकर वेदवती आँखों में गुस्सा लिये वहाँ से चली गई, उसके गुस्से से डरा शम्भू उसे रोकने की हिम्मत नहीं जुटा सका।

वेदवती ने वहाँ से निकलकर **हरिकान्ता आर्यिका** के पास दीक्षा ली पश्चात् कठोर तपश्चरण किया। तपश्चरण से उसका शरीर सूखकर काँटा हो गया। शरीर में माँस का नामोनिशान नहीं था केवल हड्डियों का ढाँचा रह गया था ऐसा कठोर तपश्चरण कर समाधि के साथ मरण कर वह ब्रह्मस्वर्ग में देवी हुई यहाँ उसका नाम **अमृतमयी** था। ब्रह्मस्वर्ग में धनदत्त (राम) का जीव देव था वह उसकी देवी बनी। स्वर्ग से आकर वह राजा चक्रध्वज की चित्तोत्सवा नाम की बेटी बनी।

मिथिला नगरी के राजा जनक की विदेहा नाम की एक सुंदर रानी थी। वह जब गर्भवती थी तब एक महाकाल नाम का देव उसके गर्भ में स्थित संतान के जन्म की प्रतीक्षा कर रहा था वह देव इस तरह प्रतीक्षा क्यों, किसलिये कर रहा था? उसके पीछे उसके पूर्वजन्मों की कहानी है, जो इस प्रकार है।

चक्रपूर नगर में चक्रध्वज राजा था, उसके चित्तोत्सवा नाम की कन्या थी वह गुरु के घर पढ़ने जाती थी वहीं राजपुरोहित का बेटा पिंगल भी जाता था दोनों में प्रेम हुआ प्रेम के कारण दोनों विद्या प्राप्त नहीं कर सके।

पिंगल चित्तोत्सवा को भगाकर बहुत दूर विदग्ध नाम के नगर में ले गया जहाँ उन्हें कोई नहीं पहिचानता था, वहाँ झोपड़ी बनाकर रहने लगे। पिंगल मजदूरी करता, लकड़ियाँ बीनता, बेचता इस तरह रोटी की व्यवस्था करता था। वे दोनों शांति से जीवन बिता रहे थे।

एक दिन विदग्ध नगर के राजा का बेटा कुण्डलमंडित घूमने निकला जब वह नगर के बाहर गया तब उसकी निगाह झोपड़ी के बाहर काम करती चित्तोत्सवा पर पड़ी, उसकी निगाहें उसी पर टिकी रहीं वह उसकी सुंदरता से काम के पाँचों बाणों से घायल हो गया था। उसने एक विश्वस्त दासी को धन का लोभ देकर उसके पास भेजा और कहा कि किसी भी प्रकार से कैसे भी हो उसे ले आओ, नहीं तो मैं उसके बिना जी नहीं पाऊँगा। दासी बड़ी चालाक थी, उसने उसे झूठी, मीठी बातों में फँसाकर राजमहल में लाकर कुण्डलमंडित को सौंपा।

थके हारे पिंगल ने घर आकर चित्तोत्सवा को नहीं देखा तब उसने उसे कई जगह ढूँढ़ा। नहीं मिली

तब वह कुण्डलमंडित राजकुमार के पास सहायता के लिये गया। उसने राजकुमार से कहा – मेरी स्त्री का अपहरण हुआ है, आप मेरी सहायता कीजिये – यह कहता हुआ वह उसके चरणों पर गिरा, गिड़गिड़ाया, राजकुमार ने इशारे से एक धूर्त मंत्री को बुलाकर कहा – देरी मत करो इसकी स्त्री को ढूँढ़कर लाओ। मंत्री उसके इशारे को समझ गया। उसने तुरन्त झूठ ही कहा – मैंने इसकी स्त्री को पोदनपुर के रास्ते पर आर्यिकाओं के समूह में देखा है। शायद वह दीक्षा लेने गई है। पिंगल ने कहा – अरे पुरुष जल्दी कर जा उसे लौटा ला नहीं तो उसकी दीक्षा के बाद तेरे प्रयास व्यर्थ हो जायेंगे, वह तुरन्त तेज भागता-भागता पोदनपुर के रास्ते गया। उसने वहाँ पर, वनों, उपवनों, मंदिरों में सभी जगह उसे ढूँढ़ा, परन्तु वह होती तो मिलती? थका हारा, निराश पिंगल राजकुमार के पास पुनः अपनी फरियाद लेकर आया पर राजकुमार स्वयं अन्यायी था उससे न्याय की क्या आशा रखें? पिंगल से स्वयं को परेशान समझकर कुण्डलमंडित ने उसे दूर भगाने की आज्ञा दी, लोगों ने उसे लातों, डंडों से पीटते हुये बहुत दूर भगा दिया। वहाँ से निकलकर पैर जिस रास्ते पर ले जाते या रास्ता उसे जिधर ले जाता उधर चलता रहता। भीख में मिले भोजन से पेट भरता। मन में बेहद निराशा लिये वह भटकता रहा।

एक दिन पुण्योदय से उसे **आर्यगुप्त** नाम के आचार्य के दर्शन हुये। उसने आचार्य श्री के दर्शन बड़ी विनय के साथ किये, उनसे शांति का मार्ग पूछा, आचार्य श्री ने कहा – शांति का उपाय एकमात्र संयम है इसलिये शांति चाहते हो तो संयम धारण करो। यह सुनकर उन्हीं से तुरन्त दीक्षा ली वह धर्म के मार्ग पर आया सो ठीक ही है क्योंकि **दुःखी दरिद्री, भाई बन्धुओं से रहित, रोग से पीड़ित मनुष्यों की बुद्धि ही प्रायः धर्म में लगती है,** यही कहा है-

दुःखितानां दरिद्राणां वर्जितानां च बान्धवैः।
व्याधिसंपीडितानां च प्रायः भवति धर्मधीः।।

दीक्षा के बाद पिंगल मुनि ने बहुत ही कठोर तप तो किया परन्तु मन के किसी कोने में चित्तोत्सवा बैठी ही रही यदा-कदा उन्हें उसकी याद आती रहती थी। इसलिये वह कर्मों की विशेष निर्जरा नहीं कर पाये, सिर्फ कुछ पुण्य बाँध पाये जिसके कारण वे महाकाल नाम के तेजस्वी असुर बने। अपने अवधिज्ञान से उन्होंने जान लिया था कि इस समय उनकी पूर्व प्रिया चित्तोत्सवा और शत्रु कुण्डलमंडित का जीव कहाँ है?

उधर कुण्डलमंडित चित्तोत्सवा में आसक्त हो गया था, उसे उसके शत्रु राजा अनरण्य के सेनापति ने युद्ध में अनायास ही हराया था। कुण्डलमंडित भटकता भटकता जंगल में मुनिसंघ में धर्म का स्वरूप सुनकर अणुव्रती श्रावक बना। महापराक्रमी मामा शत्रुओं को हराने में उसकी सहायता अवश्य करेंगे – यह सोचता हुआ मामा के नगर की ओर जा रहा था, पूर्व पापकर्म के उदय से उसके शरीर में भयंकर रोग उत्पन्न हुये। शरीर की संधियाँ तेजी से गल गई, नाजुक अंगों में भारी दर्द होने लगा परन्तु उसने परिणामों की शांति नहीं छोड़ी, मरकर देव पर्याय के बाद इस समय जनक की पत्नी विदेहा के गर्भ में पुत्र के रूप में था।

चित्तोत्सवा धर्म में मन लगाकर मरकर स्वर्ग गई थी, वह जीव भी उसी समय स्वर्ग से निकलकर विदेहा के गर्भ में कुण्डलमंडित के जीव के साथ पुत्री के रूप में था।

पिंगल का जीव जो इस समय महाकाल नाम का तेजस्वी असुर बना था। अपने पूर्वजन्म के शत्रु का बदला लेने के लिये उसके जन्म की प्रतीक्षा कर रहा था। उसने विचार किया कि यदि उसे गर्भ में ही मारता हूँ तो रानी विदेहा भी मर जायेगी। दो गर्भ को धारण करने वाली रानी को मारने में मेरा क्या प्रयोजन? इसलिये वह उनके जन्म की प्रतीक्षा कर रहा था।

समय पर विदेहा ने एक पुत्र और एक पुत्री को जन्म दिया। जन्म होते ही महाकाल असुर ने विचार किया कि मुझे दुष्टा चित्तोत्सवा के जीव से भी क्या प्रयोजन? मात्र पुत्र को भारी दु:ख पहुँचाऊँगा यह सोचकर वह मात्र पुत्र को उठाकर आकाश की ओर दूर ले गया। उसने विचार किया कि इसे पत्थर पर पछाड़ कर मार डालूँ? लेकिन तुरन्त ही उसके विचार बदल गये – उसने सोचा – **बुद्धिमान को संसार बढ़ाने वाले काम नहीं करने चाहिये।** पूर्वजन्म में मैंने मुनि भेष में तपरूपी कवच धारण करते हुये तिनके को भी दु:ख नहीं पहुँचाया। तप के कारण आज दिव्य कांति वाले शरीर को पाया है **इकट्ठा किया हुआ थोड़ा–सा पाप भी बहुत विस्तार को प्राप्त होता है।** इन विचारों से उसके मन में बालक के प्रति दया उत्पन्न हुई, उसने मारने का विचार छोड़ दिया। बालक के कान में दिव्य कुंडल पहिनाकर उस बालक को पर्णलघ्वी विद्या के द्वारा धीरे से छोड़ वहाँ से चला गया।

पर्णलघ्वी विद्या के कारण बालक धीरे–धीरे धरती की ओर आ रहा था, उसी समय वहाँ से चंद्रगति नाम का एक नि:संतान विद्याधर जा रहा था। उसने बालक को देखा। उसने बालक को अधर में ही पकड़ कर उसे लेकर घर पर सोई हुई पत्नी के पास रखा। उसे जगाकर कहा देख तेरे पुत्र हुआ है। तू बेकार ही कहती रहती थी कि मैं नि:संतान हूँ। उसकी पत्नी ने कहा – हे देव मुझ दु:खियारी को झूठ कहकर क्यों और दु:खी कर रहे हो?

नहीं देवी, मेरा यह आशय नहीं है, मैं आपको दु:खी नहीं कर रहा हूँ। कई महिलाओं के गुप्त गर्भ रहता है। आपके भी गुप्त गर्भ रहा है। हे देव, **झूठी तसल्ली से स्थायी समाधान नहीं होता।** हे प्रिय मैं तो वन्ध्या हूँ, मेरे पुत्र कैसे हो सकता है? हे देव, यह बालक मेरा ही सही पर यह तो बताओ कि इसके कान में ये दिव्य कुण्डल कहाँ से आये।

असहाय निरुत्तर होकर चंद्रधर विद्याधर ने बालक की सारी हकीकत बता दी। उन्होंने उसके जन्म का बड़ा उत्सव मनाया। कानों के दिव्य कुण्डलों की आभा से उसका शरीर दमक रहा था इसलिये उसका नाम **भामण्डल** रखा।

पुत्र के अपहरण से विदेहा को बहुत शोक हुआ। जिस प्रकार पश्चिम दिशा में सूर्य अस्त हो जाता है सिर्फ संध्या रह जाती है उसी प्रकार उसका पुत्र कहीं अस्त हो गया था सिर्फ पुत्री रह गई थी, उसने

पूर्वजन्मों में किसी के पुत्र का वियोग कराया होगा, उसी कर्म की परिणति सामने आयी थी। उसी ने फल दिखाया था क्योंकि **बिना बीज के पेड़ नहीं होता वैसे ही बिना कारण कार्य नहीं होता।**

अनेक शंकाओं के साथ उसने बहुत दु:ख किया। तब जनक ने इन शब्दों से उसे तसल्ली दिलायी कि आपको पुत्र के दर्शन अवश्य होंगे। उसे खोजने के हम प्रयास करेंगे। **इच्छित वस्तु पूर्व कर्म के प्रभाव से कभी दिखती है,कभी नहीं दिखती है, पुन: दिखने लगती है।** इसलिये पाप का कारणभूत शोक बंद कीजिये, मन में शांति रखिये।

सबके लाड प्यार के साथ बड़ी होने वाली बालिका को पृथ्वी की समानता के कारण लोग **सीता** कहने लगे। वह सर्वांग सुन्दरी कब बड़ी हुई पता ही नहीं चला।

राजा जनक ने सीता का विवाह राम के साथ करना निश्चित किया था। इस तरह के निर्णय के पीछे की कहानी इस प्रकार है–

विजयार्ध पर्वत के दक्षिण और कैलाश पर्वत के मध्य में **अर्धववर** नाम का देश है जिसमें असंयमी म्लेच्छ रहते थे। देश की राजधानी मयूरमाल थी। वहाँ का **राजा आन्तरंगतम** था। वह अनेक आर्य देशों को जीतता हुआ जनक के देश मिथिला तक आया था। जनक ने परस्पर मित्रता होने के नाते दशरथ से सहायता पाने के लिये दूत के द्वारा कहलवाया–

''हमारा देश म्लेच्छ राजा **आन्तरंगतम** की सेना से घिर चुका है। यह राजा अनेक आर्य देशों को म्लेच्छ बनाता हुआ समस्त प्रजा को म्लेच्छ बनाने के लिये आया हुआ है। जब प्रजा नष्ट या भ्रष्ट हो जाये तो हम किसलिये जीवित रहें? तथा प्रजा म्लेच्छ होने पर धर्म नष्ट हो जायेगा। यह कठिन दिख रहा है कि हम अपना जीवन देकर भी धर्म की रक्षा कर पायेंगे अत: आपसे सहायता की अपेक्षा है। **राजा के आश्रय से धर्म टिकता है, बढ़ता है, धर्मरक्षा से राजा को धर्म का छठा भाग प्राप्त होता है। कहा भी है–**

यस्य देशं समाश्रित्य साधव: कुर्वते तप:।
षष्ठमंशं नृपस्तस्य लभते परिपालनात्।।

अर्थ– जिस देश का आश्रय पाकर साधुजन तपश्चरण करते हैं, उनकी रक्षा के कारण राजा तप का छठा भाग प्राप्त करता है।

राजा दशरथ ने राम को बुलाकर कहा कि हम सेना के साथ हमारे मित्र जनक की सहायता के लिये जा रहे हैं। हमारे आने तक आप राज्य का कार्य देखिये तब राम ने कहा – आप यहाँ रहिये मैं अकेला जाकर जीतकर आऊँगा।

दशरथ ने कहा – हे पदम् (राम)? अभी तुम बालक हो।

राम ने जवाब दिया – छोटा अग्निकण बड़े वन को जला देता है, बाल भास्कर अकेला ही घोर

अन्धकार को नष्ट कर नक्षत्रों की कांति फीकी कर देता है। सेना से क्या प्रयोजन है? मैं अकेला ही उन म्लेच्छों को नष्ट करके आता हूँ।

पिता माता का आशीर्वाद लेकर राम अकेले ही जनक के पास गये। लक्ष्मण से रहा नहीं गया तो वे भी राम के साथ गये थे। दोनों ओर से युद्ध हुआ। जनक के भाई कनक को शत्रु सेना ने घेर लिया था तब राम ने शत्रु सेना को अपने पराक्रम से परास्त कर कनक को बचाया, जनक को युद्ध में जीत दिलायी। जनक ने युद्ध में सहायता के बदले में सीता का विवाह राम के साथ करना तय किया था।

सीता का राम से विवाह तय होने का समाचार सुनकर सीता को देखने की इच्छा से नारद सीता के महल पहुँचा। उस समय सीता दर्पण में अपने रूप को निहार रही थी। दर्पण में अचानक जटाओं के कारण भीषण दिखने वाले नारद के विकराल से रूप को देखकर डर गई। उसके मुँह से चीख निकल गई। उसकी चीख सुनकर रक्षक स्त्रियाँ आईं। थोड़ी ही देर में सैनिक भी आ गये। नारद डर गया। घबरा गया। वह जैसे-तैसे जान बचाकर वहाँ से भाग कर कैलाश पर्वत पर गया वहाँ भी वह काँप रहा था जब वह शांत हुआ तब उसने अपने अपमान का बदला लेने की सोची।

नारद ने सीता का सुंदर चित्र बनाया। उसे लेकर रथनूपुर नगर गया। वहाँ एक सुंदर उद्यान में ऊँचे स्थान पर उस चित्र को रखकर पास ही छिप गया। एक दिन भामण्डल वहाँ गया था। चित्र को देखकर कामभावना से इतना व्याकुल हो गया कि लज्जा आदि सबको भूल गया। उसकी ऐसी हालत देखकर नारद उसके सामने आया। नारद से चित्र में चित्रित सुंदरी के विषय में पूछा। नारद ने उसका सारा परिचय बता दिया।

चन्द्रगति विद्याधर ने पुत्र की स्थिति देखकर उसका विवाह सीता से कराने का संदेश देकर एक दूत को जनक के पास भेजा और जनक को लाने के लिये कहा।

वह दूत घोड़े का मायामयी रूप बनाकर जनक को पीठ पर रखकर चन्द्रगति के पास लाया। चन्द्रगति ने अपना परिचय देकर पुत्र के लिये सीता की माँग की। जनक ने कहा - कि मैं आपकी यह इच्छा पूरी नहीं कर सकता क्योंकि मैं राम के साथ सीता के विवाह का वचन दशरथ को दे चुका हूँ। उसके पीछे की कहानी चन्द्रगति विद्याधर को सुनायी।

चन्द्रगति विद्याधर ने कहा - आप उस सम्बन्ध को तोड़कर पुत्री हमारे पुत्र को दीजिये क्योंकि राम भूमिगोचरी सामान्य मनुष्य है। हम विद्याओं के मालिक श्रेष्ठ विद्याधर मनुष्य हैं वे हमारी बराबरी नहीं कर सकते।

जनक ने कहा - भूमिगोचरी सामान्य मनुष्य नहीं होते हैं। जगद् उद्धारक तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र जैसे महापुरुष जिनमें उत्पन्न होते हैं ऐसे भूमिगोचरी सामान्य मनुष्य कैसे हो सकते हैं? **पूर्णसंयम भूमिगोचरियों के ही होता है।** विद्याधर भी विद्या का त्याग करने पर ही पूर्ण संयम ग्रहण कर सकता है। अत: मेरी दृष्टि में भूमिगोचरी विद्याधरों से श्रेष्ठ होते हैं।

भूमिगोचरी **मनुष्य संयम के द्वारा इन्द्र को भी चरणों पर नमवाता है** तब उसके सामने विद्याधर क्या है?

चन्द्रगति ने विचार करके जनक से कहा – हे राजन्! यदि ऐसा है, आप उनकी इतनी प्रशंसा कर रहे तो मेरी एक शर्त सुनो – हमारे पास वज्रावर्त और सागरावर्त दो धनुष हैं। इनकी रक्षा देव करते हैं। राम और लक्ष्मण इन पर डोरी चढ़ा देंगे तो हम जानेंगे कि उनमें शक्ति है तब आप अपनी पुत्री राम को दीजिये। हम कुछ नहीं कहेंगे परन्तु यदि वे ऐसा नहीं कर पाये तो हम आपकी पुत्री जबरदस्ती ले जायेंगे।

जनक ने कहा – ठीक है।

चन्द्रगति विद्याधर स्वयं अनेक विद्याधर राजाओं के साथ उन धनुषों को लेकर मिथिला आये साथ में जनक भी थे जो धनुषों की विशालता देखकर घबराये हुये थे।

धनुष को उचित स्थान पर रखवाया गया। राम लक्ष्मण को घटना की जानकारी के साथ निमंत्रण देकर बुलाया गया। अन्य अनेक राजाओं को भी निमंत्रित किया, धनुषों पर डोरी बाँधने को स्वयंवर की शर्त का रूप दिया गया। सीता के सौंदर्य की चर्चा चारों ओर फैली हुई थी, अत: दूर-दूर से अनेक राजा आये थे।

स्वयंवर शुरू हुआ। राजाओं ने प्रयास किये। कोई भी धनुषों पर डोरी चढ़ाने में सफल नहीं हुआ। धनुष पर डोरी चढ़ाना तो बहुत दूर, कोई उन्हें छू भी नहीं पाया, क्योंकि जब भी कोई उनके पास जाता उनकी तेज रोशनी से आँखें चौंधियाती थीं। राजा के पास आते ही वे अग्नि छोड़ते थे।

सब राजाओं के बाद राम की बारी आयी तब राम के पास आते ही धनुष से निकलने वाली अग्नि राम के पुण्योदय से शांत हुई। बिना विशेष प्रयास के राम ने डोरी चढ़ा दी धनुष उठा लिया और उस पर बाण चढ़ाकर विद्याधरों की ओर देखने लगे तब डरे हुये विद्याधरों ने राम, लक्ष्मण से क्षमा माँगकर उनकी अधीनता स्वीकार की। चन्द्रगति विद्याधर ने अपनी अठारह कन्याएँ लक्ष्मण को देना स्वीकार किया।

सीता का बड़े ठाठ-बाट से राम से विवाह सम्पन्न हुआ। विद्याधर अपने देश लौट गये।

चन्द्रगति विद्याधर ने अपने पुत्र भामण्डल को स्वयंवर के समाचार सुनाये। भामण्डल ने कहा आपका विद्याधर होना व्यर्थ है क्योंकि आप साधारण भूमिगोचरी से परास्त होकर आये हो, मैं स्वयं जाकर युद्ध करूँगा। युद्ध में भूमिगोचरियों को जीतकर सीता को लेकर आऊँगा। यह कहकर वह मिथिला की ओर चल दिया।

जब वह आकाश मार्ग से आ रहा था तब उसकी नजर विदग्ध नगर की ओर गई। उसे उस नगर को देखकर ''मैंने पहले कभी उसे देखा है'' ऐसा लगा। उसने बुद्धि पर और जोर दिया तब उसे जाति स्मरण से ज्ञान हो गया। वह पूर्व घटनाओं को याद कर बेहोश हुआ। साथी उसे बेहोश हालत में चन्द्रगति के पास ले गये। उपचार के बाद होश आया। तब चन्द्रगति के पूछने पर उसने कहा-

पिताजी मुझे धिक्कार है, **इस संसार को धिक्कार है जिसमें अज्ञानता में यह प्राणी न जाने क्या-क्या**

पाप करता है? मुझे ही देख लीजिये – मैं अज्ञानता में क्या कर रहा था – जो मेरे साथ, एक साथ एक ही माँ के गर्भ में रही, ऐसी सगी बहन को पत्नी के भाव से देख रहा था। साथ ही उसने पूर्वजन्म की सारी घटनाएँ भी बता दीं और इस जन्म की भी। उसे बहुत ही आत्मग्लानि हुई।

चन्द्रगति ने संसार की विचित्रता देखकर **मुनि सर्वभूतहित** जो उस समय अयोध्या के पास स्थित महेन्द्रोदय नामक उद्यान में थे। उनके पास जाकर दीक्षा ली। साथ में भामण्डल आदि अनेक विद्याधर थे, उन्होंने मुनि के नाम से ऊँची आवाज में जयकारे लगाये। वे जयकारे अयोध्या वासियों को आश्चर्य उत्पन्न कर रहे थे, भामण्डल ने 'श्रीराम जयवन्त रहें' ऐसा बार-बार उद्घोष किया और 'कनक जिनका बड़ा भाई है, ऐसे जनक का मैं पुत्र हूँ' इन शब्दों में अपना परिचय दिया।

महल में सीता के कानों में ये शब्द पड़े तब सीता भाई को याद कर जोर-जोर से रोने लगी तब सांत्वना देते हुये राम ने कहा – **चतुर व्यक्ति मरे हुये, हारे हुये, खोये हुये व्यक्ति का शोक नहीं करते।** यदि यह आपका वही खोया हुआ भाई है तो अभी जाकर देखते हैं, हाथ कंगन को आरसी क्या?

राम, सीता, दशरथ आदि सारा राजपरिवार एवं अनेक अयोध्यावासी मुनि के दर्शन के लिये आये, जहाँ पहले से ही अनेक विद्याधर राजा अपने विशाल समुदाय के साथ विराजमान थे। इतनी अधिक संख्या में विद्याधरों को देखकर सबको आश्चर्य हुआ। धीरे-धीरे सभी को चंद्रगति विद्याधर के वैराग्य और मुनि बनने के समाचार का पता चला।

राजा दशरथ मुनिराजों को नमस्कार कर एक ओर बैठ गये और समस्त घटना का मूल पूछा। तब मुनि सर्वभूतहित ने अवधिज्ञान के द्वारा सीता, भामण्डल के पूर्वभव और वर्तमान जीवन की घटनाएँ बतायीं।

भुजाएँ ऊपर उठाये दौड़ती हुई सीता बिछुड़े हुये भाई के गले से ऐसे लिपटी जैसे आत्मा शरीर में लिपटी रहती है। ''हे भाई, मैं तुम्हें पहली बार देख रही हूँ, हे भाई, आपने मुझे, माँ, पिताजी को आज कितना सुख पहुँचाया है, इसे हम शब्दों से बता नहीं पायेंगे।'' ऐसे शब्दों से मिलन में गाढ़ापन लिये बार-बार गले मिली, उसके माथे को चूमा। भामण्डल ने कहा – बहन मैं भी अपनी खुशी को शब्दों से कह नहीं सकूँगा। बस इतना समझो कि मुझे खुशियों से भरा नया जीवन मिला है।

गले मिलते हुये न केवल भाई-बहन की, बल्कि इस मिलन को देखने वाले हर व्यक्ति की आँखें खुशियों के आँसुओं से नम थीं। मुनि को नमस्कार कर राजा दशरथ अयोध्या लौट आये। उन्होंने भामण्डल के मिलने का समाचार जनक तक पहुँचाया। जनक पत्नी विदेहा के साथ अयोध्या आये। भामण्डल के मिलने की खुशी में राजा दशरथ ने अयोध्या में महाउत्सव मनाया।

कुछ दिनों के बाद भामण्डल सबसे आज्ञा लेकर अपने देश चला गया। **पुण्य का उदय हो तो क्या नहीं हो सकता? जिसका स्वप्न में भी नहीं सोचा ऐसे पुत्र भामण्डल का मिलन जनक, विदेहा, सीता से हुआ।** सच है-

पुण्येन लभ्यते सौख्यमपापेन च दुःखिताः।
कर्मणामुचितं लोकः सर्वफलमुपाश्नुते।।

अर्थ – संसार में प्राणी पुण्य से सुख पाता है, पाप से दुःखी होता है। सभी प्राणी अपने कर्मों के अनुरूप ही सब प्रकार के फल प्राप्त करते हैं।

राजा दशरथ सर्वभूतहित मुनि के पास गये। उनसे धर्म और पूर्वभव के बारे में पूछा। सर्वभूतहित मुनि से अपने पूर्वभव को सुनने के बाद से संसार से उदास हुये। **सम्यक्त्व भाव ही उत्कृष्ट है, निर्मल भाव ही मुक्ति का मार्ग है–** उसे आज मैंने पाया है– यह कहकर उन्होंने कुटुम्बीजनों से कहा मुझे दीक्षा की आज्ञा दीजिये।

सर्वभूतहित मुनि के पास भरत ने भी धर्म का उपदेश सुना था उसे भी वैराग्य हुआ था। वह मन में सोचने लगा। पिताजी राजा हैं, उन्हें तो राज्यभार सौंप कर जाने की वजह से सब से आज्ञा लेनी पड़ रही है पर मैं तो इस भार से मुक्त हूँ। मुझे किससे क्या पूछना? मैं अभी दीक्षा लेता हूँ।

भरत के भावों को चेहरे की आकृति से समझ गयी ऐसी कैकयी भरत के पास ही खड़ी थी। भरत अभी दीक्षा ले सकता है, इधर पति दीक्षा लेकर जा रहे हैं, उधर पुत्र भी दीक्षा लेगा– दो–दो सदमे एक साथ कैसे सहन कर पाऊँगी? यह सोच वह तुरंत दशरथ के पास गई और कहा–

हे प्राणनाथ! **स्नेह का बन्धन बड़ा कष्टकारी है, धातु से बनी बेड़ी से बँधा मनुष्य शनैः–शनैः मीलों तक दूर जा सकता है पर स्नेह के बंधन से बँधा एक कदम भी नहीं चल पाता।** आप भाग्यवान हैं जो इस बंधन से मुक्त हो रहे हैं पर मैं इस बंधन में सिर से पैर तक जकड़ी हुई हूँ। इस समय उस बंधन को तोड़ने में असमर्थ हूँ। मैं आप से कहती हूँ कि इन्द्र के समान भोगों से पालित आपका यह शरीर भगवान के द्वारा कही हुई अत्यन्त कठिन दीक्षा, संयम को कैसे निभा पायेगा? इसलिये आप घर में रहकर ही श्रावक धर्म का पालन कीजिये। इससे आप हमारे सामने रहेंगे और आपका धर्मपालन भी होगा।

दशरथ बोले– अरे प्रिये! **समर्थ के लिये क्या कठिन और क्या आसान? शरीर को तो जैसा रखोगे, वैसा रहेगा, वह तो जड़ है, उसे कोई फर्क नहीं पड़ता। दीक्षा, संयम भाग्यवानों को प्राप्त होते हैं। संयम इन्द्र को भी चरणों पर झुकाता है। संयम नहीं ले पाने के कारण इन्द्र फूट फूट कर रोता है और सोचता है कि ''मैं संयम नहीं ले पाता हूँ, व्यर्थ है मेरा वैभव और स्वर्ग का राजपद'' मैं इसीलिये दीक्षा के विचार को सर्वोत्तम मानता हूँ, उस अवसर को धन्य घड़ी मानता हूँ। आप हमारे संयम की अनुमोदना करो। अनुमोदना से भी उतना ही पुण्य लाभ होता है, जितना उसके ग्रहण करने से होता है। इसलिये संयम और संयमधारियों की सदा अनुमोदना करो।**

कैकयी ने सोचा प्राणनाथ नहीं मानेंगे। पुत्र के लिये ही प्रयास करूँ। यह सोचकर उसने दशरथ से कहा– आपको याद है मेरा वचन आपके पास सुरक्षित है, सो मैं आज आपसे निवेदन करती हूँ कि मेरे पुत्र भरत को राज्य दीजिये वरना वह भी आपके समान दीक्षा लेकर चला जायेगा।

दशरथ ने कहा– इसमें कौनसी कठिनाई है मैंने उसे राज्य दे दिया। उसके राज्याभिषेक की तैयारी कीजिये फिर राम को बुलाकर कहा–

हे वत्स! एक बार युद्धकला की जानकार कैकयी ने जब मैं संकट में फँसा था, मेरे प्राण बचने की संभावना नहीं बची थी तब उसने सारथी का काम बखूबी निभाकर मेरे प्राण बचाये थे। उस समय सभी राजाओं के सामने मैंने कहा था– हे प्रिये! युद्ध में आप ने हमारे प्राण बचाये, उसके बदले आप जो इच्छा हो माँगिये, मैं आपको दूँगा। तब तो उसने कुछ नहीं माँगा, सिर्फ यह कहा कि यह वचन आपके पास धरोहर की तरह सुरक्षित रखिये, किसी समय माँग लूँगी।

आज उसने भरत के लिये राज्य माँगा है। आप समझदार हो, मैं क्या कहूँ? मैं दीक्षा के लिये जा रहा हूँ। यह कहकर दशरथ तो दीक्षा हेतु चले गये।

राम सोचने लगे कि मेरे रहते हुये भरत निश्चिंत होकर राज्यभार सम्भाल नहीं पायेगा। इसलिये उन्होंने राज्य की सीमा से बहुत दूर जाने का निर्णय किया।

भरत को जब ये समाचार मिले कि उसे राज्य सम्भालना है तब उसने मना किया। राम ने उसे समझाया कि इसमें पिताजी की बदनामी होगी। पिता की आज्ञा नहीं पालने का आपको दोष लगेगा। माँ की इच्छा का अपमान होगा, घर रहकर भी श्रावक धर्म का पालन कर सकते हो, समय आने पर दीक्षा भी लीजिये।

राम के गंभीर शब्दों से भरत निरुत्तर हो राज्य सम्भालने के लिये तैयार हो गये पर बेमन से।

राम के राज्य से दूर जाने के समाचार आग की तरह चारों ओर फैल गये। सब राम के महल की ओर राम को मनाने के लिये भागे-भागे आ गये। लक्ष्मण सबसे पहले आकर राम को मनवाकर उनके साथ जाने की तैयारी कर रहे थे। सीता भी राम के साथ जाने के लिये जिद कर रही थी, तब राम ने उसे खूब मना किया। कहा–

हे प्रिये! तुम यहीं पर सुख से रहो।

सीता– हे स्वामी! आपके बिना यहाँ सुख कहाँ है?

राम– हे सीते! जहाँ मैं जा रहा हूँ, वहाँ पृथ्वी पत्थरों से भरी है।

सीता– पर आपका वियोग पत्थरों से भी भारी है।

राम– वहाँ भोजन पानी का ठिकाना नहीं।

सीता– यहाँ आपके बिना जीवन का ठिकाना नहीं। **भोजन पानी तो पुण्याधीन होते हैं।**

राम– वहाँ सर पर छत नहीं होगी।

सीता– आप का साथ हो तो सर पर छत की क्या आवश्यकता है? आप ही मेरी छत हो, आपके संग में शांति तो रहेगी।

राम– जंगल विकराल होते हैं, जिनमें सुख खोजने पर भी नहीं मिलता।

सीता– आपके संग के अलावा मुझे अन्य सुख की इच्छा नहीं है।

जीव ने नरकों में अनंत बार जंगल से अनंत गुना ज्यादा यातनाएँ भोगी हैं उनके सामने जंगल की विकरालता कुछ भी नहीं है।

राम– अच्छा, मैं हारा आप चलिये।

सीता– आप हारे नहीं, आप तो मेरे (कण्ठ के) हार हो। मैं आपकी कभी भी हार नहीं चाहती सदा जीत ही चाहती हूँ।

राम, सीता, लक्ष्मण जाने लगे, तब सभी माताएँ उनको रोक रही थीं, तब राम ने उन्हें पिता की आज्ञापालन नहीं करने से होने वाली बात के बारे में समझाया और समझाया कि हमारे रहते भरत ठीक से राज्य सम्भाल नहीं पायेंगे। हमारे जाने में भरत और प्रजा दोनों का हित है।

कौशल्या के भारी अनुरोध को यह कहकर दूर किया कि जब मैं रहने का ठिकाना निश्चित करूँगा तब आपको वहाँ अवश्य ले जाऊँगा, यह मेरी प्रतिज्ञा है।

राम, लक्ष्मण, सीता माताओं को प्रणाम कर वहाँ से दक्षिण दिशा की ओर आधी रात को निकल गये और उस रात राजधानी से बाहर बने मंदिर में ठहर गये। दूसरे दिन प्रात: सीता को बीच में रखकर यात्रा करते हुये वे **परियात्रा** नाम के जंगल में पहुँच गये। जिसके किनारे पर शर्वरी नदी थी। ऐसे जंगल और नदियाँ पार करते हुये उन्हें छह दिन बीत गये। तब भरत जिसका मन राज्य सम्भालने में नहीं लग रहा था, वह पहुँच गया। कैकयी भी साथ थी, भरत ने कहा– आप चलिये, राज्य सम्भालिये। कैकयी ने भी समर्थन किया। राम ने कहा– **क्षत्रिय स्वीकृत किये कार्य से विमुख नहीं होते हैं** और भी अनेक शब्दों से उनको समझाकर राम ने भरत और कैकयी को लौटाया तथा आगे बढ़ गये।

भरत का मन अयोध्या लौट आने पर बेचैन रहता था, भरत ने प्रतिज्ञा की कि राम को देखते ही वे दीक्षा लेंगे। **जिनभक्ति से बढ़कर कोई पुण्य कार्य नहीं–** यह समझकर वह रात–दिन जिन भक्ति में लीन रहते थे। न सूर्य, न चन्द्र की ओर देखते थे। अर्थात् वे भगवान की भक्ति में इतना लीन रहते थे कि उन्हें न दिन का पता रहता था, न रात का।

इधर सीता, राम, लक्ष्मण क्रम–क्रम से चित्रकूट वन को पार कर अवन्ति देश में पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक वीरान देश को देखा। उन्होंने सोचा इतना सुंदर प्रदेश होने पर भी मनुष्यों के बिना शोभा नहीं दे रहा है क्या कारण है कि यह देश वीरान है?

सीता थकी हुई थी, भूख–प्यास से व्याकुल हो रही थी। राम ने लक्ष्मण से कहा – भाई तेरी भाभी बहुत थकी हुई है, भोजन–पानी की व्यवस्था करो।

ठीक है, कहकर लक्ष्मण एक ऊँचे पेड़ पर चढ़ इधर-उधर बस्ती देखने लगे। उन्हें उनकी ओर आता हुआ एक दीन-हीन मनुष्य दिखाई दिया। लक्ष्मण पेड़ से उतर कर उसके पास गये उसे लेकर राम के पास आये। राम ने उसे पूछा यह प्रदेश वीरान क्यों है?

तब उसने कहा-

सिंहोदर नाम का राजा उज्जियनी में राज करता है। यह प्रदेश उसी के राज्य में है। उसके अधीन रहने वाला यहाँ का राजा वज्रकर्ण था। वह जन्म से क्रूर स्वभाव वाला था, पाप कार्यों में आनंद मनाता था वह शिकार का व्यसनी था।

एक बार शिकार के लिये घने जंगल में गया। वहाँ कनेर वन के बीच में उसने मुनि को देखा। वे पक्षी के समान निशंक व सिंह के समान निर्भय थे। वज्रकर्ण ने मुनि से पूछा-

हे साधो! यह क्या कर रहे हो?

मुनि ने उत्तर दिया- जो पिछले सैकड़ों जन्मों में भी नहीं किया जा सका ऐसे आत्मा के हित के कार्य को कर रहा हूँ।

वज्रकर्ण ने कहा- आपके पास सुख की सामग्री तो है नहीं आत्मा का हित कैसे कर रहे हो?

मुनि ने उसे समझाया- आत्मा का हित करने के लिये सामग्री नहीं चाहिये, बल्कि सामग्री का त्याग चाहिये। आशा और मोह में पड़े हुये प्राणियों को सामग्री चाहिये। जिसकी आशा और मोह नष्ट हो जाते हैं उसे सामग्री की आवश्यकता नहीं रहती। खाज़वाला ही शरीर को खुज़ाता है, जिसे खाज़ ही न हो वह शरीर को क्यों कर खुज़ाये? मोह और इच्छा को नष्ट करने में ही सच्चा आत्महित है।

आप हजारों प्राणियों का सिर्फ इसलिये घात करते हो, क्योंकि तुम्हें माँस चाहिये। पर सोचो तो सही कितनी ही माँए अपने छोटे-छोटे बच्चों को छोड़कर चरने के लिये आती हैं, वे तुम्हारे शस्त्रों से मारी जाती हैं, बच्चे भूखे प्यासे तड़प-तड़प कर मर जाते हैं। न जाने अब तक कितने परिवार आपने नष्ट कर दिये होंगे उन्होंने आपका क्या बिगाड़ा था?

हितं करोत्यसौ स्वस्य भूतानां यो दयापरः।
दीक्षितो गृह्यातो वा बुधो निर्मलमानसः।।

अर्थ- अहो, आत्मा का हित तो वह करता है जो प्राणियों पर दया करने में तत्पर रहता हो, विवेकी हो, निर्मल भावों का धारक हो चाहे वह मुनि हो या गृहस्थ हो।

मुनि ने उसे धर्म का स्वरूप समझाया। उस पर मुनि के उपदेश का ऐसा असर हुआ कि उसने उसी समय प्रतिज्ञा ली कि **मैं देव, शास्त्र और मुनि को छोड़कर और किसी को नमस्कार नहीं करूँगा। सदा धर्म का पालन करूँगा-** इस तरह धर्म के अनेक नियम लेकर वह घर गया।

सिंहोदर राजा को वज्रकर्ण राजा की प्रतिज्ञा का पता चला, तब मानी, अहंकारी सिंहोदर ने सोचा वज्रकर्ण से उसकी बहन को माँगता हूँ, बहनोई होने के नाते उसे मुझे नमस्कार करना ही चाहिये। उसने दूत के द्वारा अपनी बात वज्रकर्ण तक पहुँचाई। कहा– आप अपनी बहन देकर हमें नमस्कार करें, वरना सजा मिलेगी।

वज्रकर्ण ने मुनि सुव्रतनाथ भगवान की प्रतिमा बनवाकर अंगूठी में जड़वायी। उसी को आगे कर उसने सिंहोदर को नमस्कार किया। सिंहोदर उस समय यह सोचकर संतुष्ट हुआ कि इसने मुझे नमस्कार किया।

परन्तु यह बात ज्यादा दिन छिपी नहीं रही। एक चुगलखोर ने राजा सिंहोदर को वह बात बता दी। सिंहोदर ने उसे मारने का निश्चय करके किसी बहाने से अपने पास बुलाया था।

वज्रकर्ण को उसके मन की बात का पता नहीं था। वह भोले मन से कुछ सैनिकों के साथ सिंहोदर से मिलने के लिये जा रहा था। रास्ते में वज्रकर्ण को एक मनुष्य मिला। उसने कहा– सिंहोदर राजा को तुम्हारी अंगूठी में बनी प्रतिमा की बात पता चली है : इसलिये वह आप पर क्रोधित हुआ है और तुम्हें मारने का निश्चय कर चुका है। आपको मरना हो तो भले ही उसके पास जाइये नहीं तो यहीं से घर लौट जाइये।

वज्रकर्ण ने पूछा– तुम्हें कैसे पता चला?

तब उसने कहा–

मेरा नाम विद्युदंग है। मैं अच्छे सम्पन्न व्यापारी का बेटा हूँ। मैं वहाँ उज्जियनी में व्यापार के लिये गया था वहाँ की कामलता नाम की वेश्या को देखकर सब कुछ भूल गया। उसकी सुंदरता से घायल हो गया। पिता की जीवन भर की कमाई मैंने छह महीने में उस पर खर्च कर दी।

एक दिन मैंने उसे कुण्डल लाकर दिये। उसकी सहेली ने कुण्डल की तारीफ की तब वह बोली कि ये कुण्डल कोई कुण्डल हैं। अरे कुण्डल तो वे हैं जो सिंहोदर राजा की श्रीधरा रानी के कानों में हैं, जो सुंदर रत्नों से बने हुये हैं। मैंने उसकी यह बात छिपकर सुन ली थी। उसके रूप रूपी फूल का भँवरा मैं रात में रानी के कुण्डल चुराने के लिये गया था। राजा को नींद नहीं आ रही थी? तब उससे रानी ने कहा– आप सो जाइये।

तब उसने कहा– वज्रकर्ण ने मेरे साथ धोखा किया है, जब तक उसे नहीं मारूँगा, तब तक मुझे नींद नहीं आयेगी। कल उसे बुलाया है, उसे मारकर ही चैन की नींद सोऊँगा।

''आप सदा धर्म में लीन रहते हो, साधुओं की सेवा करते हो, धर्मात्मा हो– आप जैसे का जीवन बचाना चाहिये''– यही सोचकर मैं आपके ही पास आ रहा था। आप रास्ते में ही मिल गये। आगे आप को जो उचित लगे, वह कीजिये।

वज्रकर्ण वापस लौट गया।

सिंहोदर को इस बात का पता चला तो क्रोध से जलता हुआ वह बड़ी भारी सेना के साथ वज्रकर्ण पर आक्रमण के लिये आया। युद्ध में व्यर्थ ही जनहानि न हो इस भावना से वज्रकर्ण ने दूत के द्वारा सिंहोदर तक संदेश भेजा कि आप मेरा सब कुछ ले लीजिये सिर्फ पत्नी के साथ मुझे धर्म के लिये छोड़ दीजिये। लेकिन सिंहोदर नहीं माना उसने इस देश को आग लगाकर वीरान कर दिया। हम लोग भी भाग गये। मेरी पत्नी ने घर के घड़े में धन छिपाकर रखा था, पत्नी के कहने से उसे लेने के लिये जा रहा था।

उसकी दरिद्र दशा से दयाद्र होकर राम ने उसे रत्नों से जड़ा हुआ सोने का हार दिया।

उस के जाने के बाद राम ने लक्ष्मण से पुनः कहा कि जाओ, सीता बहुत दुःखी हो रही है, कहीं से भोजन-पानी ले आओ।

लक्ष्मण गये उन्हें सैनिकों की छावनी दिखी उस ओर गये। सैनिकों ने उन्हें रोका उस छावनी को छोड़कर लक्ष्मण दूसरी छावनी में गये। जिसमें वज्रकर्ण राजा था। वज्रकर्ण ने लक्ष्मण से पूछा यहाँ क्यों आये हों? तब लक्ष्मण ने कहा मैं बहुत दूर देश से आया हूँ, भूखा हूँ, भोजन की तलाश में आया हूँ।

वज्रकर्ण ने सेवकों को आदेश दिया कि मेरे लिये बना हुआ भोजन इन्हें कराओ। भोजन की मुझसे ज्यादा इन्हें आवश्यकता है।

लक्ष्मण ने कहा पास ही मेरे पूज्य बड़े भाई एवं माँ समान भाभी हैं, उन्हें भोजन कराकर ही खाऊँगा। इसलिये यह भोजन मैं उनके पास ले जाऊँगा।

वज्रकर्ण ने भोजन के अलावा और अन्य स्वादिष्ट पदार्थ लक्ष्मण को दिये। लक्ष्मण उसे लेकर राम, सीता के पास आये सब ने भोजन किया। भोजन के बाद राम ने लक्ष्मण से कहा- ऐसे धर्मात्मा राजा की रक्षा करनी चाहिये। लक्ष्मण सीधे सिंहोदर के पास गये। कहा- मैं राजा भरत का दूत हूँ। भरत राजा आपसे कहते हैं कि **व्यर्थ बैर से क्या लाभ और धर्मात्मा से वैर नहीं रखना चाहिये।** राजा वज्रकर्ण धर्मात्मा हैं, उसके साथ वैरभाव छोड़ दीजिये। लक्ष्मण के कठोर शब्दों को सुनकर सिंहोदर को गुस्सा आया। उसने सैनिकों को उसे पकड़ने के लिये आदेश दिया।

लक्ष्मण ने सैनिकों को तितर-बितर कर सिंहोदर को पकड़कर बाँधा, घसीटते हुये राम के पास ले आया। रास्ते भर रानियाँ सिंहोदर के जीवन की भीख माँगती रहीं पर उसने कहा- मेरे बड़े भाई ही इसका निर्णय करेंगे।

सिंहोदर की पत्नियों ने सीता से कहा- आप स्त्री हो हमारे दुःख को समझ सकती हो, हमें कुछ नहीं चाहिये आप हमारे स्वामी के प्राणों की रक्षा कीजिये। सीता ने उनको आश्वासन दिया कि राम उन्हें अवश्य माफ करेंगे। मैं उन्हें जानती हूँ आप सब निश्चिंत रहिये।

लक्ष्मण ने राम से पूछा- सिंहोदर का क्या करें?

राम ने कहा- सिंहोदर वज्रकर्ण का अपराधी है, अतः वज्रकर्ण को बुलाकर उन्हीं से पूछो, क्या करना है?

वज्रकर्ण को बुलवाया। राम के पूछने पर वज्रकर्ण ने कहा- धर्म का आराधक होने से मैं यह नहीं चाहता कि तिनके को भी पीड़ा हो, अत: सिंहोदर को न केवल जीवनदान बल्कि सिंहोदर को सिंहोदर का राज्य दीजिये। धर्मात्मा वज्रकर्ण की रक्षा करके उसे उसका राज्य दिलाकर राम, लक्ष्मण, सीता अपनी यात्रा पर निकल गये।

कुछ दिनों की यात्रा के बाद वे विंध्याचल के घने जंगल में पहुँचे। उसे पार करके वे धीरे-धीरे वापी नदी के तट पर पहुँचे। थके हारे वे वहाँ एक गृहस्थ के घर जलपान की आशा से गये। गृहस्थ की पत्नी ने जलपान दिया था इतने में घर का स्वामी आया। आते ही उसने इनसे भला-बुरा कहना प्रारंभ कर दिया। तब सीता ने कहा- **भूखे-प्यासे प्राण छोड़ना अच्छा है पर ओछे लोगों के घर का कण भी स्वीकार करना अच्छा नहीं है।** तब वे बिना खाये पीये वहाँ से गये। पास के जंगल में एक घने छायादार पेड़ के नीचे ठहरे।

उस पेड़ पर **इभकर्ण** नाम का यक्ष रहता था वह तुरंत अपने स्वामी **पूतन** नामक यक्ष के पास जाकर बोला कि- कोई तीन मानव जिनमें एक महिला है मेरे वृक्ष के आश्रय से ठहरे हैं उनके पुण्य-प्रभाव से परास्त होकर मैं आपकी शरण में आया हूँ।

पूतन यक्षराज ने अवधि-ज्ञान से जानकर कहा- ये अलौकिक धर्मात्मा हैं, उनकी सेवा करो। यक्षराज स्वयं आया। साथ में उसके सेवक आये थे। उसने एक दिव्य नगरी बसाकर एक सुन्दर महल में राम, सीता, लक्ष्मण को ठहराया। उस नगरी का नाम **रामपुरी** रखा। वे वहाँ कुछ दिन रहे।

जब वे वहाँ से जाने लगे तब जाते समय यक्षराज पूतन ने राम को स्वयंप्रभ नाम का अद्भुत हार दिया। लक्ष्मण को दो मणिमय कुण्डल दिये। सीता को दैदीप्यमान चूड़ामणि तथा वीणा दी। देखो पाप-पुण्य का उदय, **पाप के उदय से जलपान नहीं मिला। पुण्य का उदय आया तो यक्ष ने नगरी बसाकर दी और भेंट के रूप में दिव्य हार आदि दिये।**

इसके बाद वे वैजयन्तपुर पहुँचे। वहाँ एक स्थान पर रुके। वहाँ उन्हें पता चला कि अतिवीर्य नाम का राजा अन्य राजाओं के साथ मिलकर अयोध्या पर आक्रमण करने वाला है। राम ने सोचा-

अज्ञाता एव ये कार्यं कुर्वन्ति पुरुषाद्भूतम्।
तेऽतिश्लाघ्या यथात्यन्तं निवृष्य जलदा गता:।।

अर्थ- जो लोग अज्ञात रहकर मनुष्यों को आश्चर्य में डाल देने वाला भारी उपकार करते हैं, वे चुपचाप बरस कर गये हुये बादलों के समान अत्यंत प्रशंसनीय होते हैं।

इसलिये अज्ञात रहकर अतिवीर्य को वश में कर भरत की मदद करनी चाहिये। यही निर्णय कर उन्होंने सीता को **वरधर्मा आर्यिका** के पास रखा।

राम ने नर्तकी का भेष बनाया, लक्ष्मण ने सहयोगिनी स्त्री का भेष बनाया। दरबार में उन्होंने नृत्य दिखाया और राजा अतिवीर्य को बंधक बनाकर सीता के पास लाये। सीता से पूछा इसके साथ क्या करें? सीता ने कहा-

को दोष: कर्मसामर्थ्याद्यदा यान्त्यापदं नरा:।
रक्ष्या एव तथाप्येते दधतामतिसाधुताम्।।

अर्थ– सज्जन मनुष्य सामान्य मनुष्य को भी दु:ख देना उचित नहीं समझते यह अतिवीर्य हजारों मनुष्यों से पूजित है अत: इसे क्षमा करें।

अतिवीर्य को क्षमा करके लक्ष्मण ने सीता के चरणों पर नमस्कार करते हुये कहा–

धन्य हो देवी आप जैसी क्षमाधारिणी (आर्यिका के अलावा) धरती की महिलाओं में दूसरी नहीं हो सकती। आप इस प्रकार के कार्यों से देवताओं के लिये भी पूज्य हो।

सीता की कृपा से अतिवीर्य को राज्य मिला, परन्तु उसने यह कहा कि मुझे राज्य की इच्छा नहीं है, राज्य ने मुझे फल दे दिया है, **राज्य और संसार को भोगना उचित नहीं लगता; क्योंकि पूर्व में छह खण्ड के राज्य से भी चक्रवर्तियों को संतोष नहीं मिला** उनकी तुलना में मेरा राज्य कितना–सा है? **संसार में कर्म की बलवत्ता देखो, राजा रंक होकर पैदल घूमता है, राहू चन्द्रमा को तेज रहित कर देता है। हजारों देव जिनके रत्नों की सेवा करते हैं, ऐसे वीर जंगल में एक बाण के द्वारा मरण को प्राप्त होते हैं।** अब मैं दूसरा जन्म लेने से भयभीत हो चुका हूँ इसलिये मैं राज्य स्वीकार नहीं करूँगा– यह कहकर अतिवीर्य ने **श्रुतिधर मुनि** के पास दीक्षा ली। कुछ समय पहले का शत्रु अब नमस्कार करने योग्य गुरु हो गया है।

उसके बाद राम, लक्ष्मण, सीता विजयपुर नगर गये। जहाँ का राजा पृथ्वीधर था। उसने उनका सत्कार किया और अपनी पुत्री वनमाला लक्ष्मण को दी। कुछ समय वहाँ रहकर वे आगे जाने लगे तब वनमाला बहुत दु:खी हुई। दु:खी होकर उसने कहा– हे प्रिय! मुझे इस तरह दु:खी कर क्यों जा रहे हो?

लक्ष्मण ने कहा– हे भद्रे! दु:खी मत होवो मैं शीघ्र ही तुम्हारे पास आऊँगा। शीघ्र न आऊँ तो सम्यग्दर्शन से रहित मनुष्य को जो गति प्राप्त होती है वह मेरी हो। साधुओं की निन्दा करने वाले अहंकारी मनुष्य के समान पाप से लिप्त हो जाऊँ।

हे प्रिये! हमें पिता के वचन की रक्षा करनी है, दक्षिण समुद्र के तट जाना है। वहाँ मलयाचल की तलहटी में जाकर उत्तम भवन बनाकर फिर तुम्हें ले जाऊँगा तब तक धैर्य धारण करो।

वहाँ से निकलकर वे तीनों क्षमांजलि नगर गये फिर **वंशस्थद्युति** नामक नगर में पहुँचे। उस नगर के पास उन्होंने वंशधर नाम का पर्वत देखा। उन्होंने यह भी देखा कि लोग नगर से निकल–निकल कर कहीं अन्यत्र जा रहे हैं। तब राम ने एक मनुष्य से पूछा– आप लोग नगर को छोड़ कर क्यों जा रहे हो?

इसके उत्तर में उस मनुष्य ने कहा– इस पर्वत के शिखर पर रात के समय जोर–जार से आवाज़ें आती हैं जो बहुत ही डरावनी होती हैं। ये आवाज़ें किसकी हैं? यह बुजुर्ग भी नहीं जान पा रहे हैं। उन आवाज़ों से धरती हिल उठती है। दसों दिशाएँ चकराने लगती हैं, तालाबों का पानी घूमने लगता है, पेड़ उखड़ने लगते हैं, कान फटने लगते हैं। हम लोग रात होने से पहले ही नगर छोड़ देते हैं और सुबह होने पर लौट आते हैं। ऐसा होते करते आज तीसरा दिन है।

वह वृत्तान्त सुनकर सीता ने घबड़ाकर कहा– हे प्रिय! जहाँ ये लोग जा रहे हैं, वहीं हम भी चलें। राम ने हँसकर कहा– हे भीरू सीते! जहाँ ये लोग जा रहे हैं, वहीं तू जा, सुबह होने पर इस पर्वत के पास आना, हम तुम्हें खोज लेंगे। आज हम देखेंगे कि इस पर्वत पर ये आवाज़ें किसकी हैं इन दीनहीन लोगों की, उनके बाल बच्चे पशुओं की रक्षा करेंगे। सीता ने काँपती हुई आवाज में कहा– आप लोगों की हठ केकड़े की पकड़ के समान बड़ी विचित्र है। मैं भी आपके साथ चलूँगी।

आगे राम, मध्य में सीता, अंत में लक्ष्मण – इस तरह तीनों पर्वत पर चढ़े।

उन्होंने ऊपर जाकर दो मुनिराज देखे, जो ध्यान में लीन थे, जिनकी लम्बी–लम्बी भुजाएँ नीचे की ओर लटक रही थीं, वे परम तेज से युक्त थे, समुद्र के समान गंभीर थे, पर्वत के समान अचल, कांति के सागर थे, नये तारुण्य से युक्त थे, सिद्ध प्रतिमा को सिद्ध कर रहे थे।

उन्हें देख रामादि आश्चर्य से भर गये। उन्होंने हाथ जोड़कर मस्तक से लगाये। उनके चरणों पर दूर से ही नमस्कार किया। उनके हृदय में भक्ति के भाव वैसे ही उमड़ आये जैसे चाँद को देखकर समुद्र उमड़ता है। विनय से उनके शरीर नम्र हुये।

उन्होंने पास जाकर देखा कि उस समय अत्यंत भयंकर आकार वाले, काजल के समान काले जिनकी जीभें लपलपा रही थीं– ऐसे साँप उन मुनिराजों के शरीर पर चल रहे थे। इसके अलावा जिन्होंने अपनी पूँछे ऊपर उठा रखी थीं, एक दूसरे से सटकर चल रहे थे, नाना रंग के थे ऐसे बिच्छुओं ने मुनियों को घेरा था।

मुनियों की ऐसी दु:खभरी दशा देखकर राम, लक्ष्मण, सीता सहसा भयभीत हो गये, क्षण भर के लिये निश्चल हो गये। सीता तो भयभीत हो पति से लिपट गई। राम ने सीता से कहा– डरो मत। वे मुनिराजों के और पास गये। सीता आश्वस्त होकर डर को मन से निकाल कर राम, लक्ष्मण के साथ मुनिराजों के शरीर से साँप, बिच्छुओं को हटाने लगी। साँप, बिच्छु लौटकर आते थे। धनुष के अग्र भाग से धीरे–धीरे उनको हटाया। सीता ने झरने के प्रासुक जल से मुनिराजों के पैर धोये, शरीर पोंछा।

तीनों ने मुनिराज की भक्ति भाव से वंदना की। राम ने वीणा को बजाकर, लक्ष्मण ने ताल देकर, सीता ने कोयल के समान मीठे स्वर से गीत गाकर मुनिराजों की भक्ति की। उनकी भक्ति के स्वर इतने मीठे थे कि जानवरों, पक्षियों के हृदय भी भक्तिमय बन कोमलता को प्राप्त हो गये थे। सीता ने ऐसा सुंदर, भाव विभोर करने वाला नृत्य किया जैसे भगवान के जन्माभिषेक के समय सुमेरू पर्वत पर श्रीदेवी ने किया था।

उपसर्ग से त्रस्त होकर ही मानो सूर्य अस्त हो गया। उसके पीछे संध्या आ गई। संध्या के पीछे नक्षत्रों का मण्डल आ गया। सघन अन्धकार समस्त दिशाओं में फैल गया उसी समय ऐसी विचित्र आवाज़ें सुनाई दीं जो दिशाओं को क्षोभ उत्पन्न कर रही थीं, आकाश को चीरती हुई–सी जान पड़ती थीं। जिनके आकार अत्यन्त भय उत्पन्न करने वाले थे तथा जिनके मुख दाँतों की कुटिल पंक्ति से विकराल थे ऐसे भूतों के झुण्ड महाभयंकर अट्टहास करने लगे थे। राक्षस नीरस शब्द करने लगे थे, अमंगलरूप शृगालियाँ अग्नि

उगलती हुई शब्द करने लगी थीं सैकड़ों, कलेवर भयंकर नृत्य करने लगे थे।,बादल बदबूदार मोटी-मोटी बूँदें बरसाने लगे थे, विकराल डाकिनियाँ उपद्रव करने लगी थीं, राक्षसों की विकराल आकृतियाँ नृत्य कर रही थीं वहाँ के पर्वतों की चट्टानें हिलने लगी थीं।

यह सब हो रहा था, परन्तु उन ध्यानमग्न मुनियों को इन चेष्टाओं का कुछ भी भान नहीं था। राक्षसों की भयंकर चेष्टाओं को देख सीता डरकर राम से लिपट गई। तब राम ने उससे कहा- हे देवी डरो मत सब प्रकार का भय दूर करने वाले मुनियों के चरणों का आश्रय ले बैठ जाओ। यह कहकर राम ने सीता को मुनिराज के चरणों के पास बिठाया।

स्वयं लक्ष्मण के साथ राक्षसों से युद्ध करने के लिये तैयार हुये। उन्होंने धनुष की टंकार की। जिससे राक्षस भयभीत हो गये। राम बलभद्र हैं, लक्ष्मण नारायण हैं अवधिज्ञान से ऐसा जानकर मुनियों पर उपसर्ग करने वाला **अग्निप्रभ नाम का ज्योतिषी देव** अपनी माया समेटकर वहाँ से चला गया। ज्योतिषी देव की माया समाप्त होने पर वातावरण शांत हो गया। आकाश निर्मल हो गया। उपसर्ग दूर होने के साथ ही उन दोनों मुनियों को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया देव आ गये। उन देवों में एक **महालोचन** नाम का देव था जो पूर्वपर्याय में उन पूज्य मुनियों के पिता थे। उसने राम, लक्ष्मण से कहा- आपने हमारे पूर्वपर्याय के पुत्रों का उपसर्ग दूर किया है, बताइये-आपको क्या वरदान दूँ? तब राम ने कहा- संकट के समय आपको याद करेंगे तब आप हमारी मदद करना। सबने उनके केवलज्ञान का उत्सव मनाया। राम, सीता, लक्ष्मण ने उन केवलियों की पूजा की।

वे मुनि कुलभूषण और देशभूषण नाम के राजकुमार सगे भाई थे दोनों गुरुकुल से पढ़कर आने के बाद अपनी सगी बहन को न पहिचान कर उस पर आसक्त होकर एक दूसरे को मारने के लिये तैयार हो गये थे, सारथी के समझाने पर अपने अज्ञान पर लज्जित हो दोनों ने दीक्षाएँ ली थीं। जिस जगह यह घटना घटी थी आज यह तीर्थ **कुंथलगिरि** नाम से प्रसिद्ध है।

वहाँ कुछ दिन रहकर वे आगे बढ़े। कर्णरवा नदी के किनारे पर विद्यमान निर्जन, भयानक ऐसे **दण्डक वन** में पहुँच गये। यहाँ पास ही समुद्र का भी किनारा था। दण्डक वन तक ही भरत का राज्य है। वहाँ तक उसकी आज्ञा चलती थी, उससे आगे नहीं। दण्डक वन पार कर समुद्र के किनारे पर भवन बनाकर रहेंगे यह सोच कर उन्होंने दण्डक वन में प्रवेश किया। उस दिन से चौमासा शुरू हुआ था।

वहाँ कर्णरवा नदी के किनारे पर छायादार जगह पर ठहर गये। लक्ष्मण ने मिट्टी, पत्तों आदि से उपयोगी बरतन बनाये। इन्हीं बरतनों में सीता स्वादिष्ट तथा रसदार फलों से और वन की सुगन्धित धान से भोजन बनाती थी।

एक दिन अतिथि भोजनकाल के समय सामने से आते हुये **सुगुप्ति** और **गुप्ति** नाम के दो मुनि दिखे। वे मुनि आकाश मार्ग से जा रहे थे। उनके शरीर तप के प्रभाव से दमक रहे थे, वे बहुत ही सुंदर थे मति,

श्रुत, अवधि इन तीन ज्ञानों से सहित थे उनके मन पाप की इच्छाओं से रहित थे उन्होंने एक माह का उपवास किया था उन्हें देखकर सीता ने राम से कहा–

देखो, देखो, तप से जिनका शरीर दुबला–पतला हुआ है जो थके हुये से लग रहे हैं– ऐसे चलते फिरते सिद्ध के समान मुनियों का युगल देखो।

राम ने कहा– हे सौभाग्यवती! जिनके दर्शन मात्र से चिरसंचित पाप क्षण भर में नष्ट होता है, ऐसे मुनि युगल को आपने कहाँ देखा? सीता उसके उत्तर में 'ये हैं, ये हैं' – ऐसा कह रही थी कि इतने में वह युगल उनके सामने आया।

उन्होंने मुनियों का चरण स्पर्श कर भक्ति–वंदना के साथ आहार कराया। मुनि ऋद्धियों के धारी थे इसलिये वहाँ दुंदुभि बाजे बजने लगे, शीतल सुगंधित वायु बहने लगी, धन्य धन्य ऐसी देवध्वनि होने लगी, आकाश से पुष्पवर्षा हुई, दिव्यरत्नों की वर्षा होने लगी ऐसे पाँच आश्चर्य प्रगट हुये।

वहीं पर एक बहुत बड़ा पेड़ था उस पर एक गिद्ध पक्षी बैठा था। मुनिराजों को देखकर उसे अपने पूर्वजन्मों का ज्ञान प्रकट हुआ। वह सोचने लगा। पूर्व में मैंने अच्छा आचरण नहीं किया। इसलिये आज माँसभक्षी पक्षी बना हूँ वह पश्चाताप करता हुआ वृक्ष से नीचे आया और मुनिराज के चरणों के जल को पीने लगा उस जल को पीने से उसका शरीर अनेक प्रकार के रत्नों के समान अनेक रंग वाला हो गया। उसके पंख सोने के समान पीले हो गये, पैर नीलम के समान नीले रंग के हो गये, चोंच मूँगे के समान लाल हो गई, आँखें पद्मराग मणि के समान गुलाबी हो गई। अपने सुंदर रूप को देखकर मुनिराजों की भक्ति में डूबा गिद्ध नाचने लगा, साथ ही मुँह से मीठी–मीठी आवाज़ें निकाल रहा था।

नाच गाने के बाद वह पंखों को सिकोड़कर शिला पर विराजमान मुनिराज के चरणों के पास शांत भाव से बैठ गया। राम, सीता, लक्ष्मण उसके बदले हुये रंग रूप एवं नृत्य भक्ति को देखकर आश्चर्य में पड़ गये कि एक माँसभक्षी पक्षी में इस तरह का बाह्य और अंतरंग बदलाव कैसे आया?

उन्होंने मुनिराजों से पूछ ही लिया कि हे भगवन्! देवों की दुंदुभि की आवाज से सभी पक्षी उड़ गये पर यह क्यों नहीं उड़ा? रोकने पर भी आपके पास क्यों आया? पहले अत्यन्त कुरूप था अब अचानक सुंदर कांतिवाला कैसे हो गया? माँस खाने वाला यह आपके चरणों में कैसे शांत बैठ गया?

इसके उत्तर में मुनिराज ने कहा –

इसी दण्डक देश में कर्णकुण्डल नाम का नगर था उसमें यह दण्डक नाम का राजा था। एक दिन यह शिकार के लिये गया। उसे मुनि दिखे। उसने मुनि के गले में मरा हुआ साँप डाला और शिकार के लिये निकल गया। लौटते समय वह जब उसी रास्ते से लौट आया तो उसने देखा कि एक मनुष्य उनके गले से साँप निकाल रहा है, मुनि ध्यान में वैसे ही लीन थे जैसे सुबह थे। दण्डक ने उस मनुष्य से पूछा– यह क्या कर रहे हो?

उस मनुष्य ने कहा– किसी पापी ने धर्मसाधक, वीतरागी मुनि के गले में मरा साँप डालकर अपना नरक जाना पक्का कर लिया है। उसी पापी के पाप के विचार से काँपता हुआ साँप को हटा रहा हूँ।

दण्डक ने देखा कि मुनि वैसे ही शांत, ध्यानमग्न थे, जैसे सुबह थे परन्तु इस समय इनका शरीर जहर के प्रभाव से काला पड़ गया है। उसे आत्मग्लानि हुई, उसे बुरा लगा, उसने पश्चाताप करते हुये मुनि से क्षमा माँगी उनसे उपदेश सुना कुछ देर वहीं रुका बाद में घर गया। उस दिन से उसने मुनियों की बहुत सेवा की उनके उपसर्ग दूर किये इस तरह वह मुनि भक्त बना।

दण्डक राजा की रानी परिव्राजकों की भक्त थी। परिव्राजकों का स्वामी रानी से गुप्त समागम भी करता था, दण्डक राजा दिगम्बर मुनि का भक्त बना है– यह जानकर परिव्राजकों के स्वामी ने दिगम्बर रूप बनाकर रानी से समागम किया और अन्य मनुष्यों के द्वारा राजा तक यह संदेश पहुँचवाया कि एक दिगम्बर मुनि ने आपकी रानी के साथ घृणित कार्य किया है राजा को विश्वास नहीं हुआ पर दिगम्बर मुनियों से द्वेष रखने वाले मंत्रियों, दरबारियों ने उसे भड़काया वह उनके बहकावे में आया।

उसने मुनियों को घानी में पेलने की आज्ञा दी वहाँ उस समय एक मुनि संघ आया हुआ था उस संघ के सभी मुनियों को घानी में पेला गया, उस संघ के एक मुनि आचार्य की आज्ञा से बाहर गये थे वे लौटकर उसी नगरी की ओर आ रहे थे रास्ते में उन्हें किसी दयालु मनुष्य ने यह कहकर रोका कि–

हे मुनि! नगरी में मत जाओ, नहीं तो घानी में पेले जाओगे, शीघ्र ही यहाँ से चले जाओ, यहाँ से दूसरी ओर लौट जाओ। राजा ने निर्ग्रन्थ मुनियों को घानी में पेलने का आदेश दे रखा है।

संघ की इस प्रकार की दु:खद मृत्यु सुनकर उनके भीतर से क्रोधरूपी शेर बाहर आया। उनकी आँखों से निकलने वाले लाल प्रकाश से सारा आकाश भर गया। उनके मुँह से 'हा' शब्द के उच्चारण के साथ धुआँ और उसके पीछे अग्नि निकली उससे वहाँ सब कुछ भस्म हो गया।

इधर मुनिराज का चिरसंचित तप भी नष्ट हो गया, मुनि भी उसी समय भस्म हो गये। **'सब्र' यह शब्द ही क्रोधाग्नि में जल जाता है तब अन्य कौन–सी वस्तु बचेगी?**

यही वही दण्डक देश है जो आज भी दण्डक नाम से ही प्रसिद्ध है। यह गिद्ध उसी दण्डक राजा का जीव है जो अनेक गतियों में भटकता–भटकता आज गिद्ध पर्याय में है।

आज उसे हमारे दर्शन से पूर्वजन्मों का ज्ञान हो गया है। **जब दूसरे का उदाहरण ही शांति का कारण बनता है, इसे तो अपनी ही बातें याद आयी हैं।** इसलिये पश्चाताप करता हुआ चरणों पर गिरा है। हमारी ऋद्धि के निमित्त से व उसके पुण्य के उदय से उसका ऐसा सुंदर रूप बना है अब इसने माँस का त्याग कर दिया है, अब यह श्रावक बन गया है आप लोग इसका ध्यान रखना, पालन–पोषण करना। यह कहकर मुनि आकाश मार्ग से गये।

उस दिन से वह गिद्ध उन्हीं के साथ रहने लगा, सीता के हाथों से बना उत्तम स्वादिष्ट भोजन करता

था। उसके शरीर पर रत्न एवं सोने के किरणों की तरह रंगावली जटाएँ सुशोभित हो रही थीं इसलिये सीता आदि उसे **जटायु** नाम से बुलाते थे वह सब का प्यारा था। वह तीनों संध्याओं के समय सीता के साथ अरहंत, सिद्ध व निर्ग्रन्थ साधुओं को भाव-नमस्कार करता था। सीता के द्वारा बनाये भोजन के अलावा जंगल के शुद्ध, स्वादिष्ट फलों को खाता था, वह माँसाहारी से शाकाहारी बना। **संकल्प करो तो क्या संभव नहीं है?**

जब सीता ताल का शब्द देती हुई धर्ममय गीतों को लयबद्ध गाती थी और राम, लक्ष्मण उसके स्वर में स्वर मिलाकर साथ-साथ गाते थे तब यह जटायु खुश होकर नृत्य करता था।

उन तीनों ने वर्षाकाल का चौमासा दण्डकारण्य में ही पशु, पक्षियों के साथ आनन्द से बिताया। वहाँ के पशु, पक्षी उनके मित्र हो गये थे, क्योंकि-

तिर्यच्चोऽपि ह्येते रम्यं परुषकृतिरहितमनसां विदन्ति समीहितम्।

अर्थ- पशु, पक्षी भी कोमल चित्त के धारक मनुष्यों की मनोहर चेष्टाओं को समझते हैं।

उसी वन में एक दिन लक्ष्मण राम से आज्ञा लेकर रात्रि के समय अकेले ही घूमने गये थे। जंगल में उन्हें दिव्य सुगन्ध सूँघने में आयी। 'यह दिव्य सुगंध किसकी है?' ऐसा विचार कर लक्ष्मण उसकी खोज करते-करते, उसे सूँघते-सूँघते उस दिशा की ओर गये जिस दिशा से वह आ रही थी।

दरअसल वह दिव्य गंध सूर्यहास खड्ग की थी, जिस सूर्यहास तलवार की एक हजार देव सेवा करते थे। जो व्यक्ति बारह वर्ष एक प्रकार का अन्न खाता है, निर्मल चित्त को धारण करता है, ब्रह्मचर्य से रहता है, इन्द्रियों को जीतकर एकान्त में रहता है, विधिपूर्वक मंत्र की साधना करता है उसे उसकी प्राप्ति होती है।

उस दिन सूर्यहास खड्ग शम्बुक को प्रगट हुई थी। उस तरवार पर दिव्य सुगंध लेप रहता है, उसी की गंध लक्ष्मण तक पहुँची थी। सूर्यहास प्रगट होने के सात दिन के बाद ही उसे ग्रहण किया जाता है, सात दिन पहले उसे छू ले तो सिद्ध करने वाले को भी मार डालती है।

शम्बूक रावण का भाँजा, खरदूषण और चंद्रणखा का बेटा था। बड़े लोगों के मना करने पर भी उसने साधना की उस दिन उसे अपनी जिद्द के कारण सूर्यहास खड्ग प्रगट हुई थी।

चन्द्रणखा अपने पुत्र को देखने के लिये प्रतिदिन आती थी। उसने सूर्यहास खड्ग देखी और प्रसन्न होकर सूचना देने के लिये पति के पास चली गई थी।

उसी समय लक्ष्मण सूर्यहास खड्ग तक पहुँच गये। लक्ष्मण ने उसे निसंकोच उठा लिया। लक्ष्मण के द्वारा सूर्यहास को उठाते ही उस खड्ग के रक्षक एक हजार देवों ने लक्ष्मण से कहा- आप हमारे स्वामी हो! उन देवों ने नमस्कार कर उनकी पूजा की।

उसके बाद लक्ष्मण ने उसकी धार की तेजी परखने के लिये उस बाँस के झुण्ड पर चलाया जिसमें शम्बुक ध्यानस्थ बैठा हुआ था, बाँसों के कटने के साथ शम्बुक का सिर भी धड़ से अलग हुआ।

देखों, पुण्य–पाप के उदय की विचित्रता जिस शम्बुक ने बारह वर्ष तक कठोर साधना करके जिसे पाया था ऐसा वह सूर्यहास खड्‌ग पाप के उदय से उसी के वध का कारण बना। पुण्य के उदय से वह खड्‌ग लक्ष्मण को बिना साधना के ही प्राप्त हो गया।

चन्द्रणखा लौटकर पुत्र को देखने के लिये आयी तब उसे वह बाँस का वन कटा हुआ दिखा, जिसमें उसका पुत्र साधना के लिये पिछले बारह वर्ष से बैठता था। उसने अनिष्ट की आशंका के साथ पास जाकर देखा तब उसे पुत्र का सिर और धड़ अलग–अलग दिखे। उसने बहुत विलाप किया। कुछ देर बाद वह पुत्र के हत्यारे को ढूँढ़ती हुई इधर–उधर घूमने लगी।

घूमते हुये वह वहाँ पहुँच गयी जहाँ राम और लक्ष्मण थे। उनको देखते ही वह उन दोनों की सुंदरता में ऐसी उलझ गई कि उसने अपनी सुध–बुध खो दी। वह कामवासना से इतनी भर गई कि कुछ समय पहले मर चुके पुत्र के दु:ख को भी भूल गई। उसके विचारों पर, बुद्धि पर वासना का रंग चढ़ गया था। उसने विचार किया कि इन दोनों पुरुषों में से मुझे चाहने वाले को चुनूँगी। उसके मन में प्रेम की तरंगें उठने लगीं। वह हाथ की अँगुलियाँ चबाती हुई, डरी हुई मुद्रा में एक वृक्ष के नीचे बैठकर रोने लगी। वह दीनता भरी आवाजें निकालने लगी। धरती पर लोट–पोट हो विलाप करने लगी।

उसकी ऐसी दशा देख के दया से भीगी हुई सीता उसके पास गई, पास जाकर उसे सांत्वना दी। उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगी। उससे सीता ने कहा– डरो मत, दु:खी मत होवो, रोओ मत। इस तरह उसे शांत कर राम के पास लायी। वह भी उनके पास आना ही चाहती थी। राम ने पूछा– इस भयानक जंगल में आप कैसे आयी? तब उसने झूठ कहा–

मेरी माँ मर गई उसके गम में पिताजी ने भी देह छोड़ दी। पूर्व के पाप कर्म का फल भोगती, वैराग्य हृदय में लिये भटकती हुई रास्ता जिधर ले जाये उधर बेसुध–सी चलती रही। पुण्य के उदय से आप दिख गये, आप जैसे को देखकर अपने आप रोना आया।

पाप का उदय कितना विचित्र है– देखो मैं मरना चाहती हूँ, पर जंगल के ये शेर आदि हिंसक जीव मुझे भी छोड़ देते हैं। परन्तु हे सुंदर महापुरुष जब तक मैं प्राण छोड़ूँ, उसके पहले मुझे स्वीकार करो। मेरी इच्छा पूरी करो, मुझ दु:खियारी पर दया करो।

राम, लक्ष्मण उसके इस तरह के निर्लज्ज, बेहूदे शब्द सुनकर सकपका गये, एक दूसरे को देखकर चुप रहे। उनके भावों को वह ताड़ गयी। एक नया पासा समझ कर उसने लंबी साँस छोड़ते हुये कहा– मेरा मरण ही आपको अच्छा लग रहा है तो मैं जाती हूँ पर मेरे असमय मृत्यु का पाप आपको लगेगा– इसका ध्यान रखना। राम आदि ने उससे कहा– जैसी आपकी इच्छा।

वह दु:खी होकर मन मार कर मरे हुये पुत्र का भी ध्यान न कर सीधे पति खरदूषण के पास गई।

अपने को ठुकराने से अपमानित महसूस करती हुई छेड़ी हुई नागिन की तरह तड़पने लगी। अपने शरीर पर कई घाव कर वह जोर-जोर से रोने लगी। उसका विलाप देखकर गुस्से से भरा खरदूषण उसके पास आकर कहने लगे- हे प्रिये! बताओ, तुम्हारी ऐसी हालत किसने की? मैं उसे अभी यमराज के घर भेज देता हूँ।

उसने कहा- नाथ मैं पुत्र को देखने के लिये दण्डकारण्य में गई थी। वहाँ मैंने देखा कि पुत्र शंबुक का सिर धड़ से अलग है, उसे शत्रु ने मारा है। मैं पुत्र का सिर गोद में लेकर विलाप कर रही थी कि मेरे पुत्र को मारने वाला वहाँ आया। उस दुष्ट ने दोनों भुजाओं से मेरा आलिंगन किया, ''मुझे छोड़, मुझे छोड़''- ऐसा मैं जोर-जोर से चिल्लाई, परन्तु उसने नहीं छोड़ा, अपने दाँतों और नाखूनों से मेरी ऐसी हालत कर दी। पुण्य ने मेरी रक्षा कर दी, अपने चरित्र की रक्षा करती हुई बड़ी मुश्किल से उसके चंगुल से बचकर आयी हूँ। देखो, तीन खण्ड का स्वामी ऐसे भाई की बहन तथा आप जैसे वीर की पत्नी होने पर भी मेरी यह हालत हुई है।

खरदूषण ने शीघ्रता से जाकर मृत पुत्र को देखा। उसे मृत देखकर वह साक्षात् यमराज जैसा भयंकर हो गया गुस्से से लाल हो गया। वापिस लौटकर मंत्रियों व मित्र राजाओं से विचार कर रावण के पास संदेश भेजकर तुरन्त ही चौदह हजार सैनिकों को लेकर दण्डकारण्य में गया।

इतनी बड़ी फौज को देखकर सीता घबरा गई। उसने राम से पूछा- यहाँ इतनी बड़ी फौज क्यों आई है?

राम ने कहा- डरो मत, अभी पता करते हैं लगता है उसी दुष्टा ने हमें मारने के लिये इनको भेजा है यह कहकर उन्होंने लक्ष्मण से अपना धनुष माँगा। लक्ष्मण ने कहा मेरे रहते आपको धनुष उठाने की जरूरत नहीं है, आप भाभीजी की रक्षा के लिये यहीं रहिये यदि मुझ पर संकट आयेगा तो मेरे सिंहनाद से मेरी आवाज पहिचान कर ही आना। इतना कहकर वह शत्रुओं की ही सेना है ऐसा निर्णय कर अकेले ही उस सेना से युद्ध के लिये गये। उनसे युद्ध करने लगे अपने पराक्रम से शत्रु सेना को पराजित करने लगे।

इसी बीच जिसे भांजे के मरण की खबर मिली थी ऐसा क्रोध से भरा हुआ रावण वहाँ आया। रास्ते में अलौकिक सुंदरी सीता दिखाई दी, उसकी सुंदरता को देखकर रावण क्रोध भूल गया, युद्ध भूल गया, भांजे की मौत भी भूल गया सब कुछ भूलकर वह सोचने लगा- इस अनुपम सुंदरी के बिना मेरा रनिवास बेकार है। इसके बिना जीवन बेकार है, व्यर्थ है। रनिवास में अठारह हजार रानियाँ हैं पर उनमें एक भी ऐसी सुंदरी नहीं है।

देखो, मन की विचित्रता और वासनाओं के ज्वार। पहले मृत पुत्र के दु:ख को भूलकर चंद्रणखा राम-लक्ष्मण पर आसक्त हो गई, अब मृत भांजे की मृत्यु को भूलकर रावण भी सीता के मोह में फँस गया।

रावण ने सोचा– मेरा यहाँ आना, कोई जाने, उससे पहले ही मैं इस अनुपम सुंदरी का अपहरण करता हूँ। यह कार्य छिपाने योग्य है, दिखाने या दिखाकर करने योग्य नहीं है। यदि दिखाकर करता हूँ तो संसार में मेरी बदनामी होगी इसलिये छिपकर ही कार्य करता हूँ। मेरा प्रयोजन तो कार्यसिद्धि से है।

इस प्रकार का विचार कर उसने पहले अवलोकिनी विद्या के द्वारा राम, लक्ष्मण, सीता के बारे में जानकारी प्राप्त की। उसे विवाहिता जानकर भी मतिभ्रष्ट रावण उसे चुराने का विचार करने लगा।

राम को वहाँ से हटाये बिना मैं सीता का अपहरण नहीं कर सकूँगा यह सोचकर उसने राम को वहाँ से हटाने के लिये लक्ष्मण की आवाज़ में 'हे राम हे राम'–ऐसा जोर से पुकारा।

लक्ष्मण को संकट में जानकर राम ने सीता को फूल–पत्तों से ढक दिया और उससे कहा– आप डरो मत, यहाँ ऐसे ही छिपे रहना, मैं लक्ष्मण की सहायता करके अभी आता हूँ। जाते समय जटायु से कहा इस का ध्यान रखना, इसकी रक्षा करना। इतना कहकर राम युद्ध के लिये गये। रास्ते में अनेक अपशगुन हुये थे, पर लक्ष्मण के प्रति अनुराग की वजह से उनका उनकी ओर ध्यान ही नहीं गया।

इधर राम के जाते ही रावण सीता को बलपूर्वक पुष्पक विमान में बिठाने लगा, वह जोर–जोर से रोने लगी, विरोध करने लगी पर बलशाली रावण के सामने उसकी एक न चली। माँ समान सीता के दुःख को देखकर क्रोध से भरे जटायु ने रावण के सिर पर चोंच से चोटें मारीं, उसके वस्त्र फाड़े पर कामाग्नि से भरे रावण ने उसके सिर पर जोर का मुक्का मारा। 'कें कें' करता हुआ जटायु जमीन पर गिरा। अपनी अंतिम साँसें गिनने लगा।

सीता आर्तनाद करती हुई विलाप करने लगी। पति में ही जिसका मन था ऐसी सीता को रोती देख रावण कुछ विरक्त–सा हो गया। वह सोचने लगा। इसे मेरे प्रति प्रेम नहीं है, इसके मन में तो सिर्फ उसका पति ही बसा हुआ है। जो अपने पति के अलावा किसी दूसरे को चाहती ही नहीं ऐसी इस सुंदरी को ले जाकर क्या करूँ? यह सीता राम के लिये सीता है पर मेरे लिये यह सीता, सीता नहीं अपितु बदनामी का चिन्ह होगी।

क्या मैं इसे तलवार से मार दूँ? नहीं, **वीर महिलाओं को नहीं मारते,** इसे ले जाना व्यर्थ है क्योंकि यह मुझे कभी नहीं चाहेगी, मैं इसके साथ जबरदस्ती कर नहीं सकता क्योंकि अनंतवीर्य भगवान के सामने मुनियों की सभा में मैंने एक नियम लिया था कि **जब तक परस्त्री मुझे स्वयं नहीं चाहेगी तब तक स्वयं दुःखी होने पर भी मैं बलपूर्वक उसका सेवन नहीं करूँगा।**

अब मैं क्या करूँ? इसे मार नहीं सकता, इसे लौटा नहीं सकता, बदनामी का भय है, इसके साथ जबरदस्ती नहीं कर सकता, नियम टूटेगा, मैं मरकर भी नियम नहीं तोड़ूँगा उसे कुछ नहीं सूझ रहा था। अंत में उसने सोचा कि अपने नियम की रक्षा करता हुआ इसे प्रसन्न करने की कोशिश करूँगा, हो सकता है कुछ समय बाद मेरा वैभव देखकर मुझे स्वीकार करे। यह सोच वह सीता को लंका की ओर ले गया।

इधर राम को युद्ध करते हुये देख लक्ष्मण ने पूछा– भैया आप क्यों आये हो?

राम ने कहा– तुम्हारी पुकार सुनकर।

लक्ष्मण ने कहा– मैंने आपको पुकारा ही नहीं, इनके लिये मैं अकेला ही पर्याप्त हूँ। जरूर यह शत्रु की कोई चाल है जिसने आपको फँसाया है। आप शीघ्र जाइये और भाभीजी की रक्षा करते हुये, वहीं रहिये।

जब राम सीता की रक्षा के लिये आये तब जहाँ सीता को छिपाया था वहाँ सीता को न देखकर ''सीते, सीते, कहाँ हो? मैं आ गया, जल्दी आओ'', ऐसी आवाजें कई बार दीं, प्रत्युत्तर न मिलने पर सीता को संकट में जान बेहोश हो गये। होश में आने पर पागलों की भाँति पेड़ आदि से सीता के बारे में पूछते हुये, जंगल में इधर–उधर खोजते रहे, उन्हें 'कें कें' आवाज करता हुआ मरणासन्न जटायु दिखा। उन्होंने उसके कान में णमोकार मंत्र का जाप किया। मरकर वह स्वर्ग गया।

सीता के वियोग, जटायु के मरण के दु:ख से राम पुन: बेहोश हो गये। होश में आने पर करुणा भरा विलाप करने लगे। कहने लगे– हाय भाग्य, इस भयानक जंगल में धोखे से सीता का अपहरण करने वाले ने मुझे मार दिया है। सीता के बिना कैसे जिऊँगा? वह शत्रु के पास कैसे रहेगी? बेचारी मेरे वियोग में मर जायेगी। हे वृक्षों! बताओ– सीता कहाँ है? लक्ष्मण की बातों का ध्यान न रखकर मैंने ही उसे इस तरह मौत के मुँह में धकेला है।

संसार में एक बार बीता हुआ मनुष्य भव और छुटे हुये प्रिय का साथ होना बड़ा कठिन है। ''यहाँ होगी, यहाँ होगी''– ऐसा सोचकर उन्होंने उसे कई स्थानों पर ढूँढ़ा पर नहीं दिखी। **दु:खों का संसार बड़ा विचित्र है। एक सप्ताह हो उससे पहले दूसरा तैयार रहता है।** मुझ दु:खियारे पर और–और दु:ख आते जा रहे हैं–

खञ्जपादस्य खण्डोऽयं हिमदुग्धस्य पावक:।
स्खलितस्यावटे पात: प्रायोऽनर्था बहुत्वगा:।।

अर्थ– प्राय: देखा जाता है कि जो पैर लंगड़ा होता है उसी में चोट लग जाती है, जो वृक्ष बर्फ से सूख जाता है उसी में आग लगती है, जो फिसलता है वही गड्ढे में गिरता है प्राय: करके अनर्थ, कष्ट बहुत संख्या में आते हैं।

इस समय राम के दु:खों को शब्दों में नहीं कह सकते उन्हें वे ही जानते थे या सर्वज्ञ।

उधर युद्ध का पता चलने पर लक्ष्मण की सहायता के लिये विराधित आदि अनेक राजा आये। लक्ष्मण के बाणों से खरदूषण वैसे ही धरती पर गिरा जैसे **पुण्य के क्षीण होने पर चंचल शरीर को धारण करने वाला ग्रह (देव) पृथ्वी पर गिरता है।** घायल खरदूषण तलवार लेकर लक्ष्मण की ओर दौड़ा लक्ष्मण ने खरदूषण के सिर पर वार किया जिससे वह मर गया। उसके मरते ही सेना तितर–बितर हो भाग गई। युद्ध समाप्त हुआ।

लक्ष्मण राम को ढूँढ़ते हुये राम के पास आये। राम को सीता के बिना धरती पर बेहोश देखा। घबराकर उन्होंने राम से कहा– भैया उठो, भाभीजी, जटायु कहाँ हैं?

लक्ष्मण को घाव रहित देखकर आश्वस्त हो होश में आये राम ने कहा– लक्ष्मण वह देवी कहाँ है, मुझे नहीं पता। मैंने उसे खोजा, पर वह यहाँ कहीं भी नहीं दिखी, जटायु मरणासन्न दिखा पर थोड़ी देर में वह भी शरीर छोड़ गया। लगता है सीता को कोई हिंसक भयानक जानवर खा गया है।

लक्ष्मण ने कहा– नहीं, देव, नहीं, ऐसी **पवित्र आत्मा पर हिंसक जीव भी वार नहीं करते।** मुझे विश्वास है कि उसे जानवर ने नहीं खाया है।

राम बोले– लक्ष्मण, तब तो इतना निश्चित समझो कि हमारा शत्रु छल से उसे उठा ले गया।

कानों में गरम शीशे की तरह राम के इन शब्दों से, सीता जैसी पवित्र धर्मात्मा पर संकट से लक्ष्मण क्रोध से उबलने लगे, उनकी त्यौरियाँ चढ़ गईं, धनुष को जोर से लहराने लगे, तब राम ने उन्हें शांत किया और कहा– यह गुस्से का समय नहीं है, शांति से सीता का पता लगाने का है, पता लगाने पर पराक्रम दिखाकर शत्रु को पराजित कर साक्षात् जिनवाणी की तरह पवित्र देवी सीता को छुड़ाना है।

हे लक्ष्मण! इस समय हमारे कर्मों का उदय ठीक नहीं है, **कर्मों का उदय विपरीत हो तो शांत रहना ही एकमात्र कर्त्तव्य होता है।** इस समय–

दुःखार्णव प्राप्तो यां यां गृह्णाम्यहं लताम्।
दैवेनोन्मूल्यते सा सा कृत्स्नं विधिवशं जगत्।।

अर्थ– दुःखरूपी सागर के तट को प्राप्त मैं जिस–जिस लता को पकड़ता हूँ, देव के द्वारा वही–वही लता उखाड़ दी जाती है, वास्तव में समस्त संसार कर्मों के आधीन है। राम लक्ष्मण को यह बता ही रहे थे कि इतने में विराधित आदि राजा वहाँ आ गये।

लक्ष्मण ने उनसे कहा– सज्जनो! मेरे अग्रज राम की पत्नी, मेरी भाभी, सीता को कोई दुष्ट उठा ले गया है, उसके वियोग में ये अवश्य प्राण छोड़ देंगे, यदि ये प्राण छोड़ देते हैं तो मैं भी निश्चित ही अग्नि में कुदूँगा क्योंकि मेरे प्राण इन्हीं के प्राणों के साथ जुड़े हैं। इसलिये बताइये अब क्या करें?

तब विराधित आदि राजाओं ने सोच विचार कर कहा– भले ही इस समय समय हमारे अनुकूल नहीं है, कर्म की चाल भी हमारे विपरीत है, फिर हम उत्साह रखकर उनका मुकाबला करेंगे, धरती–पाताल एक कर देंगे, सीता का पता अवश्य ही लगायेंगे।

और भी सीता को खोजने की सांत्वना भरी बातें कर राम, लक्ष्मण को शांत किया।

इधर जब रावण सीता को ले जा रहा था तब उसके विमान को रत्नजटी विद्याधर ने देखा था। विमान पर 'हे राम, हे राम, हे पुत्र लक्ष्मण' पुकारती रोती सीता देखी थी। उसने विमान का पीछा किया और जोर से आवाज लगाकर कहा–

अरे दुष्ट रुक, रामदेव की पत्नी, भामण्डल की बहन को आदर के साथ छोड़ दे, नहीं तो मरने के लिये तैयार हो जा।

रावण ने सोचा– यदि मैं इसके साथ युद्ध करता हूँ तो हो सकता है, सीता अवसर पाकर प्राण छोड़ देगी तब तो सब किये कराये पर पानी फिर जायेगा। रावण ने सिर्फ उसकी सभी विद्याएँ छीन लीं। विद्यारहित रत्नजटी धरती पर गिरा। वह पैदल–पैदल कम्बु नामक द्वीप में पहुँचा। वहाँ के **कम्बु** नामक पर्वत पर रहने लगा।

कई विद्याधर सीता की खोज में गये थे, वे निराश लौट आये, मुँह नीचा किये राम के सामने खड़े रहे। तब राम ने कहा– हे विद्याधरों! मुँह क्यों लटका रहे हो, अरे आपने हमारे लिये प्रयत्न किया पर **भाग्य ही विपरीत हो तो उसे सारा संसार भी बदल नहीं सकता** इसलिये इसमें आपका दोष नहीं है।

राम मन में सोचने लगे– शोक भी विष का ही एक भेद प्रतीत होता है, जो मेरे शरीर को सुखा रहा है, **विष तो शरीर को ही सुखाता है, शोक तो विष से भी बढ़कर होता है, जो शरीर के साथ मन को भी सुखाता है, दुःखी करता है। भाग्यहीन कष्ट सहकर भी सुख नहीं पाता।** मैं संसार के सब दुःख जीवन भर सह सकता हूँ। दुःख सहूँगा, सिर्फ सीता संग रहे उसके बिना संसार शून्य हैं। पता नहीं वह पुण्य दिन, शुभ घड़ी कब आयेगी? जब मेरी प्राणवल्लभी, पवित्र चित्त की धारक सीता दिखाई देगी। मैंने भाई–बन्धुओं से दूर इस वन का आश्रय लिया, पर यहाँ भी दुर्भाग्यरूपी शत्रु ने मुझ पर दया नहीं की, दुर्देव मेरे पीछे पड़ गया है। **अधीर व्यक्ति कल्याण को देख नहीं पाता इसलिये धैर्य रखना चाहिये** यह सोच शांत हुये।

विराधित के आग्रह पर राम लक्ष्मण दण्डकारण्य से अलंकारपुर गये। वहाँ रहकर सीता की खोज करने लगे।

इधर विमान पर बैठा रावण सीता से कहने लगा– हे सुंदरी, मेरी ओर देखो, मुझसे मीठी–मीठी बातें करो।

मुँह मे तिनका रखकर सीता बोली–

अरे नीच पुरुष, तुम देखने लायक नहीं हो, तुम्हारी आत्मा महामलिन है, तुम्हारी ओर देखने से देखने वालो को पाप लगेगा। **जिनका शरीर कृश या मलिन हो, परन्तु जिनकी आत्मा निर्मल होती है, ऐसे पुण्य पुरुष मुनिराज के दर्शन से आँखें थकती नहीं हैं,** तुम्हारे जैसे को देखने से पहले आँखें नष्ट हो जायें तो अच्छा है। तुमने पराये पुरुष की स्त्री का अपहरण किया है, तुम पापी ही नहीं, महापापी हो। अब भी इस महापाप को छोड़ दो, मुझे वापिस राम के पास ले जाओ। मुझे छूने की कोशिश भी मत करना, मुझे साक्षात् नरक की अग्नि समझो। भस्म हो जाओगे।

ऐसी कठोर वाणी सुनकर भी रावण की आसक्ति कम नहीं हुई। **कामान्ध व्यक्ति पर डाँट फटकारों का असर नहीं होता है।**

खरदूषण व लक्ष्मण का युद्ध समाप्त होने पर भी रावण के नहीं आने से मंत्रीगण चिंता कर रहे थे इतने

में उनको रावण का विमान दिखा। उन सबने रावण की अगवानी की। जय हो, जय हो के नारे लगाये। सीता समझ गई कि यह विद्याधरों का राजा है परन्तु **जिस जगह का राजा ही अनीति का आचरण करता हो वहाँ दूसरा कौन शरण हो सकता है?** फिर भी मैं यह प्रतिज्ञा करती हूँ कि–

जब तक राम का कुशल समाचार प्राप्त नहीं होगा तब तक मेरे आहार–पानी का त्याग है। रावण सीता को **देवारण्य** नाम के वन में ठहरवाकर महल में गया। उसके पहुँचते ही चन्द्रणखा, मंदोदरी आदि रानियाँ जोर–जोर से रोने लगीं, रावण समझ गया कि खरदूषण की मृत्यु हो गई।

चन्द्रणखा ने कहा– भैया, आप जैसे वीर के रहते हुये मैं विधवा बनी हूँ।

रावण ने खरदूषण को मारने वाले पर क्रोध करने की बजाय चन्द्रणखा को समझाया–

बहन, संसार के प्राणी पूर्व में किये कर्मों का फल अवश्य पाता है। जब तक मृत्यु का समय नहीं आता तब तक सिर पर वज्र गिरे तो भी नहीं मरता, मृत्यु का समय आने पर अमृत भी जहर बन जाता है।

बहन को समझाकर रावण महल में आकर बिस्तर पर लेट गया। मंदोदरी ने पति की ऐसी हालत देखकर पूछा– हे नाथ! क्या बात हो गई कि आप असमय में लेटे हो?

तब रावण ने लड़खड़ाती वाणी में सीता संबंधी वृत्तान्त सुनाया।

रावण पर जिसे दया उत्पन्न हुई ऐसी मंदोदरी ने सीता के पास जाकर कहा–

हे सुंदरी! वह स्त्री धन्य है जिसे रावण चाहता है। वह विद्याधरों का राजा है, इन्द्र जैसे राजाओं को उसने पराजित किया है, अद्वितीय सुंदर है, उसकी याचना करने पर भी उसे पति के रूप में क्यों नहीं चाहती हो? तुम्हारा पति साधारण भूमिगोचरी है, उसके लिये तुम इतनी दुःखी क्यों हो? तुम्हारे इन्कार करने पर रावण गुस्से में आकर तुम्हारे पति और पुत्रतुल्य देवर लक्ष्मण को मार देगा इसलिये रावण ने जो कहा, उसे मानो।

तब रोती हुई सीता बोली– हे भद्रे! तुम्हारे वचन नीति विरुद्ध हैं, पतिव्रता स्त्रियों के मुख से ऐसे शब्द नहीं निकलते हैं। मेरे शरीर के आप लोग टुकड़े–टुकड़े कर दो पर मैं पति के सिवाय अन्य पुरुष को मन में भी नहीं ला सकती चाहे वह कामदेव के समान सुंदर क्यों न हो? मेरे पति व देवर असाधारण मनुष्य हैं, चरित्रवान हैं, वे ऐसे कामी के द्वारा नहीं मर सकते। **मरण का समय और निमित्त निश्चित हैं** उसके लिये मैं अपना चरित्र क्यों छोड़ूँ? आपको अपने पति को नरक के मार्ग से हटाना चाहिये। उल्टे आप उनके पाप के मार्ग का समर्थन कर रही हो। आश्चर्य है सच्चे हितैषी ऐसे नहीं होते, **सच्चे हितैषी वे होते हैं जो कुमार्ग से हटाकर सच्चे मार्ग पर ले जाते हैं।**

कुशील मनुष्य की सम्पत्तियाँ केवल मल हैं, सुशील मनुष्य की दरिद्रता भी आभूषण होती है। तुम मेरे साथ चाहे जो कर लो पर मैं यह कार्य नहीं कर सकती।

इसी बीच रावण स्वयं वहाँ आया उसने सीता से कहा– मुझ पर दया करो।

सीता बोली– कुशील मनुष्य दया के योग्य नहीं होते।

रावण– मैं तीनों लोकों में सुंदर हूँ, सबसे ज्यादा वैभवशाली हूँ, अनेक विद्याओं का स्वामी हूँ, बताओ मुझमें क्या कमी है?

सीता– तुम्हारे में चरित्र की कमी है, नीति की कमी है, धर्म की कमी है, मानवता की कमी है, एक कमी हो तो बताऊँ, तुम तो कमियों के पुतले हो। **चरित्र के बिना सुंदरता, वैभव, विद्याएँ व्यर्थ हैं।** क्या तुम नहीं जानते कि स्वर्ग का स्वामी **इन्द्र भी चरित्रवान् को नमस्कार करता है।**

रावण की दीनता क्रोध में बदल गई। उसने विद्या के द्वारा डरावने, विकराल, भयंकर पशु के रूप बनाकर सीता को डराया पर सीता न डरी न रावण की शरण में गई।

दूसरे दिन सुबह विभीषण आदि रावण के पास पहुँचे। विभीषण को देखकर खरदूषण की स्त्रियाँ बहुत दुःखी होकर रोने लगीं।

उनकी रोने की आवाजें सुनकर सीता भी जोर-जोर से रोने लगी। सीता की आवाज सुनकर विभीषण ने कहा- यह किसी बहुत ही दुःखियारी स्त्री की आवाज लगती है, यह कौन है? यह सुनकर सीता और अधिक जोर से रोने लगी।

क्योंकि, **सज्जन के आगे शोक बढ़ता है।** सीता ने टूटे फूटे शब्दों से कहा-

हे बंधु! आप मेरे हितैषी कौन हो? जो इतने स्नेह से पूछ रहे हो। मैं राजा जनक की पुत्री, राम की धर्मपत्नी, भामण्डल की बहन, दशरथ की पुत्रवधू हूँ। खरदूष के साथ लक्ष्मण युद्ध कर रहा था तब मेरे भर्ता को छल से दूर कर इस दुष्ट रावण ने मेरा हरण किया। हे भाई! मेरे वियोग में मेरे पति प्राण छोड़ देंगे उससे पहले मुझे उनके पास ले चलो।

इसके पश्चात् दुःख से भरे विभीषण ने रावण से कहा- हे भाई! यह परनारी आप बिना विचारे क्यों लाये? दशों दिशाओं में फैले हुये आपके यशरूपी वन को जलाने के लिये यह दावानल के समान है। **परनारी की इच्छा अनुचित है, लज्जा उत्पन्न करने वाली है, दोनों लोकों को बिगाड़ने वाली है। लोकनिंदा विचारवान को मृत्यु से भी बढ़कर होती है। आप विचारवान हो, हम सब के स्वामी हो, चारित्र की मर्यादाएँ राजा रूपी किनारे के सहारे टिकी रहती हैं। राजा ही मर्यादाएँ छोड़ दे तो प्रजा को सही मार्ग कौन दिखायेगा?** इसलिये मेरे विचार में सीता को वापिस लौटा दीजिये।

इस पर रावण ने कहा- हे भाई! इस धरती पर वह कौन-सा पदार्थ है जिसका मैं स्वामी नहीं हूँ।

इस पर विभीषण ने कहा- वीतरागी मुनि, परायी स्त्री, पराये धन के आप स्वामी नहीं हो सकते।

विभीषण के साथ मारीच आदि भी रावण को सीता लौटाने के बारे में समझा रहे थे, रावण बीच में ही खड़ा हो गया और वैभव दिखाता हुआ देवारण्य वन में चला गया। उस वन में अशोक मालिनी नाम

का बहुत बड़ा कुआँ था। उसके किनारे पर अशोक वृक्ष थे, उन्हीं अशोक वृक्षों के मण्डप में सीता को रखा था। उसकी निगरानी के लिये, अभिप्राय के अनुसार उसे मनाने के लिये रावण ने स्त्रियाँ नियुक्त की थीं। वह सीता के सामने जाकर गिड़गिड़ाया पर निराश होकर लौट आया।

महल से रावण दूती के रूप में स्त्रियाँ भेजता था, हर स्त्री हर बार निराश लौटती थी। ज्यों-ज्यों समय बीत रहा था वह सीता के लिये और ज्यादा दु:खी हो रहा था।

रावण कभी-कभी यह भी विचार करता था कि मैं मोहरूपी भूत से पीड़ित हो गया हूँ, वह कुछ-कुछ पागलपन की हरकतें भी करता था।

विभीषण ने मंत्रियों से सलाह की। सबने यही सलाह दी कि सीता के वियोग में राम मर जायेगा, लक्ष्मण हमारा क्या बिगाड़ेगा? इसलिये हम सब मिलकर रावण की रक्षा करें और सीता यहाँ है- इसका बाहर किसी को पता न चले, ऐसा उपाय करें? यह निर्णय करके वे सब चले गये।

इधर किष्किन्धा नगरी का स्वामी सुग्रीव स्त्री के वियोग में दु:खी होकर सहायता के लिये खरदूषण के पास जा रहा था, उसने रास्ते में युद्धभूमि देखी। किसी मनुष्य ने उसे बताया कि खरदूषण और लक्ष्मण का युद्ध हुआ। उसमें खरदूषण मारा गया। राम की पत्नी सीता का अपहरण हुआ है। वह राम को अपने समान दु:खी जानकर राम के पास सहायता के लिये गया। राम के पूछने पर उसने अपना परिचय दिया-

मैं किष्किन्धा नगरी के स्वामी सहस्ररश्मि का पुत्र हूँ। मेरे भाई बालि ने देवशास्त्र गुरु के अलावा अन्य को नमस्कार नहीं करने की प्रतिज्ञा ली थी उससे रावण नाराज हुआ। वैभव व राज्य दोनों दुर्गति के कारण जानकर वे दीक्षा लेकर तपोवन में गये।

मैं पुत्र अंगद, पत्नी सुतारा आदि के साथ प्रेम से जीवन जी रहा था। कोई दुष्ट मायावी विद्याधर मेरे समान रूप धारण कर मेरी पत्नी व राज्य को हड़पना चाहता है। उसने मुझे राज्य से भगाया है। मैं कइयों के पास गया, किसी ने मेरा विश्वास नहीं किया, सभी ने मुझे ही नकली सुग्रीव समझ रखा है इसलिये अंत में सहारा खोजता हुआ आपके पास आया हूँ।

राम ने मन में सोचा यह तो मुझ से भी ज्यादा दु:खी है क्योंकि इसका शत्रु तो इसके सामने ही इसे परेशान कर रहा है।

राम ने उसे सहायता का आश्वासन दिया। उन्होंने जाम्बूदमंत्री से दोनों सुग्रीवों का अंतर पूछा। असली सुग्रीव से कहा- आप नकली सुग्रीव से युद्ध करो। हम तुम्हारे साथ ही हैं, नकली को हम दबोच लेंगे।

दोनों में युद्ध हुआ, परन्तु दोनों की अत्यधिक समानता के कारण कहीं असली सुग्रीव न मारा जाय- यह सोच वे लौट आये।

इससे पूर्व हनुमान ने भी नकली सुग्रीव को हराने के लिये प्रयत्न किया था परन्तु अत्यधिक समानता के कारण वे भी वापिस लौट गये थे। सुग्रीव हनुमान के ससुर थे, सुग्रीव की पद्मरागा नाम की पुत्री से हनुमान का विवाह हुआ था।

दूसरे दिन राम स्वयं ही नकली सुग्रीव के सामने युद्ध के लिये गये। उनके सामने आते ही नकली सुग्रीव के पास वैताली विद्या थी वह भाग गई। उसी विद्या के कारण उस विद्याधर ने नकली भेष बना रखा था। नकली सुग्रीव का असली रूप सामने आया वह साहसगति विद्याधर था। नकली सुग्रीव को राम ने बंधक बनाया। सुग्रीव को उसका राज्य, पत्नी सुतारा आदि पुन: मिल गये तब उसने प्रतिज्ञा की कि मैं सात दिन के भीतर सीता का पता लगाऊँगा यदि सात दिन में पता नहीं लगा पाया तो अग्नि में भस्म हो जाऊँगा।

सुग्रीव ने अपनी तेरह पुत्रियाँ राम को दी थीं उन्होंने अनेक प्रकार से राम को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया पर वे राम को आकर्षित नहीं कर पाई क्योंकि राम का मन एकमात्र सीता से ही बँधा था।

सुग्रीव पत्नी व राज्य को पाने की खुशी में इतना मस्त हो गया कि वह सीता को खोजने के लिये जाना ही भूल गया। सुग्रीव के सीता का पता लगाने के लिये नहीं जाने से राम रोने लगे। राम का रोना देखकर लक्ष्मण ने सुग्रीव के पास जाकर गुस्से से कहा- अरे दुष्ट कृतघ्न तू अपनी पत्नी के साथ आनंद से रह रहा है, जिसने तुम्हारा समागम कराया उस राम के दु:ख को भूल गया।

घबराये हुये सुग्रीव ने राम के पास आकर क्षमा माँगी और तुरंत ही वानर वंश की सेना जल्द ही चारों दिशाओं में भेजी। एक दूत के द्वारा भामण्डल के पास संदेश भिजवाया कि सीता का कोई अपहरण कर ले गया। भामण्डल बहन को याद कर खूब रोया। वह भी अपने स्तर पर खोज करने लगा।

सीता की खोज करता हुआ सुग्रीव स्वयं आकाश मार्ग से जा रहा था कि उसे कम्बु पर्वत पर हिलता हुआ कपड़ा दिखाई दिया, वह वहीं पहुँचा। वह कम्बु पर्वत था। उस पर्वत पर रत्नजटी था जिसने सीता के अपहरण के समय रावण को रोका था, जिससे रावण ने उसकी विद्याएँ छीन ली थीं तब से वह इसी पर्वत पर रह रहा था। उसने सुग्रीव को व सुग्रीव ने उसे पहिचान लिया।

सुग्रीव ने उससे पूछा- पहले आप विद्याओं से युक्त थे अब विद्यारहित दीनहीन क्यों व कैसे हो गये?

उसके उत्तर में रत्नजटी ने सीता के अपहरण संबंधी रावण के साथ घटित घटना सुनाई।

सीता के पता लगने से खुश हुआ सुग्रीव रत्नजटी को तुरंत ही राम के पास ले आया। सीता का समाचार सुनकर राम ने रत्नजटी का आलिंगन किया। उसे देवोपुनीत नगर का राजा बनाया।

उसके बाद उत्सुकता से भरे राम ने विद्याधरों से पूछा- हे विद्याधरों बताओ लंका यहाँ से कितनी दूर है?

तब एक विद्याधर ने बताया लवण समुद्र में आश्चर्य उत्पन्न करने वाला एक **राक्षसद्वीप है। जो सात सौ योजन विशाल है, कुछ अधिक इक्कीस सौ योजन उसकी परिधि है। उस द्वीप के बीचों बीच त्रिकुट नाम का पर्वत है जो नौ योजन ऊँचा और पचास योजन चौड़ा है। वह स्वर्णमयी पर्वत अनेक रत्नों से जड़ा हुआ है। उस त्रिकुट पर्वत के शिखर पर लंका नाम की नगरी है। वह तीस योजन चौड़ी है, अनेक सुंदर नगरों से सहित है। वह राक्षस वंश के विद्याधरों की क्रीड़ा भूमि है।**

किसी दूसरे विद्याधर ने कहा– रावण इस समय उस नगरी का स्वामी है। विभीषण उसका भाई है, त्रिशूल नामक शस्त्र से सम्पन्न कुम्भकर्ण नाम का उसका एक और छोटा भाई है। उसके इन्द्रजीत, मेघनाद आदि अनेक वीर बेटे हैं। इसके अलावा उसके पास अनेक विद्याओं से सम्पन्न सैनिकों के अनेक झुण्ड के झुण्ड हैं, इसके अतिरिक्त वह स्वयं भी अब तक अपराजित योद्धा है। उसने इन्द्र जैसे बलशाली राजा को हराया है। उसे युद्ध में जीतना असंभव है इसलिये हमारे विचार में रावण से सीता को लाने का विचार ही निरर्थक है।

इस पर लक्ष्मण बोले– यदि रावण इतना बलवान है तो वह स्त्री का चोर क्यों हुआ? उसने चोरी छिपे स्त्री का अपहरण क्यों किया? वह कपटी, दुष्ट, नीच राक्षस है, उसमें शूरवीरता कहाँ है?

राम ने कहा– अब दूसरी बातों से क्या लेना देना? हमें जिसका समाचार भी मिलना असंभव था, उसका समाचार मिल गया है। हम हमले की तैयारी करें। उसके नीच कर्म ही उसे पराजित करेंगे।

तब एक वृद्ध विद्याधर ने कहा– हे राम, हे लक्ष्मण! हमारे पास इतना बल नहीं है कि हम रावण को पराजित कर सकें। परंतु एक उपाय है, जिसके द्वारा हम उसे पराजित करने के बारे में सोच सकते हैं। अनेकों ने आश्चर्य से पूछा बताइये, वह उपाय क्या है?

वह विद्याधर बोला– पहले एक बार रावण ने **अनंतवीर्य** नाम के सर्वज्ञ भगवान से हँसकर अपनी मृत्यु के बारे में प्रश्न किया था कि मेरी मृत्यु कैसे होगी? तब भगवान ने बताया था जो देवों द्वारा पूजित, पवित्र कोटिशिला को उठायेगा, वही तुम्हारी मृत्यु का कारण बनेगा।

उस समय रावण ने सोचा कि उस कोटिशिला को हिलाने की भी शक्ति किसी में नहीं है, उसे उठा सकने की बात तो बहुत दूर की है अर्थात् संसार में मेरी मृत्यु का कारण बन सके ऐसा कोई मनुष्य नहीं है।

वह विद्याधर बोला– यदि हममें से कोई कोटिशिला को उठाने में समर्थ होगा, तो ही हम रावण से युद्ध की सोचेंगे। अन्यथा उसके साथ युद्ध का मतलब हमारी मृत्यु है।

इसके बाद लक्ष्मण ने कहा– इसमें देर करने से लाभ नहीं है, चलें, इसी समय मैं प्रयत्न करता हूँ। रात्रि में ही सब कोटिशिला के पास गये।

कोटिशिला केशर, चंदन के लेप से महक रही थी। अनेक आभूषणों से सुसज्जित थी। सबसे पहले सबने उस शिला से मुक्त हुये सिद्धों को नमस्कार किया। सिद्धभूमि होने से सबने उसको नमस्कार कर उसकी तीन प्रदक्षिणाएँ दीं। उसके बाद लक्ष्मण ने सिद्ध भगवान का स्तोत्र पढ़ा। सिद्ध भगवान की जय-जयकार के बीच वृद्ध विद्याधरों ने लक्ष्मण को आशीर्वाद देते हुये कहा कि इस सिद्धशिला से जो सिद्ध बने हैं, वे तुम्हारे लिये मंगलरूप हों, धर्म मंगलरूप हों।

इसके बाद लक्ष्मण ने ज्यों ही कोटिशिला उठाई त्यों ही सबके चेहरे अचंभित करने वाली खुशी से

दमक उठे। प्रसन्नता से भरे उन सबने सिद्धों की, सम्मेदशिखर की, मुनिसुव्रतनाथ भगवान की पूजाएँ की। तीर्थ क्षेत्रों की भाव-वंदनाएँ कीं और राम, लक्ष्मण की जय जयकार करते हुये सुग्रीव की राजधानी किष्किन्धा में लौट आये।

वहाँ पहुँच कर राम ने कहा- अब किसकी प्रतीक्षा करनी है? चलें, लंका जाकर सीता को लाते हैं। वह बेचारी मेरे बिना बहुत दुःखी होगी। देर करने पर प्राण त्यागेगी।

इस पर एक बुजुर्ग विद्याधर ने कहा- हे राम! रावण तीन खण्ड का स्वामी है उससे युद्ध बराबरी का युद्ध नहीं है। हम उसके सामने अल्प सेना वाले हैं। युद्ध में हिंसा भी बहुत होती है। यदि युद्ध लम्बे समय तक चला तो सीता की प्राप्ति में देरी होगी। इसलिये हममें से ज्यादातर का विचार है कि रावण को मान सम्मान देकर सीता को लौटाने के लिये कहा जायें यदि रावण ससम्मान सीता को लौटाता है तो युद्ध भी करना नहीं पड़ेगा सीता भी शीघ्र प्राप्त होगी।

रावण विभीषण का कहा नहीं टालता। विभीषण अणुव्रतों का धारी धर्मात्मा है। विभीषण और रावण में परस्पर विशेष प्रेम है। विभीषण उसे समझायेगा, उसके समझाने से रावण समझ जायेगा और सीता को लौटा देगा। इसलिये हमारे संदेश को विभीषण एवं रावण तक पहुँचाने वाले, रावण को अपने वाणी चातुर्य से प्रसन्न करने वाले दूत को खोजकर उसे शीघ्र लंका भेजा जायें।

राम ने कहा- यदि यही उपाय आप सबको अच्छा लगता है तो हम भी सहमत हैं पर दूत को भेजने में देरी न करें। ऐसा दूत कौन हो सकता है? जो इस कार्य को निर्विघ्न सम्पन्न कर सके।

तब महोदधि नाम के प्रसिद्ध विद्याधर ने कहा- सुना है लंका की सुरक्षा बहुत कड़ी कर दी गई है। वहाँ बड़े-बड़े यंत्र लगाकर बाहर के किसी व्यक्ति का पहुँचना असंभव कर दिया है फिर भी पवनंजय राजा का बेटा **हनुमान** है जो विद्यावान्, प्रतापवान् और बलवान् है, वह उन यंत्रों को भेदने में समर्थ है उसे ही इस कार्य हेतु निवेदन किया जाय।

'ठीक है', ऐसा कहकर राम ने श्रीभूति विद्याधर को शीघ्र ही हनुमान के पास भेजा। श्रीभूति ने अब तक का सारा वृत्तान्त हनुमान से कहा। सुग्रीव को राज्य और पत्नी की प्राप्ति कराने वाले राम के प्रति कृतघ्ता के भाव से हनुमान गद्गद् हुये क्योंकि उस कार्य में हनुमान असफल हुये थे।

बिना किसी स्वार्थ के राम ने सुग्रीव की सहायता की थी, इसलिये राम को परोपकारी महापुरुष जान हनुमान श्रद्धापूर्वक सहर्ष कार्य के लिये तैयार हुये और तुरंत ही राम के पास आये। राम, लक्ष्मण को नमस्कार कर कहा- आपके गुणों से आकर्षित मैं शीघ्र ही आपका हितकारी कार्य करता हूँ, जाकर रावण को समझाऊँगा वह बुद्धिमान है समझ जायेगा। उसे समझाकर शीघ्र ही सीता को ले आता हूँ।

सीता, हनुमान को रावण की ही माया न समझ बैठे, इसलिये राम ने हनुमान को जीवन-प्रसंगों की अनेक अंतरंग बातें बतायीं और कहा कि ये बातें सीता से कहना, तब वह आपका विश्वास करेगी,

क्योंकि ये बातें उसके और मेरे अलावा और कोई नहीं जानता। पहिचान स्वरूप मेरी यह अँगूठी उसे देना तथा मुझे विश्वास दिलाने वाला महाकांतिमान चूड़ामणि साथ ले आना।

सबसे नमस्कार कर उनके आशीष वचनों के साथ हनुमान लंका की ओर गये। अनेक नगरों को पार करते हुये हनुमान लंका की ओर गये। अनेक नगरों को पार करते हुये हनुमान जब दधिमुखद्वीप के ऊपर से जा रहे थे तब उन्हें नीचे जलता हुआ एक महावन् दिखा। उसमें एक वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ दो चारण ऋद्धिधारी मुनि खड़े दिखे। उनसे थोड़ी दूरी पर तपस्विनी कन्याएँ दिखीं। वे सभी धुएँ से घिरे हुये थे, अग्नि उनकी ओर बढ़ रही थी। हनुमान ने विद्याबल से समुद्र के पानी से बादल बनाकर वर्षा करके आग को बुझाया, मुनिराजों का उपसर्ग दूर किया और जलते हुये अनेक प्राणियों के प्राण भी बचाये।

हनुमान ने मुनिराजों की वंदना की। पश्चात् उन तीन तरुणियों से पूछा- आप कौन हैं?

इसके उत्तर में उन तीनों में जो बड़ी थी, उसने बताया हम दधिमुख नगर के राजा गंधर्व की चन्द्रलेखा, विद्युत्प्रभा, तरंगमाला नाम की पुत्रियाँ हैं। हमारी सुंदरता देखकर वहाँ का हर युवक हमारी ओर आकर्षित था, उनमें एक दुष्ट अंगारक था।

एक बार हमारे पिता ने अष्टांग निमित्त के ज्ञाता मुनिराज से हमारे विवाह के बारे में पूछा था, तब उन्होंने कहा था कि साहसगति विद्याधर को मारने वाला तरुण हमारा पति होगा। अंगारक को इस बात का पता चला तो वह बुरी नीयत से हमें परेशान करने का अवसर ढूँढ़ रहा था। उससे बचने के लिये हम तीनों बहनें **मनोनुगामिनी विद्या** सिद्ध करने लिये इस जंगल में आयी थीं, अंगारक को हमारा पता चला तो उसने आकर इस जंगल में आग लगाई। हमें यहाँ बारह दिन बीत गये हैं, अग्नि के उपसर्ग के कारण हमें आज ही विद्या सिद्ध हुई है। मुनिराजों को यहाँ आये हुये आठ दिन बीत गये हैं। हे बन्धु, आपने हम सब पर बहुत उपकार किया है।

हे महाभाग, आप नहीं आते तो हमारी मृत्यु तो निश्चित थी ही। चलते-फिरते धर्मस्वरूपी मुनिराज भी जल जाते। इन्हें बचाकर आपने बहुत बड़ा पुण्य कार्य किया है।

पूछने पर हनुमान ने अपना परिचय देकर साहसगति विद्याधर को मारने वाले राम का परिचय देकर लंका जाने की बात विस्तार से बताई।

हनुमान लंका गये। लंका के बाहरी परिधि पर अनेक यंत्र लगे हुये थे जो मायामयी थे। उसकी बाहरी परिधि की रक्षा वज्रायुध नाम का राजा कर रहा था। हनुमान को देख वज्रायुध सेना के साथ हनुमान पर झपटा। हनुमान ने उसे तेज बाणों से मार दिया। उसके मरते ही वज्रायुध की पुत्री लंकासुंदरी युद्ध करने लगी। युद्ध करते-करते वह हनुमान पर मोहित हो गयी। दोनों का मिलन हो गया।

लंकासुंदरी के पूछने पर हनुमान ने बताया कि रावण के प्रति मेरा सद्भाव था परंतु सीता के अपहरण करने के बाद वह समाप्त हो गया। इस समय मैं राम और सीता का मिलन कराने के लिये दूत बनकर आया हूँ। उसके बाद हनुमान ने निशंक होकर लंका में प्रवेश किया।

वे विभीषण के महल में गये। विभीषण हनुमान को पहले से ही जानते थे इसलिये विभीषण ने उनका स्वागत किया। एक दूसरे की कुशलक्षेम पूछने के बाद हनुमान ने कहा–

तीन खण्ड का स्वामी रावण, तुच्छ व्यक्ति की तरह पराई स्त्री को चोरी करके लाया है– क्या यह उन्हें शोभा देता है? **राजा ही प्रजा का मूल होता है, वही अनाचार करे तो प्रजा को अनाचार से कैसे रोक सकेगा?**

तब विभीषण ने कहा– मैंने रावण को कई बार इस विषय में समझाया परंतु वे समझते नहीं। अब उन्होंने मेरे साथ बातचीत बंद कर दी है। फिर भी आपके कहने से कल प्रात: मैं उनसे बात करूँगा।

सीता को आहार–पानी छोड़े ग्यारहवाँ दिन है फिर भी रावण को उससे विरक्ति नहीं हुई, उस पर दया नहीं आ रही है।

विभीषण से बात करके हनुमान देवारण्य उद्यान में गये जहाँ सीता थी। हनुमान दूसरा रूप धारण कर चुपचाप पैर रखते हुये सीता के पास जाकर सीता की गोद में राम की दी हुई अँगूठी रख दी। अँगूठी देख सीता हँसी। सीता की हँसी के समाचार वहाँ की दासी ने रावण को दिये। उधर रावण खुश हुआ।

रावण के कहने से मंदोदरी सीता के पास जाकर कहने लगी– आज तुमने प्रसन्न होकर हम सब पर बड़ा उपकार किया है अब रावण की रानी बनकर उसका प्रेम प्राप्त करो।

सीता ने गुस्से से कहा– हे दुर्बुद्धि, तेरा कहना मेरे स्वामी जान जायेंगे तो समझ ले तू निश्चित ही विधवा हो जायेगी। मेरे पति का समाचार आया है इसलिये मैं हँसी थी। आज मेरा कोई हितैषी बन्धु आया है। मंदोदरी ने सोचा यह भूख से पागल हो गई है।

इसी बीच हनुमान असली रूप धारण कर सीता के पास खड़े हो गये। सीता के सामने हाथ जोड़कर अपना परिचय देकर राम का संदेश सुनाया। सूखते हुये वृक्ष को पानी की तरह सुखद समाचार से सीता को नवजीवन–सा मिला। उसे कितनी खुशी हुई थी इसे शब्दों में नहीं कह सकते। उसने विश्वास पक्का करने के लिये हनुमान से कहा– मेरे वियोग से दुबले हुये राम की अँगुली से अँगूठी गिर गई हो और वह तुम्हें मिली हो उसे उठाकर तुम लाये हो कहीं ऐसा तो नहीं।

हनुमान ने कहा– नहीं, देवी ऐसा नहीं है। उसके बाद हनुमान ने वो सारी गोपनीय बातें बतायीं। उससे सीता को पक्का विश्वास हुआ। उसके बाद यह भी बताया कि लक्ष्मण ने सूर्यहास खड्ग कुतुहलवश उठाया था, उठाकर उसकी परीक्षा की थी। अनजाने में शंबुक मारा गया। चंद्रणखा दु:खी हुई। राम, लक्ष्मण को देखकर दु:ख भूलकर उन पर आसक्त हुई। उनके द्वारा ठुकराने पर झूठा आरोप लगाकर पति खरदूषण से युद्ध करवाया। खरदूषण की सहायता के लिये रावण आया। रावण आपको देख मोहित हुआ। राम को छल से दूर कर आपका हरण कर लंका लाया है। इस तरह अब तक की घटित सारी घटनाएँ सुनायीं। युद्ध से लाभ नहीं इसलिये सबने मुझे दूत बनाकर भेजा है। श्रीराम के हम पर उपकार हैं। वे धर्मात्मा हैं, नीति पर चलने वाले हैं इसलिये उनका दूत बनकर आया हूँ।

उनके संवाद के बीच में मंदोदरी ने हनुमान से कहा– विद्याओं का स्वामी होने पर भी तुच्छ मनुष्यों का दूत बना है– क्या तुम्हें शोभा देता है?

हनुमान बोले– तीन खण्ड का स्वामी, अठारह हजार कन्याओं का पति होते हुये तुम्हारा पति पराई स्त्री की चोरी करता है– क्या यह उन्हें शोभा दिया है? पटरानी होकर उन्हीं की दूत बनकर पाप कार्य कर रही हो– क्या तुम्हें शोभा दे रहा है?

कुपित होकर मंदोदरी बोली– तू रावण के उपकारों को भूलकर उनके विरोधियों का दूत बनकर आया है। इस बात का पता चलेगा तो वे तुम्हारी दुर्गति करेंगे।

हनुमान के बारे में ऐसे अनिष्ट शब्द सुनकर सीता को गुस्सा आया और गुस्से में बोली– **सत्य का पक्ष लेने वालों की दुर्गति नहीं होती, बल्कि उनकी गति सुधरती है।** रावण चोर होने पर भी उससे सुलह की सोचने वाले राम ही हो सकते हैं।

क्या रावण किसी चोर के साथ ऐसा बर्ताव कर सकता है? वह स्वयं चोर है, ऐसी चारित्रिक ऊँचाइयों को क्या छू पायेगा? **जो स्वयं गड्ढे में गिरा हुआ है, वह दूसरों को गड्ढे से कैसे निकाल सकता है?**

यदि हनुमान के पास पुण्य है तो हजार रावण भी उसका बाल बाँका नहीं कर सकते। इसलिये ऐसे अपशब्द अपने पास रखो पापी पति के समर्थन से तुम सब शीघ्र ही वैधव्य को प्राप्त हो जाओगी।

सीता की नसीहत से मंदोदरी आदि रानियाँ आगबबूला होकर सीता की ओर उसे मारने के लिये दौड़ी थीं कि हनुमान नदी के सामने पर्वत की तरह उनके सामने खड़े हो गये। वे सब मन मसोसकर रावण के पास शिकायत करने पहुँची।

इधर हनुमान ने उनके साथ आयी **इरा** नाम की दासी को भोजन लाने के लिये भेजा। लंका की चारदिवारी से बाहर जहाँ हनुमान ने सैनिक रुकवाये थे, इरा उस डेरे में गई। शुद्ध आहार व जल लेकर आई, तब तक दिन निकले चार घड़िया बीत गईं जानकर तथा पति का समाचार मिलने तक की उसकी प्रतिज्ञा पूरी हुई जानकर हनुमान के आग्रह पर सीता ने पंचपरमेष्ठी की भक्ति करके आहार ग्रहण किया।

हनुमान ने विभीषण के महल में जाकर आहार लिया। आहार के बाद हनुमान सीता के पास जाकर कहने लगे– हे देवी! मेरे कन्धे पर चढ़ो, आपका भाई आपको क्षण भर में ही समुद्र लाँघकर जैसे मुनि निरंतर आत्मा का ध्यान करते हैं वैसे आपका ही निरंतर ध्यान करने वाले राम के पास पहुँचाता हूँ।

सीता बोली– स्वामी की आज्ञा के बिना मेरा जाना योग्य नहीं है। इस अवस्था में पड़ी हुई मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगी? इस समय लोग मृत्यु के बिना मेरी शुद्धि का विश्वास नहीं करेंगे। भाई, **प्रजा बहुमुखी होती है। तरह–तरह की बातें करती हैं। हमारा कार्य ही उनका जवाब होता है।** इसलिये मेरा कार्य यही है कि मैं राम की आज्ञा के बिना यहाँ से नहीं जाऊँगी।

हे भाई, जब तक रावण की ओर से कोई संकट आये उससे पहले शीघ्र ही जाओ, यहाँ क्षण भर भी विलम्ब मत करो। श्री राम को विश्वासदायक चूड़ामणि दो और उनको विश्वास दिलाने वाली ये बातें बताना। ऐसा कहकर सीता ने बहुत–सी बातें बताते हुये सीता रोने लगी। तब हनुमान ने उसे सांत्वना देकर जाने की आज्ञा माँगी।

हनुमान ज्यों ही जाने लगे, तब तक रावण के आदेश से हनुमान को पकड़ने के लिये अनेक सैनिक आये थे। हनुमान ने उनको तुरंत भगाया, तब तक और सैनिक आ गये। हनुमान के पास उस समय कोई शस्त्र नहीं था, इसलिये उन्होंने पेड़ उखाड़ उखाड़ कर उन पर फेंके। इसी बीच इन्द्रजीत और मेघवाहन ने आकर हनुमान को नागपाश से बाँध लिया और रावण के दरबार में ले गये। रावण ने गुस्से में आकर लोहे की सांकलों से बँधवा दिया। भरे दरबार में कहा– इसे घसीटते हुये चौराहे तक ले जाओ, वहाँ इसे सबके सामने फाँसी पर चढ़ाओ। क्योंकि यह धोखेबाज है, निर्लज्ज है, दुष्ट है, इसने भूमिगोचरियों की सेवा की है, न केवल सेवा की बल्कि हम को भारी नुकसान पहुँचाया है, यह सब तरह से कृतघ्न है।

यह सुनकर हनुमान को बहुत गुस्सा आया। फिर भी उन्होंने व्यंगात्मक हँसकर कहा–

कौन जानता है? **पुण्य के बिना दण्डयोग्य कौन है?** किसका पुण्य क्षीण हुआ है? पुण्य क्षीण होने से दुर्बुद्धि के साथ किसकी मृत्यु यहाँ नाव रही है? यह हम कुछ ही दिनों में देखेंगे।

जैसे पर्वत बादल को रोक नहीं सकते उसी प्रकार जिनके पराक्रम को कोई रोक नहीं सकता, ऐसे लक्ष्मण, राम के साथ यहाँ आ रहे हैं। ईंधन से अग्नि कभी शांत नहीं होती, ऐसे ही अठारह हजार रानियों से जो तृप्त नहीं हुये ऐसे आपकी कामाग्नि को बाणवर्षा के द्वारा बुझाने के लिये राम लक्ष्मण आ रहे हैं।

हे रावण! **दुर्बुद्धिजन को सैकड़ों लोगों का उपदेश व्यर्थ होता है,** उसी प्रकार तुम्हें लोगों का समझाना व्यर्थ गया क्योंकि **विनाश पास हो तो बुद्धि सन्मार्ग पर नहीं चलती।** परस्त्री के लोभी आप इसी पाप के फल से लक्ष्मण रूप निमित्त से मृत्यु को शीघ्र प्राप्त होवोगे। तब लोग यही कहेंगे कि महाराज रत्नप्रभ से चले आ रहे, इस उत्तम वंश को अधम रावण ने नष्ट कर दिया। कहाँ गई तुम्हारी बुद्धि? जो जिनभक्ति में लीन रहती थी, चोरी छिपे पराई स्त्री का अपहरण करते हो, ऐसे कार्य के कारण तुम्हारा जीवन छिलके के समान असार, व्यर्थ हो रहा है। तुम्हें इस महापाप का फल अवश्य मिलेगा। अब भी समय है, सीता को लौटा दो।

हनुमान के शब्द बाणों से घायल रावण का हाथ ज्यों ही तलवार पर गया त्यों ही हनुमान बंधन तोड़कर महल की छत को छिन्न–भिन्न करते हुये आकाश में वैसे ही उड़ गये, जैसे **मोहबंधन को तोड़कर मुनि आत्मा में प्रवेश करते हैं।** रावण का राजभवन बिखर गया, मात्र खंभे शेष रहे। दरबारीजन घायल हो गये। हनुमान के बंधन के समाचार से दु:खी, रोती सीता को दासी ने बताया रोओ मत, देखो, हनुमान तो बंधन तोड़कर आकाश मार्ग से उड़ते हुये जा रहे हैं।

सीता ने उसे कृतज्ञता और अनेक आशीष दिये। सीता ने सोचा ऐसे बंधनों को तोड़ने वाला मेरा यह भाई शीघ्र ही कर्मबंधनों को तोड़कर सिद्ध के रूप में मेरा नमस्कार प्राप्त करेगा। इन्हीं विचारों से हनुमान के प्रति श्रद्धा के रूप में उसके हाथ अपने आप जुड़ गये। वह निश्चिंत हो गई।

हनुमान किष्किन्धा नगरी के महल में पहुँच गये। सबसे पहले नमस्कार आदि विनय के साथ राम को सीता की कुशलता के समाचार सुनाये। सीता का चूड़ामणि दिया और कहा– जैसे मोक्षार्थी जीव सब पदार्थों से लक्ष्य हटाकर एक मात्र आत्मा का चिंतन, मनन, ध्यान करता है, वैसे सीता सिर्फ आपका ही चिंतन, मनन, ध्यान करती है। रावण को समझाया पर सब व्यर्थ गया।

सीता के समाचार सुनते–सुनते राम की आँखों से आँसू छलक आये, वे बहुत दु:खी हुये पर मन के किसी कोने में उनके सीता के जीवित होने के समाचार से तसल्ली भी महसूस होती रही।

हनुमान ने कहा शोक क्यों करते हो? भाग्य से सीता का पता चला है, वह पराक्रम से प्राप्त हो जायेगी?

राम बोले– सुग्रीव दीर्घसूत्री प्रतीत होते हैं, भामण्डल बार बार संदेश भेजने पर भी अब तक नहीं आये, भुजाओं और नौकाओं से लवण समुद्र पार करना अशक्य है फिर भी कल सुबह ही प्रस्थान करेंगे।

वहाँ विद्यमान सिंहनाद विद्याधर ने कहा– रावण शक्तिशाली है, हनुमान के द्वारा उसके बाग–बगीचे तहस–नहस कर देने से क्रुद्ध भी हो गया है, उसे कैसे जीते? सोच विचार कर आगे बढ़ना चाहिए।

वहीं पास बैठे चन्द्रमरीचि विद्याधर ने कहा– अपराध के कारण शेर भी हिरण जैसा होता है। रावण ने अपराध किया है मृत्यु उसके आगे नाच रही है। वह कौन है? इससे क्या? हमें अपने कर्त्तव्य पर ध्यान देना है और रावण के अन्याय का विरोध करना है। जिनेन्द्र के वचन अन्यथा नहीं होते हैं। रावण का नाश लक्ष्मण के द्वारा ही होगा इन्होंने ही कोटिशिला उठायी है इसलिये जिनवचन हमारे पक्ष में हैं हमें प्रयत्न करके उन्हें सिद्ध करना है।

चन्द्रमरीचि के वचन से सबके चेहरे खिल गये। सब सुबह की प्रतीक्षा करने लगे।

सुबह हुई। सबने पंच परमेष्ठी की भक्ति की। **मंगसिर बदी पंचमी के दिन प्रात: सबने प्रस्थान किया** तब निम्न शुभ शगुन हुये दक्षिण में बिना धुएँ की अग्नि दिखी, मोर की मधुर आवाजें सुनाई दीं, सजी धजी सुहागनें दिखीं, सुगंधित वायु बहने लगी, मुनिराज के दर्शन हुए, घोड़ों की हिनहिनाहट सुनाई दी, घंटों की ध्वनियाँ सुनाई दीं, दही से भरा घड़ा दिखा। बायीं ओर कौआ बोलने लगा। शंख का शब्द सुनाई दिया। इन शुभ शगुनों के बीच जयकारों से आकाश को गुंजायमान करते हुये सबने प्रस्थान किया।

थोड़े ही समय में वे वेलन्धर पर्वत पहुँचे। वहाँ समुद्र नाम का राजा था उसे नल ने पराजित किया। वे आगे बढ़े। सुवेल नगर पहुँचे। वहाँ सुवेल नाम का ही राजा था, उसे पराजित किया। वहाँ अक्षय नामक उद्यान में रात भर रुक कर आगे बढ़े। हंसद्वीप में पहुँचे। वहाँ के राजा हंसरथ को पराजित कर दूसरे दिन वहीं ठहरे। वहीं पर भामण्डल की प्रतीक्षा करने लगे। यहाँ से लंका पास ही थी।

रामसेना आने की सूचना लंका में पहुँच चुकी थी। रावण भी युद्ध की तैयारी करने लगा था। रावण को युद्ध के लिये तैयार देख विभीषण उसके पास गये और हाथ जोड़कर कहने लगे–

हे भाई! हे प्रजा-परमेश्वर, आप बहुत समय से मुझसे नाराज हो, मुझसे बात नहीं करते, आप शास्त्रों के पारगामी विद्वान हो, उत्कृष्ट भक्त हो, श्रेष्ठ श्रावक हो, प्रजावत्सल हो, पृथ्वी तल पर यशस्वी हो, परंतु एकमात्र पराई स्त्री के मोह के कारण आपके सभी गुण वैसे ही नष्ट हो रहे हैं जैसे आग से अच्छे वृक्षों के साथ वन की शोभा नष्ट होती है। गुण पूर्ण रूप से आपके छोड़ दे उससे पहले ही सीता राम को सौंप दीजिये। इसमें आपको नुकसान क्या है? क्योंकि वह आपको चाहती ही नहीं बल्कि चोर समझती है। आपके नियम के अनुसार जो स्त्री आपको चाहती नहीं उसके साथ आप जबरदस्ती नहीं करेंगे। उस नियम को ध्यान में रखते हुये भी सीता को लौटाने में आपको फायदा ही है। सुलह की पहल करके उन्होंने बड़प्पन दिखाया है, सीता सौंपकर हम भी अपना बड़प्पन दिखाये। इसमें कोई दोष नहीं है।

इसी बीच पिता के स्वभाव को जानने वाले इन्द्रजीत ने कहा– हे भले मानुष! आपको किसने पूछा? जो इस तरह शत्रु के पक्ष की सलाह दे रहे हो, ऐसी सलाह देने वाला मूर्ख होता है। आपको युद्ध से डर लग रहा हो तो मत करो लेकिन नपुंसकता बढ़ाने वाले ऐसे शब्द तो मत कहो। मेरे पिता इस धरती के एकमेव राजा है, राजा का हर वस्तु पर अधिकार होता है। सर्वोत्कृष्ट अत्यन्त दुर्लभ स्त्रीरत्न को पाकर मूर्ख की तरह उसे क्यों खोये? इसलिये आपकी बातें भूसे की तरह बेमतलब की हैं।

उसे डाँटते हुये विभीषण ने कहा– इस तरह बोलने वाला तू रावण का पुत्र नामधारी शत्रु है। जो घर में लगी आग को ईंधन से बुझाना चाहता है। तेरा पिता सीता नहीं अपने लिये दुर्गति लाया है। दुर्गति से बचाने के लिये ही बिना पूछे समझा रहा हूँ।

विभीषण की इन बातों को सुनकर रावण को इतना गुस्सा आया कि उसने विभीषण को मारने के लिये तलवार निकाली, विभीषण ने भी वृक्ष उखाड़ लिया। दोनों आमने सामने हो गये। इन दोनों भाइयों को मंत्रियों ने बड़ी कठिनाई से रोका।

क्रोध से तिलमिलाए रावण ने कहा– आग जिस लकड़ी के आश्रय रहती है, उसी को जलाती है वैसे ही अपने आश्रय को नष्ट करने पर तुला यह दुष्ट मेरे नजर से निकल जाये। नहीं तो यहाँ रहने पर इसे नहीं मार दूँ तो रावण न कहलाऊँ?

उसके बाद विभीषण ने कहा– मैं यहाँ रहूँ तो रत्नप्रभा का पुत्र ही नहीं। यह कहकर विभीषण लंका से निकल गये। उनके प्रेम व आदेश में रहने वाले विद्युद्घन आदि अनेक शूरवीर उनके साथ गये वे सब हंसद्वीप में राम के पास आये।

अनेक लोगों ने राम से शंकाएँ कीं कि हो सकता है यह रावण की ही कोई चाल हो आदि परंतु राम ने उनसे कहा– विभीषण की धर्मनिष्ठा, ईमानदारी विश्वप्रसिद्ध है इसलिये वे रावण की किसी तरह की

चाल का हिस्सा नहीं हो सकते। **संसार में धन, जमीन, स्त्री के कारण भाई–भाई के बीच बैर होता है, उसमें जाति, कुल या एक पिता का सम्बन्ध कारण नहीं होता है।**

भामण्डल, विभीषण आदि के आने से उत्साहित राम आदि ने हंसनगर में आठ दिन बिताये, योजना बनाकर लंका की ओर चले। शीघ्र ही रणभूमि पहुँच गये।

युद्धभूमि की चौड़ाई बीस योजन थी और लम्बाई की कुछ सीमा ही नहीं थी। युद्धभूमि में दोनों ओर की सेनाएँ आ गईं।

एक अक्षौहिणी सेना में इक्कीस हजार आठ सौ सत्तर रथ और इतने ही हाथी तथा पैंसठ हजार छह सौ दस घोड़े तथा एक लाख नौ हजार तीन सौ पचास पैदल सैनिक होते हैं। ऐसी चार हजार अक्षौहिणी सेनाएँ रावण के पास थीं। सुग्रीव की सेना एक हजार अक्षौहिणी प्रमाण थी। भामण्डल की सेना कुछ अधिक एक हजार अक्षौहिणी प्रमाण थी। इसके अलावा राम के पक्ष में अन्य मित्र राजाओं की सेनाएँ थीं, जो पुण्यशाली राम के मित्र बन गये थे, क्योंकि–

पुण्यानुभावेन महानराणां भवन्ति शत्रोरपि पार्थिवाः स्वाः।
कुपुण्यभाजां तु चिरं सुशक्ता विनाशकाले परतां भजन्ते।।

अर्थ– महापुरुषों के पुण्य के प्रभाव से शत्रु राजा भी आत्मीय हो जाते हैं और पुण्यहीनों के चिरकालीन मित्र भी विनाश के समय पराये हो जाते हैं। इसलिये

भ्राता ममायं सुहृदेष वश्यो ममैष बन्धुः सुखदः सदेति।
संसार वैचित्र्यविदा नरेण नैतन्मनीषारविणा विचिन्त्याः।।

अर्थ– संसार की विचित्रता जानने वाले मनुष्य को कभी ऐसा विचार नहीं करना चाहिये कि यह मेरा भाई, यह मित्र, यह मेरा सेवक है, यह बन्धु है, यह सुख देने वाला है क्योंकि पुण्य के उदय में जो भाई आदि हैं पाप के उदय में वे शत्रुत्व का व्यवहार करते हैं।

अठारह हजार रानियों के रहते हुये एक भूमिगोचरी की विवाहिता पत्नी को पाने के लिये युद्ध को तैयार रावण पुष्पक विमान पर आया था। रावण के आते समय निम्न अपशगुन हुये–

भालुओं का झुण्ड दक्षिण की ओर दिखायी दिया। गिद्ध आकाश में उड़ रहे थे। भय से व्याकुल अनेक पक्षी इधर–उधर उड़ रहे थे। इस प्रकार के अशुभ शुगुनों के साथ रावण युद्ध भूमि में पहुँचे।

रणभेरी के साथ युद्ध शुरू हुआ। सैनिक, प्रसिद्ध वीर एक दूसरे पर शस्त्र–अस्त्रों की वर्षा करने लगे। बहुत देर तक युद्ध के बाद नल ने हस्त को, नील ने प्रहस्त को घायल कर निर्जीव कर दिया। युद्ध में सैनिक परस्पर मारने लगे। अनेक मारे गये। अनेक बचाये गये, अनेक उदासीन रहे, क्योंकि–

हतवान् हन्यते पूर्वं पालकः पाल्यतेऽधुना।
औदासीन्यमुदासीने जायते प्राणधारिणाम्।।

अर्थ– पूर्व में जिसने जिसको मारा, उसके द्वारा इस जन्म में वह मारा गया। पूर्व में जिसने जिसकी रक्षा की, उसके द्वारा इस जन्म में उसकी रक्षा की। पूर्व में जो एक दूसरे से उदासीन रहे वे इस जन्म में भी परस्पर उदासीन रहे।

एक दूसरे को ललकार–ललकार कर भयंकर युद्ध हुआ। रावण का कुम्भकर्ण नाम का प्रसिद्ध बलवान भाई हनुमान से युद्ध करने लगा। मेघवाहन ने भामण्डल को ललकारा। उसने भामण्डल को नागबाणों से घेर लिया। इसी तरह इन्द्रजीत ने सुग्रीव को नागबाणों से बाँध दिया। कुम्भकर्ण ने हनुमान को अपने हाथों में जकड़ लिया, अंगद ने चोरी–छिपे जाकर कुम्भकर्ण का अधोवस्त्र खोल दिया। जब तक वह वस्त्र को सम्भालता तब तक हनुमान उसके हाथों की कैद से मुक्त होकर निकल गये।

लक्ष्मण ने राम से कहा– भाई, भामण्डल और सुग्रीव नागपाशों से बँधे पड़े हैं। उस समय राम ने गरुड़ेन्द्र महालोचन को याद किया। गरुड़ेन्द्र महालोचन ने आकर राम के लिये सिंहवाहिनी, लक्ष्मण के लिये गरुड़वाहिनी– ये दो विद्याएँ तथा लक्ष्मण के लिये विद्युत्वक्त्र नामक गदा तथा राम के लिये हल तथा मूसल शस्त्र प्रदान किये और चला गया।

लक्ष्मण गरुड़ास्त्र को लेकर आगे बढ़े। उनके आते ही नागपाश के बंधन नष्ट हुये। भामण्डल, सुग्रीव नागपाशबंधन से आजाद हुये।

युद्ध में रावण और विभीषण आमने–सामने हो गये। रावण विभीषण को सामने देख क्रोध से भड़क उठा और बोला– तू छोटा भाई है, अत: तू मारने योग्य नहीं है, तू सामने से हट जा, मैं तुझे देखना नहीं चाहता।

इस पर विभीषण बोले– आप उमर में बड़े हैं पर आचरण में मुझसे बहुत छोटे हैं। कुछ समय पहले तक धर्मात्मा थे पर पराई स्त्री के हरण से तुम्हारे सभी गुण नष्ट होकर कलंक के रूप में सामने आये हैं। अब भी भला चाहते हो तो सीता को लौटा दो परस्त्री की वजह से वंश को कलंकित मत करो। जहर को अमृत समझ कर पी रहे हो। **जहर को अमृत के समझने से क्या जहर मारता नहीं है?** दुर्गति से बचने के लिये अब भी मौका है।

विभीषण की बातों से आग में घी की तरह रावण का क्रोध बढ़ा।

रावण बोला– छोटा होकर भी मुझे उपदेश दे रहा है। अरे परिवारद्रोही! तुझे अभी खत्म करता हूँ यह कहकर रावण ने विभीषण पर शूल नाम का अस्त्र छोड़ा जिसे लक्ष्मण ने बीच में ही रोका। लक्ष्मण ने इन्द्रजीत को नागबाणों से जकड़ लिया। राम ने कुम्भकर्ण को।

रावण ने गुस्से में आकर लक्ष्मण पर शक्ति चलायी जिससे लक्ष्मण घायल होकर धरती पर गिर पड़े। लक्ष्मण को घायल देखकर राम को गुस्सा आया। उन्होंने रावण पर बाणों से प्रहार किये। रावण को छह बार रथ से रहित कर दिया। लेकिन रावण न घायल हुआ न ही मरा। राम ने सोचा रावण का अभी मरने

का समय नहीं आया है तभी तो छह बार रथ से रहित करने के बावजूद नहीं मरा। मेरे बाणों से पहाड़ भी ढह जाते हैं, आदमियों की बात ही क्या?

बाद में राम ने रावण से कहा– हे विद्याधरों के राजा पूर्व का पुण्य आज भी तुम्हारे साथ है, वही तुम्हारा रक्षक है, परंतु मेरा पुण्य ठीक नहीं है, भाई लक्ष्मण धरती पर बेहोश पड़ा है, मरने वाला है, तुम अनुमति दो तो उसका अंतिम बार मुँह देख लूँ!

रावण यह सोचकर महल चला गया कि लक्ष्मण मरेगा और वह मरेगा तो राम अपने आप मरेगा सीता निरुपाय हो, अपने आप मेरी होगी परंतु इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण को नागपाश से बाँधकर शत्रु ले गये यह सुनकर बहुत दु:खी भी हुआ।

श्रीराम लक्ष्मण के पास गये। लक्ष्मण को बेहोश देख, वे भी बेहोश हो गये। जब होश में आये फिर विलाप करने लगे। लक्ष्मण से कहने लगे– भाई, मैं माताओं को क्या जवाब दूँ? उन्होंने तुम्हें मुझे सौंप रखा था। मैं भी तुम्हारे साथ अग्नि में प्रवेश करूँगा।

विलाप करते हुये राम को विभीषण आदि सांत्वना देकर डेरे में ले आये। राम लक्ष्मण को छूना चाहते थे फिर पर जाम्बूद ने उन्हें यह कहकर रोका कि शक्ति लगने वाले को छूने से उसका असर छूने वाले पर भी होता है। जाम्बूद ने कहा कि राम दु:खी मत होवो लक्ष्मण नारायण हैं इनकी असमय में मृत्यु नहीं हो सकती। इससे राम कुछ आश्वस्त हुये पर उनका दु:ख कम नहीं हुआ। सब मिलकर लक्ष्मण के इलाज की चिंता करने लगे। इलाज सूर्योदय से पूर्व ही होना चाहिये क्योंकि सूर्योदय के बाद कुछ भी हो सकता है, लक्ष्मण की मृत्यु हो सकती है। सभी विचार करने लगे कि लक्ष्मण को लगी हुई शक्ति दिव्य है उसे जड़ी बूटी, दवाइयों से हटाया नहीं जा सकता।

सीता ने सुना कि लक्ष्मण शक्ति से घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। वह शोक से विलाप करने लगी। विलाप करते–करते बेहोश हो गई। फिर होश में आकर अनेक प्रकार से विलाप करने लगी। कहने लगी – भाई? मेरे कारण तुम्हारे ऊपर दु:खद घड़ी आई है। मैं ऐसी विपत्ति में हूँ कि तुम्हारा मुँह भी देख नहीं पाऊँगी? कैसे बुरे दिन आये हैं? भाग्य कितना खराब चल रहा है? मेरे लिये आप लोग लड़ रहे हो, मर रहे हो। हे परमात्मा! देखो, मेरे कारण कितने जीव मर रहे हैं। मैं क्या करूँ? सीता के दु:ख का ठिकाना नहीं था।

राम आदि सभी विद्याधर चिंता से व्याकुल होकर सोच रहे थे परंतु कोई उपाय सूझ नहीं रहा था। इसी बीच एक मनुष्य डेरे के दरवाजे पर आकर डेरे में जाने लगा तब दरवाजे पर खड़े भामण्डल ने उसे रोका। पूछा– तू कौन है? भीतर क्यों जा रहा है? उस आदमी ने कहा– मैं राम के दर्शन करना चाहता हूँ। मुझे शीघ्र ही भीतर ले चलो, लक्ष्मण की शक्ति को दूर करने का उपाय जानता हूँ। देर मत करो, मुझे राम के पास ले चलो। चन्द्रप्रतिम मेरा नाम है। भामण्डल उसे राम के पास ले गये। उसने राम से कहा– द्रोणमेघ राजा की बेटी विशल्या के द्वारा छुए हुए जल से लक्ष्मण को लगी शक्ति उनके शरीर से निकल जायेगी।

राम ने पूछा– तुम्हें कैसे पता? चन्द्रप्रतिम ने कहा– एक बार भरत के राज्य में महामारी फैली थी। ऐसा एक भी प्राणी नहीं बचा था, जो बीमार न हो सिर्फ द्रोणमेघ राजा का परिवार, उनसे सम्पर्क वालों में से कोई बीमार नहीं हुआ, जब भरत ने उन्हें कारण पूछा तब द्रोणमेघ ने बताया कि मेरी पुत्री विशल्या के छुये हुये जल, वायु से हम पर कभी कोई बीमारी नहीं आती। द्रोणमेघ की पुत्री के छुये सुगंधित पानी के छिड़कने से भरत आदि सब नीरोग हुये थे। हे राम! मुझ पर विश्वास कर शीघ्र ही विशल्या के छुये हुये सुगंधित जल को लाने का प्रयत्न करो और लक्ष्मण को शीघ्र ही शक्तिरहित स्वस्थ करो।

बिना देरी किये राम ने हनुमान, भामण्डल, अंगद को अयोध्या की ओर रवाना किया। भरत ने उनसे सारी घटनाएँ सुनकर कहा विशल्या का स्नानजल क्या? आप विशल्या को ही ले जाइये। कैकयी स्वयं द्रोणमेघ के पास जाकर विशल्या को ले आयी।

हनुमान आदि विशल्या को लेकर आये। वह ज्यों-ज्यों लक्ष्मण के नजदीक आती गई त्यों-त्यों शक्ति लक्ष्मण के शरीर से निकलने लगी। वह शक्ति ज्योंही निकल कर जा रही थी त्योंही हनुमान ने उसे पकड़ लिया उस शक्ति ने हनुमान से हाथ जोड़कर कहा–

हे देव! मुझ पर नाराज न होइए, हम पराधीन हैं। मेरा नाम **अमोघ-विजया** है। एक बार रावण ने बालि मुनि एवं जिनेन्द्र भगवान की स्तुति करते समय वीणा का तार टूटने पर हाथ की नस तोड़कर वीणा से जोड़कर भक्ति की थी। उसकी भक्ति से धरणेन्द्र का आसन हिला तब धरणेन्द्र ने रावण के पास जाकर मुझे सौंपा।

संसार में विशल्या के अलावा मुझे कोई किसी के शरीर से हटा नहीं सकता था। विशल्या ने पूर्वजन्म में ऐसा कठोर तप किया कि संसार की स्त्रियाँ उसका विचार या कल्पना भी नहीं कर सकतीं जो प्राय: मुनियों के लिये भी कठिन था। मात्र उसी के पूर्व तप के प्रभाव से मैं हार जाती हूँ। हे सज्जन! मुझे छोड़ दीजिये। मैं अपने स्थान की ओर जाती हूँ। हनुमान ने उसे छोड़ दिया।

शक्ति चली गई। लक्ष्मण के शरीर से शक्ति के जाने से सभी खुश हुये और सभी ने उत्सव मनाया। लक्ष्मण के शरीर पर विशल्या ने चंदन का लेप लगाया। बचा हुआ चंदन श्रीराम के आदेश से इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण आदि के शरीर पर लेप के लिये भेज दिया। जिससे वे भी नागपाश के बंधन से मुक्त हुये।

उसके बाद उसी जगह युद्धभूमि में ही लक्ष्मण-विशल्या का विवाह सम्पन्न कराया।

विशल्या के कारण लक्ष्मण के शरीर से शक्ति के निकल जाने का समाचार रावण को मिला तो वह ईर्ष्या से मंद-मंद मुस्कुराया। मृगांक आदि बुजुर्ग मंत्रियों ने रावण को समझाया कि सीता को लौटाकर राम के साथ संधि करने में ही हित है। रावण कुटिल नीति पर उतर आया। उसने सबके सामने कहा– जैसा आपको अच्छा लगे वैसा ही करो। परंतु जिस दूत को राम के पास भेजा उसे एकांत में कुछ और ही बताया।

दूत ने जाकर राम से कहा कि रावण का संधि का संदेश है कि लंका का आधा राज्य आप लोग लीजिये और मेघदूत, कुम्भकर्ण को छोड़ दीजिये तथा सीता को रावण के लिये देना स्वीकार कीजिये नहीं तो सीता तो हमारे पास है ही, भाइयों को हम छुड़वा ले जायेंगे। आपके पास कुछ भी नहीं रहेगा।

यह सुनकर राम पक्ष के भामण्डल आदि दूत को मारने के लिये खड़े हुये। श्रीराम ने उन्हें मना किया और कहा– **बुरे समाचार को सुनकर चिट्ठी फाड़ने से क्या होगा? हमें तो बुराई नष्ट करनी चाहिये। शेरों को चूहे पर क्रोध करना शोभा नहीं देता।** उन्होंने शांत भाव से कहा– रावण से कहना– हमें राज्य से प्रयोजन नहीं है। हमें तो वे सीता को सौंप दें हम उसके साथ जंगल में खुशी से रहेंगे। अपने धनी से कहना हमें सीता धन ही चाहिये अन्य धन या धरा से हमें कोई लेना देना नहीं है। संधि का आधार यही हो सकता है अन्य नहीं। यदि वे परस्त्री पाने के लिये मरने को तैयार हैं तो हम अपनी स्त्री के लिये प्राणान्त प्रयत्न क्यों नहीं करें।

दूत ने लंका जाकर रावण से एकान्त में कहा– स्वामी, जैसे **मुनिराज को अपनी आत्मचर्या ही प्रिय होती है** उसी प्रकार राम को सीता ही प्रिय है अन्य कोई वस्तु नहीं। तीन लोक का वैभव देकर भी उनसे सीता को प्राप्त नहीं कर सकते और सबके सामने कहा–

हे स्वामी! सुग्रीव आदि ने मुझसे कहा– लगता है लंका में कुशल वैद्य नहीं है जो तुम्हारे स्वामी के पागलपन को ठीक कर सकें। इस प्रकार और भी जली कटी बातें कहकर मुझे घोर अपमानित किया।

दूत के समाचार के बाद रावण ने मंत्रियों से मंत्रणा की। एकान्त में सोचने लगा– पुत्र व भाइयों को छुड़ाने के लिये क्या करूँ? युद्ध करूँ तो भाई मारे जायेंगे। सीता लौटा दूँ तो संसार में कायर कहलाऊँगा। क्या करूँ? विचार करते–करते उसे सूझा कि क्यों न मैं बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करूँ? उससे तो देव भी वशीभूत हो जाते हैं, सामान्य मनुष्य की तो बात ही क्या? इसमें हर्ज ही क्या है? फाल्गुन मास का अष्टान्हिका पर्व भी आया है, इन दिनों में तो युद्ध होगा नहीं। इन्हीं दिनों में साधना कर विद्या सिद्ध कर लूँगा। यह सोच उसने महल के प्रांगण में बने शांतिनाथ भगवान के जिनालय को सजाने की आज्ञा दी। दुंदुभि बजवाकर सभी प्रजा से कहा कि इस **धर्मपर्व में कोई पाप सेवन न करें, धर्म सेवन कर अपने जीवन को सफल बनायें।** यदि कोई शत्रु तिरस्कार करें तो भी परम धैर्य धारण कर उसे सहें। पर्व में मात्र धर्म ही सेवन करें। रावण शांतिनाथ जिनालय में बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करने लगा।

रावण शांतिनाथ जिनालय में विद्या सिद्ध कर रहा है– यह समाचार राम पक्ष के लोगों ने सुना तो राम से आज्ञा माँगने लगे कि आज्ञा दीजिये इसी समय रावण को मारकर सीता को लाते हैं।

श्रीराम ने कहा– उसका मरण होना होगा तो विद्या भी कुछ नहीं करेगी। शत्रु यदि जिनमंदिर में हो तो अवध्य होता है। वह नियम लेकर मंदिर में बैठा है उसे मारना घोर निंदनीय पाप कार्य है। इसलिये हम यह कार्य नहीं करेंगे, न करवायेंगे।

राम महापुरुष हैं, वे अनीति का कार्य नहीं करेंगे, न करने देंगे। ऐसा निश्चय कर क्या करना चाहिये? इसी ऊहापोह में विभीषण आदि के आठ दिन बीत गये। पूर्णिमा का दिन आया। तब सुभूषण, अंगद आदि पुत्रों को रावण की साधना में बाधा पहुँचाने के लिये विभीषण आदि ने भेज दिया। वे वहाँ गये- कई प्रकार से बाधा पहुँचाने की कोशिशें कीं पर रावण टस से मस नहीं हुआ। पर्व के दिन समाप्त हुये उसे बहुरूपिणी विद्या सिद्ध हुई। विद्या ने रावण से कहा- चक्रवर्ती के अलावा आपकी इच्छानुसार सभी का पराभव कर सकती हूँ आप हमें आदेश देकर कार्य करवाइये।

विद्या सिद्ध होने पर रावण ने सोचा कि समझ लो मैंने शत्रुओं को मार दिया। स्नानादि से तैयार होकर युद्धभूमि में गया। विद्या की परीक्षा की। उसकी सहायता से उसने भयंकर युद्ध किया। राम की सेना भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगी। रावण हँस कर वहाँ से सीता के पास जाने लगा, जाते समय रास्ते में उसने सोचा राम का रूप धारण कर सीता के सामने जाने में मेरा रावणत्व नहीं रहेगा। उस रूप में भी वह चाहेगी तो राम को ही, मुझे नहीं। राम का रूप धारण करने पर वैसे विकार भी तो नहीं रहेंगे फिर भी परीक्षा करने में क्या बुराई है? यह सोच रावण ने राम का रूप बनाया। सीता से कहा- सीते, चलो, मैं आया हूँ।

सीता ने कहा- अरे बहुरूपिया, तू बहुरूपिणी विद्या सिद्ध कर चुका है। रावण के भेष में तुझे मिल न सकी तो श्रीराम की शरण में ही गया, उन्हीं का रूप धारण कर लिया। रूप धारण कर लिया, पर उनके जैसे कार्य कर। वे सभी के दुःख दर्द दूर करने में अपने दुःख दर्द भूल जाते हैं, देख अपना दुःख भूलकर उन्होंने सुग्रीव की सहायता की थी वैसे तू भी उनके जैसे रास्ते पर चल मुझे उनके पास ले चल। अरे, तूने इतना भी नहीं सोचा कि **लक्ष्मण तो राम के लक्षण हैं,** उनके बिना वे अकेले कैसे आयेंगे? कभी लक्षण को लक्ष्य से अलग देखा है? वे चोर की तरह अकेले कैसे आयेंगे? वे डंके की चोट आयेंगे। तू पापी है, **महापुरुषों के भेष धारण कर महापुरुषों को बदनाम न कर। जब-जब पाखंडी धर्म का वेष धारण करते हैं तब तब धर्म बदनाम होता है।** कम से कम महापुरुषों को तो बख्श दे।

सीता के द्वारा पहिचाने जाने पर रावण लज्जित हुआ। प्रत्यक्ष में रावण बनकर कहने लगा- अब तो तुम्हें पता ही चला गया है तो यह समझ लो तुम्हारे पति, पुत्रतुल्य लक्ष्मण व भाई भामण्डल आदि की मृत्यु के समाचार कल ही सुनोगी।

वह पति, देवर, भाई की मृत्यु की कल्पना मात्र से ही बेहोश हो गई। होश में आने पर रावण ने उससे कहा- यदि अब भी मुझे स्वीकार करती हो तो मैं युद्ध बंद करवाकर उन्हें जीवित रहने दूँगा।

सीता बोली- हे पापी! जीवन मृत्यु तुम्हारे हाथ नहीं है, न मेरे हाथ है। उन्हें अपने अधिकार में मत समझ। तू भी कौन-सा अमर है। **मोक्षगामी के अलावा प्राणी मात्र जीवन मरण कर रहा है। प्रत्येक जीवन आयु कर्म के आधीन है,** इसका विचार कर, धर्म का सेवन कर, धर्म का त्याग नहीं कर। जिसे मरण का भय सताता हो वह क्या धर्म धारण करेगा?

रावण का अंतिम हथियार भी जब बेकार चला गया तब सोचने लगा कि मैंने उस पदार्थ के लिये अपना मन खराब किया, जो कभी मुझे मिलेगा ही नहीं। मैंने हवा को मुट्ठी में बाँधने का प्रयत्न किया। बड़ा भारी महापाप बाँध लिया। मैं पुण्यात्मा पुरुष नहीं हूँ, **पुण्यात्मा उसे कहते हैं, जिसका मन अपने वश में होता है।** यदि मैं पुण्यात्मा होता तो मेरा मन मेरे वश में होता।

लेकिन लोकनिंदा के भय से मैं सीता को सौंप नहीं सकता। कल युद्ध में राम, लक्ष्मण को जीवित पकड़ लूँगा फिर बड़े सम्मान व वैभव के साथ सीता को उन्हें सौंप दूँगा। इसमें सभी का सम्मान बना रहेगा। यह सोच रावण वहाँ से चला गया।

दूसरे दिन युद्ध के लिये रावण जब जा रहा था तब हाथी धरती पर सूंड पटक रहे थे, पूर्व दिशा में खून के समान लाल रंग की उल्का गिरी, तालाब अचानक सूख गये, पहाड़ ढहने लगे आदि अपशगुन हुये। ये अपशगुन राजा की शीघ्र मृत्यु का संदेश दे रहे थे। मंदोदरी ने कहा- स्वामी, आप अब भी सीता को लौटा दीजिये। हम अठारह हजार रानियाँ आपकी सेवा में हैं ही। रावण ने कहा- जैसा आप कह रही है, वैसा ही होगा, बस आज की ही बात है, मैं राम, लक्ष्मण को जीवित पकड़कर उन्हें सीता सौंप दूँगा, पुत्र व भाई को छुड़ाकर लाऊँगा।

मंदोदरी बोली- हे नाथ, मैं आपका विश्वास करती हूँ पर कर्मों का विश्वास कैसे करूँ? **युद्ध में जीवन का पल भर का भी भरोसा नहीं होता।** आप ही हमारे नाथ हैं, जैसा आपको उचित लगे वैसा ही करें पर आज हमारा मन घबरा रहा है।

रावण आयुधशाला में जा रहा था तब पीछे की ओर किसी ने छींक दिया, नाग ने उसका रास्ता काटा, तेज हवा से उसका छत्र टूट गया। ये अपशकुन उसे युद्ध में जाने से मना कर रहे थे, पर उसके दंभ ने इन अपशगुनों की ओर ध्यान देने नहीं दिया।

एक बुजुर्ग मंत्री ने समझाया कि सुना है- लक्ष्मण, नारायण और राम बलभद्र हैं।

रावण ने किसी की बातें नहीं मानी, न पत्नियों की, न मंत्रियों की। **तीव्र कर्म का उदय बुद्धि की बातें नहीं मानता।** युद्धभूमि में आया। उसकी आज्ञा से रणभेरी बजायी गयी। घमासान युद्ध शुरू हुआ। रावण विद्या से निर्मित रथ पर था। दस हजार विद्याधर उसके साथ थे।

राम, लक्ष्मण गरुड़ रथ पर सवार थे। राम सोच रहे थे, युद्ध हिंसा का कार्य है, इस युद्ध रूपी भोज में हर कोई भूखा ही उठता है। न चाहते हुये भी करना पड़ रहा है। काश, मुनि बने होते तो इस पाप से तो बचते पर अब ऐसा होता दिखता नहीं।

रावण के द्वारा विद्या की सहायता से किये जाने वाले युद्ध से राम की सेना इधर उधर भागने लगी, तब उन्हें विश्वास दिलाते हुये राम आये। उन्होंने रावण के ससुरमय को बाणों से घायल किया, तब रावण गुस्से से भरकर राम की ओर दौड़ा, लक्ष्मण ने तब रोकते हुये कहा-

अरे चोर, कहाँ भाग रहे हो? परस्त्री रूपी दीपक पर मिटने वाले पतंगे रुक, पहली बार मैंने तुझे देखा है, मैं बाणों से तेरा स्वागत करता हूँ, मेरे बाणों का रस चख। श्रीराम! इस धरती के राजा, धर्मबुद्धि को धारण करने वाले धर्मात्मा हैं उन्होंने तुझे मारने के लिये मुझ जैसे सेवक को भेजा है।

रावण भी गुस्से से कहने लगा– संसार के राज्य व उसकी वस्तुओं के लिये मैं योग्य हूँ, हाथी के योग्य कुत्ते के गले में नहीं बाँधा जाता। तू साधारण मनुष्य है, तेरे साथ युद्ध करने में मुझे शर्म आ रही है पर मैं क्या करूँ? चींटा हाथी के पैरों के नीचे आकर मरना ही चाहता है तो हाथी क्या करें?

इस पर लक्ष्मण ने कहा– यदि तू अपने आप को इतना ही वीर समझता है तो तूने पराई स्त्री की चोरी क्यों की? वह भी तब, जब तेरे भांजे शंबुक की लाश पास ही पड़ी थी, तेरा जीजा खरदूषण युद्ध कर रहा था उसके मरने की संभावना थी। इस पर भी तुझे महाचोर नहीं कहें तो क्या कहें? **चोरी करने वाला वीर नहीं कायर होता है।** बातों से नहीं बाणों से युद्ध कर। यह कहकर लक्ष्मण ने रावण पर बाणों की झड़ी लगा दी। उसे शस्त्ररहित कर दिया। बाणों के बाद रावण–लक्ष्मण के युद्ध में दिव्य शस्त्रों का प्रयोग होने लगा।

उनका युद्ध महाभयंकर था। लक्ष्मण व रावण को इस तरह युद्ध करते–करते दस दिन बीत गये।

चन्द्रधर विद्याधर की आठ कन्याएँ विमान के अग्र भाग पर बैठ कर उनका युद्ध देख रही थीं। उन्होंने लक्ष्मण से कहा– हे नाथ, आप सभी प्रकार से **सिद्धार्थ** होवो। उनके मुँह से सिद्धार्थ शब्द सुनकर लक्ष्मण को सिद्धार्थ शस्त्र की याद आयी, उन्होंने सिद्धार्थ शस्त्र रावण पर चलाया। विचलित होकर रावण ने बहुरूपिणी विद्या की सहायता ली। लक्ष्मण रावण का एक सिर काटते तो वे दो सिर हो जाते। दो हाथ काटते तो चार हो जाते थे। धीरे–धीरे वह हजारों सिर व हजारों हाथ वाला हो गया। द्विबाहु लक्ष्मण ने सहस्रबाहु रावण को थका दिया। उसके मुँह से श्वास निकलना बंद हो गया। उसे पसीने आने लगे। उसने थक हारकर चक्ररत्न को याद किया।

वह वज्रमुखी चक्र वैडूर्यमणि से निर्मित हजार आरों वाला था, एक हजार यक्ष उसकी सदा सेवा करते थे। याद करते ही चक्ररत्न रावण के हाथ पर आ गया। रावण ने घुमाकर लक्ष्मण पर चलाया। उसे लक्ष्मण की ओर आते देख राम पक्ष के वीर लक्ष्मण की दशा का विचार कर घबराकर दुःखी हुये। सोचने लगे अब तो लक्ष्मण की मृत्यु निश्चित है?

भाग्य की बात देखो, चक्र ने लक्ष्मण को तीन प्रदिक्षणाएँ दीं। लक्ष्मण के हाथ पर आकर रुक गया। राम पक्ष में हर्ष छा गया। अनन्तवीर्य केवली ने कहा था– लक्ष्मण आठवें नारायण होंगे व राम आठवें बलभद्र होंगे। इस घटना से वह बात सच होती देखी।

सुदर्शन चक्र को लक्ष्मण के हाथ पर खड़ा देख रावण को चिंता हुई। रावण को अनन्तवीर्य केवली का उपदेश याद आया। जिसमें उसकी मृत्यु का कारण एक भूमिगोचरी को बताया था। वह सोचने लगा थोड़े समय पहले तीन खण्ड की पृथ्वी मेरी दासी थी वहाँ मैं एक भूमिगोचरी से पराजित हो रहा हूँ। धिक्कार

है ऐसी राज्यलक्ष्मी को क्षण भर में किसी की, क्षण भर में किसी की। मैं जीवन भर मोहकर्म से पराजित होता रहा हूँ।

लक्ष्मण ने रावण से कहा– हे महापुरुष! अब भी सीता को सौंपकर यह कहो कि मैं श्रीराम की कृपा से जीवित हूँ। ऐसा कहो तो तुम्हारा राज्य अब भी तुम्हारे पास ही है।

रावण का पाप का उदय कम नहीं हुआ था। उसने कुटिलता से कहा तुच्छ लोग गर्व नहीं करते, अरे नीच, मैं अभी तेरी दुर्गति करता हूँ, मैं अभी भी विद्याधर हूँ और तू भूमिगोचरी है।

इस पर लक्ष्मण बोले– प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। देखो, चक्र मेरे हाथ पर विद्यमान है, इसका अर्थ यही है कि मैं तुम्हें मारने वाला नारायण हूँ।

रावण ने व्यंग्य से कहा– तू मन से नारायण बन रहा है तो मन से इन्द्र क्यों नहीं बनता? तुम्हें तो पिता ने घर से निकाला है। बेघर होकर जंगल में भटक रहे हो, न रहने का ठिकाना, न खाने का ठिकाना, चले नारायण बनने, खूब जानता हूँ ऐसे नारायणों को, **स्वांग बनाकर पेट भरना अच्छा है पर घमण्ड करना अच्छा नहीं है।** चक्र तो कुम्हार के पास भी होता है तो क्या वह भी नारायण है? **तुच्छ आदमी को छोटी–छोटी वस्तुओं से खुशी होती है।** रुक, मैं औरों की तरह तुझे भी यमलोक भेजता हूँ।

रावण की बातें सुनकर लक्ष्मण को क्रोध आया, क्रोध में चक्र घुमाकर रावण की ओर फेंका। भयंकर गर्जना करने वाले उस चक्र को रावण ने रोकने का बहुत प्रयास किया, परंतु रावण का पुण्य क्षीण हो जाने से वह रुका नहीं, पास आता गया। रावण ने चन्द्रहास तलवार से उसके टुकड़े करने चाहे पर **पुण्य समाप्त होने पर सब प्रयत्न बेकार हो जाते हैं।** चक्ररत्न ने रावण के वज्र समान वक्ष:स्थल को चीर दिया, पुण्य और आयुकर्म के नाश के साथ रावण धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ा। धरती पर मृत रावण ऐसा दिख रहा था मानो कोई देव या कामदेव ही सो रहा हो।

रावण के धरती पर गिरते ही सेना इधर–उधर भागने लगी, तब राम आदि ने उन्हें तसल्ली देकर रोका।

रावण को मरा देख विभीषण ने आत्महत्या करने के लिये छुरी पर हाथ रखा ही था कि राम ने बड़ी मुश्किल से उन्हें वैसा करने से रोका। विभीषण बहुत रोये। इसी बीच रावण की पत्नियाँ युद्धभूमि में आईं। वहाँ बहुत ही करुणा भरा वातावरण था, उनके विलाप को सुनकर वहाँ एक भी ऐसी आँख न थी, जिससे लगातार आँसुओं की धार न बह रही हो।

राम ने उपस्थित सभी से कहा– कर्मों की चेष्टाएँ विचित्र होती हैं। मैं राजपुत्र होकर भी कर्मों के उदय से जंगल में भटक रहा हूँ, लक्ष्मण भी सीता भी पूर्व कर्म के कारण हरी गई है। देखो, यह रावण जो शास्त्रों का जानकार, प्रजावत्सल, कार्यसाधन में चतुर परंतु मोह के कारण विनाश को प्राप्त हुआ। **मोह के कारण मनुष्य की बुद्धि अमावस के अंधकार के समान हो जाती है** इसलिये हमें मोह के नाश का ही प्रयास करना चाहिये, जिससे हमारी दुर्गति न हो। रावण की मोही वृत्ति के कारण ही विभीषण उनसे अलग हुये। सीता

को हरने की बुद्धि हुई। अंत में मृत्यु को प्राप्त हुये। रावण धन्य है, वीर है। वीरों के मरण का शोक नहीं करना चाहिये इसलिये आप सब शोक मत कीजिये।

मरणान्तानि वैराणि जायन्ते हि विपश्चिताम् ।

अर्थ– विद्वानों का बैरभाव मरण तक ही होता है। मरण के बाद बैर समाप्त हो जाते हैं। यह सोच राम ने उत्तम रीति से रावण का अंतिम संस्कार करने का आदेश दिया। पद्म नाम के सरोवर पर रावण का अंतिम संस्कार किया गया।

राम के आदेश से ही कुम्भकर्ण, मेघनाद आदि को सम्मान के साथ छोड़ दिया, हालाँकि इसका कुछ लोगों के द्वारा विरोध किया था, परंतु राम ने किसी की नहीं सुनी और उनको छोड़ दिया। इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण, मारीच, मेघवाहन, मय आदि को छुड़ाने के बाद राम के सामने लाया गया। उनसे राम ने कहा– युद्ध का प्रयोजन न राज्य था, न ही रावण को मारना था। हमारे युद्ध का प्रयोजन सिर्फ सीता को पाना था, दूसरा उपाय नहीं रहने पर युद्ध करना पड़ा। सीता हमें मिल गई है इसलिये आप अपना राज्य ले लीजिये, सुख से रहिये, हम यहाँ से सीता को लेकर जाते हैं।

इस पर इन्द्रजीत आदि ने कहा– हे राम! यह आपकी उदारता है, हम आपकी उदारता की प्रशंसा करते हैं, आपके भावनाओं की कद्र करते हैं परंतु बंदीगृह में ही हम लोगों ने प्रतिज्ञा की थी कि यदि हम लोग बंधन से जीवित मुक्त हुये तो दीक्षा लेंगे, मुनिव्रत धारण करेंगे।

राम ने उन्हें बहुत समझाया पर वे नहीं माने। उसी दिन लंका के कुसुमायुध उद्यान में **अनन्तवीर्य** मुनिराज पधारे थे। उन्हें वहीं केवलज्ञान हुआ था। देवों ने आकर उनका केवलज्ञान उत्सव मनाया था। इन्द्रजीत आदि ने अपने पूर्व भवों के बारे में भगवान से पूछा। आपसे पूर्व जन्म जानकर उनका वैराग्य दृढ़ हुआ। उन सब ने तुरंत मुनि दीक्षाएँ लीं।

मंदोदरी, चंद्रणखा आदि ने शशिकान्ता नाम की आर्यिका के पास आर्यिका दीक्षाएँ ग्रहण कीं। इसी समय अड़तालीस हजार स्त्रियों ने संयम धारण किया। इन्द्रजीत आदि मुनिराजों की वंदना, स्तुति करने के बाद राम, लक्ष्मण, भामण्डल आदि सीता के पास गये।

चिरकाल बाद श्रीराम के दर्शन से रोमांचित सीता ने राम के चरण अपने आँसुओं से धोयें। उनके सुखद समागम से प्रसन्न देवों ने उन पर फूलों की, गंधोदक की वर्षाएँ की। देव परस्पर कहने लगे–देखो सीता का गाम्भीर्य, दृढ़ता अद्भुत है, शुद्ध आचरण को धारण करने वाली इस देवी ने रावण को क्षण भर भी मन में नहीं रखा बल्कि उसे सदा पापी समझा, दूर रहने के लिये उसे समझाया। अहो, धन्य हैं ये देवी।

लक्ष्मण सीता के चरणों पर नमस्कार कर सामने खड़े हो गये तब सीता ने उनसे कहा– हे पुत्र! मुनिराज के वचनों के अनुसार अब तुम चक्रधारी नारायण हो और राम बलभद्र हैं।

सुग्रीव आदि ने सीता को माला आदि अनेक वस्तुएँ भेंट कीं। इसके बाद राम, सीता शांतिनाथ

भगवान के मंदिर गये। वहाँ भगवान की भक्ति की। विभीषण के महल में पद्मप्रभ भगवान का मंदिर था वहाँ जाकर भक्ति की। विभीषण के आग्रह पर वे कुछ दिन तक वहीं रहे।

इधर इन्द्रजीत आदि मुनिराजों ने केवलज्ञान पाकर मेघरव[1] नामक स्थान से मोक्षपद प्राप्त किया। जम्बूमाली मुनि स्वर्ग में अहमिन्द्र बने। कुम्भकर्ण नर्मदा के तट से मोक्ष गये। मारीच मुनि कल्पवासी देव बने।

राम, लक्ष्मण के वियोग से उनकी माताओं की दशा दयनीय थी। नवप्रसूता गाय के समान अपने पुत्रों से मिलने के लिये सदा छटपटाती रहती थीं। कौशल्या कभी कौओं से कहती– राम आ जायेगा तो तुझे खीर खिलाऊँगी। उसी रास्ते को देखती थी, जिस रास्ते से वो गये थे। उनको याद करती हुई कहती थी। हे पुत्रों, बरसों हो गये, अब तो आ जाओ। जल्दी आने का वादा कर गये थे, क्या हुआ? कहीं जंगल के जानवर तो नहीं खा गये– यह सोच रोती, बिलखती उसे न खाने की सुध थी, न पहनने, न ही ओढ़ने की। शोक से सूख कर काँटा हो गई थी।

एक दिन देवर्षि नारद वहाँ आये। **अवव्दार** उनका नाम था, कौशल्या ने उठकर उनका सम्मान किया, उन्हें बैठने के लिये आसन दिया। सम्मान से प्रसन्न नारद ने पूछा– सुकौशल महाराज की लोकप्रसिद्ध पुत्री, महाराज दशरथ की पत्नी आज इतनी उदास दुःखी क्यों है?

कौशल्या ने बताया– हे देवर्षि बहुत वर्षों के बाद आये हो इसलिये आपको पता नहीं है।

नारद बोले– हाँ माते, मैं धातकीखण्ड के पूर्वी विदेह में **श्री तीर्थंकर** के जन्म के उत्सव में गया था, उस सुंदर द्वीप में मैं तेईस वर्ष रहा हूँ। माता के समान भारतभूमि के दर्शन के लिये आज ही आया हूँ।

कौशल्या ने वनवास से लेकर सीता हरण तक की घटनाएँ सुनाईं। फिर उसने कहा– उसके बाद क्या हुआ? हमें नहीं पता, कई बरस बीत गये, उनका कोई समाचार नहीं है इसलिये सदा दुःखी चिंतित रहती हूँ।

नारद ने कहा– माते, दुःखी मत हो, तुम्हारा यह पुत्र शीघ्र ही वहाँ जाकर उनका समाचार लाता है। यह कहकर नारद वहाँ से लंका की ओर चले गये।

लंका में जाकर नारद ने एक मनुष्य से पूछा लंकाधिपति रावण कैसे हैं? इतना पूछते ही उसे रावण का पक्षधर समझ लोगों ने घेर लिया। पकड़कर राम के पास ले गये। राम ने दूर से ही नारद को पहिचान कर लोगों से कहा– इन्हें पकड़ कर नहीं, सम्मान के साथ ले आओ, ये अवव्दार नाम के देवर्षि नारद हैं। एक–दूसरे की कुशलक्षेम पूछने के बाद नारद ने राम से कहा– मैं अयोध्या से आ रहा हूँ। वहाँ कौशल्या आपके वियोग में बहुत दुःखी हैं, बहुत ही कमजोर हो गई हैं, अत्यधिक अस्वस्थ हैं। यदि आप शीघ्र ही नहीं पहुँचे तो शरीर छोड़ देंगी।

एतस्मिन्ननु संसारे बंधुर्माता प्रधानतः।

अर्थ– यथार्थ में इस संसार में माता ही सर्वश्रेष्ठ बन्धु है।

जो हाल कौशल्या के हैं, वही सुमित्रा, कैकयी के भी हैं। वे सब कुररी के समान रोती रहती हैं। माताओं को याद कर राम-लक्ष्मण बहुत रोये। उन्होंने नारद से कहा- खोटे कर्म के उदय से हम माताओं को भूल गये थे। आपने याद दिला कर हमारा बड़ा उपकार किया है। क्योंकि-

पुण्यवान् स नरो लोके यो मातुर्विनये स्थितः।
कुरुते परिशुश्रूषां किंकरत्वमुपागतः।।

अर्थ- संसार में वह मनुष्य बड़ा पुण्यात्मा है जो माता की विनय में तत्पर रहता है तथा सेवक भाव से सेवा करता है।

राम, लक्ष्मण तुरंत ही अयोध्या की ओर जाने के लिये तैयार हो गये परंतु विभीषण ने सोलह दिन और ठहरने के लिये निवेदन करते हुये अपना मुकुट उनके चरणों पर रखा। राम उन्हें मना नहीं कर सके। माताओं के पास समाचार देने के लिये दूत भेज दिये। दूतों ने सारे समाचार कहे। रामादि की कुशलता के समाचार से सभी प्रसन्न हुये, उनके आने की प्रतीक्षा करने लगे। भरत ने **नौ योजन चौड़ी, बारह योजन लंबी, अड़तीस योजन परिधि वाली अयोध्या** ऐसी सजायी कि उसके सजावट का वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता।

सोलह दिन पल भर की तरह बीत गये। सीता, राम, लक्ष्मण लंका से पुष्पक विमान पर अयोध्या के लिये रवाना हुये। रास्ते के स्थानों का परिचय कराते हुये राम, सीता, लक्ष्मण के साथ शीघ्र ही अयोध्या पहुँच गये। माताओं से मिले, सबको प्रसन्न किया।

राम, सीता **नन्द्यावर्त** नाम के महल में रहने लगे। सबका समय हँसी खुशी बीत रहा था।

भरत की डेढ़ सौ रानियाँ थीं पर उनका मन न रानियों से, न ही राज्यलक्ष्मी से प्रसन्न हो रहा था। उनके मन में वैराग्य बस गया था। **जिसके मन में वैराग्य रहता है, उसके लिये तीन लोक का वैभव भी प्रसन्न नहीं कर सकता।** शिकारी से भयभीत हिरण की तरह सुंदर, रमणीय स्थानों में भी उनका मन नहीं रमता था। उन्हें संसार असार दिखता था। उन्हें संगीत और रूदन में कोई फर्क नहीं दिखता था। भरत की दीक्षा में विघ्न डालने वाले दिन बीत गये। उसकी दीक्षा की प्रतिज्ञा पूरी हुई थी। वे दीक्षा की आज्ञा लेने के लिये राम, लक्ष्मण के पास गये तब राम, लक्ष्मण ने उन्हें बहुत समझाया पर उन्होंने उनसे यही कहा कि-

हे राजन्! नाना योनियों में भटकते-भटकते हमें गर्भादिक के दुःख सहते-सहते अनन्त जन्म बीत गये, अब मैं पुनः उन दुःखों को सहन करना नहीं चाहता। व्रतरूपी जहाज से दुःख रूप संसार सागर से पार होना चाहता हूँ। **उत्तम कार्य से जैसे बने वैसे सम्बन्ध जोड़ना चाहिये। चक्रवर्ती की लक्ष्मी भी भोगी की भोग वासना को संतुष्ट नहीं कर सकती। ईंधन अग्नि को बढ़ाता है, बुझाता नहीं। इसी प्रकार भोग वासना को बढ़ाते हैं, घटाते नहीं।** इसलिये मुझे दीक्षा की अनुमति दीजिये।

भरत दीक्षा का विचार कर ही रहे थे कि उसी दिन भरत के त्रिलोकमंडन हाथी को जाति स्मरण हुआ। वह पूर्व में ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में भरत का मित्र था। उसने आहार पानी छोड़ दिया। आहार पानी छोड़े उसे चार दिन बीत गये थे।

देशभूषण केवली का समवशरण अयोध्या के पास आया था। भरत आदि ने समवशरण में देशभूषण केवली से हाथी के आहार पानी छोड़ने के विषय में पूछा। केवली ने बताया– पूर्व में हाथी का जीव एक राजा का **मृदुमति** नाम का पुत्र था। वैराग्य होने पर दीक्षा ली। मृदुमति नाम का मुनि बना।

एक बार दुर्गगिरि के शिखर पर **गुणनिधि** नाम के मुनिराज ने आहार पानी छोड़कर चौमासा किया था वे ऋद्धिधारी थे।

चौमासा पूर्ण होते ही वे आकाश मार्ग से चले गये। संयोग से मृदुमति उसी पर्वत के शिखर पर आये। जब वे वहाँ से आहार के लिये आये, तब लोगों ने कहा–देखो, कितने बड़े तपस्वी हैं। उन्होंने एक बार भी यही नहीं कहा कि मैं दुर्गगिरि पर चौमासा करने वाला मुनि नहीं हूँ, न गुरु होते हुये भी अपनी शल्य निकाली। उसी के फलस्वरूप स्वर्ग से आकर अब हाथी बना है।

देशभूषण केवली से हाथी व स्वयं के पूर्वजन्मों के बारे में सुनकर भरत का वैराग्य और दृढ़ हुआ उन्होंने दीक्षा धारण कर ली। उनके साथ एक हजार राजाओं ने दीक्षाएँ लीं। पुत्र के वियोग से दुःखी कैकयी ने भी अन्य तीन सौ स्त्रियों के साथ **पृथ्वीमती आर्यिका** के पास दीक्षाएँ लीं।

हाथी सल्लेखना धारण कर ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में महान् ऋद्धिधारी देव बना। भरत ने कठोर तप कर मोक्ष प्राप्त किया।

राम ने शत्रुघ्न को मथुरा का राज्य दिया था। एक बार वहाँ **सप्तर्षि** आये थे। अर्हद्दास सेठ उनकी भक्ति पूजा के लिये अपने परिकर के साथ जा रहे थे। शत्रुघ्न ने उनसे पूछकर मुनिराजों के लिये आहार बनवाया। मुनियों के पास जाकर नमस्कार कर कहा– आपके उपवास की प्रतिज्ञा पूरी हुई है इसलिये आहार लीजिये। तब संघ के आचार्य बोले– हे नरश्रेष्ठ! **संकल्प करके बनाये हुये आहार में मुनियों की प्रवृत्ति नहीं होती।**

अकृताकारितां भिक्षां मनसा नानुमोदिताम्।
गृह्णतां विधिना युक्तां तपः पुष्यति योगिनाम्।।

अर्थ– स्वयं या दूसरे के द्वारा वचन या मन से अनुमोदना नहीं करते हुये भिक्षा में प्राप्त अन्न से योगियों का तप पुष्ट होता है।

उस दिन मुनियों को आहार नहीं दे पाने से शत्रुघ्न दुःखी होकर सोचने लगा कि अब मैं कब आहार दे पाऊँगा?

उस समय आचार्य ने उसे काल का प्रभाव इस प्रकार बताया–**तीर्थंकरों का काल बीत जाने पर धर्मकर्म से रहित अत्यंत भयंकर समय आयेगा। पाखण्डियों के कारण धर्म वैसे ही विलुप्त हो जायेगा, जैसे धूल या बादलों के कारण सूर्य का प्रकाश विलुप्त हो जाता है। उस समय घर, ग्राम, नगर, देश धर्म से रहित हो जायेंगे। लोक कुकर्मों, पापों में लीन रहेंगे, लोगों की भावनाएँ दुष्टताओं से भरी रहेंगी। पृथ्वी पर हिंसा**

का ताण्डव हो जायेगा। माता–पिता, पिता–पुत्र, भाई–बहिन आदि में स्नेह नहीं रहेगा। राजा, नेता धन के कीड़े बनेंगे। कषायों की बहुलता से स्वर्ग आदि से देवों का आना आदि अतिशय नहीं होंगे। इस तरह अनेक प्रकार से बुरा समय आयेगा। इसलिये ऐसा कार्य करो जिससे आत्मकल्याण हो सके। शोक मत करो। यह कहकर सप्तर्षि ऋद्धि के बल से आकाशमार्ग से चले गये।

वह संघ मथुरा से क्षण भर में ही अयोध्या में सीता के महल के सामने पहुँचा, सीता मुनिसंघ देखकर बहुत आनंदित हुई। सीता ने नमस्कार करके अति आदर के साथ उनका पड़गाहन कर उत्तम अन्न का आहार दिया। आहार लेकर मुनि आकाशमार्ग से चले गये।

सीता के दान, पुण्य में कई दिन बीत गये। दिन ऐसे बीत गये कि पता ही नहीं चला। एक दिन सीता ने रात्रि के अंतिम प्रहर में दो स्वप्न देखे। स्वप्नों का फल जानने के लिये राम के पास गई। सीता ने राम से कहा– हे नाथ, आज सुबह मैंने दो स्वप्न देखे हैं। आज पहले स्वप्न में देखा कि दो अष्टापदों ने मेरे मुख में प्रवेश किया है। दूसरे स्वप्न में देखा कि तेज हवा के कारण मैं पुष्पक विमान से धरती पर गिरी हूँ।

स्वप्नों के फलों के जानकार राम ने बताया कि– हे देवी तुम्हारे मुख में अष्टापदों ने प्रवेश किया है, इसका फल यह है कि आप दो वीर पुत्रों को प्राप्त करोगी। यह कहकर राम चुप हुये।

सीता ने पूछा– नाथ, आप चुप क्यों हो गये, दूसरे स्वप्न का फल भी बताइये।

राम ने गंभीर होकर कहा– देवी घबराओ मत। दूसरे स्वप्न का फल थोड़ा अशुभ है, परंतु हम दान, पुण्य, शांतिकर्म के द्वारा पाप के उदय को दूर कर देंगे। अन्य चर्चा के बात सीता चली गई। अपने कार्यों में व्यस्त हो गई। वह पहले से भी अधिक दान–पुण्य करने लगी।

धीरे–धीरे समय बीत गया। वसन्त ऋतु आ गई। वसन्तोत्सव मनाने के लिये राम, सीता, लक्ष्मण आदि सम्पूर्ण राजपरिवार नगरवासियों के साथ अयोध्या के पास बने हुये महेन्द्र नाम के सुन्दर बगीचे में गया।

वहाँ गर्भ के भार से अलसाई–सी थकी हुई सीता ने राम ने पूछा– हे देवी! आपकी क्या इच्छा हो रही है सो बताइये मैं पूर्ण करता हूँ।

सीता ने कहा– हे नाथ! मुझे धरती के सभी चैत्यालयों, जिनमंदिरों के दर्शन की इच्छा हो रही है। स्वर्ण, रत्नों के पुष्पों से जिनेन्द्र भगवन्तों की पूजा व दानादि द्वारा धर्मप्रभावना की इच्छा हो रही है।

राम ने मंत्री को बुलाकर आदेश दिया कि जिनमंदिरों को सजाया जाय, निर्वाण क्षेत्र के मंदिरों को विशेष रूप से सजवाइये। जिनमंदिरों में पूजा की सीता की विशेष इच्छा है, यही उसके गर्भ का दोहला है। मैं पूजा करता हुआ, धर्म की प्रभावना करता हुआ सीता के साथ जाऊँगा। मेरे व सीता के जाने का प्रबन्ध कीजिये।

'जो आज्ञा'– कहकर मंत्री चला गया। अयोध्या के मंदिरों में शीघ्र ही सजावट की गई। दूसरे दिन राम, सीता ने अयोध्या के मंदिरों में दर्शन–पूजन किये।

महेन्द्र उद्यान में राम के पास अनेक लोग पहुँचे।

यह समाचार सीता ने सुना था तब सीता की दाहिनी आँख फड़कने लगी थी। सीता सोच में पड़ गई। वह सोचने लगी– यह दाहिने आँख की फड़कन न जाने कौन–सा दु:ख ला रही है? कर्मों ने पहले मुझे लंका में ले जाकर दु:ख पहुँचाया। पुण्य के फलस्वरूप अब दो दिन भी सुख के बिता नहीं पाई कि फिर ये फड़क रही है। सीता को दु:खी देख माला नाम की रानी ने कहा– दु:खी मत होइये। अशुभ कर्म का प्रभाव किमिच्छिक[1] दान करने से कम होता है। इसलिये किमिच्छक दान दीजिये।

सीता ने **भद्रकलश** नाम के कोषाध्यक्ष को बुलाकर प्रसूति तक किमिच्छक दान देने के लिये कहा। स्वयं पूजन भक्ति में लीन हो गई। उसने अपनी शक्ति के अनुसार अनेक नियम लिये।

उद्यान में राम के पास अनेकों लोग डरते–डरते आकर चुपचाप खड़े हो गये थे। उन सब को सहमे–सहमे चुपचाप देखकर राम ने पूछा आप लोग डरे हुये सहमे से क्यों हो? कुछ बोलते क्यों नहीं?

इतने पर किसी ने चुप्पी नहीं तोड़ी, कोई कुछ नहीं बोला। थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। फिर राम ने दुबारा कहा– बोलिये, बताइये, इस तरह चुप मत रहिये। डरो मत, बताइये, क्या कहना है? तब उनमें से एक विजय नाम का मुखिया हाथ जोड़कर टूटी फूटी भाषा में बोला– हे नाथ! प्रजा धीरे–धीरे अपनी सीमाएँ लाँघ रही है। लोग व्यावहारिक मर्यादाएँ तोड़ रहे हैं।

स्वभावादेव लोकोऽयं महाकुटिलमानस:।
प्रकटं प्राप्य दृष्टान्तं न किञ्चित्तस्य दुष्करम्।।

अर्थ– यह मनुष्य स्वभाव से ही महाकुटिल मन वाला है। फिर यदि कोई दृष्टान्त प्रकट मिल जाता है तो फिर उसे कुछ भी कठिन नहीं रहता है।

जिनके चित्त में पाप समाया हुआ रहता है ऐसे बलवान लोग कमजोर लोगों की स्त्रियों का अपहरण करने लगे हैं। जब कोई स्त्री किसी तरह बचकर लौट कर घर आती है तो घर में उसका पति प्रवेश नहीं करने देता तब विवाद में उदाहरण दिया जाता है, कहा जाता है कि राम ने भी कई दिनों तक शत्रु के घर रहने वाली सीता को घर में रखा है। जब राजा को कोई परेशानी नहीं हुई तो आप लोगों को क्यों हो रही है?

न केवल विवाद वाली जगह बल्कि आम जगह इसी अवर्णवाद की चर्चा कई दिनों से हो रही है। जैसे राजा करता है वैसे ही प्रजा करती है। इसलिये हम सब आप से निवेदन करने आये हैं कि इस विषय में कुछ कीजिये।

राम गहरी सोच में डूब गये। वे सोचने लगे जिसके विरह के दु:ख को नहीं सह पाने के कारण युद्ध कर जिसे पाया वही मेरे कुल व राज्य के लिये कलंक रूप बन रही है। भीतर सभी जानते हैं वह निर्दोष है पर अपने पाप को छिपाने के लिये उसके नाम का आधार ले रहे हैं।

जिसके बिना क्षण भर में ही दु:खी होता हूँ। जिसके गुणों का निवास मन के रग-रग में है उसके विषय में क्या निर्णय करूँ? सीता गुणों का भण्डार है, शील की खान है, सतीत्व के लिये आदर्श है। वही सीता मेरे धैर्य को विचलित कर रही है इस समय वह गर्भवती है, वन में उसने बहुत कष्ट सहे, अब उसके साता के चार दिन आये थे कि पापकर्म ने कैसा प्रसंग लाकर खड़ा कर दिया है मैं क्या करूँ?

यह तो युद्ध से भी भयंकर स्थिति आ पड़ी है। युद्ध में शत्रु सामने होता है, पराया होता है। यहाँ अपनी प्रजा ही हमारी शत्रु बन रही है। क्या करूँ? कुछ समझ में नहीं आ रहा है। बुद्धि काम नहीं कर रही है।

सचमुच राज्य करना कितना कष्टकारी है? सोचते कुछ हैं, कर्मोदय से होता कुछ और है, **जहाँ शरीर का परिणमन अपनी इच्छानुसार नहीं होता वहाँ प्रजा के इतने लोगों का परिणमन अपनी इच्छानुसार कैसे होगा?** सीता को घर में ही रखूँ तो उसका अवर्णवाद कैसे दूर होगा? वह निर्दोष है उसे छोड़ूँ कैसे? राज्य छोड़ दूँ तब भी उसका अवर्णवाद दूर नहीं होगा।

वह धर्मात्मा है, कर्मोदय को स्वीकार कर सब दु:ख सहन कर लेगी। प्रजा तो धर्मात्मा नहीं है, वह तो पर के दोष ही देखेगी। उसका एक समय का विरह भी मुझे सहन नहीं होता है हमेशा के लिये कैसे छोड़ूँ? यद्यपि और बहुत-सी रानियाँ हैं परंतु सीता के बिना सब वस्तुएँ असार हैं, बेकार हैं। सीता को नहीं त्यागूँ तो उस पर जीवन भर कलंक रहेगा। उसको छोड़ने में उसी का हित है। पुण्यात्मा है, पुण्य के कारण लवण समुद्र के बीच लंका से वापिस मिली है जिसका पता लगाना कठिन था, ऐसी जगह से वह मिली है। पुण्य के कारण उसे सुरक्षा मिलती रहेगी, सुरक्षित रहकर पुन: मुझे मिल जायेगी यह सोच राम ने उसे छोड़ने का कठोर निर्णय कर कृतान्तवक्र सेनापति को कान में धीरे से कहा- सीता को तीर्थयात्रा के लिये कहकर भेज रहा हूँ, उसे हमारे राज्य से दूर एकान्त निर्जन **सिंहनाद** नाम के वन में छोड़कर आ जाना।

वृद्ध कृतान्तवक्र सेनापति को सदमा लगा पर वह पराधीन था, क्या करता? 'जो आज्ञा' कहकर चला गया। लक्ष्मण आदि को इस बात का पता चला तो क्रोध में राम के पास जाकर कहने लगे- आप आज्ञा दें तो इसी समय कहने वालों को मार दूँ?

राम ने कहा- लक्ष्मण किस-किस को मारोगे। प्रजा के नाश का मतलब हमारा नाश। प्रजा ही नहीं रहेगी तो हम किसके राजा रहेंगे। यह कोई उपाय भी नहीं है। ऐसा करने पर भी सीता पर लगा कलंक तो नहीं मिटेगा। वह मैं भी कर सकता हूँ, जो आप कह रहे हो, हे लक्ष्मण, मैंने बहुत सोचा, इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं सूझा, पराये हाथों भरतक्षेत्र से दूर समुद्र में से वापिस मिली है। अपने हाथ से रखी हुई वस्तु की तरह क्यों नहीं मिलेगी? लक्ष्मण धैर्य रखो।

लक्ष्मण ने कहा- औरों की बातें जाने दीजिये, आप स्वयं जानते हैं कि वह सतियों में शिरोमणि है, इस समय गर्भिणी है; फिर भी उनका त्याग क्यों कर रहे हो?

राम बोले- लक्ष्मण इस बात को मैं जानता हूँ पर उसके लोकापवाद को शास्त्र या शस्त्र से दूर नहीं

कर सकते, न घर में रखकर उसे दूर किया जा सकता है, क्या करूँ? नहीं चाहते हुये भी कलेजे पर पत्थर रखकर यह निर्णय करना पड़ रहा है, नहीं तो सूखे ईंधन में आग की तरह यह अपवाद फैलता ही जायेगा। वह निर्दोष होते हुये भी कलंकित रहकर शरीर छोड़ेगी। उससे दूर रहकर हम जी लेंगे पर उस पर कलंक रहेगा तो हम भी दु:खी ही रहेंगे। इतने में कृतान्तवक्र सेनापति रथ लेकर आये। आँसू भरे आँखों में राम, लक्ष्मण आदि ने सीता को रथ में बिठाया। राम ने सेनापति से कहा– रास्ते में जो जिनमंदिर, निर्वाण क्षेत्र आदि आये उन सबके दर्शन कराते हुये ले जाना। सीता ने कहा– नाथ आप नहीं आ रहे! राम ने कहा– देवी, मैं बाद में आऊँगा। अपना ध्यान रखना। धर्म में मन लगाना, कर्म का उदय विचित्र होता है। यह कहकर राम रोने लगे। सीता ने कहा– नाथ रोइये मत, कुछ दिनों की ही तो बात है।

सीता ने सखियों से कहा– आप लोग निश्चिंत रहना मैं जल्द ही आऊँगी। सीता के शब्द सुनकर राम, लक्ष्मण को जोर से रोना आया। सेनापति से 'जल्दी से जाइये' कहकर उन्होंने मुँह फेर कर सीता को विदा किया।

सीता के रास्ते में सूखे वृक्ष पर कौआ बोलने लगा, बिखरे बालों वाली स्त्री रो रही थी पर जिनदर्शन के भावों से भरी सीता का उन पर अपशगुनों की ओर ध्यान नहीं गया।

धीरे-धीरे दर्शन, पूजन करते हुये कई दिन बीत गये। सिंहनाद अटवी आ गई। तब सेनापति का धैर्य जवाब दे गया था। वे रोने लगे।

तब सीता ने पूछा– क्यों रो रहे हो? तब सेनापति बोले– हे देवी! दुर्जनों के विष, अग्नि, शस्त्र से भी अधिक घातक आपकी निंदा के शब्दों को सुनकर आपकी निंदा से बहुत भयभीत श्रीराम ने दोहले के बहाने आपको इस घने जंगल में निराश्रित छोड़कर आने के लिये आदेश दिया है, उसी का पालन करते हुये रोना आ रहा है। यह सुनकर सीता बेहोश हो गई। होश में आने पर– उसने कहा– हे पिता के समान सेनापति जी इसमें आपका क्या दोष है? आप तो पराधीन हो, पूर्वकर्म के उदय ने आज इस स्थिति में मुझे पटका है, इसमें श्रीराम या आपका कोई दोष नहीं है। आप लोग तो निमित्त मात्र हैं। **निमित्तों को दोष देना बुद्धिमानी का लक्षण नहीं है।** सेनापति ने सीता से कहा– हे देवी! आपकी दशा देखकर जाने का मन नहीं है परंतु पराधीन हूँ, जाना ही पड़ेगा। आप यदि कोई संदेश राम को देना चाहती हो तो बताइये।

सीता ने कहा– सेनापति जी, श्रीराम स्वयं ज्ञानी हैं, समझदार हैं, विवेकवान हैं, उन्हें संदेश क्या दूँ? फिर भी मन नहीं मान रहा है इसलिये इतना-सा मेरी ओर से कहना कि **जैसे उन्होंने लोकापवाद के कारण मुझे दूर कर दिया वैसे लोकापवाद के कारण धर्म को दूर न करें** क्योंकि मुझे दूर करने से उन्हें अधिक नुकसान नहीं है, परन्तु धर्म को दूर करने से उन्हें जन्म-जन्मांतरों में भारी नुकसान होगा। **धर्म राज्य से भी बढ़कर होता है, पाप या पुण्य के उदय से नष्ट नहीं होता है। धर्म मोक्ष सुख दिलाता है, उसका त्याग नरक-निगोद ले जाता है।** इतना कहते ही सीता ऊबड़-खाबड़ पृथ्वी पर फिर बेहोश होकर गिर पड़ी। अपनी दीनता का विचार कर दु:खी मन से सेनापति सीता को कर्मोदय की शरण में छोड़कर चले गये।

होश में आने पर सीता बहुत रोने लगी। हे कर्म, तुम कितने बलवान हो! पिता राजा हैं, पति बलभद्र हैं, देवर नारायण हैं, परिवार के अन्य लोग समर्थ हैं परंतु तुम इन से भी ज्यादा बलवान् हो क्योंकि उनके रहते हुये भी मुझे असहाय दशा में भयंकर वन में पटक दिया है। अब क्या होगा? कर्मोदय अब और क्या दु:ख देगा इसका पता नहीं, मेरे पुण्य का क्षय हो गया है। दु:खों के सागर में डूब गई हूँ, पर मैं अपनी समता नहीं छोड़ूँगी– यह सोचकर वह जोर–जोर से रोने लगी।

इस तरह जब सीता विलाप कर रही थी, उसी समय **वज्रजंघ** राजा वहाँ से जा रहा था। वह पुण्डरीकपुर का राजा था, भगवान के दर्शन कर लौटते समय उसका हाथी जंगल में घुसा था, उस हाथी को पकड़ने के लिये वन में आया था, हाथी पकड़कर जा रहा था। उसे स्त्री के रोने की आवाज सुनाई दी। आवाज सुनकर उसी दिशा में गया। सीता उसे देखकर डर गई और इस घने जंगल में कोई उसे लूटने आया है– समझकर अपने गहने उतारकर देने लगी तब वज्रजंघ ने सांत्वना देते हुये कहा– बहन डरो मत, मुझे अपना ही भाई समझो। आप भले घर की दिख रही हो पर इस भयानक जंगल में कैसे आ गई हो? मैं कोई चोर, डाकू, लुटेरा नहीं हूँ। मुझे लुटेरा मत समझो अपना भाई समझो। हमें आभूषणों से क्या प्रयोजन? ये आपके पास ही रखो। शांति धारण करो।

मैं पुण्डरीकपुर का राजा वज्रजंघ हूँ। अब आपका भाई हूँ। हाथी को ढूँढ़ने के लिये जंगल में आया था, आप दिख गई हो। मैं धर्मधारी, पापों से डरने वाला मनुष्य हूँ। शस्त्र और शास्त्र का अभ्यासी हूँ। पराई स्त्री को बहन या माँ के समान समझने वाला हूँ। अत: आप बेझिझक मुझे अपना परिचय दीजिये जिससे मैं आपको आपके घर पहुँचा सकूँ।

सीता को विश्वास होने पर उसने कहा– हे भाई, मैं अयोध्या के राजा बलभद्र श्रीराम की पत्नी हूँ। लक्ष्मण मेरे देवर हैं। भामण्डल मेरे भाई हैं। जनक मेरे पिता हैं। दशरथ मेरे ससुर हैं। इसके बाद उसने अपने जीवन की सभी घटनाएँ बतायीं और बताया कि लोकापवाद के कारण मेरे स्वामी ने विचार किया कि– **स्वभाव से कुटिल लोक किसी भी प्रकार से आधीन नहीं हो सकता। इसलिये प्रियजन का त्याग मृत्यु से भी बढ़कर हो फिर भी कलंक की बजाय अच्छा है।** इसी कारण मेरा सदा ही कल्याण चाहने वाले मेरे प्रिय राम ने मुझे इस भयानक जंगल में छुड़वाया है। इसके बाद सीता फूट–फूट कर रोने लगी। उसके रोदन को देखकर वज्रजंघ की आँखों में आँसू आ गये, उसने दु:खी होकर कहा– हे जिनधर्म का श्रद्धान करने वाली देवी मिथ्यादृष्टि स्त्री के समान क्यों रो रही हो? धैर्य धारण करो। **पापोदय में धैर्य ही उपाय होता है।** पूर्व पापोदय से निन्दा रूपी साँप से डसी गई तुम बिना अपराध के यहाँ छोड़ी गई हो।

परंतु आज भी तुम्हारा पुण्य पूर्ण नष्ट नहीं हुआ है, देखो तुम्हारा वज्रजंघ नाम का भाई तुम्हें लेने आया है। आप धर्मविधि से मेरी बड़ी बहन हो। हे बहन, चलो मेरे साथ, श्रीराम तुम्हें अवश्य खोजेंगे तब तक भाई के घर रहो, धर्म की आराधना करो।

तब सीता ने कहा– धर्म को हृदय में रहने वाले भाई से बढ़कर और ज्यादा कौन हितैषी हो सकता है? वज्रजंघ सीता को पालकी में बिठाकर तीन दिन के बाद पुण्डरीक नगर में पहुँचे।

सीता के आगमन पर राजा के आदेश से शहर सजाया गया। राजा की पत्नियों ने अपनी नई ननद का आरती उतार कर स्वागत किया। देखिये, **पाप सीता को वन में ले गया, पुण्य उसे नगर ले आया, उसे एक भाई और बहुत सी भाभियों का संयोग करा गया।**

सीता वहाँ धर्मकार्यों में, पूजन पाठ में समय व्यतीत करती रही। कुछ समय राम की कथाएँ सुनाकर बिताती थी। राजा वज्रजंघ के पास जो भेंट आती थीं वे सब वह सीता के लिये देता था। सीता उनको दानादि में खर्च करती थी।

सेनापति मुख नीचे किये हुये राम के पास पहुँचे। सीता का संदेश सुनाया और उन्होंने कहा– हे देव आपकी आज्ञा पूरी कर दी है। सीता को घने जंगल में छोड़कर आया हूँ, जहाँ उसके पुण्य–पाप ही उसके पास हैं।

राम शोक से विह्वल हो बेहोश हो गये। उन्हें अपनी गलती का एहसास था, वे सोचने लगे– मुझ मूर्ख ने दुष्टों के कहने से यह क्या कर डाला? कहाँ भयानक जंगल और कहाँ कोमल अंगों वाली सीता? यह सोचकर विलाप करने लगे। हे निरपराध सीते, मैं तुम्हारा अपराधी हूँ। निर्दयी होकर मैंने मौत के मुँह में भेजा है। तुम प्रशस्त शील की धारक हो और मैं अत्यंत क्रूर प्रकृति का हूँ। तुम कितनी विशाल हृदय वाली हो, जिसने मौत जैसा दु:ख दिया, उसी का अब भी भला चाहती हो। पहले शत्रु ने हरण किया था इसलिये सभी ने मेरी मदद की थी, पर अब की बार मैंने खुद ही तुम्हें छोड़ा है। तुम्हें खोजने में कौन मेरी मदद करेगा?

लक्ष्मण, राम के पास आये। राम की ऐसी दशा देखकर खुद भी रोने लगे। धीरे–धीरे यह खबर अयोध्यावासियों को पता चली। सारी अयोध्या रोने लगी। बड़े लोगों के समझाने के बाद राम ने कुछ धैर्य धारण किया। भद्रकलश खजांची को बुलाकर कहा– सीता ने तुम्हें जिस विधि से दान देने के लिये कहा गया था उस विधि से नौ मास तक दान देते रहना।

राम की आठ हजार रानियाँ थीं पर सीता के बिना राम का उनमें मन नहीं लगता था। उन्हें हर जगह सीता ही सीता दिखाई देती थी। राम का हर पल सीता की याद में बीतता था। राम को सीता न केवल सती, न केवल पत्नी, न केवली पटरानी, अपितु वह धर्मात्मा दिखती थी। यही वजह है कि उन्हें लगता था कि मैंने एक धर्मात्मा पर अत्याचार किया है। ऐसे सोचते–सोचते उनका समय बीतता था।

इधर सीता को दर्पण होते हुये तलवार की धार में मुँह देखने की आदत पड़ चुकी थी। वीणा की जगह धनुष की टंकार सुनना चाहती थी। शेरों को देखना पसंद करती थी। इसी तरह दिन बीत गये।

श्रावण मास की पूर्णिमा, रक्षाबंधन के दिन शुभ नक्षत्र में सीता ने दो पुत्रों को जन्म दिया। वज्रजंघ ने बहुत बड़ा उत्सव किया।

एक पुत्र का नाम **अनंगलवण** तथा दूसरे का नाम **मदनांकुश** रखा गया। बालक इतने सुंदर थे कि सबकी आँखों के तारे दुलारे बने थे। समय बीतते देर नहीं लगी। पुण्डरीकनगर को आनंदित करते-करते कब बड़े हो गये पता ही नहीं चला।

एक दिन **सिद्धार्थ** नाम का एक क्षुल्लक वज्रजंघ के नगर में आया था। वह महाविद्याओं में इतना निपुण था कि तीनों समय की संध्याओं के समय मेरु पर्वत पर विराजमान जिन प्रतिमाओं के दर्शन कर आता था। अणुव्रती था। केशलोंच करता था, शांत, धीर, वीर एक वस्त्रधारी था। हाथ में पींछी लिये संयोगवश सीता के घर के सामने पहुँचा।

उसे देखते ही सीता नम्रता के साथ आई। उसने आदर के साथ अन्न-जल दिया। सीता के मान-सम्मान, आदर से संतुष्ट सिद्धार्थ क्षुल्लक वहीं बैठ गया। वहाँ क्षुल्लक ने लवण, अंकुश को देखा वह अष्टांग निमित्तों का ज्ञाता था, इसलिये देखते ही समझ गया कि ये वीर बालक विशेष पुण्यात्मा है। उसने श्राविका के व्रत धारण की हुई सीता से पुत्रों के जन्म के बारे में पूछा तब सीता ने रोते हुये आप बीती घटनाएँ सुनाईं। सीता के दु:ख से दु:खी क्षुल्लक ने कहा। देवकुमारों जैसे दो पुत्रों के होते हुये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। बहन दु:खी मत हो। बहन, मैं इन्हें शस्त्र और शास्त्र की शिक्षा दूँगा। क्षुल्लक ने थोड़े ही दिनों में लवणांकुश व मदनांकुश को विज्ञान, विद्या, कला, गुणों में कुशल बना दिया और वहाँ से चला गया।

सीता के इन दो पुत्रों ने अपने पराक्रमों से चारों ओर प्रसिद्धि पाई।

वज्रजंघ ने लवणांकुश का शशिचूला आदि बत्तीस राजकुमारियों के साथ विवाह तय किया तथा मदनांकुश के विवाह के लिये पृथु राजा के पास दूत भेजकर उसकी बेटी कनकमाला का हाथ माँगा, परंतु उसने मना किया। स्वयं वज्रजंघ ने याचना की फिर भी उसने मना कर दिया। कहा- कुल-शील का पता नहीं है। तब वज्रजंघ ने युद्ध करने हेतु भेरी बजाई। भेरी सुनकर लव व कुश ने कहा- मामा हमारे होते, आप युद्ध हेतु मत जाइये। वज्रजंघ ने छोटे जानकर उन्हें युद्ध पर जाने के लिये मना किया परंतु वे नहीं माने। उन्होंने पृथु को अपने युद्ध-कौशल से कुल-शील का पता बता दिया उसे पराजित कर दिया। तब हारे हुये पृथु ने अपनी कन्या कनकमाला को उसे देना निश्चित कर दिया।

पृथु को जीतने के बाद वे दोनों पृथ्वी को जीतने के लिये निकल पड़े। अनेक राजाओं को जीतकर सीता के पास आये। सीता उन्हें देख आनंद के सागर में डूब गई।

इधर सीता के त्याग की बात का पता चला तब नारद ने कृतान्तवक्र सेनापति से सीता को जिस जगह छोड़ा उस जगह का पता पूछा। सीता के पास जाने के लिये पूछते-पूछते वे पुण्डरीकपुर पहुँचे। वहाँ उन्हे लव, कुश दिखाई दिये। लव, कुश ने उनका बहुत सम्मान किया, तब नारद ने उन्हें **'राम, लक्ष्मण जैसी विभूति प्राप्त हो'** यह आशीर्वाद दिया। लव-कुश ने पूछा- ये राम लक्ष्मण कौन हैं? नारद ने उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया।

कुश ने पूछा– हे महर्षि, राम धर्मात्मा हैं तो उन्होंने हमारी माँ को क्यों छोड़ा? नारद बोले– हे पुत्रों तुम्हारी माँ आठ हजार रानियों में प्रधान है, विदुषी, पवित्रता में श्री, धृति, कीर्ति आदि देवियों से बढ़कर है, जिनवाणी के समान निर्दोष है यह राम जानते थे परंतु लोकापवाद के कारण उन्होंने उसे छोड़ा था। पूर्व जन्मों के कर्म और संसार की विचित्रता ही इसमें कारण है। आर्जवादि गुणों की धारी सीता जैसी निर्मल स्त्री की निंदा होती है तो इसमें संसार का स्वरूप ही कारण समझो। इस पर लव ने कहा– राम ने अपने कुल के अनुरूप कार्य नहीं किया है।

नारद ने कहा– उन्होंने कुल और सीता कलंकित न हो– इसलिये सीता को त्याग दिया।

लव ने कहा– हमें पराक्रम दिखाकर उन्हें अपना परिचय और उनकी गलती का आभास कराना चाहिये इसलिये आप हमें अयोध्या का पता बताए।

नारद ने बताया– यहाँ से अयोध्या साठ योजन दूर है।

लव कुश ने कहा – हम उन्हें पराजित करने के लिये जाते हैं। इसके बाद लव ने वज्रजंघ के पास जाकर कहा– मामा अपने पक्ष के राजाओं के साथ हमें अयोध्या पर आक्रमण के लिये आज्ञा दीजिये।

अयोध्या पर आक्रमण की बात सुनकर सीता रोने लगी तब सीता के पास खड़े सिद्धार्थ क्षुल्लक ने नारद से कहा– हे नारद! आपने ऐसा अप्रंशसनीय कार्य क्यों किया? हमने आज तक लव कुश से ये बातें छिपाकर रखी थीं।

तब नारद बोले– हे क्षुल्लक, मुझे ऐसा पता नहीं था कि मेरे बताने पर ये युद्ध के लिये तैयार हो जायेंगे। ऐसा पता होता तो मैं नहीं बताता।

सीता ने लव कुश से कहा– तुम दोनों श्रीराम के शरीर से उत्पन्न हों। श्रीराम ने लक्ष्मण के साथ मिलकर समुद्र तक पृथ्वी को दासी बना रखा है। उनके साथ युद्ध का मतलब महायुद्ध है। इस महायुद्ध में मैं कौन–सा अमंगल समाचार सुनूँ? क्या मैं पति का या देवर का या मेरे सुख के आधार तुम दोनों का?

लव कुश ने कहा– माँ क्यों दु:खी हो रही हो? हम आपको ऐसा समाचार सुनने का मौका नहीं देंगे। वे हमारे शत्रु हैं उन्होंने निर्दोष होते हुये भी आपको वन में अकेली ही छोड़ा था।

क्या सीधे जाकर हम उन्हें यह कहें कि 'हम आपके पुत्र हैं?' हम अपना पराक्रम दिखाकर उन्हें जीवित पकड़कर उनका राज्य उनको लौटाकर अपना परिचय देंगे। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि उनको खरोंच तक नहीं आने देंगे। अब आप हमें खुशी से विदा कीजिये।

सीता बोली– हे पुत्रों! पिता–पुत्रों के युद्ध में खुशी कैसी? युद्ध नाम ही हिंसा और भय का है। फिर भी **जोश, अनुभव की बातें कहाँ सुनता है?** न जाने कर्म और क्या दिखायेगा?

वो हमारे शत्रु नहीं हैं, हमारे पूर्व के दुष्कर्म हमारे शत्रु हैं। मैं किस मुँह से तुम्हें जाने के लिये कहूँ?

उसके बाद सिद्धों को नमस्कार कर लव कुश अनेक राजाओं के साथ अयोध्या की ओर चल दिए। उनकी सेना एक योजन तक फैली हुई थी। वे शीघ्र ही अयोध्या की ओर चल दिये। अयोध्या के पास की **सरयू** नदी के किनारे सेना ठहरा दी।

रात तक समाचार पहुँचते ही उन्होंने बिना देरी किये युद्ध की तैयारी शुरू कर दी। राजाओं को सहयोग के लिये बुलाया। वे भी शीघ्र ही आ गये।

अवद्वार नारद और सिद्धार्थ क्षुल्लक ने भामण्डल के पास समाचार भेजे, सीता के हाल सुनाये। दुःखी, किंकर्त्तव्यमूढ़ हो, भामण्डल माता-पिता को साथ लेकर सीता से मिलने गये। माता, पिता, भाई के गले मिलकर सीता फूट-फूट कर रोई। उसके दुःख बाँध तोड़ने वाली नदी के प्रवाह की तरह निकले।

सीता को शांत कर भामण्डल ने कहा- बहन, लव कुश ने बलभद्र, नारायण के साथ युद्ध का निर्णय कर अच्छा नहीं किया। बहन चलो, चलकर लव कुश की सुरक्षा का कोई उपाय सोचते हैं।

सीता, भामण्डल, उनके माता, पिता अयोध्या आ गये। ये जब तक आये, तब तक युद्ध प्रारंभ हो चुका था। भामण्डल अपने भानजे लव कुश के पक्ष में खड़े हो गये। हनुमानगण लव कुश को सीतापुत्र जान अनेक विद्याधर राजाओं के साथ लव कुश के पक्ष में आ गये। विमान पर सीता को देखकर अनेक विद्याधर राजा युद्ध छोड़कर सीता को प्रणाम कर उसके पास ही खड़े हो गये। सीता युद्ध देखकर काँपने लगी। उसकी कँपकँपी तब और बढ़ गई जब उसने राम, लक्ष्मण को और लव कुश को आमने सामने युद्ध करते हुये देखा।

लव ने राम की ध्वजा और धनुष काट दिये और रथ भी तोड़ दिया। राम दूसरे रथ पर सवार होकर गुस्से में आकर लव की ओर गये। उन दोनों में विकट युद्ध हो रहा था। इधर लक्ष्मण और कुश में भी महायुद्ध हो रहा था। युद्ध में लव के रथ के सारथी राजा वज्रजंघ, कुश के सारथी राजा पृथु, लक्ष्मण के विराधित और राम के कृतान्तवक्र सेनापति थे।

राम ने कृतान्तवक्र से कहा- सेनापति जी, रथ को तेजी से ले चलो। सारथी ने कहा- गति में तेजी कहाँ से आये? घोड़े तो घायल हैं। राम ने कहा- पता नहीं मेरा भी इनसे युद्ध करने का मन नहीं कर रहा है। मेरे शस्त्र अस्त्र लक्ष्य पर नहीं लग रहे हैं।

लव और कुश को राम और लक्ष्मण के साथ अपने संबंधों का पता था इसलिये वे उनके शरीर को विशेष रूप से बचाकर शस्त्र और अस्त्र को चला रहे थे। लव ने राम को, कुश ने लक्ष्मण को हल्का-सा घायल कर दिया।

लक्ष्मण को घायल देख सारथी ने रथ अयोध्या की ओर मोड़ा। लक्ष्मण ने गुस्से में आकर कहा- यह क्या कर रहे हो? रथ वापिस मोड़ो। लौटकर लक्ष्मण ने गुस्से से चक्ररत्न उठाया। कुश को निशाना साध कर उसे चलाया। वह चक्र कुश की परिक्रमा देकर लौटकर लक्ष्मण के हाथ पर आकर ठहर गया। लक्ष्मण ने उसे बार-बार चलाया, चक्र बार-बार लौटकर आता गया। इसे देखकर सभी योद्धा आश्चर्य में पड़ गये।

कुश ने अपने धनुष को गोल चक्राकार घुमाया उससे लक्ष्मण के साथ सभी भ्रम में पड़ गये, सोचने लगे ये दोनों वीर नये बलभद्र और नारायण उत्पन्न हुये हैं।

क्षुल्लक सिद्धार्थ ने लज्जित लक्ष्मण से कहा– हे लक्ष्मण! जिनेन्द्र की कही बात अन्यथा नहीं होती है, नारायण, बलभद्र के पद के स्वामी तो आप दोनों भाई ही हों ये दोनों वीर तो आपके भतीजे सीता के पुत्र हैं। एक का नाम अनंगलवण है और दूसरे का मदनांकुश है।

लक्ष्मण का हृदय तो मानो वात्सल्य का सागर ही बना। उन्होंने तुरंत शस्त्र छोड़ दिये कवच उतार दिया। राम को पता चला तो सीता के दु:खों को याद कर वे बेहोश हो गये। होश में आने पर दोनों पुत्रों से मिलने गये।

लव, कुश ने रथ से उतर कर राम, लक्ष्मण के चरणों में नमस्कार किया। राम पुत्रों से मिलकर खूब रोये। फिर कहने लगे– हे पुत्रों मैं आपका और आपकी माँ का बहुत बड़ा अपराधी हूँ। तुम दोनों निर्दोष बालकों को सीता के साथ गर्भ में ही भयानक वन में छोड़ दिया था। यदि उस समय ये परोपकारी वज्रजंघ नहीं होते तो आपके मुँह कैसे देख पाता? युद्ध में तुम दोनों हमारे कभी व्यर्थ न जाने वाले शस्त्रों से मारे नहीं गये, इसका मतलब यह है कि तुम दोनों बहुत पुण्यशाली हों। हे पुत्रों! युद्ध में यदि तुम मारे जाते तो सीता के क्या हाल होते? सीता ने जीवन भर कष्ट ही झेले हैं, जनम से ही भाई के वियोग से लेकर आज तक वह कष्टों में ही जीती रही है। कष्ट सीता का पर्यायवाची शब्द बना है।

पुत्रों ने पिता से कहा– आप शास्त्रों के जानकार, लोक व्यवहार में कुशल, राजधर्म का श्रेष्ठ रीति से पालन करने वाले होकर भी रुदन कर रहे हो? आपने सीता को मन से नहीं छोड़ा। वह तो आपके राजधर्म, उनके पूर्वकर्म के उदय एवं दुष्टों के विचारों के द्वारा छोड़ी गई है। आप चलाकर छोड़ते तो हम आपको दोषी एवं हमारा शत्रु मानते। आप शांत होइये। पुत्रों के उदार हृदय, विवेक पूर्ण ज्ञान को देखकर राम प्रसन्न, शांत हुये।

सीता दूर से पिता–पुत्र का मिलन देखकर खुशी से पुण्डरीकपुर वापिस लौट गई।

भामण्डल ने भानजों का आलिंगन किया। हनुमान ने उनका आलिंगन कर बहुत सम्मान किया। विराधित, विभीषण आदि सभी राजाओं ने बड़ी श्रद्धा से उनको देखा। उनसे बातें की। लव, कुश उन सबसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुये।

राम ने लव, कुश के मिलन को तीन लोक के वैभव से भी अधिक मान उनके रक्षक, राजा वज्रजंघ का बहुत सम्मान किया और कहा– हे वज्रजंघ आज की खुशी के एकमात्र आप ही आधार हो। आप नहीं होते तो यह दिन देखने को नहीं मिलता, न जाने क्या होता? आप हमारे लिये दूसरे भामण्डल ही हों।

लव, कुश को अयोध्या में देखकर राम को अयोध्या स्वर्ग से भी अधिक सुंदर दिखाई दी। अयोध्या में सब ओर खुशियाँ मनाई गईं। एक दिन हनुमान, सुग्रीव, विभीषण, विराधित आदि ने राम से सीता को लाने के लिये निवेदन किया। उसे लाने के लिये आज्ञा प्रदान करने की बात कही।

तब राम ने कहा– यद्यपि शुद्ध हृदय वाली सीता के शील तो निर्दोष है ऐसा जानता हूँ फिर भी लोकापवाद के कारण उसका मुँह मैं कैसे देखूँ? सीता पहले प्रजा को विश्वास उत्पन्न करायें उसके बाद ही उसके साथ हमारा निवास हो सकता है अन्य प्रकार से नहीं। हम उसे कैसे ले आयें? लोग तो यही कहेंगे राजा थे सो अपनी मरजी से विश्वास करके ले आये। जैसे छोड़ना मरजी से हुआ, उसे लाना भी मरजी से हुआ। वह तो खिलौना बनकर रह गई। वह लोगों में विश्वास उत्पन्न करें तो आगे के अनंतकाल के लिये उसका कलंक धुल जायेगा। वह निर्मल जीवन जी पायेगी। इसके लिये देश के सभी राजा एवं प्रमुख बुलाये जायें। उन सबके सामने शपथ लेकर वह अपनी निर्दोषता सिद्ध करें।

राम के आदेश से जिज्ञासा से भरे सभी राजा अयोध्या आये।

सभी के मन में कुतूहल भरा था। राम की आज्ञा से भामण्डल, विभीषण, हनुमान, सुग्रीव, विराधित और रत्नजटी आदि बड़े बड़े राजा पल भर में ही आकाश मार्ग से पुण्डरीकपुर गये। वे हाथ जोड़कर जयकारे के साथ सीता के महल में गये। नमस्कार कर सीता के सामने धरती पर बैठ गये।

सामान्य वार्ता के बाद सीता धीरे-धीरे बोली-

शब्द वास्तव में बहुत बुरे होते हैं। अपवादरूपी दावानल से जले हुये मेरे अंगों को इस समय क्षीरसागर का जल भी शांति नहीं दिला सकता, इस तरह आत्मनिंदा करती हुई सीता रोने लगी।

तब विभीषण आदि ने उसे शांत किया और कहा- हे देवी धरती पर ऐसा कौन-सा व्यक्ति है? जो आपकी निर्दोषता को न जानता हो। आपके बारे में लोगों में इतना सम्मान है कि लोग अनाज में आपकी स्थापना करते हैं, उनका विश्वास है कि अनाज में सीता की स्थापना करने से अनाज अधिक उत्पन्न होता है, उसमें बरकत रहती है। हे देवी, श्री रामचंद्रजी ने आपको लाने के लिये पुष्पक विमान भेजा है। उस पर विराजमान होकर हमें उपकृत एवं प्रसन्न कीजिये। आपके बिना अयोध्या बिना ज्योति के दीये की तरह हो रही है उसे उजला कर दीजिये।

सीता उनका मान रखकर राम को प्रसन्न करने के लिये सैकड़ों स्त्रियों के साथ अयोध्या आई। सूर्यास्त हो जाने से उसने अयोध्या में प्रवेश नहीं किया। महेन्द्र नाम के उद्यान में रात भर रही।

दूसरे दिन प्रात: स्नानादि शुद्धि के बाद उसने पंचपरमेष्ठी को नमस्कार कर यथासमय राम के दरबार में प्रवेश किया। उसके पहुँचते ही सभा के राजाओं ने उसके जयकारे लगाये, स्तुति प्रशंसाएँ कीं। बड़ों ने उस पर आशीर्वादों की बारिश कर दी। सभी के सम्मान रूपी जल से नहाई सीता राम के पास गई।

सीता को पास देखकर एक क्षण राम प्रसन्न हुये। परन्तु अगले क्षण वे अलग प्रकार के भावों से भर गये। सोचने लगे। मुझे दु:खी करने वाली, जो मेरी दूसरी आत्मा की तरह है, वह यहाँ क्यों आ गई? इसे मैंने जंगल में छुड़वाया था। मेरे द्वारा इस तरह निकाले जाने पर भी वैराग्य को क्यों नहीं प्राप्त हुई? जो मेरे पास लौट आई। लोग क्या कहेंगे?

अँगूठे से धरती को कुरेदती सीता राम के चेहरे को पढ़कर सोच में पड़ गई। वह सोचने लगी– विरह रूपी जहाज शायद किनारे पर आकर टूट जायेगा। उसे बचाने के लिये मैं क्या करूँ? मेरे स्वामी का मन अब भी मेरे विषय में आशंकित है, दु:खी है। मेरी वजह से वे आज भी दु:खी हैं। पहले वनवास में मेरी वजह से उन्हें दु:ख उठाने पड़े, बाद में मेरी लोकनिंदा की वजह से दु:खी होना पड़ा। आज उसी लोकनिंदा के कारण अन्तर्मन से मुझसे प्रीति होने पर भी स्वीकार कर सुखी नहीं हो पा रहे हैं। उनके मन के संताप को नष्ट करने के लिये इन्हें विश्वास दिलाने के लिये मैं क्या करूँ? क्योंकि ऐसी चिंता और अविश्वास के दु:ख में रहते हुये इनका मन धर्म में भी निश्चिंत होकर नहीं जुड़ेगा। मैं कैसी अभागिन हूँ? श्रीराम जैसे धर्मात्मा, दयालु चित्त वाले पुरुष के दु:ख में ही सदा कारण बनी हूँ। अब मैं क्या करूँ? जिससे इनके दु:खी मन से दु:ख निकल जाये और ये निश्चिंत होकर धर्म में लीन हो जायें। वह ऐसा सोच ही रही थी कि इतने में राम ने कहा–

सीते! सामने क्यों खड़ी हो? दूर हट, मैं तुझे देखने में समर्थ नहीं हूँ। रावण के पास बहुत समय तक रहने के बावजूद मैंने तुम्हें स्वीकार ही कैसे किया? इतना सुनते ही सीता का सद्भावरूपी शीशा पात्र टूटकर चकनाचूर हो गया।

उसने राम से कहा– तुम्हारे समान निष्ठुर दूसरा कोई नहीं है। जिस प्रकार एक साधारण मनुष्य विद्या, ऋद्धि का तिरस्कार करता है, उसी प्रकार आप मेरा तिरस्कार कर रहे हैं। दोहले के बहाने मुझे जंगल में छुड़वाया। मुझ गर्भिणी को इस तरह छोड़ना क्या उचित था? यदि मैं वहाँ कुमरण को प्राप्त होती तो उसमें आपका क्या नुकसान था, नुकसान तो मेरा ही था, मैं ही दुर्गति को प्राप्त होती! यदि मुझ पर थोड़ा भी स्नेह होता तो मुझे किसी आर्यिका के पास छोड़ते। अच्छा हो जिनशासन का जिसके आश्रय से हर दु:ख सहती रही। सच है–

अनाथानामबन्धूनां दरिद्राणां सुदु:खिनाम्।
जिनशासनमेतद्धि शरणं परमं मतम्।।

अर्थ– अनाथ, यतीम, दरिद्र, अतिदु:खी मनुष्यों के लिये जिनशासन ही परम शरण है।

हे राजन! अधिक क्या कहूँ? इस हाल में भी प्रसन्न रहिये। मुझे तो आज्ञा दीजिये मैं क्या करूँ? इतना कह, सीता फूट-फूट कर रोने लगी।

राम बोले– हे सीते मैं तुम्हारे निर्दोषशील, पतिव्रत्य धर्म एवं विशुद्ध हृदय को जानता हूँ। पर इन लोगों के द्वारा तुम अपवाद को प्राप्त हुई हो, इसलिये कुछ ऐसा करो, जिससे इनको विश्वास हो जाये। इनकी शंका दूर करो। मैं अपना अपराध मानता हूँ, उसके लिये क्षमायाचना भी करता हूँ। आर्यिका के पास छोड़ने पर एक और आरोप खड़ा रहता। आरोपों का सिलसिला खत्म नहीं होता, उसे खत्म करने के लिये घने जंगल में छोड़ा था। तुम पुण्यात्मा हो, **पुण्यात्माओं का कुमरण नहीं होता।** आप तो ऐसी शपथ इन सबके सामने करो, जिससे सारी प्रजा को विश्वास हो जायें कि आप निर्दोष हैं।

सीता शांत भाव से बोली– हे राजन्, मैं पाँचों दिव्य शपथों से विश्वास दिला सकती हूँ। आप कहें तो कालकूट जहर को पी सकती हूँ, जिसे सूँघने मात्र से आशीविष साँप भी तत्काल मर जाता है। जल–समाधि ले सकती हूँ। तुला पर चढ़ सकती हूँ। अग्नि में प्रवेश कर सकती हूँ। आप को जो अच्छा लगता हो सो कहो।

राम ने सोचा लगता है इसने मरने का निश्चय किया है। अग्नि भी स्त्री है, यह भी एक स्त्री है। एक स्त्री दूसरी स्त्री की रक्षा करती है या नहीं– यह देखते हैं और कहा– आप अग्नि में प्रवेश करो।

सीता ने कहा–ठीक है। सीता के उत्तर से भामण्डल, विभीषण आदि ने सोचा इसने मरण चुन लिया है। विद्वान कहते हैं, वह सच है **निंदा से मरण भला।** वह कहावत आज समझ में आई है। सभा के सभी सभासद, उपस्थित जनसमुदाय के मस्तक सीता के प्रति अटूट श्रद्धा व सीता के मरण की आशंका से झुक गये। लोगों की आँखों से आँसू टपकने लगे।

लव, कुश ने मन में निश्चय किया था कि हम दोनों भी अग्नि में प्रवेश करेंगे। सिद्धार्थ क्षुल्लक ने हाथ ऊपर उठाकर कहा–

हे राजन्! हे लोगों **सीता के शीलव्रत का पूर्ण रूप से वर्णन करने में देव भी समर्थ नहीं है अन्य मनुष्यादि की क्या बात?** हे राम; मेरु पाताल में जा सकता है, समुद्र सूख सकता है, चंद्र उष्णता में सूर्य बन सकता सूर्य शीतलता में चन्द्र बन सकता, परंतु सीता के शीलव्रत में चंचलता उत्पन्न नहीं हो सकती। सीता का अपवाद सत्यता को प्राप्त नहीं हो सकता। मैं विद्या बल से समृद्ध हूँ और मैंने पाँचों मेरु पर्वतों पर विद्यमान अकृत्रिम चैत्य चैत्यालयों एवं जिन प्रतिमाओं की अनेकों बार वंदनाएँ की हैं। हे राम, मैं जोर देकर कहता हूँ कि यदि सीता के शीलव्रत में थोड़ी भी कमी हो तो मेरी वे सभी दुर्लभ वंदनाएँ निष्फल हो जायें। मैंने एक वस्त्रखण्ड धारण कर कई हजार वर्ष तक तप किया है, वह निष्फल हो जाये। इसलिये सीता पर अविश्वास कर उसे अग्नि में प्रवेश न कराओ। सभी ने क्षुल्लक के शब्दों का समर्थन किया। सभी कहने लगे– हे राम!

सती सीता सती सीता न सम्भाव्यमिहान्यथा।
महापुरुष पत्नीनां जायते न विकारित।।

अर्थ– सीता सती है, सीता सती है, उसके विषय में अन्य कल्पना मत करो। महापुरुषों की स्त्रियों में विकार नहीं होते हैं। इस प्रकार के शब्द चारों ओर से सुनाई देने लगे।

तब राम ने कहा– हे लोगों, यह बात सत्य थी, है और रहेगी। पर उस समय क्या हो गया था? जब आप लोग मेरे पास आकर धर्म की मर्यादा का वास्ता देकर उस पर आरोप लगा रहे थे। अब आरोप की शुद्धि शब्दों से नहीं क्रिया से ही संभव है। **संसार शब्द बदलने में देरी नहीं करता।** हमारे पास शुद्धि का क्या आधार है? लोगों के शब्दों पर नहीं, बल्कि सीता की शुद्धि पर ही जिनका मन केन्द्रित था ऐसे राम ने

सेवकों को आज्ञा दी कि– शीघ्र ही **दो पुरुष गहरा, तीन सौ हाथ चौड़ा चौकोर अग्निकुण्ड तैयार करो** उसमें कालागुरु तथा चंदन की सूखी लकड़ियाँ भरकर अग्नि जलाओ।

जिस समय राम की आज्ञानुसार अग्निकुण्ड तैयार कर उसमें अग्नि जलायी जा रही थी उसी समय **सर्वभूषण** मुनिराज जो महेन्द्र उद्यान में ध्यानस्थ थे, विद्युत्वक्त्रा नाम की राक्षसी के द्वारा किये गये उपसर्ग को जीतकर केवलज्ञान को प्राप्त हुये थे। उनका केवलज्ञान कल्याणक उत्सव मनाने के लिये स्वर्ग से इन्द्र आदि देवता अयोध्या की ओर आ रहे थे, क्योंकि महेन्द्र उद्यान अयोध्या के पास ही था। जब इन्द्र आदि स्वर्ग से धरती पर आ रहे थे तब उन्हें लोगों का विशाल समुदाय दिखा। उन देवों में से **मेषकेतु** नाम के देव ने इन्द्र से कहा– हे देवेन्द्र, जरा इस कठिन कार्य को भी देखो। देव भी जिससे डर जाये ऐसा भयानक उपसर्ग इस कोमल शरीर वाली सीता पर क्यों हो रहा है? यह इसे कैसे सहन कर पायेगी? विकराल अग्नि इसे क्षण भर में ही भस्म बना देगी। सुशील, शुद्ध हृदय वाली श्राविका पर उपसर्ग क्यों?

इन्द्र ने कहा– हे देव! यह सब पूर्व दृढ़ कर्मों की लीला है। हम जल्दी में हैं। हमें सर्वभूषण केवली की वंदना के लिये शीघ्र ही जाना है। यहाँ ठहरकर जो उचित हो वह करो।

इन्द्र आदि अन्य देव केवलज्ञान कल्याणक उत्सव के लिये महेन्द्र उद्यान की ओर गये। मेषकेतु देव वहीं ठहर गया।

राम ने आवेश में आकर अग्निकुंड और उसमें विकराल अग्नि देखी, तब वे भीतर ही भीतर काँपने लगे, शरीर पसीने से भीग गया, सिर चकराने लगा, सोचने लगे। कोमलांगी क्षण भर में भस्म होकर अदृश्य हो जायेगी। इसका मुख दर्शन सदा के लिये विलुप्त हो जायेगा। इसका राजकुल में उत्पन्न होना भी कितना नुकसानदायक रहा, यदि यह राजकुल की बजाय सामान्य कुल की महिला होती तो शायद यह दिन इसके नसीब में नहीं होता। इसके बिना तो स्वर्ग में भी सुख नहीं है। यह सरलहृदया निश्चिन्त मन वाली है तभी तो मरने के लिये तुरंत तैयार हो गई। यह अग्नि में प्रवेश के लिये उतावली है इसे कैसे रोकूँ? इसे अपने प्राणों से कोई मोह नहीं है परंतु मुझे तो है। सबके सामने इसे रोकने में लज्जा महसूस हो रही है। उस समय जोर–जोर से बोलने वाला क्षुल्लक सिद्धार्थ इस समय चुपचाप बैठा है। इसे रोकने का मैं क्या बहाना करूँ?

राम के भीतर विचारों की ज्वालाएँ जल रही थीं, अग्निकुण्ड में अग्नि की ज्वालाएँ भड़क उठीं। राम के हृदय के भावों का वर्णन शब्दों में संभव नहीं है। उन्हें काँटों तो खून नहीं था। वे चिंता से अर्द्ध बेहोश जड़ जैसे हो गये। ज्वालाओं के बढ़ने के साथ लोगों की आँखों के आँसुओं की धाराएँ बढ़ गईं। छोटे–बड़े सभी रो रहे थे। उपस्थित महिलाएँ दहाड़े मार कर रोने लगी थीं। सभी सोच रहे थे समझदार होते हुये भी राम यह क्या कर रहे हैं? सीता का क्या होगा? बेचारी अग्नि की मार कैसे सहन करेगी? यह तो क्षण भर में ही झुलस कर भस्म हो जायेगी। उधर धुएँ से आकाश भर गया, सब ओर अन्धेरा छा गया, सबको वह दृश्य प्रलय काल जैसा लगा।

सीता ने अत्यंत दृढ़ मन से उठकर कायोत्सर्ग किया। जिनेन्द्र भगवंतों की स्तुति की। ऋषभादि तीर्थंकरों को नमस्कार किया। शासननायक मुनि सुव्रतनाथ भगवान की स्तुति की। सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार किया। आचार्य, उपाध्याय, साधु परमेष्ठियों के चरण युगलों को नमन किया। सीमंधर आदि विद्यमान तीर्थंकरों की भाव वंदना की। तीन कम नौ करोड़ मुनिराजों का स्मरण किया। तीन लोक के कृत्रिम, अकृत्रिम, चैत्य, चैत्यालयों को नमस्कार किया। सभी सिद्धक्षेत्र, निर्वाण क्षेत्र, अतिशय क्षेत्रों की भाव वंदना की, त्रिकालवर्ती नवदेवताओं को नमस्कार कर विनय भावों से कहा–

कर्मणा मनसा वाचा रामं मुक्त्वा परं नरम्।
समुद्वहामि न स्वप्नेऽप्यन्यं सत्यमिदं मम।।

यद्येतदनृतं वच्मि तदा मामेष पावकः।
भस्मसाद् भावप्राप्तामपि प्रापयतु क्षणात्।।

अर्थ– मैंने राम को छोड़कर किसी अन्य मनुष्य को स्वप्न में भी मन, वचन और काय से धारण नहीं किया है– यह मेरा सत्य है। यदि मैं झूठ कह रही हूँ तो अग्नि दूर से ही मुझे पल भर में भस्म कर दें। परन्तु

अथ पद्मान्नरं नान्यं मनसाऽपि वहान्यहम्।
ततोऽयं ज्वलनो धाक्षीन्मा मां शुद्धिसमन्विताम्।।

अर्थ– यदि मैंने राम के सिवाय किसी अन्य मनुष्य को मन से भी धारण नहीं किया है तो विशुद्धि से सहित मुझे यह अग्नि नहीं जलावे।

इतना कहकर उस देवी ने अग्नि की ओर कदम बढ़ाये। उसने ज्यों ही अग्नि की ओर कदम बढ़ाये त्यों ही सभी के मुँह से एक साथ चीत्कारें निकलीं, सभी पछाड़ मार कर, छाती पीट-पीट कर रोने लगे। रुको, रुको, आगे मत बढ़ो, तुम्हें अग्नि जला देगी, रुको, रुको, आत्मघात मत करो, हमसे यह देखा नहीं जा रहा है, रुको, ठहर जाओ, रुको, रुको कहते-कहते बेहोश हो गये।

सीता ने ज्योंही अग्नि का स्पर्श किया, त्योंही वह अग्नि स्फटिक के समान स्वच्छ, सुखदायी, शीतल जल बन गई। मानो धरती को काटकर निर्मल जल का झरना निकल आया हो। अग्निकुण्ड स्वच्छ, निर्मल जल का कुण्ड बन गया। वह जल से लबालब भर गया। उसमें जल की लहरें किलोलें करने लगीं। अग्नि की सूचना देने वाला कोई चिन्ह नहीं रहा। न ऊपर धुआँ, न नीचे अंगारे, न कोयले, न लकड़ियाँ। आकाश स्वच्छ हो गया। उस कुण्ड में समुद्र के समान गंभीर नाद सुनाई दे रहा था। सीता कमलाकार सिंहासन पर पद्मादि सरोवरों की देवी के समान शोभित हुई। जल पल भर में कमर तक बढ़ गया। फिर सीने तक आया। फिर गले तक आ गया तब विद्याधर तो न जाने क्या होगा? सोचकर आकाश में ऊपर की ओर चले गये। अनेक लोग डरकर भाग गये, कइयों ने मचान का सहारा लिया। वे मचान भी डूबने लगे। कई मनुष्य जल पर तैरने लगे।

हे देवी! हमें बचाओ। हमारे प्राण आपके हाथ में हैं– इस प्रकार सभी लोग करुणा से पुकार रहे थे पर पानी का स्तर तो बढ़ता ही जा रहा था। पानी ने जब राम के चरणयुगल का स्पर्श किया तब वह धीरे–धीरे शांत हुआ, घटता गया। उसकी विकरालता समाप्त हो गई। तब लोगों के जी में जी आ गया।

वापिका दिखने वाला जल कुण्ड सुन्दर जल सरोवर में तब्दील हो गया। उसमें रंग–बिरंगे कमल खिले थे। उनकी महक चारों ओर फैल गई थी।

देवों ने आकाश से सीता के ऊपर फूल बरसाये। दुंदुभि, नगाड़े आदि बाजे बजाये, मंद सुगंधित हवायें चलाईं। जयकारे लगाये। विद्याधर खुशी से नाचने लगे। सब ओर खुशी छा गई। लोग आनंद से झूमने लगे। सभी सीता के नाम की जयकारे लगा रहे थे।

अग्नि से जल बन जाने को देवों का अतिशय (चमत्कार) मान सभी इच्छित वस्तु मिलने की तरह चहकने लगे।

लव, कुश तैरकर माँ के पास गये। पुत्रों के प्रेम से भीगी सीता ने उनका मस्तक चूमा। दोनों भाई माँ के दोनों ओर खड़े हो गये।

सीता का शरीर अग्निपरीक्षा में सफल हो कुन्दन की तरह चमकने लगा। कमलासन पर विराजमान चन्द्र दीप्ति–सी चमकने वाली सीता को देख अनुराग से भरे राम सीता के पास गये। कहने लगे–

हे साध्वी! प्रसन्न होओ। दुःख की विभावरी बीत गई है। सुख का सुप्रभात हुआ है। मेरे अपराध क्षमा करो। मुझ पर प्रसन्नता बरसाओ। तुम दयालु हो। शरद ऋतु के पूर्ण चंद्र की तरह शुद्ध हो। मैं तो मानता ही था। अग्नि ने उसे प्रमाणित कर दिया है। तुम कल्याणवती हो, मनुष्यों, देवों से पूजित हो। आज आठ हजार स्त्रियों में प्रधान हो। पटरानी हो। चलो, अपनी प्रभुता को प्राप्त करो, मुझे आज्ञा दो। मेरा मन अज्ञान और मोह से ढका था, इसलिये मेरे कारण लोकापवाद के भय से मैंने तुम्हें दुःख दिया। अब मेरे साथ इस पृथ्वी पर विचरण करो। पुष्पक विमान पर चढ़कर सुमेरू के जिनालयों, जिनप्रतिमाओं के दर्शन करो। हे देवी! दोषरूपी सागर में डूबा पड़ा हूँ, विवेकरहित हूँ। क्रोध का त्याग करो। इसके बाद राम मौन हो आशातुर निगाहों से सीता की ओर देखने लगे।

सीता ने कहा– हे राजन्! मैं आप पर या किसी अन्य पर किसी भी प्रकार से कुपित नहीं हूँ। विषाद मत कीजिये। **विषाद तो पाप का बंध कराता है।** इस घटना में न आपका दोष है, न किसी अन्य का। यह तो बिना चूके, बिना भूले, सही समय पर सही फल प्रदान करने वाले कर्मों का उदय था जो अब बीत गया।

हे बलदेव, आपके साथ मैंने स्वर्ग–समान भोग भोगे हैं अब उनकी इच्छा नहीं रही। अब तो वह काम करना चाहती हूँ जिससे फिर स्त्री नहीं बनना पड़े क्योंकि मेरे विचार से स्त्री होने के कारण ही इतने सारे दुःख मुझ पर आये हैं। संसार में लाखों योनियों में भटकना न पड़े। **अनादि काल से यह जीव पञ्च परावर्तन**

रूप संसार में घूम रहा है। अनंतानंत बार स्वर्गादिक के भोग भोगे हैं परंतु जीव को संतुष्टि नहीं मिली। क्योंकि भोगों से कभी संतुष्टि नहीं मिलती है। आप सब लोग विषाद छोड़कर धर्म मार्ग ग्रहण करो। हे पुत्रों, सदा धर्म का ध्यान रखो, धर्म भी आपका ध्यान रखेगा, कभी क्षण भर भी धर्म को मत भूलो। मोह, माया, ममता से भरा जीव संसार में भटकता है इसलिये इनका त्याग करो। अब मैं दु:खों का नाश करने की इच्छा से दु:खों का नाश करने वाली जैनौषधि जैनेश्वरी आर्यिका दीक्षा धारण करती हूँ। मुझसे कोई न मोह रखे, न दु:ख करे। मैं आप सबके प्रति निस्पृह भाव धारण करती हूँ। आप सब मेरे प्रति निस्पृह भाव रखें। आप सब मुझे क्षमा करें, मैं भी आप सबको क्षमा करती हूँ। आप सब मुझे सहर्ष अनुमति दीजिये। इतना कहकर सीता ने अशोक वृक्ष की नयी कोंपल के समान कोमल हाथ से केश उखाड़ कर राम को दिये। इन्द्रनील मणि के वर्ण के समान काले चमकदार केशों को देख राम बेहोश हो धरती पर गिर गये। राम को अचेत दशा में छोड़ जब तक वे होश में आये, उससे पूर्व ही **पृथ्वीमति आर्यिका** के पास दीक्षित हो गई।

देवों के प्रभाव से जिसके सब विघ्न दूर हो गये थे, ऐसी सीता शृंगार भोग को तिलाञ्जलि दे श्वेत वस्त्रधारिणी आर्यिका बन गई। व्रतों से जिसका शरीर पवित्र हुआ था, मन महावैराग्य से भरा हुआ था, ऐसी वह साध्वी उद्यान में चली गई।

राम को होश आया तब वे सीता को इधर-उधर देखने लगे। उसे न देख, उनको दिशाएँ शून्य दिखाई देने लगीं। उन्होंने पास खड़े राजाओं से करुणा भरे शब्दों से कहा- **आत्मीयजन की मृत्यु भली पर विरह भला नहीं है।** इस प्रकार से कह अनेक प्रकार से विलाप करने लगे। कुछ समय बाद परिजनों के समझाने पर आश्वस्त होकर महेन्द्र उद्यान में गये। वहाँ सर्वभूषण केवली को नमस्कार कर उनकी भक्ति की। वहाँ केवली के श्रीमुख से संसार का स्वरूप जाना कि **संसार के विषय-भोग तलवार की धार पर लगे शहद के समान है, चक्रवर्ती का सुख विषमिश्रित अन्न के समान है।**

सिद्धों का सुख ही नित्य है, उत्कृष्ट है, बाधा से रहित है, अनुपम है, आत्माश्रय से उत्पन्न स्वाधीन है। जिसकी नींद पूरी हो गई, उसे बिस्तर से, नीरोग मनुष्य को दवाई से, शत्रु से रहित निर्भीक मनुष्य को शस्त्र से क्या प्रयोजन है? **आत्मा संबंधी महासुख से संतुष्ट सिद्धों को भोजनादि से क्या प्रयोजन?** अर्थात् कुछ नहीं वे इनके बिना ही सुखी होते हैं।

साधारण मनुष्यों की अपेक्षा राजा सुखी है, राजाओं की अपेक्षा से चक्रवर्ती सुखी है, चक्रवर्तियों की अपेक्षा से व्यंतर देव सुखी हैं, व्यंतर देवों की अपेक्षा से ज्योतिषी देव सुखी हैं, ज्योतिषी देवों की अपेक्षा से भवनवासी देव सुखी हैं, भवनवासी देवों की अपेक्षा से कल्पवासी देव सुखी होते हैं, कल्पवासी देवों की अपेक्षा से ग्रैवेयक के देव सुखी होते हैं। ग्रैवेयक देवों की अपेक्षा से अनुत्तरवासी देव सुखी हैं, अनुत्तर देवों से सम्यग्दृष्टि जीव, सम्यग्दृष्टि से अणुव्रती जीव, अणुव्रती जीव से महाव्रती, महाव्रती से अनन्तानन्त गुणे ज्यादा सुखी सिद्ध जीव हैं। सिद्धपने के अलावा जीवों को उत्कृष्ट दूसरा सुख नहीं है। उस सुख को

पूर्ण रूप से केवली ही जानते हैं। अन्य लोगों के वचन तो मात्र उपमा रूप होते हैं। उनके सुख का वर्णन शब्दों से संभव नहीं है।

संसारी प्राणी दु:ख को ही सुख मानते हैं। मृत्यु से डरते हैं पर डरने से उससे छुटकारा नहीं मिलता, दुखों से छुटकारा तो सम्यग्दर्शन पूर्वक व्रतों से मिलता है जो व्रत मिथ्यादृष्टि जीव को कष्टकारी लगते हैं।

इदं कृतमिदं कुर्वे करिष्येऽहं सुनिश्चितम्।
मर्ताहि वत्सवद: पापान्मृत्युं यान्तीति चिन्तका:।।

अर्थ– संसारी जीव 'मैं यह कर चुका हूँ, यह करता हूँ, यह आगे करूँगा'– इस प्रकार विचार करता है परंतु मैं एक दिन मरूँगा– इस बात का विचार नहीं करता। परंतु–

न प्रतीक्षते मृत्युरसुभाजां कृताकृतम्।
समाक्रामत्यकाण्डेऽसौ मृगकं केसरी यथा।।

अर्थ– मृत्यु इस बात की प्रतीक्षा नहीं करती कि कौन प्राणी काम कर चुके हैं और कौन काम नहीं कर पाये? वह तो जिस प्रकार सिंह हिरण पर आक्रमण करता है उसी प्रकार असमय में भी आक्रमण कर बैठती है।

इस तरह का उपदेश सुन संसार भय से कातर राम ने हाथ मस्तक से लगाकर पूछा– हे भगवन्! क्या मैं भव्य हूँ? हूँ तो किस उपाय से मुक्त होऊँगा? मैं समस्त पृथ्वी के राग को छोड़ने के लिये समर्थ हूँ पर लक्ष्मण के प्रति राग को छोड़ने में समर्थ नहीं हूँ। हे मुनीन्द्र! समाधान कर मेरी रक्षा करो।

केवली की वाणी में आया– राम दु:खी मत होवो, तुम भव्य हो, दीक्षा लेकर इसी भव से मोक्ष जाओगे। कर्मोदय, पूर्व–संस्कार, नियोग आदि के कारण लक्ष्मण का राग नहीं छोड़ पा रहे हो पर देवों के उपदेश से वह भी नष्ट हो जायेगा।

राम को चरम शरीरी जानकर देवादि सभी ने उनकी प्रशंसा की। इसके बाद राम ने सकलभूषण केवली से अपने पूर्वभव जाने।

भवभ्रमण के दु:खों को सुनकर कृतान्तवक्र सेनापति ने राम से मुनि दीक्षा के लिये अनुमति माँगी। राम ने कहा – इस वृद्ध शरीर के द्वारा कठोर तपश्चरण कैसे कर पाओगे?

सेनापति बोले – जो आपका स्नेह रसायन छोड़ने के लिये समर्थ है, उसे अन्य क्या असहनीय है? जब तक मृत्युरूपी वज्र के द्वारा शरीर रूपी स्तम्भ नहीं गिरा दिया जाता है तब तक मैं दु:ख से अँधे इस संसाररूपी संकट से बाहर निकल जाना चाहता हूँ। **जैसे आग से जलते घर से चतुर पुरुष तुरंत निकल जाता है, उसी प्रकार दु:खों से जलते संसार से भव्य पुरुष तुरंत दीक्षा लेते हैं।** आज नहीं तो कल आपका वियोग होगा ही, उस समय बिना वैराग्य के उसे कैसे सह पाऊँगा? आपका वियोग बहुत दु:खदायी है पर ऐसा दु:ख पुन: प्राप्त न हो इसलिये दीक्षा चाहता हूँ।

तब राम ने कहा– हे सेनापति! आप धन्य हो, जो ऐसा विचार कर रहे हो। पर मेरा एक निवेदन है आप से– यदि मैं मोह में फँसकर दीक्षा नहीं ले पाऊँ तो मुझे संबोधित करना। हे भद्र, यदि मेरा एक भी उपकार मानते हो तो यह बात भूलना नहीं प्रतिज्ञा करो।

सेनापति ने कहा– जैसा आप कह रहे हैं वैसा ही होगा इतना कह अनुमति ले जिनदीक्षा ली।

राम, केवली भगवान की वंदना कर क्रमश: गणधर, आचार्य, उपाध्याय, साधुओं की स्तुति, भक्ति कर विनीत भाव से सीता के पास गये।

सीता आर्यिकाओं के मध्य में विराजमान थी। धीर, प्रशांत, वैराग्य रस टपकाने वाली सीता की साध्वी आकृति देख राम को परम शांति का अनुभव हुआ। पास जाकर भक्ति, स्नेह और विजय के साथ उन्हें नमस्कार किया।

राम के साथ लक्ष्मण ने भी सीता को नमस्कार किया। राम ने कहा– हे साध्वी! आप सफेद वस्त्र में नहीं, अपितु इस समय मोह, ममता तोड़ सुख के सागर में हो। जिनवचनों के सार रूप अमृत का पान कर रही हो। हम जिनवचन रूप रसायन के बारे में केवल सुनते रहे, उसे हमसे पहले पीने का मान आपने पाया है। आप सती हो, शीघ्र ही सिद्ध पद प्राप्त करोगी।

लक्ष्मण बोले– हे देवी! संसार में फँसे मानव से पद–पद पर गलतियाँ होती हैं हमसे हुई गलतियों के लिये क्षमा कीजिये।

लव, कुश ने आर्यिका माँ को नमस्कार किया। इसके बाद वे सब अयोध्या आ गये।

अयोध्या में सबकी जिह्वा पर एकमात्र सीता की ही चर्चा थी। लोग उठते–बैठते, सोते–जागते उसकी ही चर्चा कर अपनी जिह्वा व वाणी को पवित्र करते थे। धन्य है वह, जिसने दु:खों को मिटाने वाली औषधि के समान आर्यिका दीक्षा धारण कर ली। करती भी क्या? जब सारा संसार ही विरोधी हो गया था तब उसे धर्म ही शरण हो गया। **संसार में सभी विरोधी बन सकते हैं पर धर्म कभी विरोधी नहीं होता बल्कि सभी विरोधों को मिटाता है।**

प्रजाजन इस तरह से सीता की चर्चा करते–करते कभी नहीं थकते थे। सीता के चरित्र को पापहारी जान एक दूसरे को सुनाते थे, सुनाकर पुण्यार्जन करते थे।

शील की तरह सीता का तपश्चरण भी संसार में प्रसिद्धि पा चुका था। सुंदरता में अप्सराओं को जीतने वाली सीता का शरीर सूखकर काँटा हो गया। प्रशम, संवेग, आस्तिक्य, अनुकम्पा आदि गुणों को धारण करने वाली महातपस्विनी सीता कभी चार, कभी आठ, कभी एक पक्ष का उपवास करती थी। ऋतुकाल के बाद शास्त्रोक्त विधि से पारणा आदि करती थी। शीलव्रत, मूलगुण, उत्तरगुणों के पालन में सदैव सावधान रहती थी। अत्यंत शांत थी। उसने अपने आपको अपने मन के अधीन कर रखा था। अन्य मनुष्यों के लिये दु:सह ऐसा अत्यन्त कठिन तप करती थी। उसका समस्त शरीर माँस रहित हो गया था। वह

लकड़ी से बनी प्रतिमा की तरह दिखती थी। युगप्रमाण पृथ्वी पर अपनी सौम्यदृष्टि रखकर चलती थी। तप के आधारभूत शरीर की रक्षा के लिये विधिपूर्वक भिक्षा ग्रहण करती थी।

उसने ऐसा उग्र कठोर तप **बासठ वर्ष** तक किया। अंत में जब शरीर व्रतरूपी भार झेलने में असमर्थ हो गया तब उसने विधिपूर्वक सल्लेखना ग्रहण की। उसके सल्लेखना की अनुमोदना करने व दर्शन हेतु दूर-दूर से लोग आते थे। अब तो उसका शरीर अस्थि पंजर हो गया था। अंतर में आत्मध्यान एवं पंचपरमेष्ठी के स्मरण पूर्वक सल्लेखना ग्रहण के **तैतीसवें दिन** उसने शांत परिणामों के साथ देह छोड़ दी थी। देह के साथ-साथ उसने स्त्री पर्याय भी छोड़ दी। वह आरण-अच्युत युगल में अर्थात् **सोलहवें स्वर्ग में प्रतीन्द्र पद को प्राप्त हुई।**

महात्म्यं पश्यतेदृंश धर्मस्य जिनशासने।
जन्तुः स्त्रीत्वं यदुज्झित्वा पुमान् जातः सुरप्रभुः।।

अर्थ- अहो, जिनशासन में धर्म का ऐसा महात्म्य देखो कि यह जीव स्त्री पर्याय को छोड़ देवों का स्वामी पुरुष हो गया।

आरण-अच्युत स्वर्ग में वह सीतेन्द्र तारागणों के परिवार से सुशोभित चंद्र की तरह लाखों देवियों के नेत्रों का केन्द्रबिन्दु बन गया। स्वर्गों का कोई भी देव उसके गुण, वैभव ऋद्धि की बराबरी का नहीं था। वह देव धार्मिक चर्चा में, अकृत्रिम जिनालयों की वंदना में, पञ्चकल्याणक उत्सवों में अपना समय व्यतीत करता है।

लव, कुश ने **अमृतसर** नाम के मुनि के पास दीक्षा ली। तपश्चरण कर **पावागढ़** से मोक्ष गये। जटायु का जीव व कृतान्तवक्र सेनापति का जीव जो देव बने थे उनके उपदेश से **सुव्रत नाम के मुनि के पास राम ने भी दीक्षा ली। राम के साथ सोलह हजार मनुष्यों ने दीक्षा ली तथा सत्ताइस हजार स्त्रियों ने श्रीमती नाम की आर्यिका के पास दीक्षा ली।** राम कठोर से कठोर तप करते थे।

एक दिन सीता का जीव, जो अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र था अवधिज्ञान के द्वारा राम मुनि को देखा। उसे पूर्वजन्मों की सभी घटनाएँ याद आयीं। उसे राम मुनि के प्रति राग उत्पन्न हुआ। उसने सोचा कई जन्मों में हम साथ रहे, यह मेरा मित्र मेरे साथ स्वर्ग में ही उत्पन्न हों और मेरे साथ ही मोक्ष जाये। मैं ऐसा कार्य करूँ जिससे राम मुनि का ध्यान टूट जाये। मैं इनका ध्यान तोड़ने के लिये कुछ करूँ- यह सोच वह देव धरती पर उस जंगल में आया, जहाँ राममुनि ध्यानस्थ थे।

वहाँ आकर उस सीतेन्द्र स्वयंप्रभ देव ने सीता का भेष बनाया। सीता के भेष में उसने राम मुनि से कहा- हे नाथ! वियोग से पीड़ित मैं स्नेह व आश्रय की आशा से आपके पास आई हूँ मुझे शरण दीजिये। नष्ट होने से बचाइये। उस समय आप को छोड़ बिना सोचे दीक्षित हो गई थी अब समझ आने पर आपके पास आई हूँ, आप शरणागत के पालक कहलाते हो मुझे शरण देकर तारिये। इस प्रकार अनेक प्रकार से

निवेदन किया। अनेक हावभाव किये। परंतु राम मुनि उसके शब्द, हावभाव या क्रिया से विचलित नहीं हुये। ध्यान में दृढ़ रहे। उन्हें उसी समय **माघ शुक्ला द्वादशी के दिन रात्रि के अंतिम पहर में केवलज्ञान प्रकट हुआ।** तब इन्द्रादि ने आकर उनका केवलज्ञान उत्सव मनाया। स्वयंप्रभ नाम के सीतेन्द्र ने अपने कृत्य के लिये उनसे क्षमा याचना कर उनका केवलज्ञान उत्सव मनाया और अन्य देवों के साथ स्वर्ग गया।

कुछ समय बाद वह स्वयंप्रभ नामक सीतेन्द्र ने राम केवली के पास आकर लक्ष्मण, जनक आदि के बारे में पूछा, तब पद्मनाभ (राम) केवली ने इस प्रकार बताया–

लक्ष्मण सौ वर्ष कुमार काल में, तीन सौ वर्ष मण्डलेश्वर अवस्था में, चालीस वर्ष दिग्विजय में, ग्यारह हजार पाँच सौ साठ वर्ष साम्राज्य में बिताकर भोगों से संतुष्ट न होकर अंत में मरण कर नरक गये हैं। लवण, अंकुश **पावागढ़** से मोक्ष गये हैं। राजा दशरथ **आनत स्वर्ग** में देव हुये हैं। सुमित्रा, कैकेयी, कौशल्या, सुप्रभा, जनक, कनक ये सभी सम्यग्दृष्टि **आनत स्वर्ग** में ही देव बने हैं।

भामण्डल ने वन में नगर बसाकर अशोक, तिलक, वज्रांक आदि मुनिराजों को आहार दिया था। एक दिन वह मालिनी नामक स्त्री के पास सो रहा था, तब वज्र गिरने से उसकी मृत्यु हुई। मुनियों को आहारदान करने के प्रभाव से वह मेरु पर्वत के दक्षिण में विद्यमान **देवकुरु में तीन पल्य की आयु वाला श्रेष्ठ आर्य** बना है। उस सीतेन्द्र ने पद्मनाभ (राम) केवली से फिर पूछा कि रावण व लक्ष्मण नरक से निकलने पर कहाँ जन्म लेंगे?

तब पद्मनाभ केवली ने बताया– रावण व लक्ष्मण नरक से निकलकर मेरु पर्वत से पूर्व की ओर विजयावती नामक नगरी में सुनन्द नाम के सम्यग्दृष्टि गृहस्थ के रोहिणी नामक स्त्री से क्रमश: **अर्हद्दास व ऋषिदास** नाम के पुत्र होंगे। वे अणुव्रत धारण कर जीवन यापन करेंगे, मरकर स्वर्ग जायेंगे, स्वर्ग से आकर उसी महाकुल में जन्म लेंगे। उत्तम दानादि देंगे। दान के प्रभाव से हरिक्षेत्र में जन्म लेंगे। वहाँ से स्वर्ग जायेंगे। स्वर्ग से आकर उसी विजयावती नगरी में **राजा कुमारकीर्ति व माता लक्ष्मी** के क्रमश: **जयकान्त व जयप्रभ** नाम के पुत्र होंगे। दीक्षा लेकर तप के प्रभाव से लान्तव स्वर्ग जायेंगे।

हे सीतेन्द्र अच्युत स्वर्ग से निकलकर तुम इस भरत क्षेत्र के रत्नस्थलपुर नामक नगर में चक्ररथ नाम के चक्रवर्ती होवोगे तब वे **रावण, लक्ष्मण** के जीव लान्तव स्वर्ग से आकर तुम्हारे क्रमश: **इन्द्ररथ व मेघरथ** नाम के पुत्र होंगे।

रावण का जीव तुम्हारा इन्द्ररथ नाम का पुत्र होगा वह धर्मपरायण होकर अनेक उत्तम भव पाकर मनुष्य होकर तीर्थंकर नामक प्रकृति का बंध करेगा। बाद में वह अर्हन्त पद प्राप्त करेगा।

तुम्हारा जीव चक्ररथ नाम का चक्रवर्ती बनेगा दीक्षा लेकर कठोर तप करके देह त्याग कर वैजयन्त स्वर्ग में अहमिन्द्र पद प्राप्त करेगा।

रावण का जीव तीर्थंकर बनेगा उस समय आप वैजयन्त स्वर्ग से आकर उस तीर्थंकर के पहले गणधर बनकर मोक्ष जाओगे।

लक्ष्मण का जीव जो तुम्हारा मेघरथ नाम का पुत्र बनेगा, उसके बाद वह धर्मपूर्ण आचरण करता हुआ अनेक श्रेष्ठ भव धारण करके मनुष्य बनकर तीर्थंकर प्रकृति का बंध करके पुष्कर द्वीप के विदेह क्षेत्र के शतपत्र नाम के नगर में तीर्थंकर बन मोक्ष प्राप्त करेगा। मैं भी सात वर्ष पूर्ण होते ही मोक्ष पद को प्राप्त करूँगा।

सीतेन्द्र स्वयंप्रभ देव ने पद्मनाभ (राम) केवली की अनेक प्रकार से स्तुति, भक्ति, वंदना की। जाते समय पूर्व स्नेह के कारण देवकुरु क्षेत्र में भामण्डल के जीव से मिलकर उससे बातचीत कर अच्युत स्वर्ग चला गया।

*****

सती विशल्या

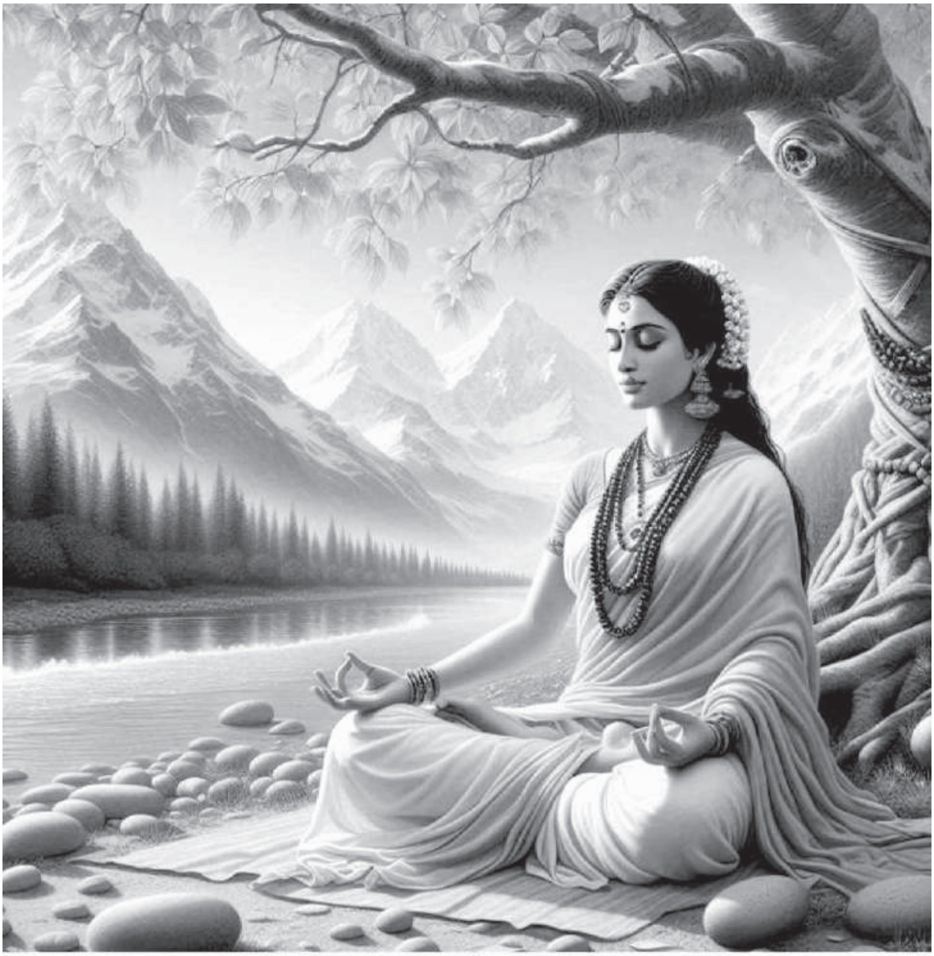

2

सती विशल्या

श्रीराम और रावण के बीच कई दिनों से घनघोर युद्ध हो रहा था। एक दिन रावण के सामने विभीषण आया। दोनों आमने-सामने हो गये। तब रावण ने कहा-तू छोटा भाई है, अत: तुझे मारना योग्य नहीं है। तू सामने से हट जा। सामने खड़ा मत रह। मैं तुझे देखने के लिये भी समर्थ नहीं हूँ। तुझे मारने से मेरा यश नष्ट हो जायेगा। तूने कुलद्रोह किया है।

इस पर विभीषण ने कहा- तुम्हारा छोटा भाई होने से मुझे शर्म आ रही है। जिसके बड़े भाई ने किसी अन्य की विवाहिता स्त्री छल से चुराई हो वह भी वन में रहने वाले की तो छोटे भाई का शर्मिंदा होना स्वाभाविक है। ऐसा निन्दनीय कार्य करने वाले आपको देखने के लिये मैं ही असमर्थ हूँ। यह कार्य करने से आपका यश पहले से भी नष्ट हो चुका है। वास्तव में आप ही कुलद्रोही हैं क्योंकि आपने कुल को सदा के लिये कलंकित किया है। इन कारणों से हम दोनों भाई-भाई होते हुये भी इस समय शत्रु है।

अब भी अपने कुल का कलंक धुल सकता है यदि आप ससम्मान श्रीराम को इसे लौटा दो। युद्ध भी बंद हो जायेगा, हिंसा भी नहीं होगी, कुल का दाग धुल जायेगा, भाइयों के बीच की दूरी मिट जायेगी। दु:खी रामादि सुखी हो जायेंगे। दु:खियों के दु:खों को मिटाना जो राजधर्म है, उसका पालन होगा- इस प्रकार सीता को लौटाने में लाभ ही लाभ है।

विभीषण की उपदेशी बात से रावण को बहुत गुस्सा आया उसने उसे मारने के लिये शक्ति फेंकी, लक्ष्मण पास ही खड़े थे उन्होंने वह शक्ति अपने सीने पर झेली जिससे वे बेहोश होकर धरती पर गिरे। शक्ति से घायल लक्ष्मण शीघ्र मरेगा, मैंने दो में से एक शत्रु को मार दिया है- यह सोच रावण खुशी से लौट गया।

घायल एवं बेहोश लक्ष्मण को लाया गया। सभी के चेहरे पे उदासी, मन में दु:ख, हृदय में आशंका थी कि लक्ष्मण का क्या होगा? क्योंकि सूर्योदय से पूर्व लक्ष्मण को लगी दिव्य शक्ति को हटाया नहीं गया तो लक्ष्मण जीवित नहीं रह पायेंगे। इसलिये सूर्योदय से पूर्व शक्ति को लक्ष्मण के शरीर से हटाना जरूरी है। और कोई उपाय सूझ नहीं रहा। उस शक्ति को दूर करने का उपाय कोई भी नहीं जानता था। लक्ष्मण को छू भी नहीं सकते थे, क्योंकि छूने वाला भी मर सकता है।

क्या करें? क्या नहीं करें- इसी विचार में सभी डूबे थे। तभी एक अपरिचित व्यक्ति ने जिसमें लक्ष्मण-राम आदि विशेष व्यक्ति थे, उस तंबू में प्रवेश करना चाहा था, उस डेरे के दरवाजे पर पहरा दे

रहे भामण्डल ने रोका और पूछा– तुम कौन हो? किसके आदमी हो? कहाँ से आये हो? यहाँ भीतर क्यों जाना चाहते हो?

इन प्रश्नों के उत्तर में उस आदमी ने कहा–

मेरे पिता का नाम चन्द्रमण्डल है, माँ का नाम सुप्रभा है, मेरा नाम चंद्रप्रतिम है। देवगीतपुर का रहने वाला हूँ। राम की महिमा सुनकर उनके दर्शन के लिये आया हूँ। यहाँ आये हुये मुझे एक महीना बीत गया है, परंतु राम के दर्शन का अवसर नहीं मिला। आज सही व आवश्यक समय जानकर धृष्टता करते हुये भी राम के पास जाना चाहता हूँ। आप मुझे भीतर जाने दीजिये नहीं तो अनर्थ हो जायेगा? लक्ष्मण को जीवित देखना चाहते हो तो भीतर जाने की आज्ञा दीजिये।

भामण्डल द्वार पर किसी अन्य व्यक्ति को बिठाकर स्वयं उसे राम के पास ले गया।

चन्द्रप्रतिम ने राम को नमस्कार कर कहा– हे राम! एक बार मैं आकाश में विचरण कर रहा था तभी वहीं पास से मेरा शत्रु राजा निकला। उस राजा से पहले कभी एक सुंदरी के कारण से मेरी शत्रुता हुई थी। जब उसने मुझे देखा तो देखते ही गुस्से में उसने मुझ पर शस्त्रों से वार कर दिये मैंने भी अपने बचाव में शस्त्र चलाये।

हम दोनों में घनघोर भयंकर युद्ध हुआ। युद्ध बहुत देर तक चला। उसने गुस्से में मुझ पर चण्डरवा नामक शक्ति फेंकी। उस शक्ति से मैं घायल होकर बेहोशी की हालत में अयोध्या के पास स्थित महेन्द्र उद्यान में गिरा। मेरे पुण्योदय से ही जहाँ मैं गिरा, उसके पास ही भरत घूम रहे थे। उन्होंने मुझे धरती पर गिरते हुये देखा। वे मेरे पास आये अपने महल से दिव्य सुगंधित जल लाकर मुझ पर छिड़का। उससे मेरे शरीर से शक्ति निकल गई। शक्ति के निकलने के बाद ऐसा लगा मानो कुछ हुआ ही नहीं हो।

स्वस्थ होने के बाद मैंने भरत से पूछा– हे देव! आपने मुझ पर बड़ा उपकार किया है। मुझे नया जीवन दिया है। आप कौन हैं? यह दवाई क्या है? आपको इस दवाई के बारे में कैसे पता है?

तब भरत ने इस प्रकार बताया–

मैं दशरथ राजा का पुत्र इस राज्य का स्वामी भरत हूँ। एक बार हमारा देश महारोगों से पीड़ित हो गया था। राज्य के सभी लोग उरोघात, महादाहज्वर, लालापरिस्राव, सर्वशूल, अरुचि, छर्दि, श्वयथु, स्फोटक आदि रोगों से घिर गये थे। एक भी व्यक्ति रोग की चपेट से नहीं बचा था। केवल हमारे अधीनस्थ द्रोणमेघ नाम के राजा, उनके मंत्रीगण, बन्धु, पशु आदि सहित पूरे देशवासी नीरोग बचे थे। वे हमारे मामा थे, जब मुझे इस बात का पता चला, तब मैंने उन्हें बुलाकर पूछा–

हे मामा! आप लोग कैसे नीरोग बचे हो? हमें भी नीरोग कर दीजिये तब उन्होंने दिव्य सुगन्धित जल लाकर मुझ पर, परिवार पर, देशवासियों पर छिड़का। जिससे हम सब रोग–रहित हो गये। वही जल लाकर मैंने घर पर रखा है उसमें से कुछ आप पर छिड़क दिया जिससे आपकी चण्डरवा शक्ति निकल गई। आप नीरोग हो गये हो।

मैंने अपने मामा से उस जल के बारे में बार-बार पूछा तब उन्होंने उसके बारे में इस प्रकार बताया था-

हे भानजे, भरत! आप आग्रह कर रहे हो तो सुनिये-

मेरी सर्वगुणों से सम्पन्न, दयावती, धार्मिक स्वभाव वाली, ज्ञान-विज्ञान कलाओं में निपुण, विद्याओं से सम्पन्न **विशल्या** नाम की श्रेष्ठ पुत्री है। उसके गर्भ में आने से पूर्व हमारी पटरानी कई रोगों से पीड़ित रहती थी। उसके गर्भ में आते ही हमारी पटरानी के सभी रोग बिना उपाय के आश्चर्य की तरह नष्ट हो गये। हम सब आश्चर्य में पड़ गये यह अचानक कैसे हुआ? उसी दिन से पटरानी दया, दान, पूजा में विशेष रुचि लेकर समय बिताने लगी हम सबने भी उसकी इच्छाओं का पूरा ध्यान रखा।

शुभ मुहूर्त में पटरानी ने एक सर्वाङ्गिण सुन्दर कन्या को जन्म दिया। वह मनोहारिणी हम सब की प्रिय है। धीरे-धीरे उसने अपने गुणों से हम सब को अपनी ओर आकर्षित किया। उसकी चेष्टाएँ हमारे लिये आनन्ददायी थीं, अब भी है। **जन्म से ही उसके शरीर से सुगन्ध निकलती है इसलिये हम उसे सुगन्धा भी कहते हैं।**

वह सदा धर्मकार्य में ही अपने आपको व्यस्त रखती है। धर्मात्माओं की सेवा-पूजा करती है। वह सदा दया, दान, ध्यान, भक्ति में लीन रहती है। हम सबके लिये पूज्य है, आदरणीय है, सम्माननीय है।

उसके स्नान के जल से उसके शरीर को छूकर आने वाली हवा से और उसके हाथ से चंदनादि को लेप करने से बड़े-बड़े रोग दूर होते हैं। वह जब गर्भ में आई तभी से हमें अंदाजा था कि वह महापुण्यशालिनी है, उसके जन्म के बाद उसकी हवा से, स्नान के जल से या उसके द्वारा छुये हुये लेप से रोग ठीक होते हैं। इस तरह के अतिशय वाले पुण्य के उदय का हमें आभास भी हो गया।

मामा द्रोण के द्वारा ऐसा बताये जाने पर हम लोगों ने विशल्या के पास जाकर उसका बहुत सम्मान किया। जब हम उसका सम्मान करके अयोध्या की ओर लौट रहे थ, तब रास्ते में पुण्ययोग से हमें **सत्वहित नाम के आचार्य** के दर्शन हुये। मैंने विशल्या के बारे में नम्रता के साथ उनसे पूछा कि विशल्या कौन थी? उसके शरीर से दिव्य सुगंध किस कारण से आती है?

उन चार ज्ञान के धारी **सत्वहित नाम के आचार्य ने विशल्या के दिव्य चरित्र के बारे में जो बताया, वह इस प्रकार है-**

विदेह क्षेत्र में पुण्डरीक नाम का देश है। **उस देश के चक्रधर नाम के नगर में त्रिभुवनानन्द नाम का चक्रवर्ती रहता था। उसके बाइस हजार पुत्र थे तथा अनंगसरा नाम की एक कन्या थी जो अपूर्व सुंदरी थी, गुणों से अलंकृत थी।**

त्रिभुवनानन्द चक्रवर्ती का एक पुनर्वसु नाम का सामन्त था वह प्रतिष्ठापुर नगर का स्वामी था। एक बार वह किसी काम से जा रहा था, तब उसे बगीचे में खेलती हुई अनंगसरा दिखाई दी। उसे देखते ही वह कामवासना से घायल हो गया। उसने तुरंत उस खेलती हुई अनंगसरा का अपहरण किया। ज्योंही उसने

उसका अपहरण किया त्योंही वह उसके अभिप्राय को समझ गई। उसने जोर-जोर से रोना, पिताजी, भाइयों को सहायता के लिये पुकारना शुरू कर दिया। वह रोते हुये कहने लगी-

हे पिताजी! मुझे बचाइये। यह दुष्ट मुझे जबरदस्ती पकड़कर ले जा रहा है। हे भाइयों, मुझे इस पिशाच के चंगुल से छुड़ाइये। यह नराधम, नीच, पापी पंजे में निरीह प्राणी को पकड़े हुये बाज की तरह ले जा रहा है, रक्षा करो, रक्षा करो।

उसकी आवाज सुनकर वहाँ के सैनिक उसके पीछे दौड़े। तुरंत ही सैनिकों और चक्रवर्ती ने पुत्रों के साथ उसका पीछा किया।

पीछा करते हुये सैनिकों, चक्रवर्ती व चक्रवर्ती पुत्रों को देखकर वह डर गया, अनंगसरा को **श्वापद** नाम के घने महावन में छोड़ कर अपने प्राण बचाने के लिये विमान पर चढ़कर तेज गति से भाग लिया। विमान तेज गति वाला होने से पुनर्वसु पकड़ में नहीं आया। न ही उस पर किसी ने विशेष जोर दिया। सबको अनंगसरा की चिंता थी। सबने उस महावन में उसे बहुत खोजा परंतु वह किसी को भी नहीं दिखी। उसे कोई जंगली जानवर खा गया होगा, यह सोचकर सब दुःखी मन से लौट आये। **देखो, पाप का उदय- पाप के कारण से जंगल में होते हुये भी वह दिखाई नहीं दी। पाप के उदय में सामने रखी वस्तु दिखाई नहीं देती, पुण्य के उदय से अदृश्य वस्तु प्रकट हो जाती है।**

श्वापद नाम का महावन बहुत बड़ा, बहुत घना था, दिन में भी वहाँ अँधेरा रहता था, रात की तो बात ही क्या करें? उसमें बड़े-बड़े पर्वत, बड़ी-बड़ी गुफाएँ असंख्य क्रूर जानवर थे। महावन की जमीन ऊबड़-खाबड़ थी। सैकड़ों गहरे तालाबों वाला वह महावन विचार करते ही भय उत्पन्न करने वाला था वहाँ रहने की कोई सोच भी नहीं सकता था इसलिये वहाँ कोई मनुष्य दिखाई नहीं देता था। उसमें कोई उत्सर्गमार्गी मुनिराज के ही कभी कभार दर्शन हो सकते थे।

उस महाभयानक महावन में अपने-आप को देख कर अनंगसरा सोचने लगी कि कहीं मैं नरक में तो नहीं जन्मी? या कोई बहुत बड़ा स्वप्न है? वह तय नहीं कर पा रही थी, वह कहाँ है? वह जंगल की भयानकता देखकर सिहर उठी।

क्या मैं वही चक्रवर्ती की बेटी हूँ या कोई और हूँ? यह भयानक स्थान कहाँ है? क्या है? मेरे पाप का उदय कब समाप्त होगा। मैं इस संकट से कैसे उबरूँगी? इस प्रकार और भी अनेक दुःखद शब्दों का उच्चारण करती हुई वह बहुत समय तक रोई। उसका विलाप इतना करुण था कि क्रूर पशुओं का मन भी पिघला था।

वह उस महावन में भूख-प्यास से पीड़ित रहती थी, उसका प्रतिदिन रो-रोकर गुजरता था। वह शोक सागर में डूबी रहती थी। जंगल के फल और पत्तों का भोजन करती थी। वह प्रात: उठते ही पंचपरमेष्ठी को याद करती, उनकी भक्ति करती थी। उसका शरीर कांतिहीन, कमजोर हो गया था। शरीर पर वही

कपड़े थे, जो घर पहने थे। वे कपड़े गंदे हो गये थे। शीतकाल को शरीर सिकोड़ कर बिताती, ग्रीष्मकाल को पेड़ों की छाया में और वर्षाकाल में पेड़ या गुफा का आश्रय लेकर बिताती थी। उसने पापकर्म का फल कई दिनों तक भोगा।

उसका शरीर पानी से भीगे चित्र के समान फीका हो गया था। पिता और भाई को याद कर करके रोने से उसकी आँखें सूज गई थीं। बाहर निकलने के लिये रोज दूर तक प्रयत्न करती थी पर अन्त में भटक कर उसी जगह पर ठहर जाती थी। उसका शरीर लावण्य से रहित, दुबला हो गया था। वह इतनी दुबली-पतली हो गई थी कि उसके अपने भी उसे बड़ी मुश्किल से पहिचान पायें। वह इतनी धार्मिक हो गई थी कि हर कदम धरती देख कर रखती थी, पककर अपने आप धरती पर गिरे हुये फल खाती थी। वह बाला जब तब कभी केवल पानी से ही पारणा करती थी, वह पानी भी एक बार ही लेती थी जिससे वह बहुत ही कृश हो गयी थी।

जो अनंगसरा अपने बालों से गिर पड़े फूल चुभने से भी परेशान हो जाती थी आज वह पथरीली धरती पर सोती थी। संगीत के मधुर स्वरों से जगने वाली वह आज गीदड़ों की कर्कश ध्वनि से जागती थी। उसके शरीर के कपड़े चिथड़ों में तब्दील हो गये थे। जैसे-तैसे शरीर को ढके हुये थी।

अनंगसरा के दु:खों का वर्णन शब्दों से संभव नहीं है। उन दु:खों को भोगने वाली वही जानती थी या सर्वज्ञ परमात्मा ही जानते थे।

इन महादु:खों को भोगते-भोगते उसने **तीन हजार वर्ष** तक बाह्य तप किये।

जब वह जीवन की ओर से सब प्रकार से निराशता को प्राप्त हो गई। जब जीवन की डोर के टूटने की उसे आशंका हो गई थी, तब उसने चार प्रकार के आहार को त्याग कर सल्लेखना ग्रहण की। जब वह छोटी थी तब विद्वानों के साथ चर्चा करते हुये पिताजी के मुख से उसने सल्लेखना के विषय में सुना था, उसी के आधार पर उसने शास्त्रोक्त विधान से सल्लेखना ग्रहण की थी। उसने यह भी नियम ग्रहण किया था कि ''मैं सौ हाथ से आगे की भूमि पर कदम नहीं रखूँगी, उससे आगे नहीं जाऊँगी।''

उसे सल्लेखना व्रत के लिये छह दिन बीत गये, तब सातवें दिन चक्रधर नगर का रहने वाला एक **लब्धिदास** नाम का व्यापारी मेरु की वंदना कर उसी जंगल के रास्ते से लौट रहा था। उस **लब्धिदास** व्यापारी ने उसे आँख बंद किये हुये ध्यान-मग्न देखा। उसने उसके दर्शन किये। उसने उसे उसका परिचय पूछा। उस धर्मानुरागी हृदया ने अपना सारा परिचय बता दिया।

व्यापारी ने उसे कहा- बेटी, मैं आपके पिता को अच्छी तरह जानता हूँ। मैं भी चक्रपुर का निवासी एक व्यापारी हूँ, धर्मभावना वाला हूँ। सुमेरु पर्वत पर विद्यमान अकृत्रिम चैत्य-चैत्यालयों के दर्शन के लिये गया था वहीं से लौटकर चक्रपुर ही जा रहा हूँ। आप मेरी बेटी के समान हो, आप मुझ पर विश्वास कर मेरे साथ चलो, मैं सकुशल आपके पिता के पास शीघ्र ही पहुँचा दूँगा।

तब उसने कहा– हे धर्म-पिता, शायद अब मेरे नसीब में पिता के दर्शन नहीं है। लब्धिदास सेठ ने कहा– बेटी, ऐसा क्यों कह रही हो? अभी पहुँचाता हूँ।

अनंगसरा बोली– हे धर्म पिताजी! मैंने सल्लेखना व्रत लिया है और सौ गज से आगे नहीं जाने का भी नियम लिया है। **ये नियम व्रत ही जीव का उद्धार करते हैं। एक नियम भी जीव को दुर्गति से तारता है। ये नियम–व्रत ही अनादि के दु:खों का अंत करने वाले हैं। पिताजी के समागम से दु:ख नष्ट नहीं होंगे। संसारी जीव के जीवन में पुण्य–पाप विचित्रताएँ उत्पन्न करते हैं।** मुझे ही देखिये दु:खों के तीन हजार वर्ष बीत जाने पर पुण्योदय से आप जैसे धर्मात्मा महापुरुष के दर्शन हुये हैं।

सेठ– बेटी, निराश मत हो, मैं अभी शीघ्रता से जाता हूँ और आपके पिताजी को यह सुखद समाचार सुनाता हूँ।

अनंगसरा– आप को जैसा उचित लगे, वैसा कीजिये। हमें संसार से विरक्ति और पंचपरमेष्ठी में भक्ति उत्पन्न हुई है।

लब्धिदास बिना देरी किये चक्रपुर में त्रिभुवनानंद चक्रवर्ती के पास आया। सारे समाचार चक्रवर्ती को सुनाये। चक्रवर्ती भी उसी हालत में तुरंत लब्धिदास को साथ ले उस जगह आया जहाँ अनंगसरा थी। उसके पीछे-पीछे उसके **बाइस हजार पुत्र,** मंत्री और प्रजाजन भी आये थे।

जब तक चक्रवर्ती आदि अनंगसरा के पास पहुँचे तब तक एक अजगर ने उसे निगलना शुरू कर दिया था। अजगर को काटने के लिये चक्रवर्ती ने तलवार निकाली। वे ज्यों ही अजगर पर वार करने वाले थे, त्योंही अनंगसरा ने कहा–

हे दयालु पिताजी! पुत्री के मोह में पड़ कर इस निरपराध जीव की हिंसा मत कीजिये। यह पशु अनजान है। पेट भरने के लिये मुझे भोजन बना रहा है। **शरीर तो नश्वर है। समय पर नष्ट होता है। उसे रोकने के लिये तीर्थंकर परमात्मा भी समर्थ नहीं है। इस शरीर का अंत आ चुका है। शरीर के मोह के लिये धर्म का अंत क्यों करें? नष्ट होते इस शरीर से धर्म का सेवन करें; इसी में बुद्धिमानी है।** मैंने इस अजगर को अभयदान दिया है, आप से हाथ जोड़कर निवेदन है कि आप भी इसे अभयदान दीजिये। इसे मारकर भी मैं आपसे मिल नहीं पाऊँगी, क्योंकि मैंने सल्लेखना ले रखी है।

चक्रवर्ती– बेटी, अजगर के नहीं रहने पर आपकी सल्लेखना तो शांति से हो सकेगी। **अनंगसरा–** पिताजी, **शरीर से मोह रहे तो सल्लेखना शांति से नहीं हो सकती।** सो तो इससे मेरा मोह रहा नहीं। इसलिये यह मुझे खा रहा है, फिर भी परिणामों में अशांति नहीं है। शरीर छोड़ते हुये मैं आपको भी हिंसा के कार्य करने नहीं दूँगी। आपको दुर्गति के कार्य से रोकना चाहूँगी। पिताजी, आप इसे क्षमा कर दीजिये।

बेटी के उद्गारों से चक्रवर्ती से निरुत्तर हो, उठी हुई तलवार धरती पर पटक कर रुंधे कंठ से उसने बेटी से कहा–

बेटी, **बेटी हो तो आप जैसी हो। खुद भी तरे, पिता आदि को भी तारे।** बेटी मैं मोही हूँ, आपकी दशा को देख कर मेरा रोम रोम रो रहा है।

अनंगसरा– पिताजी, मत रोइये, **रोना, शोक, दु:ख, मातम असाता वेदनीय के बंध के कारण हैं–** ऐसा आप शास्त्रों से पढ़कर सुनाते थे। अब इस समय आप असाता वेदनीय के बंध के कारणों में फँस रहे हो, ऐसा मत कीजिये। शांत होइये, शांति से मेरी सल्लेखना का अनुमोदन कीजिये।

चक्रवर्ती– हे बेटी! साँप से निगलती हुई बेटी को देख मोही पिता कैसे शांति पाये? निर्मोही के लिये ही यह संभव है पर तुम्हारे जैसी धर्मात्मा बेटी की अंतिम भावना को नहीं बिगाड़ूँगा। मैं इसे क्षमा करता हूँ, आपके धर्म कार्य की अनुमोदना करता हूँ।

अजगर को क्षमादान कराकर अनंगसरा ने पंचमेष्ठी के ध्यान में ज्यों ही आँखें मूँद लीं त्योंही अजगर से निगली जाती हुई अनंगसरा को इस दु:खद प्रसंग में देख सबकी आँखों से अश्रुधाराएँ लगातार बहने लगीं। वहाँ एक भी आँख ऐसी नहीं थी जिसमें आँसू न हों।

सभी रोते हुये दु:खी मन से एक दूसरे से कह रहे थे– कि **हमने अपने जीवन में सल्लेखना का ऐसा दृश्य पहली बार देखा है।** इस तरह की सल्लेखनाधारी की ऐसी दशा कभी हुई हो ऐसा कभी सुना भी नहीं।

कितना हृदय विदारक दृश्य है, चित्त के टुकड़े–टुकड़े हो रहे हैं। ज्यों–ज्यों इंच–इंच कर अनंगसरा अजगर के मुँह में जा रही है, हमारा दिल ही बैठा जा रहा है। कर्म ने ऐसा हृदय–विदारक दृश्य दिखाया ही क्यों? काश, हम अन्धे होते!

अरे, हम लोगों की ऐसी हालत हो रही है, सोचो, बेचारे चक्रवर्ती और उनके बेटों के क्या हाल हो रहे होंगे? उनके हाल तो पूछो ही मत। वे कई बार बेहोश हो गये हैं, होश में आने पर वही दृश्य देख पुन: बेहोश हो जाते हैं।

ज्यों–ज्यों अनंगसरा अजगर रूपी काल के मुँह में जा रही थी त्यों–त्यों महिलाएँ पछाड़ खा–खाकर जोर–जोर से रोने लगतीं। सभी णमोकार मंत्र का पाठ करने लगे थे।

लोगों की अश्रुवर्षा करुण क्रन्दन के बीच अजगर ने उस धर्मात्मा अनंगसरा को निगल लिया।

अजगर के द्वारा अनंगसरा को निगलते हुये देख सभी ने संसार की विचित्रता भयानकता देखी, यह भी समझा कि कर्म कभी भी उदय में आकर दु:ख दे सकता है इसलिये पाप से दूर रहने की मन ही मन प्रतिज्ञा कर चुके थे। ज्यादातर लोगों को संसार से वैराग्य, वितृष्णा हो चुकी थी।

महावैराग्य से भरे त्रिभुवनानन्द चक्रवर्ती, उसके बाइस हजार पुत्र एवं लब्धिदास आदि अनेक प्रजाजनों ने दीक्षाएँ लीं।

अनंगसरा देह छोड़कर इशान स्वर्ग में गई। पुनर्वसु विद्याधर बरसों बाद लौटकर उसी जंगल में आया।

उसने अनंगसरा को खोजा पर वह नहीं मिली, तब उसे भी वैराग्य हुआ। उसने **द्रुमसेन मुनि** के पास दीक्षा ली। कठोर तपश्चरण कर स्वर्ग गया। स्वर्ग से आकर लक्ष्मण बना।

अनंगसरा स्वर्ग से आकर द्रोणमेघ राजा की विशल्या नाम की पुत्री बनी। पूर्ण पुण्य के उदय से उसके शरीर से सुगंध आती है तथा उसके शरीर की हवा से अनेक रोग ठीक होते हैं, उसके स्नान के जल को छिड़कने से भी अनेक रोग ठीक होते हैं।

भरत ने सत्त्वहित मुनि से पूछा कि किस कारण से हम सब बीमार हुये थे। तब सत्त्वहित मुनि ने बताया कि–

विन्ध्या नाम का एक व्यापारी ऊँट, घोड़े, भैंसे आदि लेकर अयोध्या आया था। वह अयोध्या में व्यापार के लिये ग्यारह माह तक रहा। उसका एक भैंसा नगर के बीच में बीमार होकर गिर पड़ा। लोग उसके सिर पर पैर रखकर जाते थे, कोई उस पर पत्थर फेंकता, कोई लात मारकर निकल जाता, कोई उसकी पूँछ मरोड़ कर निकल जाता– लोग उसे कई तरह से परेशान करते थे वह अकाम निर्जरा करते हुये मरा जिससे वह **वाय्वावर्त नाम का वायुकुमार जाति का देव बना।** उसने अवधिज्ञान से अपने मरण का कारण जाना तब उसे बहुत गुस्सा आया। गुस्से में उसने अयोध्या आकर ऐसी विषभरी हवा चलाई जिससे सभी लोग बीमारियों से घिर गये। आपने पुण्यात्मा विशल्या के स्नान जल को सब पर छिड़का तब उस पवित्रमाला के सुगंधित जल के सामने उसकी एक न चली वह देव चला गया। **विशल्या का पुण्य उस देव से विशेष** था, इसलिये वह वहाँ से चला गया आप सब रोग रहित हो गये।

चन्द्रप्रतिम विद्याधर राम से कहता है कि यह कथा **सत्त्वहित मुनि ने राजा भरत से जिस प्रकार कही, भरत ने जिस प्रकार मुझसे कही, मैंने उसी प्रकार आप से कही है।** अब देरी किये बिना विशल्या का स्नान जल लाइये और लक्ष्मण को ठीक कीजिये।

चन्द्रप्रतिम के शब्दों से प्रसन्न राम ने औरों से सलाह कर हनुमान, भामण्डल, अंगद को अयोध्या भेजा। जब हनुमान आदि अयोध्या पहुँचे तब भरत सो रहे थे। उन्हें जगाने के लिये भामण्डल ने संगीत प्रारम्भ कर दिया। संगीत से भरत जब जाग गये। तब हनुमान आदि ने उन्हें सीता हरण आदि घटनाएँ सुनाईं। भरत को रावण के प्रति क्रोध उबल पड़ा। क्रोध में युद्ध का नगाड़ा बजवाया। अयोध्यावासी घबड़ा गये। घबड़ा कर भरत के महल की तरफ भागे। भरत स्वयं युद्ध में राम की सहायता के लिये जाने के लिये तैयार हो गये परंतु भामण्डल ने उन्हें यह कहकर मना किया कि यहाँ से लंका बहुत दूर है बीच में लवण सागर है जिसे आप पार नहीं कर पायेंगे। आप हमें लक्ष्मण की शक्ति को दूर करने के लिये विशल्या का स्नान जल लाकर दीजिये।

भरत ने कहा– विशल्या का स्नान जल क्या ले जाना आप विशल्या को ही ले जाइये। **मुनिराज ने पूर्व में बताया था कि यह नारायण लक्ष्मण की पटरानी होगी।** उसे लाने के लिये दूत के साथ अन्य सम्मानित

व्यक्तियों को भेजता हूँ। यह सोचकर भरत ने दूत एवं कुछ सम्माननीय व्यक्तियों को विशल्या को लाने के लिये राजा द्रोणमेघ के पास भेजा।

जब दूत ने भरत के समाचार एवं आदेश को राजा द्रोणमेघ को सुनाया। तब द्रोणमेघ विशल्या को विवाह से पूर्व लक्ष्मण के पास भेजने के लिये तैयार नहीं हुये। उन्होंने विशल्या को भेजने से मना कर दिया।

तब उस चतुर दूत ने कहा– हे महाराज! लड़की के पिता होने के नाते आपकी बात उचित है, सही है, योग्य है परंतु परिस्थिति भी तो देखिये। यदि विशल्या नहीं जायेगी तो लक्ष्मण सुबह निर्जीव हो जायेंगे।

राजा द्रोणमेघ ने कहा– विशल्या के गंधोदक से भी शक्ति दूर हो जायेगी। गंधोदक ले जाइये।

दूत ने कहा– रावण के द्वारा देवरक्षित शक्ति है शायद गंधोदक से दूर न हो पाये।

राजा– बड़ी–बड़ी महामारियाँ दूर हो सकती हैं तब वह शक्ति दूर क्यों नहीं हो जायेगी?

दूत– अवधिज्ञानी मुनिराज से पहले सुना था कि विशल्या का विवाह लक्ष्मण के साथ ही होगा और वह नारायण लक्ष्मण की सोलह हजार रानियों में पटरानी बनेगी।

इसी बीच में गुस्से में आकर द्रोणमेघ के पुत्र बोले– अरे वाचाल दूत! राजन् जितना कह रहे हैं, उतना ही कर। रही बात विशल्या के विवाह की तो हम बड़े ठाठ–बाट से धूमधाम से विवाह कर अनेक राजाओं व प्रजा की उपस्थिति में उसे विदा करेंगे। ऐसे अँधेरे में विदा नहीं करेंगे। उसी में हमारी प्रतिष्ठा है। यदि राजा भरत उसे ले जाने की जिद करेंगे तो हम भी क्षत्रिय हैं, युद्ध के लिये तैयार हैं पर विशल्या को इस तरह से अँधेरे में नहीं भेजेंगे।

दूत आदि यह संदेश लेकर निराश होकर अयोध्या लौट आये। यह समाचार चारों ओर फैल गया। सभी आक्रोश से भरे थे। युद्ध के लिये तैयार हो गये। युद्ध रात में संभव नहीं है, सुबह तक लक्ष्मण का इलाज नहीं हो पाया तो लक्ष्मण निर्जीव हो जायेंगे। यह सोच कैकेयी ने स्वयं भरत के पास जाकर कहा– मैं अपने भाई द्रोणमेघ को समझाऊँगी वह मेरी बात नहीं टालेगा। मुझे द्रोणमेघ के पास ले चलो।

भामण्डल, हनुमान, अंगद आदि कैकेयी को लेकर तुरंत ही द्रोणमेघ के पास पहुँचे।

कैकेयी ने द्रोणमेघ से कहा–

भैय्या, विशल्या को लक्ष्मण के पास भेज दो।

द्रोणमेघ– बहन, मुनिवाणी के अनुसार यह विशल्या लक्ष्मण जी की ही रानी है परंतु हमारा कहना इतना–सा ही है कि हम उसे सम्मान के साथ विदा करेंगे। ऐसे अँधेरे में नहीं। लोग क्या कहेंगे?

कैकेयी– भैय्या, लोगों की चिंता तो ठीक बात है पर परिस्थितियाँ भी देखी जाती हैं। परिस्थिति देखकर कोई दोष नहीं देता। आप ही सोचो– जिससे इसका विवाह होना है वही इस समय जीवन–मरण के झूले में झूल रहा है, उसी के जीवन के विषय में शंका है। वही नहीं रहेगा तो इसका किससे विवाह

कराओगे? मन से विशल्या भी लक्ष्मण को पति मान चुकी है। उसका मन भी इस समाचार से बेचैन होगा, आप क्यों जिद कर रहे हो? उसे भेज दीजिये। यदि आपको कोई संशय हो तो मैं उसके साथ जाऊँ?

द्रोणमेघ– नहीं बहन, अविश्वास की कोई बात नहीं है। तुम्हारा कुल चक्रवर्ती का कुल है। उन पर अविश्वास का प्रश्न ही नहीं है। पर.......।

कैकेयी– पर........ परंतु........ किंतु........ सब छोड़ दीजिये। मेरा विश्वास कर मेरे कहने से विशल्या को भेज दीजिये।

द्रोणमेघ– ठीक है बहना जिसे कल भेजना है उसे आज ही ले जाइये।

कैकेयी– भैय्या, आपको बहुत-बहुत धन्यवाद, जो आपने मेरा मान रखा।

इसके बाद सौ दासियों के साथ विशल्या को विमान पर बिठाकर भामण्डल, हनुमान, अंगद आदि लंका की ओर शीघ्र ही गये और वहाँ से वे लंका में राम सेना के शिविर में शीघ्र ही पहुँच गये। राम की निगाहें भी उसी ओर लगी थीं उनके आने के समाचार से राम प्रसन्न हुये।

विशल्या के विमान से उतरते ही अनेक राजाओं ने उसकी अगवानी की। उपहार आदि देकर उसका स्वागत एवं सम्मान किया। वह ज्योंही विमान से उतरी, त्योंही लक्ष्मण के शरीर में हलचल शुरू हो गई। ज्यों-ज्यों वह लक्ष्मण की ओर आती गईं त्यों-त्यों उनको होश आना शुरू हुआ। विशल्या के शिविर में आते ही लक्ष्मण को होश आ गया था। विशल्या ने आते ही सबसे पहले राम को नमस्कार किया फिर यथाक्रम से सभी को नमस्कार किया। बाद में राम की अनुमति से लक्ष्मण के शरीर पर अपने हाथों से लेप किया। लेप करना प्रारंभ करते ही शक्ति लक्ष्मण के शरीर से निकल कर जाने लगी। हनुमान ने उस शक्ति को उछलकर पकड़ लिया। जब हनुमान ने उस शक्ति को पकड़ा तब वह गिड़गिड़ाकर कहने लगी-

हे देव! हमें छोड़ दीजिये। हम पराधीन हैं। हम हीन पुण्यवाली देवियाँ पराधीन होती हैं हम मंत्रों के आधीन होती हैं। जो मंत्रों को सिद्ध करता है हम उसके आधीन हो जाती हैं। या हमारे स्वामी देवता हमें जिसे सौंपते हैं, हम उसके आधीन हो जाती हैं। हम स्वयं चलाकर किसी को परेशान नहीं करती हैं। हमने लक्ष्मण को अपनी ओर से परेशान नहीं किया। उस समय मैं रावण के आधीन थी। उसने मुझे चलाया और मैं लक्ष्मण के शरीर में घुस गई इसमें हमारा कोई दोष नहीं है। छोड़ दीजिये।

हनुमान– आप रावण के पास कैसे आई?

शक्ति– मैं प्रज्ञप्ति की बहन अमोघविजया हूँ। एक बार रावण रत्नावली राजकुमारी से विवाह करने के लिये मंदोदरी आदि के साथ जा रहा था। अचानक उसका विमान अटका। जब उसने नीचे देखा, तब उसे वहाँ बालि मुनि दिखाई दिये। उसने सोचा-

बाली, राजा होते हुये तो मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सका। अब मुनि बनकर शक्ति अर्जित कर इसने मेरा

विमान रुकवाया है। इसे अभी मजा चखाता हूँ– ऐसा सोच दुर्बुद्धि से उसने विमान नीचे उतारा। विद्या के बल से पर्वत को उठा रहा था। बालि मुनिराज ने सोचा– इस पर्वत पर भरत चक्रवर्ती के द्वारा स्थापित रत्नमयी अनेक जिनबिम्ब हैं, अनेक विशाल जिनालय हैं, पशु–पक्षियों के स्थायी निवास हैं। रावण के द्वारा उठाने से पर्वत हिल जायेगा, जिससे जिनालय, जिनबिम्ब, पशु–पक्षियों के आश्रय स्थानों को नुकसान पहुँचेगा इसलिये इसे रोकना चाहिये, यह सोच उन्होंने दाहिने पैर के अँगूठे से पर्वत को धीरे से दबाया। बालि मुनिवर को कायबल ऋद्धि प्राप्त थी। इसलिये उनके द्वारा धीरे से दबाते ही रावण दबने लगा। भले ही वह वज्र–वृषभ–नाराच संहनन का धारी था पर उसकी ताकत कायबल ऋद्धि के धारक बालि मुनि की शक्ति के सामने कुछ भी नहीं थी **वह परेशान होकर रोने लगा। तब से देवताओं ने उसका नाम रावण रखा। उससे पूर्व वह दशानन कहलाता था।** उसकी रोने की आवाज सुनकर मंदोदरी भागकर आयी। उसे रावण की अनुचित चेष्टा समझते देर नहीं की वह तुरंत ही मुनिराज के चरणों पर गिरकर माफी माँगने लगी। दयालु मुनिराज बालि ने अपना दबा हुआ अँगूठा वापिस हटा लिया। रावण को अपनी गलती और शक्ति का एहसास हो गया था। उसने भी मुनिराज के चरण पकड़ लिये नमस्कार कर अपने अपराध के लिये क्षमा माँगी। क्षमा माँगकर मुनिराज की तन्मयता, एकाग्रता के साथ भक्ति प्रारंभ की। भक्ति करते समय उसकी वीणा का तार टूट गया था, उसने हाथ की नस काटकर वीणा का तार बाँधकर भक्ति निरंतर जारी रखी। उसके भक्ति भाव से धरणेन्द्र ने आकर रावण के भक्ति भावना की प्रशंसा कर मुझे रावण को सौंप दिया था। रावण ने मुझे लेने से मना कर दिया था। परंतु धरणेन्द्र ने विशेष आग्रह कर रावण को सौंप दिया। मैं देवों को भी पराजित करने की सामर्थ्य रखती हूँ।

हनुमान– हे अमोघ विजया! तुम इतनी ही शक्तिशाली हो तो विशल्या के आते क्यों भागी जा रही हो?

अमोघ विजया– हे देव! विशल्या के आते ही भागने के पीछे कारण यह है कि **भागना, नहीं भागना; छोटा या बड़ा होना ये सब पुण्य पाप की लीलाएँ हैं।** विशल्या ने पूर्वभव में जब वह अनंगसरा थी तब इसने ऐसा कठोर तप किया था, जो प्राय: मुनियों के लिये भी असंभव, अशक्य था। उसके द्वारा संचित पुण्य के सामने हमारा पुण्य कुछ भी नहीं है। हमारी शक्ति उसके पुण्य के सामने इतनी कम है कि उसकी हवा से ही हम जैसे हीन पुण्य वाले भाग जाते हैं।

हे देव, मुझे इतने से कार्य से ही संसार सारभूत लगता है, संसार में भी मनुष्य जीवन सारभूत लगता है कि उस जीवन में विशल्या की तरह कठोर तप किये जाते हैं। तप करने से ही मनुष्य जीवन सफल और सार्थक है क्योंकि चारों गतियों में मनुष्य गति में ही तपश्चरण संभव है, अन्य गतियों में नहीं। यदि कोई मनुष्य जन्म पाकर तपश्चरण का विचार नहीं करता है तो उसका मनुष्य जन्म ही व्यर्थ है। नश्वर, कोमल मानव शरीर से कठोर तप करें तो अविनश्वर सिद्ध पद मिल सकता है तो क्यों नहीं तप करें? अवश्य करना चाहिये। विशल्या ने पूर्व में जो तप किया था, उसका अन्य स्त्रियाँ तो विचार भी नहीं कर सकती। तेज

हवायें, धूप, वर्षाएँ, बिना अन्न के सिर्फ वन के फल खाकर सहन की। कहाँ तो चक्रवर्ती के घर पलने से शरीर की कोमलता और कहाँ जंगल की कठोरता, जहाँ खाने को अन्न नहीं, सोने के बिस्तर नहीं, सिर पर छत नहीं, किसी का सहारा तो दूर किसी आदमी की शकल भी नहीं दिखती थी। ऐसी विकट परिस्थितियों में **धर्म ही एकमात्र सहारा था, तप ही एकमात्र उपाय था।** ऐसी विषम परिस्थितियों में तीन हजार वर्ष तक कठोर तप करके। सात दिन की सल्लेखना में अंतिम दिन अजगर के द्वारा खाये जाने पर भी उसने समता भाव नहीं छोड़ा था। अजगर को अभयदान दिलाकर स्वर्ग गई। वहाँ भी अपना समय धर्मध्यान में बिताया। वहाँ से आकर द्रोणमेघ राजा की विशल्या नाम की पुत्री बनी। अजगर के जहर को साम्यभाव से सहन करने के कारण उसके शरीर में आज ऐसी दिव्यता है कि शरीर से सुगन्ध निकलती है और शरीर की हवा या उसके छुये हुये जल आदि से भी रोग ठीक हो जाते हैं। हे देव, उसके पास आज भी इतना पुण्य है कि वह नारायण लक्ष्मण की पटरानी बनेगी। हे देव, आप जाइये उसके विवाह की तैयारी कीजिये। मुझे भी अपने स्थान पर जाने दीजिये। मेरी दुश्चेष्टा क्षमा कर दीजिये।

विशल्या के वृत्तान्त से प्रसन्न हुये हनुमान ने अमोघ विजया को छोड़ दिया। विशल्या के वृत्तान्त से सभी प्रसन्न थे। राम की अनुमति से विशल्या के द्वारा स्पर्शित गोशीर्ष चंदन दासियों के द्वारा इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण के पास भेजा, जिससे वे भी स्वस्थ हो गये।

लक्ष्मण ने होश में आते ही कहा- कहाँ है रावण?

तब राम ने प्रेम से सारा घटनाक्रम लक्ष्मण को बताया। लक्ष्मण को यह भी बताया कि आपका नया जीवन विशल्या के कारण ही संभव हुआ। इसके हम सब पर बहुत उपकार है।

विशल्या नीचे गरदन रख धीरे से बोली- हे श्रेष्ठ, हम उपकार करने वाले कौन होते हैं? हम तो आपकी सेविका हैं। आप से हर दृष्टि से छोटे हैं। उपकार तो पुण्य ने किया। इसी पुण्य ने आप जैसे महापुरुषों का संयोग कराया है।

इसी बीच राम ने लक्ष्मण से कहा- लक्ष्मण मुनियों की वाणी के अनुसार आपको इसके साथ विवाह कराना है। यही इसके उपकार का आंशिक प्रत्युपकार होगा।

लक्ष्मण ने कहा- ठीक है भैय्या हम इन्हें अपनी पटरानी घोषित करते हैं।

तब सभी ने कहा- हे देव! शुभस्य शीघ्रम्। शुभ कार्य में देरी किस बात की? आप नारायण हैं, आपके जीवन के विषय में संशय नहीं है। भले ही युद्ध होता रहे। आप दोनों का विवाह यहीं कर देते हैं। लक्ष्मण ने कहा- क्या युद्धभूमि में विवाह उचित है? पहले हम लोग युद्ध जीत लें, उसके पश्चात् बड़े ठाट-बाट से विवाह करेंगे। तब राम ने कहा- लक्ष्मण, **उपकार का प्रत्युपकार करने में देरी नहीं करनी चाहिये।** कहीं हम उपकार चुकाये बिना ही मारे गये तो? इसलिये हमारी राय में संक्षिप्त विधि से विवाह कराते हैं तब सबकी एक राय से विवाह करना तय हो गया। विवाह के लिये मण्डप बनाया गया उसे सजाया गया। वह युद्धभूमि विवाह भूमि बन गई।

वहाँ राम पक्ष के सभी राजाओं की उपस्थिति में विशल्या के साथ लक्ष्मण का विवाह बहुत ही आनन्ददायक वातावरण में सम्पन्न कराया। विशल्या और लक्ष्मण ने गुरुजनों से आशीर्वाद प्राप्त किया। दोनों ने अपने-अपने भाग्य को सराहा। लोगों के बीच वे दोनों इन्द्र-इन्द्राणी की तरह शोभायमान हो रहे थे। विवाहोत्सव के बाद लक्ष्मण और रावण में युद्ध हुआ। रावण की मृत्यु हुई।

राम, लक्ष्मण, सीता, विशल्या आदि अयोध्या लौट आये। अयोध्या में अयोध्यावासियों के साथ भरत ने उन सब का स्वागत धूमधाम से किया।

अयोध्या में आनन्द और सुख का समय बीतने का पता नहीं चला।

इसी बीच सीता पर आरोप लगा। उसे वन में छोड़ा गया। लव कुश का जन्म हुआ। बड़े होकर उनका राम, लक्ष्मण के साथ युद्ध हुआ। सीता को अयोध्या बुलाया गया। वहाँ उसकी अग्निपरीक्षा हुई। अग्निपरीक्षा के बाद सीता ने दीक्षा ली।

राम, लक्ष्मण के जीवन का समय खुशी से बीत रहा था।

एक बार स्वर्ग में इन्द्रसभा में मनुष्य लोक के जीवों के परस्पर वात्सल्य की चर्चा हो रही थी। तब इन्द्र ने कहा- मनुष्य लोक में इस समय बलदेव राम और नारायण लक्ष्मण के बीच परस्पर जैसा वात्सल्य है वैसा वात्सल्य किन्हीं अन्य जीवों में दिखाई नहीं देता। **सब बंधनों में स्नेह का बंधन अत्यंत दृढ़ होता है। जो हाथ पैर आदि अवयवों से बँधा है, ऐसा प्राणी मोक्ष जा सकता है परंतु स्नेहरूपी बंधन से बँधे प्राणी को मोक्ष नहीं मिलता। बेड़ियों से बँधा मनुष्य हजारों योजन भी जा सकता है परंतु स्नेह से बँधा मनुष्य एक अँगुल भी जाने में समर्थ नहीं होता है।**

लक्ष्मण, राम में सदा अनुरक्त रहता है और राम, लक्ष्मण को देख-देख कर कभी संतुष्ट नहीं होते। लक्ष्मण पल भर भी न दिखे तो राम बेचैन हो जाते हैं। इन्द्र की इन बातों को सुनकर राम और लक्ष्मण के प्रेम की परीक्षा के लिये **रत्नचूल** और **मृगचूल** नाम के दो देव आये। जिसके दर्शन के बिना राम पल भर में ही व्याकुल हो जाते हैं वह लक्ष्मण राम की मृत्यु का समाचार सुनकर क्या करते हैं? यह सोच वे लक्ष्मण के पास जाकर कहने लगे-

''राम की मृत्यु हुई है''- इस वाक्य को अधूरा ही सुन सिंहासन पर गिरे। गिरते ही उनके प्राण पखेरू उड़ गये। लक्ष्मण की मृत्यु के बाद विशल्या ने आर्यिका व्रत धारण किये। कठोर तपस्या की। कठोर तपस्या करके समाधिमरण कर स्वर्ग में देव बनी। वह शीघ्र ही मोक्षपद प्राप्त करेगी।

*****

सती अंजना

3

सती अंजना

भरतक्षेत्र के अंतिम छोर पर लवण समुद्र के किनारे आग्नेय दिशा में एक दन्ती नाम का सुंदर विशाल पर्वत है। उस पर्वत पर अनेक गगनचुंबी चमकीले शिखर हैं। धों-धों कलकल आवाज करती अनेक नदियाँ और झरने बहते हैं। अनेक तालाबों से वह प्रदेश बहुत ही रमणीय हैं। वहाँ **महेन्द्र** नाम का राजा बस्तियाँ बनाकर रहता था। राजा दानी, न्यायी, पराक्रमी था इसलिये उस पर्वत के लोग **महेन्द्रगिरि** के नाम से जानने लगे थे।

राजा महेन्द्र की हृदयवेगा नाम की रानी थी। इस राजा के अरिंदम आदि सौ गुणी पुत्र और अंजनासुंदरी नाम की गुणवती, सुशील कन्या थी। अंजनासुंदरी सबसे छोटी थी। जब उसका शरीर युवावस्था से सुशोभित होने लगा तब राजा महेन्द्र को उसके लिये योग्य वर ढूँढ़ने की चिंता हुई।

कन्या की चिंता पिता के लिये सबसे बड़ी चिंता होती है, इसलिये राजा महेन्द्र को उसके विवाह की विशेष चिंता होने पर उसके लिये योग्य वर ढूँढ़ने के लिये उन्होंने अनेक हित-चिंतकों को विचार-विमर्श के लिये बुलाया। राजा ने उनसे कहा- मेरी पुत्री के लिये योग्य वर बताइये। वहाँ अनेक विचार सामने आये। किसी मंत्री ने कहा- इस सुंदर कन्या के लिये रावण जैसा वर ठीक रहेगा जो तीन खण्ड का स्वामी है, अधिक उमर होने पर भी सोलह साल का ही दिखता है। हमारा उससे संबंध भी हो जायेगा। दूसरे मंत्री ने उसे टोकते हुये कहा- भले ही वह तीन खण्ड का स्वामी हो पर है अभिमानी इसलिये हमारी बेटी के लिये अन्य वर चुनना चाहिये।

एक मंत्री ने कहा- मेघनाद, इन्द्रजीत, हमारी पुत्री के लिये ठीक रहेंगे?

उसे टोकते हुये दूसरे मंत्री ने कहा- यदि मेघनाद को कन्या दी जायेगी तो इन्द्रजीत नाराज हो जायेगा। इन्द्रजीत को कन्या दी जायेगी तो मेघनाद नाराज हो जायेगा।

किसी मंत्री ने सलाह दी कि कनकपुर के राजा हिरण्याभ का यशस्वी सुंदर विद्युत्प्रभ नाम का पुत्र है वह हमारी बिटिया के लिये ठीक रहेगा।

तब अन्य मंत्री ने कहा-

विद्युतप्रभ, कलाओं, विद्याओं का पारगामी है, सुन्दर, सुशील है, परन्तु वह निकट भव्य है, संसार का स्वरूप जानकर शीघ्र ही दीक्षा लेकर निर्वाण प्राप्त करेगा - ऐसा मुनियों से सुना है इसलिये यह वर हमारी कन्या के लिये ठीक नहीं है।

मेरी बात ध्यान से सुनो-

विजयादूर्ध पर्वत की दक्षिण की ओर की एक पंक्ति (श्रेणी) में **आदित्यपुर** नाम का एक नगर है। वहाँ के राजा का नाम **प्रल्हाद** है। उनकी रानी का नाम **केतुमती** है। इनके एक पुत्र है जिसका नाम **पवनंजय** है। पवनंजय जब से जवान हुआ तब से उसके लिये प्रल्हाद राजा योग्य कन्या की तलाश कर रहे हैं।

वह पराक्रमी, रूपवान, गुणवान, विद्यावान है। देवतुल्य कांति का धारक है। हमारी कन्या के लिये उसे वर के रूप में देखा जाय।

सबने 'हाँ में हाँ' मिला दी। राजा भी उसके गुण को सुनकर प्रसन्न हुये।

इसी बीच फाल्गुन मास का अष्टान्हिका पर्व आया। पर्व में पूजापाठ, स्वाध्याय के लिये राजा प्रल्हाद सपरिवार कैलाश पर्वत पर गये।

उधर संयोग से राजा महेन्द्र भी पर्व मानने के लिये कैलाश पर्वत पर गये। **भगवान ऋषभदेव के मोक्ष जाने के कारण कैलाश पर्वत पवित्र निर्वाणभूमि है।**

राजा महेन्द्र, भगवान की स्तुति, भक्ति, पूजा-अर्चा करके शिला तल पर शांति से बैठ गये थे। उसी समय राजा प्रल्हाद भी जिनेन्द्र की स्तुति-भक्ति, पूजा-अर्चा करके आये सो दोनों आस-पास बैठ गये। दोनों ने एक दूसरे से 'जय जिनेन्द्र' की। पश्चात् हालचाल पूछे, कुछ सामान्य बातें हुईं। उसके बाद राजा महेन्द्र ने राजा प्रल्हाद से कहा-

मित्र, कन्या के लिये योग्य वर पाने की चिंता से मेरा मन सदा दु:खी रहता है। एक बार हमने मंत्रियों, परिजनों के साथ बैठकर इस विषय में विचार-विमर्श किया। तब सबकी सहमति से हमने आपके पुत्र पवनंजय को हमारी पुत्री के योग्य वर के रूप में पसंद किया है। हम अष्टान्हिका के बाद आपके पास आने वाले थे, हमारे पुण्योदय से आप यहाँ ही मिल गये, हालाँकि इन दिनों में यह चर्चा अच्छी नहीं लग रही है परंतु पुत्री का पिता होने के कारण इस तरह की चर्चा के लिये हम मजबूर हैं। आपका हमारी पुत्री के विषय में क्या विचार है?

राजा प्रह्लाद ने कहा- हे मित्र! हम भी अपने पुत्र के लिये योग्य कन्या की तलाश में थे ही, पुण्योदय से सहज ही आपका समागम हुआ है। हमने आपकी पुत्री के गुणों के विषय में सुना हुआ है, हम स्वयं आपके पास आने वाले थे। हमारी असहमति का प्रश्न ही नहीं है, बल्कि आपके उपकार ही होंगे यदि आप अपना कन्या-रत्न हमें सौपेंगे।

अंजना के पिता ने अष्टान्हिका पर्व के बाद पर्वत के सुंदर तट पर उनका मंगल विवाह करने की इच्छा की, क्षण भर में ही यह समाचार चारों ओर फैल गया। विवाह की तैयारियाँ वहीं पर शुरू हो गई क्षण भर में ही वातावरण भी बदल गया। डेरे, तंबू, पण्डाल तैयार हो गये। ज्योतिषियों ने कुछ दिनों के बाद विवाह का दिन बताया।

पवनंजय ने मित्रों के मुख से अंजना की प्रशंसा सुनी तो वह उसे देखने के लिये बेचैन हो गया। उसे एक दिन का इंतजार भी सहन नहीं था। उसे बेचैनी ने परेशान कर रखा था, उसका धैर्य छूट गया, श्वासें गरम रहने लगीं, हृदय शून्य रहने लगा। उसने सब काम छोड़ दिये। पवनंजय निरंतर अंजना के बारे में ही सोच रहा था।

उसने अपने मन की बात अपने प्रहसित नाम के मित्र से कही और कहा कि मित्र मुझे जीवित और सुखी देखना चाहते हो तो मुझे अंजना के दर्शन कराओ नहीं तो मैं मर जाऊँगा। जब से मैंने अंजना के बारे में सुना है, तभी से मेरी ऐसी दशा हो गई है। मैं इन विरह के दिनों को सहन करने के लिये समर्थ नहीं हूँ।

प्रहसित ने कहा– मित्र, दुःखी मत हो, मैं जल्द ही कोई उपाय सोचता हूँ। हे मित्र! आपकी खुशी में ही मेरी खुशी है। उसी समय संध्या हो गई। नीला आकाश काला हो गया। दोनों मित्र अँधेरे में बिना किसी को बताये वहाँ से चल पड़े। अपनी विद्या के सहारे से वे क्षण भर में ही महेन्द्रगिरि पर आ गये। उन्होंने अंजना का महल देखा। उसकी सातवीं मंजिल पर झरोखे में छिपकर बैठ गये। वहीं से अंजना को देख रहे थे। अंजना को अपलक निगाहों से देखते हुये पवनंजय आनंद से भर गये।

उस समय अंजना सहेलियों से घिरी हुई थी। कुछ दिनों के बाद पवनंजय के साथ उसके विवाह का समाचार महेन्द्रगिरि तक पहुँच चुका था। वे सब उसके विवाह की चर्चा में मशगूल थीं। उस चर्चा के बीच **वसन्ततिलका** नाम की सहेली ने कहा– हे अंजना, तुम कितनी भाग्यशालिनी हो, जो तुम्हें तुम्हारे अनुरूप पवनंजय जैसा जीवनसाथी मिला है। तुम उनके साथ बहुत ही प्रसन्न रहोगी।

इस पर अंजना कुछ नहीं बोली, सिर्फ पैर के अँगूठे से जमीन कुरेदने लगी।

इसी बीच दूसरी मिश्रकेशी नामक सखी ने कहा–

अंजना, विद्युत्प्रभ को छोड़कर अन्य श्रेष्ठ वर नहीं था। तुम्हारा उसके साथ योग बहुत अच्छा होता। पवनंजय की तुलना में वह कई गुणा ज्यादा अच्छा वर था। तुम्हारा उसके साथ विवाह होता तो अच्छा होता। वह युवा है, नम्र है, सौम्य है, धीर है, प्रतापी है। विद्याओं का पारगामी है। मैंने राजमहल में उसकी चर्चा कई बार सुनी है। पुण्ययोग से उसके साथ तुम्हारा विवाह होता तो तुम्हारा उसके साथ संबंध बेजोड़ होता। विचार तो करो कि विद्युत्प्रभ के साथ तुम्हारा एक पल का संबंध भी विशाल सुख का कारण होता जो दूसरे के साथ बहुत समय बिताने पर भी नहीं मिलता।

मिश्रकेशी के इन शब्दों को सुनकर पवनंजय को मिश्रकेशी पर बहुत गुस्सा आ रहा था। साथ ही अंजना पर भी क्योंकि वह विरोध नहीं कर रही है?

अरे रे! देखो संसार की विचित्रता। मोक्षगामी जीव के बारे में कितनी ईर्ष्या, कितना द्वेष?

जो स्वयं मोक्षगामी हैं और जिनके चरणकमल मोक्ष दिलायेंगे उन्हीं से ईर्ष्या और द्वेष। पवनंजय जानते हैं कि विद्युत्प्रभ इसी भव से मोक्ष जायेंगे फिर भी मोह में अँधी हुई बुद्धि के कारण उन्होंने इस बात का

विचार नहीं किया कि यह विद्युत्प्रभ कुछ समय बाद सिद्ध परमेष्ठी बनेंगे, उनसे द्वेष क्यों करूँ? वे वंदनीय हैं, उनके विचार वंदनीय हैं, उनके चरण, आचरण वंदनीय हैं। देखो, दुर्बुद्धि कैसी होती है? उन्हीं से द्वेष करने लगी।

क्रोध के कारण पवनंजय का शरीर काँपने लगा, पल भर में ही उसके तेवर बदल गये। ओंठ चबाने लगा। उसने म्यान से तलवार बाहर निकाली, तब प्रहसित ने कहा- हे मित्र, चाहे जितना क्रोध आये, पर स्त्रियों पर हथियार नहीं उठाने चाहिये।

पवनंजय ने प्रहसित से कहा- विद्युत्प्रभ अंजना को प्रिय है, तभी तो वह उसका प्रतिकार नहीं कर रही है इसीलिये मैं उसका मस्तक काटना चाहता हूँ।

प्रहसित ने उसे समझाया कि ऐसी बात नहीं होगी शायद स्त्रीजन की यह लज्जा की प्रवृत्ति है जिससे उसने प्रतिकार नहीं किया।

परंतु क्रोधाग्नि में पवनंजय को कुछ भी समझ में नहीं आया। वह तो उसे दण्ड देने पर आमादा था। उसने मन ही मन निश्चय किया कि मैं विवाह इससे ही करूँगा परंतु इसे अपनाऊँगा नहीं। यही इसे सबसे बड़ा सबक होगा।

ऐसा निर्णय करके द्वेष से भरे पवनंजय ने प्रहसित से कहा जल्दी चलो, कहीं इसके शरीर को छुई हवा मुझे छू न जाये क्योंकि नीति कहती है कि -

मदिरारागिणं वैद्यं द्विपं शिक्षाविवर्जितम्।
अहेतुवैरिणं क्रूरं धर्मं हिंसनसंगतम्।।

मूर्खगोष्ठी कुमर्यादं देशं चण्डं शिशुं नृपम्।
वनितां च परासक्तां सूरिर्दूरेण वर्जयेत्।।

अर्थ- शराबी वैद्य को, अशिक्षित हाथी को, कारण रहित बैरी को, हिंसा वाले धर्म को, मूर्खों की बातों को, नियम रहित देश को, क्रोधी तथा बाल राजा को और परपुरुष में आसक्त स्त्री को बुद्धिमान दूर से छोड़ दें।

दोनों मित्र तुरंत ही वहाँ से लौट रहे थे तब उनके घोड़े आदि की आवाजें अंजना को सुनाई दीं। अंजना उन बातों का आभास कर विचार करने लगी कि हे देव, मुझे कैसे दिन दिखाओगे? लगता है, वे यहाँ मुझसे मिलने आये थे परंतु मेरी इन सखियों की ठिठोलियों को सच समझ नाराज होकर मुझे बोले बिना ही लौट रहे हैं। कहीं मैं उनके द्वेष का पात्र न बन जाऊँ? शायद मिश्रकेशी ने मेरे प्रिय को दुःखी कर दिया। यदि ऐसा हुआ तो मैं जीते जी मृत समान हो जाऊँगी। यह सोचते-सोचते वह बेहोश हो गई। होश में आने पर सखियों ने उसे बेहोशी का कारण पूछा पर वह शरम के मारे कुछ ना कह सकी।

उसके बाद समय बीत गया। दोनों का विवाह बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हो गया। विवाह के समय यद्यपि पवनंजय ने अंजना का हाथ पकड़ा हुआ था, पर उसी तरह से पकड़ा था जैसे शरीर से विरक्त मुनि शरीर को धारण करते हैं। अंजना की सुलभ, निष्पाप हँसी उसे ऐसे चुभ रही थी, जैसे **मुनि को कषाय चुभती है।** बंधु बान्धव, अंजना आदि सभी उस समय प्रसन्न थे मात्र पवनंजय ही एकमात्र उदास व्यक्ति था।

अंजना की विदाई हुई।

विवाह के बाद पवनंजय ने अंजना को ऐसे छोड़ा जैसे मुनि घर परिवार को छोड़ते हैं, न कभी उसकी ओर देखता था, न उससे बातें करता था। ऐसा करके वह उसे घोर कष्ट पहुँचाना चाहता था। अंजना को पवनंजय के व्यवहार से कष्ट होता था उसे रात को नींद नहीं आती, खुली आँखों, उदास मन से रात गुजारती थी। उसने विवाह के समय जो धुँधला-सा रूप देखा था पवनंजय का उसे सदा हृदय में रख उसी रूप को वह बाहर भी देखने का प्रयास करती थी। पवनंजय के मुँह से अपना नाम सुनने के लिये तरसती थी। पवनंजय की एक प्रेम भरी निगाह के लिये तरसती थी।

धीरे-धीरे वह इतनी कमजोर हो गई थी कि उसके शरीर से आभूषण गिरने लगे थे। लंबी और गरम श्वासों से उसके गाल काले पड़ गये थे। उसके शरीर पर जो महीन वस्त्र थे वे भी भार रूप लगते थे। अपने भाग्य की निंदा करती हुई बार-बार माता-पिता को याद करती हुई, शून्य हृदय को धारण कर बेहोश हो जाती थी। चाँदनी हो या बाग या महल या हो कोई उत्सव इनमें उसे दु:ख का अनुभव होता था।

बड़ों के आग्रह से बड़ी कठिनाई से भोजन करती थी। सभी शृंगार-साधनों से रहित हो गई थी। आँखों से निरंतर मोती जैसे आँसू टपकती हुई वह दिन-रात बिताती थी।

एक बार राजा वरुण और राजा रावण के बीच अहंकार के कारण से वैर-विरोध हो गया। **हर विरोध का कारण अहंकार ही होता है।** रावण ने बड़प्पन दिखाते हुये एक दूत वरुण के पास भेजा। उस दूत ने रावण की ओर से वरुण राजा से कहा कि-

''आप में और हममें कोई वंश परम्परागत बैर नहीं है। आप हमारे आधीन हैं। हम आपके स्वामी हैं। हम विद्याधरों के एकमात्र स्वामी हैं। अत: आप हमें नमस्कार कीजिये। नहीं तो युद्ध अवश्य ही होगा।''

वरुण राजा अभिमानी, अहंकारी था। उसे अपने बल पर अभिमान था। उसने दूत से कहा- तुम्हारे राजा को देवरक्षित शस्त्रों पर अभिमान है। उनसे कहा कि वे उन शस्त्रों को लेकर युद्ध में आयें, हम उनका नाम ही मिटा देंगे।

दूत से वरुण की अहंकार भरी बातें सुनकर रावण ने वरुण के नगर को घेर लिया। उसने यह प्रतिज्ञा कर ली कि मैं देवरक्षित शस्त्रों के बिना ही वरुण को युद्ध में हराऊँगा।

दोनों में भयंकर युद्ध होने लगा। रावण का पक्ष जब कमजोर दिखने लगा तब रावण ने राजा प्रह्लाद

के पास दूत भेजकर मदद माँगी। प्रह्लाद स्वयं ही सेना लेकर जाने के बारे में सोच रहे थे। उसी समय पवनंजय ने कहा– पिताजी, हमारे होते हुये आप जायें ये हमें शोभा नहीं देता।

प्रह्लाद ने कहा– बेटा, आप अभी बच्चे हो।

पवनंजय– माता–पिता की नजर में बच्चे कितने भी बड़े क्यों न हों, बच्चे ही दिखते हैं पर हम इतने बच्चे भी नहीं रहे कि घर में कैद हो जायें। हमें भी पराक्रम दिखाने का अवसर दीजिये। हम युद्ध करना चाहते हैं। आज्ञा दीजिये।

प्रह्लाद– बेटा, हमें आपको युद्ध पर भेजकर नहीं अपितु आपकी बात पूरी करने की खुशी है। जाइये, विजयी होकर लौटिये।

सिद्धप्रभु को नमस्कार कर बड़ों से आशीर्वाद ले पवनंजय ने दाहिना कदम आगे बढ़ाया, तब शुभ शगुन में उसकी दाहिनी भुजा फड़कने लगी। उसकी निगाहें महल के द्वार के खम्भे से टिककर खड़ी अंजना पर गई, अंजना की आँखों में आँसू थे। वह दुबली–पतली अंजना खम्भे के पास ऐसी लग रही थी मानो खम्भे के ऊपर पाषाण की कोई पुतली ही हो।

पवनंजय ने उसे देखते ही उस पर से निगाहें हटाकर गुस्से से कहा– अरी दुष्टा, मेरे सामने क्यों आई हो? दूर हट। कुलांगना होकर भी वह न चाहने वाले पति के सामने क्यों आई और भी कठोर शब्द कहे।

अंजना ने उन शब्दों पर ध्यान नहीं दिया। मन ही मन सोचने लगी कि चलो आज डाँटने के बहाने से ही सही बात तो कर रहे हैं। भाषा भले ही डाँटने की हो।

अंजना ने पवनंजय के चरणों में नेत्र गाड़ कर, हाथ जोड़कर कहा– हे नाथ! इस महल में रहते हुये भी हम आपके द्वारा परित्यक्ता हैं। फिर भी आपके समीप ही हैं– इस बात से संतुष्ट होकर पूर्व कर्मों का फल जानकर शांत भाव से जी रहे हैं कि कभी तो पुण्य का उदय आयेगा।

आप युद्ध पर जा रहे हैं– यह सोचकर आपके प्रति प्रेम की वजह से आपके सामने अनायास आये हैं। हम आपका मंगल चाहते हैं। आपके बिना हमारा इस संसार में कोई दूसरा शरण नहीं है। उसके बाद मरण ही शरण है।

पवनंजय ने कहा– तब तो मरण की ही शरण लो। अंजना इन शब्दों को सुनकर बेहोश हो धरती पर गिर गई। पवनंजय हाथी पर सवार हो सामन्तों के साथ युद्ध के लिये गया।

शाम होने तक वे मानसरोवर तक पहुँच गये। मानसरोवर के किनारे पर सेना ठहरा दी गई।

मानसरोवर का स्वच्छ जल, उसमें खिले कमल, खेलते हंसादि को देखकर सभी प्रसन्न हो रहे थे।

पवनंजय की निगाहें भी मानसरोवर पर ही जमी थीं। शाम के समय मानसरोवर पक्षियों के कलरव से गुंजायमान था। वह कलरव मन और कान दोनों को चुरा रहा था। सरोवर के किनारे पवनंजय को एक

चकवी दिखी। वह अकेली होने से बहुत व्याकुल थी। वियोग की अग्नि से झुलस रही थी। पश्चाताप, विरह की विविध चेष्टाओं से व्याप्त थी।

वह बार-बार कमलिनी के पत्तों में चकवे को ढूँढ़ रही थी, तेजी से पंखों को फड़फड़ाती थी, बार-बार ऊपर उड़कर तथा नीचे उतरकर खेद खिन्न हो रही थी। पानी में अपने ही प्रतिबिम्ब को देख पति की आशंका से उसे बुलाती थी। उसके न आने से बहुत शोकाकुल हो रही थी। वह पति को ढूँढ़ती सरोवर के चारों ओर चक्कर लगाती, कभी ऊपर, कभी नीचे पति को तलाशते समय की उसकी करुण आवाज पवनंजय के भीतर तक चुभ गई।

वह सोच रहा था- देखो पति से बिछुड़ी चकवी की हालत कितनी दु:खदायक हो गई है। वह चकवी शोक रूपी अग्नि से जल रही है। पति के वियोग में उसे मनोहर चन्द्रमा भी दावानल के समान हो गया है।

रमणेन वियुक्ताया: पल्लवोऽप्येति खड्गताम्।
चन्द्रांशुरपि वज्रत्वं, स्वर्गोऽपि नरकायते॥

अर्थ- पति से रहित स्त्रियों के लिये कोंपल भी तलवार का काम करती है, चन्द्रमा की किरण वज्र बन जाती है और स्वर्ग भी नरक जैसा बन जाता है।

सच है पति के बिना विवाहिता का जीवन क्या है?

इसी मानसरोवर के किनारे पर अंजना-पवनंजय का विवाह हुआ था। उसे उन दृश्यों की यादें ताजा हो गईं। अंजना की याद उसे सताने लगी। वह सोच रहा था-

मुझ दुष्ट पापी ने कैसा घोर अपराध किया अंजना के प्रति। सखी के कहने से मैंने क्यों उसे छोड़ दिया? बिना विचारे काम करने वाले मुझ जैसे मूर्खों के लिये धिक्कार हैं। जो बिना कारण ही लोगों को दु:खी करते हैं मैं कितना दुष्ट, कितना क्रूर हूँ?

उसे अंजना की याद तड़फाने लगी। तब वह सोच रहा था कि मैं उसे कैसे मिलूँ?

पिता से पूछकर घर से निकला हूँ इसलिये अब लौटकर अंजना के पास कैसे जाऊँ? उससे मैंने ऐसी बात कही है कि मेरे युद्ध से लौटते तक तो मर ही जायेगी। मैं क्या करूँ?

मित्र प्रहसित से ही इसका समाधान पूछता हूँ। इतने में प्रहसित ही वहाँ आया। उसने पवनंजय से पूछा- मित्र! मानसरोवर जैसे रमणीय स्थान पर उदास क्यों हो?

उत्तर में पवनंजय ने कहा- अपने आँसू रूपी जल से जिसने प्रेम वल्लरी को सींचा, उस अभागन अंजना के प्रति मुझ से नादानी में घोर अपराध हो गया आज तो उस अपमान की हद हो गई। परन्तु अब मुझे उसकी याद सता रही है। मैंने अज्ञान में उसका बाईस वर्ष तक अनादर किया है। लेकिन अब उसे देखे बिना एक पल भी जीवित नहीं रह पाऊँगा।

कुछ ऐसा करो कि इसी समय हम दोनों का मिलन हो, नहीं तो हम दोनों का मरण तय है।

प्रहसित ने थोड़ी देर सोचकर कहा- मित्र, गुरुजनों से आज्ञा लेकर पहली बार युद्ध के लिये निकले हो। इस तरह तुम्हारा लौटना ठीक नहीं है। इसके सिवाय गुरुजनों के समक्ष तुमने कभी अंजना को अपनाया नहीं इसलिये अंजना को यहाँ नहीं ला सकते। इसलिये अच्छा यही होगा कि तुम्हें गुप्त रूप से जाकर मिलकर सुबह होने से पूर्व लौट आना होगा। आप ही उसके जीवन का आधार थे, हो और रहोगे। इसलिये तुम्हें यह कार्य पहले ही करना चाहिये था। चलो, देर आये, दुरस्त आये अब जल्दी करो।

इसके बाद मुद्‌गर नामक सेनापति को सेना की रक्षा का भार देकर मेरु की वंदना के बहाने दोनों मित्र वहाँ से अंजना के पास आये। प्रहसित ने वसन्तमाला सखी के द्वारा पवनंजय के आने की सूचना अंजना के पास भिजवाई।

अंजना सोच भी नहीं पा रही थी कि ऐसे कैसे हो गया? पवनंजय ऐसे कैसे आ गये? वसंतमाला कुछ जवाब दे पाती उससे पहले प्रहसित ने आकर कहा- भाभीजी, यह सच है, पवनंजय भैय्या आपसे मिलने आये हैं। आपकी दु:ख की घड़ियाँ बीत गई हैं पुण्य के पल आये हैं।

अंजना ने कहा- यह वैसे ही असंभव है जैसे बादल बिन वर्षा। फिर भी प्रहसित, प्राणनाथ आये हैं तो मैं उनका स्वागत करूँगी। पूर्वोपार्जित पुण्यवृक्ष आज फलीभूत हुआ है तो क्यों न मैं स्वामी का सत्कार करूँ?

बाहर रहकर इन शब्दों को सुनने वाले पवनंजय से रहा नहीं गया, वे तुरंत अंजना के पास आये। कहने लगे- ''देवी! आपका सबसे बड़ा अपराधी आपके चरणों पर पड़ा है, उसे क्षमा कर दीजिये।'' यह कहकर पवनंजय अंजना के चरणों पर झुक गये।

अंजना पवनंजय के व्यवहार से अचम्भित हो तुरंत पीछे हट गई। कहने लगी-

प्राणनाथ, आपका स्थान पहले भी हृदय में था, आज भी है, कल भी रहेगा। आपके चरणों में ही हम संतुष्ट हैं। जो भी अब तक घटा, उसमें आपका दोष नहीं। हमने ही जाने-अनजाने में पूर्व जीवनों में कई गलतियाँ की थीं उन्हीं का प्रतिफल था। उठिये हमें ही आपके चरणों में शरण दीजिये। हम इस बात से प्रसन्न हैं कि हमारे पापकर्म के दिन बीत गये हैं। आप आज्ञा दीजिये यह दासी आपके लिये क्या करे?

पवनंजय- ''धन्य हो सती, धन्य हो अंजने'' हमने आपको समझने में कितनी बड़ी भूल की है।

अंजना- नहीं नाथ, इसमें आपकी भूल नहीं है। इसमें हमारे पूर्वकर्म का उदय ही कारण है आप नहीं।

पवनंजय की आँखें आँसुओं से भर आईं। पवनंजय के आँसू पोंछती हुई अंजना खुद फफककर रो पड़ी। रोने का आवेग कम होने पर अंजना ने फिर पूछा - नाथ, आज आपको हमारी याद कैसे आई?

पवनजय- अंजना, आज हमने एक चकवी को तड़पते देखा जिससे आपकी याद आई, आपसे मिलने आये। अब हम आपके बिना एक पल भी नहीं रह सकेंगे। हम सबके सामने यहाँ से गये थे। सबके

सामने लौटते तो लोग उल्टा अर्थ निकालते इसलिये सेनापति से मेरु पर्वत की वंदना का बहाना कर यहाँ चोरी-छिपे मिलने आये हैं।

दोनों ने रात भर बातें कीं। सुबह होने को आयी तब प्रहसित ने आकर कहा- मित्र सुबह होने वाली है, जल्दी चलो। नहीं तो सबका सामना करना पड़ेगा जिससे बुरी फज़ीहत होगी। इसलिये अब देर मत करो, जल्दी चलो।

पवनंजय, अंजना का साथ नहीं छोड़ना चाहते थे। तब अंजना ने ही कहा- हे स्वामी, प्रहसित सही कह रहे हैं। जाइये, कुछ दिनों की ही तो बात है। जहाँ बाईस वर्ष बीत गये जिनमें मिलन की आस ही हमने छोड़ दी थी। अब तो आपके प्रेम के सहारे पूरा जीवन बिता सकती हूँ।

पवनंजय- अंजना, मन घबरा रहा है। आपको छोड़ने का मन नहीं हो रहा है।

अंजना- फिर भी नाथ, जाना तो पड़ेगा ही। परंतु जल्दी आइये क्योंकि आपके इस तरह के आने का पता सिर्फ आपको, मुझे, प्रहसित और वसंतमाला को ही है। यदि कुछ अनहोनी होगी तो कौन विश्वास करेगा क्योंकि सब यही जानते हैं कि आप हमसे नफरत करते हैं। यह कोई नहीं जानेगा, आप पहले जैसे नहीं रहे, हमसे ही प्रेम करते हैं। इसलिये कुछ ऐसा कर जाइये जिससे अनहोनी होने पर लोग हमारा विश्वास करेंगे।

पवनंजय- अंजना वैसे तो हम बहुत ही जल्द आपके पास आयेंगे। सबको विश्वास दिलायेंगे कि हम आपसे ही प्रेम करते हैं। फिर भी कदाचित अप्रसंग आ जायें, तो हम अपना कड़ा आपको देते हैं इसे दिखाने पर सब आपका विश्वास करेंगे।

यह कहकर पवनंजय ने अपना कड़ा उतार कर अंजना को निशानी के तौर पर दिया। पुन: जल्दी मिलने के आश्वासन के साथ जाने लगे।

अंजना ने जाते हुये पवनंजय से कहा- हे नाथ! भूलिये मत, आप ही हमें शरण हैं, जल्दी विजयी होकर लौटिये। हम मंगल कलश लेकर आपकी सबके सामने आरती उतारेंगे।

पवनंजय- ''ऐसा ही होगा, विश्वास कीजिये'' ऐसा कहकर पवनंजय चले गये।

अंजना बहुत देर तक पवनंजय को नम आँखों से देखती रही। आज वह प्रसन्न थी। आज जीवन की साधना फलीभूत हुई थी। उस दिन से वह प्रसन्न रहने लगी। उसकी प्रसन्नता देखकर सास केतुमती उससे ईर्ष्या करने लगी थी। उसे लग रहा था कि मेरा बेटा युद्ध में जीवन से संघर्ष कर रहा है- यह दु:खी होने की बजाय प्रसन्न क्यों हो रही है?

कुछ दिन यूँ ही बीत गये। युद्ध लंबा चला। पवनंजय नहीं आ पाये।

इधर अंजना के गर्भ रह गया था। वह बढ़ने लगा। उसके लक्षण दिखाई देने लगे। शरीर गौर वर्ण हो गया। गति धीमी हो गई। शरीर में आलस्य रहने लगा।

गर्भ के लक्षण सास केतुमती से छिपे नहीं रह सके। उसने ईर्ष्या और क्रोध से भरकर अंजना से कहा– मेरा पुत्र तुझसे नफरत करता है– यह सारी दुनिया जानती है। फिर ये लक्षण क्यों है? कुलटा, नीच, कलमुँही, बता– यह पाप तुझमें कहाँ से आया?

अंजना ने केतुमती से पवनंजय के आने की सारी कहानी रोते–रोते बतायी, निशानी के तौर पर कड़ा भी दिखाया।

पर केतुमती ने उसकी एक भी नहीं सुनी। कड़े पर विश्वास नहीं किया। वसन्तमाला ने भी अनेक कसमें खाकर सारी हकीकत बतायी। पर केतुमती का रोम–रोम ईर्ष्या और क्रोध से भरा था। उसने सेवक को बुलाकर कहा– इसे अभी के अभी, इसके पिता राजा महेन्द्र के पास बिना देर किये छोड़कर आ।

सेवक पराधीन होते हैं, यह जान सेवक अंजना को उसकी सखी के साथ लेकर चला गया। राजा महेन्द्र के नगर तक पहुँचकर उसने अंजना से रथ से उतरने के लिये कहा। अंजना के रथ से उतरने के बाद कहा– हे देवी, हम आपका विश्वास करते हैं। पर हम तो पापकर्म के उदय से नौकर हैं। आपको यहीं तक छोड़ने की आज्ञा थी, हमें तो आज्ञा का पालन करना पड़ता है हमें क्षमा कर दीजिये।

अंजना बोली– भाई, इसमें आपका दोष ही क्या है? आपकी जगह कोई भी होता तो वह भी यही करता। आप जाइये। हमारे मन में आपके प्रति कोई द्वेष नहीं है। आपकी परिस्थिति को हम समझते हैं। आप शांत मन से जाइये, हमें अपने कर्मों के सहारे छोड़ दीजिये।

रथ से जाते समय सेवक ने कहा– बेटी, धैर्य मत खोना सब ठीक हो जायेगा।

सेवक के जाते ही शाम हो गई। पिता का घर दूर था, रात हो रही थी, सुबह घर जाऊँगी यह सोच भूख प्यास की चिंता छोड़। अपवाद, निंदा के चक्र में फँसी अंजना ने सारी रात पेड़ के नीचे ही सखी के सात बितायी।

सुबह होने पर सखी के साथ पिता राजा महेन्द्र के पास पहुँची वहाँ दरवाजे पर खड़ा द्वारपाल उसे पहिचान नहीं पाया। उसने उसे दरवाजे के भीतर प्रवेश नहीं करने दिया। **पापकर्म के उदय ने उसे अपने ही घर में प्रवेश नहीं करने दिया।** जैसे–तैसे पिता के पास पहुँची, अभिवादन के बाद उसने सारी घटनाएँ बतायीं।

परंतु अंजना के पाप के उदय से राजा महेन्द्र ने भी उस पर विश्वास नहीं किया। महोत्साह नाम के सामन्त ने राजा महेन्द्र को समझाने का प्रयास किया कि–

अंजना, सचमुच ही कुलटा होती तो आपके पास शरण क्यों माँगती? वह ऐसी नहीं है– ऐसा आप भी जानते हैं। वह गर्भवती है उसे शरण दीजिये। पवनंजय के युद्ध से लौटते ही सच झूठ का फैसला हो जायेगा तब निर्णय कीजिये। आपको छोड़ यह बेचारी कहाँ जायेगी? इसलिये इसे शरण दीजिये, सन्तान के जन्म होने तक रख लीजिये। संतान के जन्म के बाद उसे रखने या नहीं रखने का निर्णय लीजिये। हो

सकता है, इसने और वसन्तमाला ने जो बताया, वही सत्य हो, चूँकि आप केतुमती की बातों पर मुहर लगा रहे हैं और अंजना को चरित्रहीन सिद्ध कर रहे हैं। इसलिये हमारा निवेदन है कि सोच समझकर निर्णय कीजिये। आप केतुमती के स्वभाव को भी जानते ही हो।

महोत्साह सामन्त की बातों का राजा महेन्द्र के विचारों पर कोई असर नहीं हुआ। उन्होंने प्रसन्नकीर्ति पुत्र को बुलाकर कहा– इस पापिनी को नगर से शीघ्र ही निकाल दो।

अंजना ने कहा– पिताजी, सासुमाँ ने बिना विश्वास किये मुझे छोड़ दिया। वह तो परायी है पर मैं तो आपके गोद में पली–बढ़ी हूँ, पिताजी मैं आपसे सच कह रही हूँ– स्वामी आये थे, अकेले में चुपचाप, क्योंकि वे सबके सामने गये थे, इसलिये चुपके से आये थे, देखिये यह कड़ा है। मेरा, अपनी बेटी का विश्वास कीजिये, मैं पंचपरमेष्ठी की शपथ लेकर कहती हूँ, मैं सच कह रही हूँ, मैं झूठ बोलूँ तो मुझे नरक मिले।

राजा महेन्द्र ने कहा– बेटी, हृदय तो सच मान रहा है पर बुद्धि स्वीकार नहीं कर रही है। आपकी वजह से हमारी बदनामी न हो, इसलिये बेटी, चली जाओ।

अंजना– पिताजी, इस गर्भ पर तो रहम कीजिये।

राजा महेन्द्र– बेटी सारी समस्या की जड़ यह गर्भ ही है, उसका ही तो विश्वास नहीं हो रहा है, इसलिये तो हम ऐसा कह रहे हैं।

अंजना– ठीक है पिताजी जब आपको ही विश्वास नहीं है तो औरों के बारे में क्या कहूँ? कर्म जो दिन दिखायेगा उन्हें शांति से बिताऊँगी।

निराश होती हुई अंजना जंगल की ओर चली गई। उसके साथ वसंतमाला, गर्भ और पूर्वकर्म थे। दोनों सखियों ने ऐसे घने जंगल में प्रवेश किया, जहाँ मनुष्य तो दूर उसकी आकृति भी नहीं दिखती थी। वह सोच रही थी– देखो कर्म का प्रहार, प्रत्यक्ष सत्य भी उसके सामने झूठा साबित हुआ। नाथ भी भूल गये, सासुमाँ ने, जन्मदात्री माँ ने, पिताजी ने किसी ने भी विश्वास नहीं किया। हाय रे कर्म तुम्हारी लीलाएँ हैं निराली। इसमें किसी का क्या दोष? अपने पूर्वकर्म ही सब खेल दिखाते हैं।

अंजना के विलाप को देखकर वसन्तमाला भी फूट–फूटकर रोने लगी। उसने रोते हुये ही कहा– हे स्वामिनी, रोइये मत। पूर्व उपार्जित कर्म उदय में आया है, उसे रोकर नहीं, आँख बंद कर शांति से सहन करें तो ठीक रहेगा।

सर्वेषामेव जन्तूनां पृष्ठतः पार्श्वतोऽग्रतः।
कर्म तिष्ठति यद्देवि तत्र कोऽवसरः शुचः॥

अर्थ– हे देवी, सर्व प्राणियों के आगे, पीछे, बगल में कर्म ही विद्यमान हैं तब यहाँ शोक का अवसर कहाँ है?

अप्सर: शतनेत्रालीनिलयीभूतविग्रहा:।
प्रापुनुवन्ति परं दु:खं सुकृतान्ते सुरा अपि।।

अर्थ– जिनके शरीर को अप्सराओं के सैकड़ों नेत्र ताकते रहते थे, ऐसे देव भी पुण्य का अंत होने पर गहरे दु:ख को प्राप्त हो जाते हैं।

चिन्तयत्यन्यथा लोक: प्राप्नोति फलमन्यथा।
लोकव्यापारसक्तात्मा परमो हि गुरुर्विधि:।।

अर्थ– लोग अन्यथा सोचते हैं और अन्यथा ही फल प्राप्त करते हैं। वास्तव में लोगों में कार्य पर दृष्टि रखने वाला विधि (कर्म) ही परम गुरु है।

हितंकरमपि प्राप्तं विधिर्नाशयति क्षणात्।
कदाचिदन्यदा धत्ते मानसस्याप्यगोचरम्।।

अर्थ– कभी तो कर्म प्राप्त हुई हितकारी वस्तु को क्षण भर में नष्ट कर देता है और कभी ऐसी वस्तु लाकर सामने रख देता है, जिसकी मन में कल्पना नहीं की थी।

हे मालकिन, कर्मों की दशाएँ बड़ी विचित्र हैं, उनका पूर्ण निश्चय कौन कर पाया है? इसलिये पंचपरमेष्ठी और अपनी आत्मा की शरण लीजिये और शांत रहिये। दु:खी होकर गर्भ को दु:ख मत पहुँचाइये।

हे देवी, दाँतों से दाँतों को दबाकर, मन को पत्थर के समान बनाकर निज शुद्धात्मा की शरण लेकर जिनका टलना अशक्य है, ऐसे स्व–उपार्जित कर्म का फल सहन कीजिये।

आप स्वयं तत्त्वज्ञान से विशुद्ध हृदयवाली हों, आप को उपदेश देना निंदा के समान है। परंतु आप से स्नेह ही मुझे मुखर कर गया, क्षमा कीजिये।

यह कहकर वसन्तमाला ने काँपते हाथों से अंजना के आँसू पोंछे।

फिर कहा– सखी, यह स्थान ठीक नहीं है, हम पर्वत के पास चलते हैं। वहाँ किसी ऐसी गुफा का आश्रय लेंगे, जो गर्भ की भलाई के लिये ठीक रहेगा।

यह सोच दोनों सहेलियाँ पर्वत की ओर गईं।

पर्वत के पास एक सुंदर गुफा दिखाई दी। गुफा में उजाला दिखाई दे रहा था। जब वे गुफा के द्वार पर गईं तब उन्हें निर्मल शिला पर **पर्यङ्कासन से विराजमान ऋद्धिधारी मुनिराज** दिखाई दिये। मुनिराज को देखते ही दोनों सहेलियाँ अपनी पीड़ाएँ भूल गईं, आनंद–उत्साह से भर गईं। मुनिराज की दृष्टि नासाग्र थी, श्वास निश्चल, नियमित था। उनका शरीर शिथिल होने पर भी सीधा था, वे ठूँठ के समान हलन–चलन से रहित थे।

दोनों ने उत्साह से मुनिराज को नमस्कार कर तीन प्रदक्षिणाएँ दीं। सामने जाकर बैठ गईं।

उसी समय मुनिराज का ध्यान टूटा। अंजना ने मुनिराज से कुशलता पूछी। मुनिराज ने अमृतमयी वाणी में कहा– बेटी, कर्मप्रभाव से हम कुशल हैं। यह सब कर्मों की चेष्टाएँ हैं। देखिये, कर्मों की लीला, राजा महेन्द्र की पुत्री, राजा प्रह्लाद की पुत्रवधु राजकुमार पवनंजय की धर्मपत्नी निरपराधिनी होते हुये भी घर से निकाली जाकर घोर अनादर को प्राप्त हुई है।

बिना कहे मुनिराज के मुँह से अपना परिचय सुनकर अंजना अचम्भित हो गई। वसन्तमाला भी सखी का परिचय सुन भौंचक्की रही। उसने मुनिराज से पूछा– हे नाथ, आप त्रिकालदर्शी हैं, हे स्वामी, यह कौन अभागा जीव इसकी कुक्षि में है? मेरी सहेली स्वामिनी किस कारण से पति से अलग रह रही है? किस कारण से वही पति अब उससे अनुराग करने लगा? किस कारण से इस महावन में दुःख को प्राप्त हुई है?

तब अवधिज्ञानी ऋद्धिधारक मुनिराज ने कहा–बेटी, यह सब पूर्वोपार्जित कर्मों का फल है। सबसे पहले इस गर्भ के जीव के बारे में बताता हूँ।–

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के मन्दर नाम के नगर में एक प्रियनंदी नाम का गृहस्थ था, उसकी जया नाम की पत्नी थी तथा दमयन्त नाम का बेटा था।

एक बार वसन्त उत्सव मनाने नगर निवासी उद्यान में गये थे। दमयन्त भी गया था। उद्यान में एक स्थान पर दमयन्त को मुनिराज दिखाई दिये। वह मुनिराज के पास जाकर नमस्कार कर बैठ गया। आचार्य श्री से उपदेश सुना। उसने सम्यग्दर्शन धारण किया। नियम लिये। समाधिपूर्वक देह छोड़कर स्वर्ग में देव बना

वहाँ से आकर जम्बूद्वीप के मृगांक नामक नगर में राजा हरिचंद्र और प्रियंगुलक्ष्मी नामक रानी से सिंहचन्द्र नाम का पुत्र बना। उस पर्याय में भी वह मुनियों से उपदेश पाकर नियम संयम से जीवन बिताकर स्वर्ग में देव बना।

वहाँ से आकर भरतक्षेत्र के विजयार्ध पर्वत पर अरुण नाम के नगर में राजा सुकण्ठ की कनकोदरी नामक रानी से सिंहवाहन नाम का पुत्र बना। एक दिन **लक्ष्मीतिलक नाम के मुनि** का उपदेश सुनकर वैराग्य पाकर उसने दीक्षा ली। उसने ऐसा कठोर तप किया कि सामान्य मनुष्य जिसका विचार भी नहीं कर सकते थे, वह सदा रत्नत्रय के प्रभाव से परमार्थता को धारण करता था। नाना प्रकार की ऋद्धियाँ धारण करने पर भी उस ओर ध्यान नहीं देता था। आत्मध्यान में लीन रहकर देह छोड़कर लान्तवस्वर्ग में उत्कृष्ट ऋद्धिधारी देव बना।

स्वर्ग का वही जीव इस समय अंजना के गर्भ में है। यह जीव इतना भव्य है कि यह इसी भव से निर्वाण को प्राप्त होगा। यह चरमशरीरी जीव है। यह कामदेव है और अनेक वैभवों का स्वामी बनेगा। इसके पराक्रम को देवता भी खण्डित नहीं कर पायेंगे। इसके कारण तुम संसार में प्रसिद्ध हो जाओगी।

अब अंजना के दुःखों का कारण सुनो–

यह अंजना पूर्व-पर्यायों में एक बार कनकोदरी नाम की राजा सुकण्ठ की पटरानी थी। इसी राजा की एक लक्ष्मी नाम की पत्नी थी; लक्ष्मी की आत्मा सम्यग्दर्शन से पवित्र थी। सदा देव, शास्त्र, मुनियों की पूजा करने में तत्पर रहती थी। लक्ष्मी ने महल के एक भाग में जिन चैत्यालय बनवाया था। उस चैत्यालय में वह प्रतिदिन पूजन, भक्ति करती थी।

कनकोदरी पटरानी थी वह उसकी जिनभक्ति से चिढ़ती थी। ईर्ष्या से भरी रहती थी। एक दिन उसने जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा को जिनालय के बाहर फिंकवा दिया।

संयोग से उसी समय **संयमश्री** नाम की आर्यिका ने भिक्षा के लिये कनकोदरी के महल में प्रवेश किया। तप के कारण संयमश्री की चारों ओर प्रसिद्धि थी। संयमश्री आर्यिका को जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा के अनादर से बहुत दुःख हुआ। उन्होंने उसी समय आहार-जल का तब तक के लिये त्याग कर दिया जब तक भगवान की प्रतिमा का अनादर दूर नहीं होता।

कनकोदरी के जीव को मिथ्यात्व से ग्रस्त देखकर संयमश्री आर्यिका ने उसे उपदेश दिया। उन्होंने कहा- हे रानी! पुण्य के उदय से आप राजा की पटरानी हो, राजा तुम्हारा सम्मान करता है, इसका अर्थ यह नहीं है कि आप दूसरों से ईर्ष्या करो। अभिमान धारण करो। **मिथ्यात्व के कारण यह जीव संसार में भटकता है। मिथ्यात्व के कारण दुःख उठाता है।** आपका जीवन कितना-सा है? ऐसे कार्य करके अगली पर्याय में कहाँ जाओगी? आगामी दुःखों से डरो। मिथ्यात्व को शीघ्र छोड़ो।

आपने भगवान के अनादर का कार्य किया है, उसके फल में तुम्हें नरक-निगोद में बहुत दुःख उठाना पड़ेगा, क्योंकि

कृताथोऽपि ये सन्तो भवदुःखमहार्णवात्।
तारयन्ति जनान् भव्यानुपदेशविधानतः।।

उत्तमोत्तमतां तेषां विभ्रतां धर्मचक्रिणाम्।
अर्हतां ये तिरस्कारं प्रतिबिम्बस्य कुर्वते।।

जन्तूनां मोहिनां तेषां यदनेकभवानुगमम्।
दुःखं संजायते कस्तद्वक्तुं शक्नोति कात्स्र्न्यतः।।

अर्थ- जो स्वयं कृतकृत्य होकर भी उपदेश देकर संसार के जीवों को संसाररूपी सागर से पार ले जाते हैं, जो परमोत्कृष्ट हैं, धर्मचक्र के प्रवर्तक हैं, ऐसे अर्हन्त भगवान की प्रतिमा का जो अनादर करते हैं ऐसे मोही जीव अनेक भवों/जन्मों तक घना दुःख पाते हैं, उस दुःख को बता सकने में कोई समर्थ नहीं है।

इसलिये हे कनकोदरी! अपने पाप का प्रक्षालन करो।

संयमश्री के सम्बोधन से कनकोदरी अपने पाप के फल को सुनकर डर गई। उसने प्रतिमा को समारोह पूर्वक पूर्व स्थान पर विराजमान कराया। भगवान की महापूजा करायी। व्रत, नियम धारण किये। उसने अपना मन धर्म की ओर मोड़ा।

आर्यिका संयमश्री कनकोदरी को धर्म में दृढ़ देखकर संतुष्ट होकर वहाँ से विहार कर गई।

कनकोदरी ने पुण्यकार्य करते हुये देह छोड़ी। मरकर स्वर्ग में देवी बनी।

वहाँ से आकर राजा महेन्द्र और रानी हृदयवेगा की अंजना नाम की पुत्री बनी।

जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा के अनादर का पाप अब भी अवशिष्ट है, अत: बार-बार घोर दु:खों को प्राप्त हो रही है। परंतु वह पाप अब समाप्त होने को है, अत: शीघ्र ही सुख को प्राप्त होगी, धैर्य रखो।

यानि यानि च सौख्यानि जायन्ते चात्र भूतले।
तानि तानि हि सर्वाणि जिनभक्ते: विशेषत:।।

अर्थ– इस पृथ्वीतल पर जो-जो सुख प्राप्त होते हैं वे सब मुख्य रूप से जिनेन्द्र भगवान की भक्ति से ही प्राप्त होते हैं।

इसलिये सदा जिनभक्ति में सावधान रहो।

मुनिराज के अमृत-उपदेश से संतुष्ट मनवाली दोनों सखियों ने मुनिराज को बार-बार नमस्कार किया।

मुनिराज आकाशमार्ग से चले गये। मुनिराज उस गुफा में पर्यङ्कासन से विराजमान थे, अत: वह गुफा ''**पर्यङ्गुफा**'' नाम से प्रसिद्ध हुई।

मुनिराज के निवास से पवित्र हुई उस गुफा में प्रसवकाल की प्रतीक्षा करती हुई दोनों सखियाँ सुख से रहने लगीं। वसन्तमाला विद्या के बल से अंजना के लिये आहार की व्यवस्था करती थी।

एक दिन शाम के समय एक भयंकर विकराल शेर आ गया। उसने दहाड़े मारीं, उसकी आवाज से जंगल में हलचल बढ़ी। अंजना, उसकी सहेली दोनों घबड़ाकर रोने लगीं। अंजना ने उसी समय नियम लिया कि–

''यदि इस उपसर्ग में जीवित बचूँगी तो शरीर और आहार ग्रहण करूँगी अन्यथा नहीं।''

दोनों सखियों के हृदय भय से जर्जर हो गये थे। उनके शरीर दूजने लगे थे। आँखों से आँसू निकल रहे थे। उनको ऐसी भयभीत मुद्राओं में देखकर गुफा में रहने वाले **मणिचूल** नाम के गंधर्वदेव को उन पर दया उत्पन्न हुई। उस गंधर्व की पत्नी, जिसका नाम **रत्नचूला** था, उसे उन दोनों पर अधिक दया आयी, तब उसने पति से कहा–

हे देव, देखो तो इन पर कैसा संकट आया है? ये कुलवती, शीलवती नारियाँ हैं, इनकी शीघ्र सहायता कीजिये। हे नाथ मुझ पर कृपा कर इनकी विपत्ति दूर कीजिये। सिंह और अंजना के बीच सिर्फ तीन हाथ का अंतर रह गया है। जल्दी कीजिये।

मणिचूल गंधर्वदेव ने तुरन्त ही विक्रिया से अष्टापद पशु का रूप बनाया और शेर के सामने खड़ा हो

गया। इधर अष्टापद पशु और शेर में भयंकर युद्ध हो रहा था। उधर अंजना पञ्चपरमेष्ठी के ध्यान में लीन हो गई।

देखते ही देखते अष्टापद ने शेर को घायल कर भगा दिया और स्वयं भी अन्तर्धान हो गया।

हे लोगों! देखो जहाँ जीवन और मरण के बीच तीन हाथ का ही अंतर रह गया था, वहाँ पुण्य के उदय से देवता ने सहायता कर जीवन की विजय करायी। सच में सब पुण्य–पाप के खेल हैं।

शेर के जाने के बाद वसन्तमाला ने ध्यान में लीन सखी को सम्भाला और कहा– देख सभी **भव्य जीवों को पुण्य के उदय से वन में भी मित्र मिल जाते हैं।**

दोनों सखियों ने चैन की लंबी साँस ली।

संकट दूर करने पर गंधर्वदेव की पत्नी रत्नचूला ने कहा– हे देव! इस खुशी के अवसर पर मैं गीत गाना चाहती हूँ।

गंधर्व ने कहा– ठीक है, मैं वीणा आदि बजाकर आपका साथ देता हूँ, आप गाइये।

रत्नचूला ने मंजीरी बजाते हुये गीत गाना प्रारंभ किया। गंधर्व ने विक्रिया के द्वारा तबला, बाँसुरी आदि अनेक बाजे बजाने प्रारंभ किये। वह गाना इतना सुरीला था कि वीतरागी को भी एक बार राग उत्पन्न हो जाये। वह गीत जिनेन्द्र भगवान की भक्ति का गीत था। दोनों सखियों के कानों में गीत ने मानो अमृत घोल दिया।

दोनों सखियों ने प्रसव तक गुफा में रहने का निश्चय किया ही था। वहीं मुनिसुव्रतनाथ भगवान की प्रतिदिन पूजन करती थीं।

मणिचूल गंधर्व और रत्नचूला गंधर्वदेवी हर समय उनकी सहायता करते थे। प्रतिदिन रात्रि को उनको जिनेन्द्र भगवान की भक्ति सुनाते थे, उनके सभी दिन आराम से बीत गये।

योग्य समय पर अंजना ने पुत्र को जन्म दिया। बालक के शरीर की चमक से गुफा का अँधेरा नष्ट हुआ, चारों ओर तेज प्रकाश फैल गया। मानो गुफा ही स्वर्ण की हो गई हो।

यद्यपि ये खुशी के पल थे पर अंजना दोनों कुलों को याद कर पुत्र को गोद में ले रोने लगी। उसने नवजात पुत्र से कहा–

हे पुत्र! देख तेरे दादा, नाना बड़े–बड़े राजा हैं। उनके महलों में तेरा जन्म होता तो तेरे जन्म का बहुत बड़ा उत्सव मनाते, पूजा–अर्चना करते, खूब दान देते। पर तुम्हारा जन्म तो ऐसी जगह हुआ है कि मैं अभागन तुम्हारा जन्मोत्सव भी मना नहीं पा रही हूँ। तुम्हारे जैसे सुंदर रूप को देखकर किसे खुशी न मिलती? हे बेटा! ऐसे घने जंगल में मैं साधनहीन हूँ।

हे पुत्र! जीवन का जहाँ संशय है– ऐसे जंगल में मैं जीवित हूँ– यह तुम्हारे पुण्य के कारण ही, तू धर्म के साथ पूर्ण आयुष्य जी– यही मेरा आशीर्वाद है। ऐसी अनेक बातें कहकर वह रोने लगी।

उसी समय उन्हें आकाश में एक रुका हुआ विमान दिखाई दिया। विमान को देख अंजना डर गई। सोचने लगी– यह कौन शत्रु है, जो पुत्ररूपी मेरे सुख को छीनने आया है। या कोई मेरा भाई आया है! यह सोच वह विलाप करने लगी। घने जंगल में स्त्री के रोने का शब्द सुनकर उस विमान से उतरकर एक विद्याधर मनुष्य अंजना की ओर बढ़ा वह और डर गई, विद्याधर के साथ उसकी पत्नियाँ भी थीं।

वसन्तमाला ने डरते हुये उसका स्वागत किया। पास की शिला पर बैठकर उसने वसन्तमाला से पूछा– बेटी ये दुखियारी कौन है? इस जंगल में कैसे, क्यों आई है?

वसन्तमाला ने अंजना की सारी हकीकत उससे कही।

तब उस विद्याधर ने भी अपना परिचय देते हुये कहा– बेटी, मेरे पिता का नाम विचित्रभानु है और माँ का नाम सुंदरमालिनी है। मेरा नाम **प्रतिसूर्य** है। मैं हनुरूह द्वीप का राजा हूँ। यह दुःखियारी कोई और नहीं बल्कि मेरी सगी भानजी है। फिर उसने अंजना को उसके बचपन की सारी घटनाएँ एक–एक कर याद दिलायी। पूर्ण विश्वास होने पर अंजना मामाजी के गले मिलकर खूब रोई। उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि इतने लम्बे समय के बाद मामा से इस तरह मिलन होगा। प्रतिसूर्य को भी अंजना की हालत देखकर रोना आया। प्रतिसूर्य के आँसू देखकर सभी रोने लगे। रोने के आवेग के रुकने के बाद उनमें बहुत–सी बातें हुईं।

अंजना ने मामा से पूछा– मामाजी, इस पुत्र के ग्रह योग कैसे हैं?

प्रतिसूर्य के साथ पार्श्वग नाम के ज्योतिषी थे। उनसे पूछा, वसन्तमाला ने उसके जन्म का समय बताया कि जब रात समाप्त होने में आधा प्रहर बाकी था तब इसका जन्म हुआ है।

पार्श्वग ज्योतिषी ने कहा– आज **चैत्र कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि है,** श्रवण नक्षत्र है, आज के दिन का स्वामी सूर्य है– इत्यादि ज्योतिषीय बातें कह कर बताया कि

यह बालक सभी ऋद्धि–सिद्धियों का स्वामी होगा, महान् पराक्रमी होगा, परम–सुख निर्वाण को प्राप्त होगा।

प्रतिसूर्य ने एक हजार स्वर्ण मुद्राएँ देकर ज्योतिषी का सम्मान किया। अंजना से कहा– बेटी हनुरूह द्वीप चलो वहीं इस बालक का जन्मोत्सव मनायेंगे।

अंजना ने पुत्र को गोद में लेकर जिनेन्द्र भगवान का स्मरण कर गुफा के स्वामी गंधर्वदेव से बार–बार क्षमा–याचना की। उसने गंधर्वदेव से कहा– हे देव, आपको हमारे कारण बहुत कष्ट हुआ है। हमें क्षमा कर दीजिये। गंधर्वदेव से क्षमा–याचना के बाद सब के साथ विमान पर बैठ गई।

वे सब विमान से उड़े ही थे कि मुस्कुराता बालक माँ की गोद से उछल कर विमान से नीचे गिर गया। अंजना के तो मानो प्राण ही निकल गये। प्रतिसूर्य आदि सभी घबरा गये। अंजना ऐसी रोने लगी कि तिर्यञ्चों को भी रोना आये। प्रतिसूर्य ने तुरंत विमान नीचे उतारा।

नीचे आकर सभी हक्के-बक्के रह गये, क्योंकि बालक जिस शिला पर गिरा, उस शिला के कई टुकड़े हो गये पर बालक को खरोंच भी नहीं आयी थी। बालक मुँह में अँगूठा देकर मुस्कुराते हुये खेल रहा था। अंजना ने लपककर बालक गोद में उठा लिया उसका मस्तक चूमकर उसे गले लगाया।

राजा प्रतिसूर्य ने कहा- देखो कितने आश्चर्य की बात है कि वज्र जैसी शिलाएँ टुकड़ों में तब्दील हो गई, पर बालक को कुछ भी नहीं हुआ। जन्मते बालक में ऐसी शक्ति है, जवान होने पर तो कहना ही क्या? निश्चित ही यह इस जीव का अंतिम शरीर है यह जीव इसी भव से मोक्ष जायेगा। बालक के जीव को चरमशरीरी, उसके शरीर को चरम शरीर जानकर राजा प्रतिसूर्य ने हाथ मस्तक से लगा तीन प्रदक्षिणाएँ देकर अपनी स्त्रियों के साथ उस बालक को नमस्कार किया। बालक ने पर्वत (शैल) में जन्म लिया, पर्वत की शिलाओं के टुकड़े किये थे, इसलिये उसका नाम "**श्रीशैल**" रखा।

हनुरूह नगर में पहुँचने पर उनका भव्य स्वागत हुआ। वहाँ पहुँचने पर बालक का जन्म महोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया। चूँकि बालक का जन्म-उत्सव हनुरुह नगर में मनाया गया, अत: वह हनुमान नाम से भी प्रसिद्ध हुआ।

उस नगर में देवकुमार की तरह लीलाएँ करने वाला सबका दुलारा वह श्रीशैल, हनुमान सबका प्यारा बना।

पूर्वजन्म के संचित पुण्यकर्म से क्या संभव नहीं है? देखो पुण्यकर्म के बल से हनुमान के जन्मते ही अंजना का उसके मामाजी से मेल हो गया, गंधर्वदेव की सहायता प्राप्त हुई। हनुरूह नगर में धूमधाम से जन्मोत्सव मनाया गया। विमान से गिरने पर शरीर की बजाय शिलाओं के टुकड़े हुये। मान, सम्मान, नाम प्राप्त हुये। सच है **पूर्व कर्म के बल से वज्र भी फूल के समान सुंदर कोमल बन जाता है। अग्नि भी जल के समान शीतल बन जाती है, सर्प भी सुंदर हार बन जाता है, विष भी अमृत बन जाता है।**

उधर अंजना से मिलकर पवनंजय सीधे रावण के पास गया था। उसने रावण की आज्ञा से वरुण के साथ युद्ध किया। युद्ध लम्बा चला था। वह वरुण को पकड़ कर लाया, उसके पास बंदी बने खरदूषण को भी छुड़ाकर लाया। रावण और वरुण के बीच सुलह करायी। रावण और वरुण दोनों ने पवनंजय का बहुत सम्मान किया।

रावण से आज्ञा लेकर पवनंजय तुरंत ही लौटे। सारे रास्ते अंजना को याद करते आये। उनके आने की खुशी में पहले से नगर सजाया गया था। सुहागनें आरती लेकर खड़ी थीं। सबसे आशीर्वाद पाते समय उनकी आँखें अंजना को ढूँढ़ रही थीं। जब अंजना नहीं दिखी तब वे उसे देखने की इच्छा से सीधे अंजना के महल में गये। महल के हर कोने में उसे ढूँढ़ा उसके नहीं दिखने पर अनहोनी की आशंका से बेहोश होकर गिरे। अंजना के महल में जाते समय प्रहसित उनके साथ था, उसने उन्हें सम्भाला। होश में आने पर प्रहसित ने पूछा- मित्र, यह क्या है?

पवनंजय ने कहा– मित्र, तुम मेरे हृदय को जानते ही हो। अंजना के नहीं दिखने से यह महल मुझे जंगल की तरह दिख रहा है, मन में बेचैनी हो रही थी, इसलिये ऐसा हुआ है।

उसी समय राजा, रानी आदि पवनंजय के पास आये। उन सबको पवनंजय के इस तरह के व्यवहार से आश्चर्य हुआ। पवनंजय ने अंजना से मिलने की बात बतायी और बताया कि अब मैं अंजना के बिना एक क्षण भी जीवित रह नहीं पा रहा हूँ। मुझे जल्दी उसका पता बताओ, वह कहाँ है?

तब रानी केतुमती ने उसे बताया कि बेटा वह गर्भवती हो गई थी, मैंने उस पर विश्वास नहीं किया, हालाँकि उसने मुझे तुम्हारे द्वारा दिये गये कड़े को दिखाया था फिर भी मैंने उस पर यकीन नहीं किया। तुम्हारे पहले के व्यवहार को ध्यान में रखकर उसे कुलटा समझा और घर से निकाल दिया। उसे उसके पिता के घर पहुँचाया था।

पवनंजय– माँ यह आपने क्या किया? मेरे आने तक तो उसको यहाँ रहने देती। अरी माँ, यदि वह ऐसी होती तो अपने आप ही चुपके से निकल जाती, आपको निकालने की आवश्यकता ही नहीं थी। माँ वह कुलटा नहीं, सती है। आपने ऐसा अपराध क्यों किया? **केतुमती–** बेटा, अनजाने में ऐसा हो गया, मैं तुमसे और परोक्ष में अंजना से भी क्षमा चाहती हूँ।

पवनंजय ने मित्र प्रहसित से कहा– मित्र, चलो, देर मत करो, यहाँ रहा नहीं जा रहा है। दोनों मित्र बिना देरी किये महेन्द्र नगर पहुँचे।

पवनंजय को आया सुन राजा महेन्द्र उपहारादि लेकर आये। उनकी अगवानी के लिये अनेक सामन्त आदि नगरवासी आये। स्वागत-सत्कार के बाद पवनंजय की निगाहों ने अंजना को खोजा। नहीं दिखी तब उन्होंने एक बालिका से पूछा– अंजना कहाँ है? क्या तुम्हें पता है?

उस बालिका ने जवाब दिया– तुम्हारी अंजना यहाँ नहीं है। यह सुनकर पवनंजय के हृदय पर मानो वज्र गिर गया, उसका शरीर ढीला पड़ गया।

उन्होंने राजा महेन्द्र से पूछा तब राजा महेन्द्र ने कहा कि बेटा हमने भी उस पर विश्वास नहीं किया। जैसा लोगों से सुना उस पर विश्वास कर बदनामी के डर से उसे शरण नहीं दी।

पवनंजय ने कहा– आप तो पिताजी थे, बचपन में वह आपके गोद में खेली, आपकी ऊँगली पकड़कर उसने चलना सीखा। उसकी तुतली बोली ने आपको प्रसन्न किया, जिसका चेहरा देखना आपको शुभ शगुन लगता था उसे आपने किस बुद्धि से शरण नहीं दी– समझ में नहीं आ रहा है। कम से कम उसके गर्भ पर तरस खाते, उसके जन्म तक इंतजार करते, मेरा इंतजार करते, बाद में उसे शिक्षा देते तो ठीक रहता, अब तो मेरा जीवन भी संशय में आ गया है। उस समय उसका जीवन भी संशय में रहा होगा। झूठे मान के लिये आपने सती का विश्वास नहीं किया। अस्तु। मित्र प्रहसित चलो, यहाँ की हवा भी मुझे चुभ रही है। चलो मेरी प्रिया को अन्यत्र खोजते हैं। न जाने वह बेचारी कहाँ? किस हाल में होगी? होगी या नहीं?

बाहर आकर पवनंजय ने कुछ गंभीर होकर कहा– मित्र, आप सूर्यपुर घर जाकर गुरुजनों को समाचार देना। मेरी वजह से आपको बहुत कष्ट उठाने पड़े हैं अब इससे ज्यादा कष्ट नहीं देना चाहता हूँ। आप जाइये घर पर मेरे समाचार देकर वहीं रहिये।

प्रहसित– नहीं, मैं आपको इस स्थिति में छोड़कर नहीं जा सकता। आपकी स्थिति इस समय बहुत दुःखदायी है, मेरा इस समय आपके साथ रहना बहुत जरूरी है।

पवनंजय– आपको मेरी कसम है आप जाइये। मुझे कर्मों के भरोसे मेरे हाल पर छोड़ दीजिये। मैं अकेले ही पृथ्वी पर भ्रमण करूँगा, उसे हर जगह ढूँढूंगा। नहीं मिलने पर अपने आपको खो दूँगा। आप जाइये, आपको मेरी कसम है।

प्रहसित– मित्र।

पवनंजय– आगे कुछ मत कहिये, जाइये, बस जाइये।

दुःखी मन से प्रहसित सूर्यपुर आया।

पवनंजय कालमेघ नामक हाथी पर सवार होकर देश देशान्तर में उसे खोजने लगा। कभी जंगल में, कभी पर्वत पर, कभी संघों में, कभी धर्मशाला आदि सभी सम्भावना वाले स्थानों पर उसे खोजने लगे। न उन्हें खाने का होश था, न पीने का, न रात को नींद, न दिन में चैन। उन्हें अपने होने का भी होश नहीं था। होश था तो सिर्फ अंजना के विषय में और कुछ नहीं, वे हर जगह उसे टटोल रहे थे, पर दुर्भाग्य देखिये कि उन्हें हर जगह निराशा ही हाथ लगी थी। अंजना के बिना मेरा जीवन, जीवन नहीं बल्कि जीते हुये मरण ही है। मेरी अंजना, कहाँ होगी? यह उन्हें समझ में नहीं आ रहा था, अनुमान नहीं हो रहा था। फिर भी उसकी तलाश जारी थी। न दिन देखा, न रात देखी निरन्तर अंजना की खोज में लग रहे। अंजना को खोजते–खोजते उनका शरीर सूख गया था, मलिन हो गया, काला पड़ गया था।

कई जगह तलाश करके अंत में **भूतरव** नाम के जंगल में पहुँच गये। वहाँ उन्होंने सोचा कि अंजना इस दुनिया में नहीं है, होती तो मिल जाती। वह मर गई होगी, मुझे भी शरीर छोड़ देना चाहिये। इसके बाद पवनंजय ने अपने कालमेघ नाम के हाथी से कहा–

हे गजराज! आपका और मेरा साथ यहीं तक था, आप जाइये। पवनंजय के बार–बार कहने पर भी कालमेघ हाथी वहाँ से नहीं गया। सच्चे मित्र की तरह पास ही रहा।

पवनंजय ने यह निश्चय किया कि यदि अंजना नहीं मिली तो मैं इसी वन में शरीर छोड़ दूँगा।

इधर प्रहसित जब सूर्यपुर गया, उसने पवनंजय के समाचार सुनाये। पवनंजय के समाचारों को सुनकर पवनंजय के माता–पिता, समस्त भाई–बन्धु परम शोक में डूब गये। केतुमती ने रोते–रोते रुँधे कंठ से प्रहसित से कहा– अपने मित्र को मौत के मुँह में छोड़कर क्यों आये हो? क्या तुम्हें उसकी जरा भी परवाह नहीं थी?

प्रहसित– नहीं, अम्बे, ऐसी बात नहीं है। मैंने उनका साथ नहीं छोड़ा। उन्होंने शपथ देकर मुझे यहाँ भेजा है और उन्होंने यह प्रतिज्ञा भी की है कि यदि मैं अंजना को नहीं देखूँगा तो अवश्य ही मृत्यु को प्राप्त हो जाऊँगा।

यह सुनकर केतुमती दहाड़ें मारकर विलाप करने लगी। केतुमती को घेरकर बैठी हुई महिलाएँ रोने लगीं। केतुमती कहने लगी–

सच को जाने बिना यह मैंने क्या किया? मैंने पतिव्रता को पापिनी समझा। मैंने अनजाने में कैसा कर्म किया है? कैसा कर्म बाँधा है? मुझ पापिनी ने बेटे और बहू दोनों के जीवन को संशय में डाल दिया है।

हाय बेटा, हे बेटी अंजना! इस अभागन को छोड़कर कहाँ गये हों? आओ बेटा आकर दर्शन दो, मुझे क्षमा करो। हे पवन! बेटा आपके बिना महल, नगर, राज्य, देश सब सूने हैं। आओ बेटा, अंजना बेटी को भी साथ ले आना। बेटा, शोक से संतप्त इस माँ को शांत करो, आप लोगों के दर्शन के बिना मैं देह छोड़ दूँगी। जल्दी आओ पुत्र, जल्दी आओ।

इस प्रकार विलाप करती हुई केतुमती को राजा प्रहलाद तसल्ली दे रहे थे। शोक के कारण उनकी आँखों से भी टप-टप आँसू गिर रहे थे। केतुमती को शांत कर राजा प्रह्लाद प्रहसित को साथ लेकर पवनंजय की खोज के लिये निकल गये। उन्होंने सभी विद्याधर राजाओं को भी साथ लिया।

वे सभी विद्याधर बड़े प्रयत्न से पृथ्वी पर पवनंजय की खोज करने लगे।

इधर प्रहलाद के दूत से राजा प्रतिसूर्य को यह समाचार मिला तो वे शोक में डूब गये। उन्होंने यह समाचार अंजना से कहा। अंजना पहले से ही दु:खी थी, अब इस समाचार से और भी अधिक दु:खी होकर विलाप करने लगी। विलाप में वह कहने लगी–

हे नाथ! आप ही तो मेरे हृदय के बंधन थे फिर निरंतर क्लेश भोगने वाली इस अबला को छोड़कर कहाँ चले गये? हे नाथ! मैं आपकी प्रतीक्षा में ही जीवित हूँ, आइये, अपने पुत्र को गोद में लीजिये, आकर अमृत तुल्य समागम पाइये। मैं विपत्ति में हूँ, आप महापुरुष हैं, मेरी विपत्ति दूर कीजिये। क्योंकि–

न त्वापन्नहितोन्मुक्ता महात्मानो भवन्ति हि।

अर्थ– महापुरुष विपत्ति में पड़े हुये प्राणियों का हित करना कभी नहीं छोड़ते।

आपके बिना मुझे इन प्राणों से क्या प्रयोजन है? मुझ अभागिनी के लिये आप कैसी दशा को प्राप्त हुये हो।

हे वसन्तमाला! देख तो मुझे विरह रूपी अंगारों की शय्या पर कैसे लेटना पड़ रहा है?

वसन्तमाला ने कहा– हे देवी! ऐसी अमांगलिक रट मत लगाओ। मुझे विश्वास है कि पवनंजय आपके पास अवश्य आयेंगे। विश्वास करो, धैर्य रखो, विलाप मत करो।

''हे अंजने! मैं तुम्हारे पति के समाचार लेकर आता हूँ।'' कहकर सिपाही प्रतिसूर्य विमान में चढ़कर आकाशमार्ग से चले गये।

इस प्रकार विजयार्ध पर्वत के निवासी राजा प्रहलाद तथा अनेक विद्याधर राजा तथा त्रिकुलाचल के निवासी राजा प्रतिसूर्य पवनंजय की खोज करने लगे।

खोजते-खोजते वे सब भूतरव वन में पहुँचे। वहाँ उन्हें कालमेघ हाथी दिखाई दिया। यह पवनंजय का हाथी है। ऐसा एक-दूसरे से कहने लगे। यदि हाथी यहीं है तो पवनंजय भी यहीं होंगे।

यह कालमेघ हाथी मित्र के समान सदा ही पवनंजय के साथ रहता है। आज भी उन्हीं के साथ होना चाहिये; कालमेघ हाथी को देखकर सभी के चेहरे पर खुशी की लहर दौड़ गई।

यह सोच सभी आकाश से उतरकर कालमेघ हाथी के पास गये। हाथी विद्याधरों के कोलाहल से घबरा गया, उसे गुस्सा आया, गुस्से से चिंघाड़ने लगा। वह विद्याधरों की और दौड़ा। उसे गुस्से में जानकर विद्याधर इधर-उधर दौड़ गये।

कालमेघ हमारी भीड़ से अपने स्वामी की रक्षा कर रहा है- यह बात विद्याधरों के समझ में आ गई। पवनंजय यहीं पर हैं, ऐसा विश्वास भी हो गया।

कालमेघ को पवनंजय से दूर कैसे करें? इसी का विचार वे सब कर रहे थे। किसी वृद्ध विद्याधर ने कहा-

कालमेघ को वश में करने के लिये किसी हथिनी की व्यवस्था करो जिसके राग से वह यहाँ से दूर हो जायेगा, क्योंकि वशीकरण के समस्त उपायों में स्त्री समागम सर्वोत्तम उपाय है। कहा है-

उपायेभ्यो हि सर्वेभ्यो वशीकरण वस्तुनि।
कामिनी संगममुज्झित्वा नापरं विद्यते परम्।।

अर्थ- वशीकरण के समस्त उपायों में स्त्री-समागम को छोड़कर और दूसरा उत्तम उपाय नहीं है।

विद्याधरों ने हथिनियों के झुण्ड के द्वारा कालमेघ को दूर किया। कालमेघ के दूर जाने पर उन्हें उसी स्थान पर पवनंजय दिखाई दिये। जिसका समस्त शरीर ढीला हो रहा था, चित्र या काठ की तरह जिसका आकार था, जो सुस्त हो धरती पर पड़ा था, ऐसे पवनंजय ने विद्याधरों के समूह को देखा।

विद्याधरों ने पवनंजय के पास जाकर उनका उपचार किया। उनको उठाकर एक स्थान पर बिठाया। उनसे बातचीत का प्रयास किया। परंतु वे तो मुनि के समान मौन ही बैठे रहे उन्होंने किसी से कुछ नहीं कहा।

माता-पिता ने प्रीति से उनका मस्तक सूँघा। बार-बार आलिंगन किया। उन्होंने खुशी के ऑसुओं से पवनंजय को भिगो दिया और कहा-

बेटा, हमसे क्या अपराध हुआ है, जो इस तरह हमसे कहे बिना आये हो? हम भी आपके साथ अंजना की खोज करते। माना कि हमने उसका विश्वास नहीं किया था पर विश्वास होने पर उसे खोजने में आपकी सहायता करते। अब भी उसे खोजने में आपकी सहायता करेंगे।

तुम्हारा शरीर मुलायम शय्या पर रहने योग्य है उसे आपने इस निर्जन भयंकर वन में क्यों डाल रखा है?

माता-पिता के ऐसा कहने पर भी उसने एक शब्द नहीं कहा। केवल इशारे से यह बता दिया कि मैं मरने का निश्चय कर चुका हूँ। अंजना को पाये बिना, देखे बिना न बोलूँगा, न हि जलादिक ग्रहण करूँगा।

उसने मन ही मन प्रतिज्ञा कर रखी थी कि अंजना को देखे या पाये बिना जलपान, भोजन ग्रहण नहीं करेगा, न किसी से बात करेगा।

उस प्रतिज्ञा के कारण वह माता-पिता से बात नहीं कर पा रहा था, माता-पिता से बात नहीं कर पाने के कारण मन ही मन दुःखी भी हो रहा था।

जो मौन के कारण चुपचाप बैठा था, जिसका मस्तक नीचे झुका हुआ था, ऐसे पवनंजय को देखकर माता-पिता, सभी विद्याधर शोक में डूब गये। सबने सोचा- पवनंजय मृत्यु का निश्चय कर चुके हैं। वे दीन दुःखी विद्याधर हाथों से पवनंजय को छू रहे थे और उनके माता-पिता के साथ विलाप कर रहे थे।

इसी बीच हँसते हुये प्रतिसूर्य ने पवनंजय के पास आकर सबसे कहा-

हे विद्याधरों! हे लोगों, आप लोग शोक बंद करो। दुःखी मत होवो। मैं पवनंजय को अभी प्रसन्न करता हूँ।

इसके बाद प्रतिसूर्य ने पवनंजय का आलिंगन कर कहा- हे कुमार सुनो, अंजना के बारे में शुरू से अब तक की घटनाएँ बताता हूँ-

सन्ध्याभ्र नाम के पर्वत पर **अनंगवीचि** नाम के मुनिराज को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। मैं उनकी वंदना कर आ रहा था कि मैं किसी स्त्री के रोने की वीणा के शब्द के समान शब्द का अनुसरण कर एक पर्वत की ऊँची चोटी पर गया। उस पर्वत की गुफा में मुझे एक स्त्री दिखाई दी। उससे उसका परिचय पूछने पर पता चला कि वह स्त्री कोई और नहीं बल्कि हमारी भानजी अंजना है।

मैंने दुःखी भानजी को सांत्वना देकर शांत किया। उसने जिस बालक को जन्म दिया था वह इतना पुण्यशाली था कि उसके शरीर के प्रकाश से गुफा में उजाला हुआ था, गुफा स्वर्ण से बनी हुई के समान पीली हो गई थी।

अंजना ने पुत्र को जन्म दिया है। मैं पुण्यात्मा पुत्र का पिता हूँ- यह सोचकर पवनंजय को बहुत संतोष हुआ और प्रतिसूर्य से पूछने लगे-

''फिर क्या हुआ?''।

पवनंजय के मुँह से शब्द सुनकर सभी विद्याधर प्रसन्न हुये। माता-पिता की खुशी का तो ठिकाना नहीं था।

प्रतिसूर्य ने आगे बताया कि जब हम लोग भानजी अंजना और उसके पुत्र को लेकर विमान पर बैठे ही थे कि अचानक बालक विमान से पर्वत की चोटी पर गिर गया।

बालक के गिरने की बात सुनकर पवनंजय विद्याधरों के साथ विषाद को प्राप्त हुये। सब ओर सन्नाटा छा गया था।

प्रतिसूर्य ने पवनंजय और विद्याधरों से कहा- आप लोग विषाद मत कीजिये, आगे के हर्ष भरे वृत्तान्त को सुनिये।

प्रतिसूर्य ने आगे बताया- हे कुमार! जब हाहाकार करते हुये हम सब बालक के पास गये तब हम बड़े अचम्भित रहे। क्योंकि उस बालक के शरीर से शिला के टुकड़े-टुकड़े हो गये थे, पर बालक को खरोंच तक नहीं आयी थी, बल्कि वह तो मुँह में अँगूठा लिये खेल रहा था। हमने उसे मोक्षगामी जानकर नमस्कार किया, उसकी प्रदक्षिणाएँ दीं उसकी स्तुति की और उसका ''**श्रीशैल**'' यह नामकरण किया। उसे लेकर हम अपने 'हनुरूह' द्वीप में गये। वहाँ उसके जन्म का उत्सव मनाया। वह हमारे पास रहकर हमको प्रसन्न करता हुआ बड़ा हो रहा है। हनुरूह द्वीप में उसका लालन-पालन-संवर्धन हुआ है, इसलिये ''**हनुमान**'' यह उसका दूसरा नाम अपने-आप प्रसिद्ध हुआ। आपका पुण्यात्मा पुत्र, शीलवती सती अंजना हमारे नगर में रह रही है।

इस तरह का आनन्ददायक समाचार सुनकर न केवल पवनंजय बल्कि विद्याधर आदि सभी आनंदित हुये।

अंजना और पुत्र के सुखद समाचार से प्रसन्न हुये पवनंजय ने कहा- अब देरी मत करो, जल्दी ही मुझे अंजना व पुत्र के पास हनुरूह द्वीप में ले चलो।

वे सभी विमानों से हनुरूह द्वीप में गये। वहाँ राजा प्रतिसूर्य ने सबका स्वागत किया। वहाँ महान् उत्सव मनाया। अंजना-पवनंजय की खुशी का ठिकाना नहीं था। चिरकाल के बाद पत्नी को पाकर पवनंजय स्वस्थ हुये। आनंदित होकर देव की तरह रमण करने लगे। पुत्र को पाकर उनकी खुशी दुगुनी हो गई।

कुछ दिन वहाँ रहकर पवनंजय घर आये। पिता के दीक्षा लेने के बाद पवनंजय ने राजपद सम्भाला। अच्छी तरह से राज्य संचालन कर स्वयं दीक्षा लेकर वन गये। समाधिमरण कर स्वर्ग में देवपद प्राप्त किया।

हनुमान को समस्त विद्याएँ सिद्ध हो गई थीं। गृहस्थ जीवन के बाद **हनुमान महाव्रत धारण कर तुंगी पर्वत से मोक्ष गये।**

अंजना व्रत धारण कर आर्यिका दीक्षा लेकर समाधिमरण पूर्वक देह छोड़कर स्वर्ग गई।

सती राजुल

4

सती राजुल

पश्चिम पुष्करार्ध के पश्चिम विदेह क्षेत्र में रूप्य नामक पर्वत की उत्तर श्रेणी में अरिंजयपुर नाम का नगर है। इस नगर में अरिंजय नाम का राजा रहता था। अजितसेना नाम की उसकी स्त्री थी, उनके प्रीतिमति[1] नाम की पुत्री थी।

प्रीतिमति को अनेक विद्याएँ सिद्ध थीं। वह अपने गुणों के कारण उस क्षेत्र में प्रसिद्ध थी। **गुण ही मनुष्य को प्रसिद्ध और अवगुण उसे अप्रसिद्ध कर देते हैं। वीतरागता ही गुण है तथा रागद्वेष ही अवगुण है। जो जीव जितने अंश में वीतरागी होता है, वह उतने अंश में गुणी होता है तथा जितने अंश में रागी–द्वेषी होता है, वह उतने अंश में अवगुणी माना जाता है। वीतरागी की शत्रु भी प्रशंसा करता है तथा रागी–द्वेषी की उसके सगे भी निंदा करते हैं।** प्रीतिमति गुणियों में एक गुणी व्यक्तित्व था। गुणरूपी आभूषणों को धारण करने वाली प्रीतिमति से राजा, रानी आदि सभी प्रसन्न रहते थे।

एक दिन अरिंजय राजा के पास प्रीतिमति आई थी तब राजा ने बेटी से पूछा– बेटी, योग्य वर को बेटी सौंप देने पर पिता को खुशी होती है। बेटियाँ एक प्रकार से पिता के घर रखी हुई धरोहर होती हैं। आपकी अवस्था देखकर हमें विचार आ रहा है कि आपकी योग्य गुणी व्यक्ति को सौंप देना चाहिये।

प्रीतिमति– पिताजी जो आपको योग्य लगे वह कीजिये। **पिता, माता आदि परिजन सन्तानों के हितैषी ही होते हैं। धनी हो या निर्धन सभी परिवारजन सन्तानों को खुश ही देखना चाहते हैं। सुख के लिये सम्पत्ति नहीं, संस्कार चाहिये।** आपके द्वारा दिये गये वीतरागी संस्कारों से आपकी बेटी हर परिस्थिति का सामना करके सुखी रहने में समर्थ है।

अरिंजय राजा– फिर भी बेटी, हम आपको थोपना नहीं आपकी इच्छानुसार सौंपना चाहते हैं। इसलिये आप अपनी इच्छा बताइये।

प्रीतिमति को अनेक विद्याएँ सिद्ध थीं, उन विद्याओं में से प्रीतिमति को अपनी गतिविद्या पर अभिमान था। उसने पिता से कहा– पिताजी, अपने मुँह से हम कुछ नहीं कहना चाहते हैं, फिर भी मन में इतनी सी आशा है कि यदि कोई वीर हमें गति में हराने में समर्थ हो तो वह हमारे विचार से हमारे वर के रूप में उचित रहेगा।

अरिंजय राजा– बेटी, आपकी इच्छा जानकर हमें खुशी हुई है। आपके योग्य वर के लिये गतियुद्ध नाम का स्वयंवर रचते हैं। उसमें सभी प्रसिद्ध राजकुमारों को आमंत्रित करते हैं।

अरिंजय राजा ने योग्य दिन, योग्य मुहूर्त में प्रीतिमति के वर के लिये गतियुद्ध नाम का स्वयंवर करना तय किया था।

गतियुद्ध का स्वरूप यह था कि एक पुष्पमाला को मेरु के शिखर से छोड़ा जायेगा, मेरु की तीन प्रदिक्षणाएँ देकर माला को धरती पर गिरने से पूर्व पकड़ने में जो वीर समर्थ होगा वह वीर प्रीतिमति के द्वारा पहनायी जाने वाली वरमाला के लिये योग्य समझा जायेगा।

गतियुद्ध नाम का स्वयंवर योग्य दिन शुरू हुआ।

इस स्वयंवर में पश्चिमी पुष्करार्ध के पश्चिम विदेह क्षेत्र के रूप्य पर्वत की उत्तर श्रेणी के गण्यपुर नाम के नगर के सूर्याभ राजा के चिन्तागति, मनोगति, चपलगति नाम के तीन पुत्र आये थे। (चिन्तागति इस भव से सातवें भव में नेमिनाथ तीर्थंकर बनेगा।)

मनोगति और चपलगति दोनों प्रीतिमति के रूप की ओर ज्यादा आकर्षित थे। चिन्तागति अपने दोनों छोटे भाइयों की भावनाओं को उनके शरीर के हाव-भावों से समझ गया था। उसने दोनों से कहा- हे मनोगति, चपलगति! मेरा प्रीतिमति में इतना मन नहीं है, मैं तो कुतुहलवश सिर्फ गतियुद्ध देखने आया हूँ। इसलिये इस युद्ध में आप दोनों ही हिस्सा लीजिये। उन दोनों ने बड़े भाई की हाँ में अपनी हाँ मिला दी।

निश्चित समय पर गतियुद्ध शुरू हुआ। एक-एक राजकुमार एक-एक कर आते गये परंतु कोई भी राजकुमार पुष्पमाला को धरती पर गिरने से पहले पकड़ने में समर्थ नहीं हुआ।

कइयों ने तो अन्य राजकुमारों की हार देखकर उसमें हिस्सा ही नहीं लिया। चुपचाप बैठे रहे। कई लौट गये।

जब मनोगति की बारी आयी तब वह बड़े उत्साह से गया पर निराशा ही उसके हाथ लगी। चपलगति भी गया वह भी निराश लौट आया।

चिन्तागति अपने भाइयों की असफलता से दु:खी था। उसने स्वयं गतियुद्ध में जाने का फैसला किया। मनोगति ने उससे कहा- भैय्या, आपका मन राजकुमारी में नहीं है फिर क्यों हिस्सा ले रहे हैं?

चिन्तागति बोला- **छोटे भाई पुत्रों के समान होते हैं।** कोई भी स्वाभिमानी बड़ा भाई, छोटे भाइयों के अपमान को सहन करने में असमर्थ होता है। वह उनके अपमान का बदला लेता है। आप लोगों के प्रति राग ही मुझे न चाहते हुये भी इस गति युद्ध में हिस्सा लेने के लिये मजबूर कर रहा है। इस पर चपलगति ने कहा- यदि भैय्या आप भी असफल हो गये तो हम छोटे भाई भी चाहते कि बड़े भैय्या का अपमान न हो, इसलिये आप रहने दीजिये। चलें, हम घर चलते हैं।

चिन्तागति के स्वाभिमान को चोट पहुँची, उन्होंने चपलगति से कहा- नहीं छोटे ऐसा नहीं होगा। मैं इस युद्ध को तुम दोनों के लिये अवश्य जीतूँगा। यह मेरी जिद है, इच्छा भी है कि यह आप दोनों के लिये जीत लूँ। इस पर मनोगति बोला- भैय्या मान लीजिये, आप जीत भी गये तो इससे क्या फायदा? आप तो

उससे विवाह के इच्छुक हो नहीं फिर युद्ध जीतने का क्या फायदा? वह राजकुमारी तो कुँवारी ही रह जायेगी?

मनोगति की बात सुनकर बिना सोचे-समझे चिन्तागति ने कहा- स्वयंवर मे जीतने के बाद राजकुमारी को हमारी इच्छा का ध्यान रखना पड़ेगा। जैसा हम कहेंगे वह वैसा ही करेगी। हमारी इच्छानुसार चलने के लिये वह बाध्य होगी।

दोनों छोटे भाइयों ने एक साथ कहा भैय्या जैसी आपकी इच्छा यह कहकर दोनों चुपचाप बैठ गये।

चिन्तागति उत्साह के साथ गया। उसने देव-शास्त्र-गुरु को नमस्कार कर माला के साथ गतियुद्ध प्रारंभ किया। माला के धरती पर गिरने से पहले ही मेरु की तीन प्रदक्षिणाएँ दीं तथा माला को धरती को छूने से पहले ही पकड़ लिया। इस तरह से उसने गतियुद्ध में जीत हासिल कर ली।

प्रीतिमति खुश थी। वह ज्यादा खुश इसलिये थी क्योंकि चिन्तागति ने उसके द्वारा पूर्व में किये गये प्रयासों से काफी कम समय में मेरु की तीन प्रदक्षिणाएँ देकर माला को पकड़ा था।

प्रीतिमति दासियों के साथ मन में चहकती हुई हाथ में वरमाला लेकर चिन्तागति राजकुमार के पास गई। उसने ज्योंही चिन्तागति के गले में वरमाला डालनी चाही त्योंही चिन्तागति ने उसकी वरमाला पहिनने से इन्कार कर दिया और कहा- आप मुझे वरमाला मत पहिनाइये।

प्रीतिमति ने इसकी वजह पूछने पर चिन्तागति ने कहा- मेरे छोटे भाई मनोगति और चपलगति आपकी ओर आकर्षित हैं, मैं नहीं। इस पर प्रीतिमति ने कहा- मुझसे विवाह का जब आपका मन नहीं था तब आपने स्वयंवर में हिस्सा लिया ही क्यों? क्यों एक कन्या को लज्जित कर रहे हों? क्यों अपमानित कर रहे हों?

प्रीतिमति के आवेशों, भावों, क्रोध व नाराजगी को जानने वाले चिंतागति राजकुमार ने कहा- हे देवी! आप के साथ विवाह का तो मेरा भी मन था इसलिये स्वयंवर में हिस्सा लेने के लिये आया था परन्तु मेरे छोटे भाइयों की आपके प्रति विशेष इच्छा को देखकर मेरी इच्छा अपने आप मिट गई। जब वे इस युद्ध में हार गये, तब उनके हताश चेहरों को देखकर मुझे बहुत दुःख हुआ। इसमें उनका अपमान समझ कर कुछ प्रतिशोध की भावना से मैं इस गतियुद्ध में जीत हुये राजकुमार के रूप में आपके सामने खड़ा हूँ। इसमें आपका अपमान करने का या आपको लज्जित करने का कोई भाव नहीं है। मैं भाइयों के प्रति राग से मजबूर हूँ। इसलिये न चाहते हुये भी आपको मना कर रहा हूँ।

गतियुद्ध में आपको जीता गया है, अब आप हमारे आधीन हों। इसलिये जैसा हम कहेंगे, वैसा आपको करना होगा। हमारे आदेश से यह वरमाला आपको इन दोनों में से किसी एक के गले में वरमाला पहिनानी होगी।

चिन्तागति वरमाला पहिनेगा नहीं, यह सोच कर दुःखी राजकुमारी प्रीतिमति ऐसी विषम परिस्थिति

देखकर और दु:खी हुई, परंतु दृढ़ स्वभाव वाली प्रीतिमति ने गतियुद्ध जीतते ही सिर्फ चिन्तागति को ही पति के रूप में देखा था। वह चंचल मनवाली नहीं थी। इसलिये उसने दृढ़ता से कहा– आपने हमें गतियुद्ध में जीता है। यह सब जानते हैं। हम अब आपके आधीन हैं, आपकी सेविका हैं, यह बात भी सही है। आपकी आज्ञा ही हमें शिरोधार्य होनी चाहिये, और है भी, परंतु आपकी आज्ञा हमारे कुल–शील की रक्षा वाली होनी चाहिये, न कि हमारे कुल–शील को नष्ट करने वाली, इसलिये जैसा आप कहेंगे, वैसा हम करेंगे। परंतु उसमें हमारे कुल, शील, मर्यादाओं का उल्लंघन न होता हो। स्वयंवर आपने जीता है, इसलिये वरमाला के हकदार आप हैं, यदि उन्होंने स्वयंवर जीता होता तो वे वरमाला के हकदार होते, परंतु उन्होंने स्वयंवर तो जीता नहीं। हमारे कुल व शील की मर्यादा के विरुद्ध होने से हम आपकी यह आज्ञा मानने में असमर्थ हैं। आप हमें अग्नि में कूदने के लिये कहें, जहर पीने के लिये कहें या जो आपको अच्छा लगे वह कहें हम सहर्ष तैयार हैं, परन्तु यह आदेश हमें स्वीकार नहीं होगा, बल्कि अनुचित लग रहा है। आप जैसे कुलवन्त को, शीलवन्त को ऐसा आदेश देने से पहले दस बार सोचना चाहिये था क्योंकि आपका आदेश अकुलीन तथा शील को नष्ट करने वाला है। मैंने तो स्वयंवर में जीतते ही पति के रूप में सिर्फ आपको ही देखा है। पति के छोटे भाई पुत्र के समान होते हैं इसलिये वे मेरे पुत्र हुये, पुत्र के गले में मैं कैसे वरमाला डाल सकती हूँ? मैं उनके लिये माँ के समान हूँ, वे भी माँ समान भाभी के हाथों से अपने गले में वरमाला कैसे डलवायेंगे, आप विवेकवान हो इससे ज्यादा मैं आप से क्या कहूँ?

इस पर चिंतागति ने अपने मन की व्यथा, दुविधा बतायी कि जिसे मैंने अपने छोटे भाई की पत्नी के रूप में देखा, उससे अपने गले में वरमाला डलवाते हुये अपने आप से शर्मिंदा हूँ और ऐसा अनुचित आदेश देते हुये भी शर्मिंदा हूँ। इसे कर्म की विचित्र गति न कहूँ तो और क्या कहूँ? क्योंकि छोटे भाई की पत्नी के रूप में देखने से हम भी आपसे वरमाला पहिन नहीं सकते, यह सब कहने, करने के पीछे हमारा आपके प्रति पूर्व से ही कोई द्वेष भाव नहीं है। कर्मोदय से उपस्थित परिस्थितियाँ ही इसमें कारण दिखती हैं। यह कहकर किंकर्तव्यमूढ़ चिन्तागति शान्त हो गया।

चिन्तागति को असमंजस में देखकर सुलझे हुये पक्के विचार वाली प्रीतिमति ने उससे कहा हे नाथ! गतियुद्ध जीतते ही मैंने आपको पति के रूप में देखा था परंतु आप से संयोग होना हमारे भाग्य में नहीं दिखता, इसमें आपका कोई दोष नहीं है। यह हमारे पूर्व कर्मों का परिणाम है। इसमें आपके या हमारे वर्तमान जीवन का कोई परिणाम कारण नहीं दिखता, आप को हमने मन से पति माना है, आप ही हमारे पति रहोगे। रही बात मनोगति और चपलगति की वे दोनों ही नहीं, अपितु संसार के सभी युवक हमारे लिये भाई के समान हैं, मुझसे छोटे पुत्र के समान हैं और मुझसे बड़े पिता के समान हैं, पति–भाव सिर्फ आपके प्रति ही है।

चिन्तागति को प्रीतिमति के व्यवहार और विचारों से अचम्भा हुआ। जिसे उसने अभिमानी राजकुमारी समझा था, वह सती, साध्वी, पतिव्रता नारी है। अपने दुर्भाव और दुर्विचारों पर उसे लज्जा महसूस हो रही

थी। उसे लगा मैंने एक धर्मात्मा, आत्मसाधिका, सुशीला नारी को समझने में गलती की। **सच है मनुष्य अज्ञान में न जाने कैसे-कैसे पाप करते हैं। उस समय उसे पता नहीं लग पाता परंतु जब उनका फल सामने आता है, तब वह सिर्फ पछताता ही रहता है। इसलिये हर कार्य को सोच समझ कर करना चाहिये। सोच समझ कर करने में फायदा है जिससे बाद में पछताना नहीं पड़ता।** देखो प्रीतिमति को समझने में कितनी बड़ी भूल हुई हैं, मनुष्य दिखता कुछ है, होता कुछ है, इसलिये कभी किसी को बुरा समझने की भूल नहीं करें। उसके मुँह से शब्द नहीं निकल रहे थे, उसने जैसे-तैसे हिम्मत बटोरकर कहा- ''हे देवी! धन्य हो, धन्य है तुम्हारी दृढ़ता धन्य है तुम्हारा शील धन्य है तुम्हारी धार्मिक-आस्था। मुझे आपसे बहुत ज्ञान मिला। **ज्ञान सिर्फ ग्रंथों से नहीं अपितु व्यवहार से भी सीखा जाता है। आचरण से सीखा हुआ ज्ञान ग्रंथों से सीखे हुये ज्ञान से स्थायी होता है।** आपके आचरण से सीखा हुआ ज्ञान मेरे जीवन में अमिट छाप छोड़ गया, जीवन को बदल गया। इस दृष्टि से आप मेरी गुरु हो गई हो, साधर्मी तो हो ही।

इतना कहकर चिंतागति चुप हो गया। थोड़ी देर दोनों मौन रहे।

प्रीतिमति को संसार से वैराग्य हुआ था। उसे सारा संसार असार लगने लगा था, उसने चिंतागति से कहा- ''हे देव! अब हमारा मन संसार से उदासीन हो चुका है। अनादिकाल से भोगे जा रहे भोगों से उकता गई हूँ।'' सच ही कहा है-

भोगाः न भुक्ताः वयमेव भुक्ताः।
कालो न यातो वयमेव याताः।।
तपो न तप्तो वयमेव तप्ताः।
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।।

अर्थ- किसी के द्वारा भोग भोगे नहीं जाते अपितु जीव ही भोगों के द्वारा भोगा जाता है। काल कभी समाप्त नहीं होता अपितु काल के प्रवाह में जीव ही समाप्त होता है। संसार में जो जीव तप नहीं करते वे कष्टों की आँच से स्वयं तपते रहते हैं। संसारी जीव की तृष्णा कभी नष्ट नहीं होती, अपितु जीव ही स्वयं जीर्ण हो नष्ट होता है।

हे देव! संसार का ऐसा स्वरूप देखकर हम स्वयं संसार से भयभीत होकर दीक्षा लेना चाहते हैं, कृपया हमें दीक्षा की अनुमति देकर अनुगृहीत कीजिये।

चिंतागति सोचने लगा- जिसे साधारण काँच का टुकड़ा समझा था वह तो चिंतामणि रत्न निकला। उसके विचार से प्रीतिमति ने सभी राजकुमारों को धर्मयुद्ध में पराजित कर दिया है, क्योंकि सभी राजकुमार अभी भोगों में ही हैं, यह आर्यकन्या वैराग्य के रथ पर सवार हो चुकी है। मुझे भी इसने धर्मयुद्ध में पराजित कर दिया है। यह मेरे प्रति सम्मान की वजह से आज्ञा माँग रही है, मन से तो दीक्षा ले चुकी है यह सोचकर, चिंतागति जो स्वयं भी अन्तर्मन से दीक्षा की तैयारी कर चुका था, उसने प्रीतिमति से कहा- हे राजकुमारी जी! अभी तो आपके खेलने-कूदने के दिन हैं, दीक्षा का विचार क्यों कर रही हो?

इसके उत्तर में राजकुमारी प्रीतिमति ने कहा– हे देव! विषय–कषायों में खेलते–कूदते रहने से इस जीव ने अनादि से कर्मबन्ध ही बाँधे हैं। यह जीव ज्यादातर समय निगोद में ही बिताता है, स्थावर तथा त्रस पर्याय, त्रस पर्याय में मनुष्य, मनुष्य में उच्च कुल, उच्च कुल में देव–गुरु–शास्त्र का समागम, सम्यग्दर्शन, संयम, तप आदि दुर्लभ हैं–

दुर्लभ है निगोद से थावर, अरु त्रस गति पानी।
नरकाया को सुरपति तरसे, सो दुर्लभ प्राणी।।

उत्तम देस सुसंगति दुर्लभ, श्रावक कुल पाना।
दुर्लभ सम्यक् दुर्लभ संयम, पंचम गुणठाणा।।

दुर्लभ रत्नत्रय आराधन, दीक्षा का धरना।
दुर्लभ मुनिवर के व्रतपालन, शुद्धभाव करना।।

दुर्लभ से दुर्लभ है चेतन, बोधिज्ञान पावै।
पाकर केवलज्ञान नहीं फिर इस भव में आवै।।

आप स्वयं ज्ञानी हैं, मनुष्य भव की दुर्लभता जानते हैं। इसका एक–एक समय बहुमूल्य है। **दीक्षा तो किसी अतिशय पुण्यवान के भाग्य में होती है।**

वैराग्य का ऐसा सुअवसर खोकर फिर विषय–कषायों में फँस गई तो मुक्ति का मार्ग कब पाऊँगी? इसलिये हे नाथ! अनुमति देकर मेरे इस पुनीत कार्य की अनुमोदना कीजिये।

प्रीतिमति के आत्मबल की दृढ़ता को जानते हुये भी परखने की इच्छा से चिंतागति ने प्रीतिमति से कहा– हे देवी! त्याग, तपस्या का मार्ग बड़ा कठिन होता है, आपका शरीर सुविधाओं में पला है, आपका कोमल शरीर कठोर मार्ग पर कैसे चल पायेगा? त्याग, तपस्या के भारी कष्टों को कैसे सह पायेगा?

प्रीतिमति ने गंभीर होकर जवाब दिया– हे देव! त्याग, तपस्या का मार्ग कठिन नहीं है विषयभोगियों को, कषायी जीवों को, सुविधाभोगियों को, रागियों को कठिन लगता है। पराधीन होकर नरकों में न जाने कितने कठिन कष्ट सहे हैं, परंतु यहाँ स्वाधीन होकर कष्टों को सहने में असमर्थ होता है, इसीलिये आगामी अनन्त पर्यायों में दु:ख पाता है, यहाँ थोड़े से सुख के लिये आगामी अनन्त दु:खों की पोटली बाँधता है। मेरा शरीर सुकुमाल आदि मुनियों से कोमल तो नहीं है, जिनका पैर जहाँ भी पड़ता खून का पंजा छप जाता फिर भी उन्होंने त्याग, तपस्या का मार्ग नहीं छोड़ा। महाव्रतों का पालन किया। शरीर को जैसी आदतों में ढालो उसमें ढल जाता है। वह जड़ है अपनी ओर से कुछ नहीं कहता। त्याग, तपस्या में कष्ट नहीं होते हैं बल्कि वहाँ वैराग्य से अध्यात्म–अमृत बरसता है। किसी ने सच कहा है–

न हि भोगो भाग्यं, भाग्यं भोगेषु वैराग्यम्।

अर्थ– भोगों की प्राप्ति में सौभाग्य नहीं है, सौभाग्य तो भोगों से वैराग्य होने में है। इसलिये हे देव! मेरी वैराग्य–सम्पदा की अनुमोदना कीजिये, मुझे वैराग्य मार्ग पर चलने की अनुमति दीजिये।

चिंतागति ने कहा– हे देवी! आकाश या हवा को मुट्ठी में कौन बाँध सका है? इसी तरह वैराग्य से भरे मन वाले को संसार में कौन बाँध सका है। हमारी अनुमति तो केवल नाममात्र है, यह आपका बड़प्पन है। आप जाइये हम भी आपके रास्ते पर आने की कोशिश करेंगे।

प्रीतिमति ने माताजी, पिताजी आदि बड़ों के पास जाकर दीक्षा की अनुमति ली और **निवृत्ति नाम की आर्यिका** के पास जाकर आर्यिका दीक्षा ली।

गतियुद्ध में हारे हुये मनोगति और चपलगति के मन में पूर्व में ही वैराग्य बस चुका था, चिंतागति और प्रीतिमति के मन में भी वैराग्य बस चुका था, चिंतागति और प्रीतिमति की वैराग्य भरी चर्चा सुन कर मनोगति, चपलगति के मन का वैराग्य ओर दृढ़ हो चुका था। उन्होंने बड़े भाई चिंतागति से कहा– हे भैय्या! हमें भी दीक्षा की अनुमति दीजिये। हमारे इस तरह जाने की वजह से पिताजी आदि से हमारी ओर से क्षमा माँगिये।

चिंतागति ने गंभीर होकर कहा– छोटे होकर आनंद के रास्ते पर जा रहे हो यह अच्छी बात है, पर बड़े भाई को संसार के मार्ग पर छोड़कर जा रहे हो यह ठीक नहीं है। संसार में अब तक साथ रहे हो इस वैराग्य–अमृत के रास्ते पर भी साथ ही चलेंगे। रही पिताजी आदि को कहने की बात वह सेवकों के द्वारा उन तक भिजवा देंगे। यह कहकर उन्होंने सेवकों के द्वारा पिताजी के पास दीक्षा का समाचार भिजवाया और **दमवर** नाम के मुनि के पास उन तीनों ने दीक्षा ली। सभी ने कठोर तपस्याएँ कीं।

आयु के अन्त में तीनों भाई माहेन्द्र स्वर्ग के अन्तिम पटल में सात सागर की आयु वाले सामानिक जाति के देव बने।

चिन्तागति (नेमिनाथ भगवान) का जीव माहेन्द्र स्वर्ग से आकर जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में सीतोदा नदी के दक्षिण तट पर सुपद्मा नामक देश में सिंहपुर नगर के राजा अर्हद्दास के घर अपराजित नाम से जन्मा। यहाँ दीक्षा लेकर आयु के अन्त में सल्लेखना मरण कर अच्युत स्वर्ग में बाईस सागर की आयु वाला इन्द्र बना।

अच्युत स्वर्ग से आकर नागपुर नामक नगर में राजा श्रीचन्द्र (व रानी श्रीमती) के घर सुप्रतिष्ठ नाम का पुत्र जन्मा। राजा श्रीचन्द्र ने सुप्रतिष्ठ को राज्य देकर दीक्षा ली। राजा सुप्रतिष्ठ एक दिन कार्तिक की पूर्णिमा की रात्रि में महल की छत पर आठ सौ रानियों के मध्य बैठा था। उसी समय आकाश से उल्कापात हुआ। राज्य, जीवन, भोग आदि उल्कापात के समान क्षणभंगुर है ऐसा विचार आते ही, उसे संसार से वैराग्य हुआ, उसने दीक्षा ली। अनेक प्रकार से कठिन तपस्या कर निर्मल सोलह कारण भावनाओं के द्वारा तीर्थंकर कर्म का बन्ध किया। एक मास के आहार त्याग के साथ सल्लेखनापूर्वक शरीर त्याग कर जयन्त नाम के स्वर्ग में बाईस सागर की आयु वाला देव बना।

वहाँ से आकर हरिवंश में राजा समुद्रविजय और रानी शिवा देवी के गर्भ से वैशाख शुक्ल त्रयोदशी

के दिन भरतक्षेत्र के बाईसवें तीर्थङ्कर के रूप में जन्में। देवों ने उनके गर्भ से पूर्व छह माह तथा गर्भ के नौ माह तक प्रतिदिन रत्नवर्षा कर उनका गर्भकल्याणक उत्सव मनाया। जब जन्म हुआ तब सुमेरु पर्वत पर ले जाकर सौधर्म, ईशान स्वर्ग के दो इन्द्रों ने 1008 (एक हजार आठ) कलशों के द्वारा क्षीरसागर के जल से पाण्डुक शिला पर शाश्वत विद्यमान सिंहासन पर विराजमान कर असंख्यात देवों की उपस्थिति में जन्मोत्सव मनाया।

उनकी यहाँ एक हजार वर्ष की आयु थी। कृष्ण उनके बड़े चचेरे भाई थे। पाण्डव बुआओं के पुत्र थे। बलदेव भी उनके चचेरे भाई थे।

नेमिकुमार स्वर्ग से प्राप्त दिव्य-भोगों को भोगते हुये युवा हुये। श्रीकृष्ण आदि सभी उनका सम्मान करते थे। श्रीकृष्ण ने जब से जरासंध का वध करके चक्रवर्ती नारायण पद प्राप्त किया तब से उन्हें अपने बल पर अभिमान हो गया था।

एक बार का प्रसंग है। कुसुमचित्रा नामक राजसभा में श्रीकृष्ण आदि विराजमान थे। उसी समय नेमिकुमार भी वहाँ आये। श्रीकृष्ण ने आसन से उठकर उनकी अगवानी की। आदर के साथ अपने बराबर आसन दिया। सभी ने हास्य-विनोद की चर्चाएँ कीं।

उसी समय सभा में किसी ने इस विषय पर चर्चा शुरू की कि इस समय इस क्षेत्र में सबसे बलवान कौन हैं?

चर्चा चारों ओर फैल गई। सभी की चर्चा इसी विषय पर होने लगी। किसी ने भीम को, किसी ने अर्जुन को, किसी ने किसी को, किसी ने किसी को, किसी ने किसी को बलवान् बताया। किन्हीं राजाओं ने कृष्ण को बलवान बताया। बलदेव से रहा नहीं गया। उन्होंने मंद-मंद मुस्कुराते हुये नेमिकुमार की ओर देखकर कहा- हे बन्धुओं! इनके गर्भ, जन्म कल्याणक महोत्सव देवताओं ने मनाये हैं। जिनके वस्त्रादि स्वर्ग से आते हैं। जन्म से जिनके शरीर पर 1008 शुभ लक्षण विद्यमान होते हैं। श्रीकृष्ण ने कोटिशिला उठायी हो, परंतु ये नेमिकुमार एक ऊँगली पर सुमेरु को हथेली से तीनों लोक को उठा सकते हैं, समुद्रों को उठाकर फेंक सकते हैं, अहो इनके बल की क्या चर्चा करें। इनके समान बलशाली तीन लोक में दूसरा कोई नहीं है।

बलदेव के द्वारा नेमिकुमार की प्रशंसा सुनकर कृष्ण को कुछ बुरा लगा क्योंकि उन्हें अपने बल पर अभिमान था। उन्हें लगता था कि इस धरती पर उनके समान दूसरा कोई बलशाली नहीं है। उन्होंने नेमिकुमार की ओर देखकर कहा-

क्यों न नेमिकुमार और मुझमें बाहुयुद्ध किया जाय? इससे उनके बल की परीक्षा भी हो जायेगी, क्योंकि भले ही उनमें अनंत बल हो, परंतु बिना परीक्षा कौन विश्वास करें? जैसे आत्मा में अनंतबल है परंतु उसकी श्रद्धा, भोग और अनुभव के बिना जीवों को कोई फायदा नहीं होता इसलिये हम दोनों में बाहुयुद्ध ठीक रहेगा।

नेमिकुमार ने कहा – हे अग्रज! मैं बाहुयुद्ध नहीं कर पाऊँगा।

कृष्ण को लगा नेमि मुझसे घबरा गया, इसलिये उन्होंने चहकते हुये कहा–

क्यों? इसमें क्या परेशानी है?

इस पर नेमिकुमार ने कहा– आज मेरी ऊँगली में दर्द हो रहा है। मेरी ऊँगली टेढ़ी हो गई है। उन्होंने चलाकर टेढ़ी की हुई ऊँगली श्रीकृष्ण को दिखाई। श्रीकृष्ण को लगा नेमि बहाने बना रहा है। उन्होंने स्वयं नेमिकुमार की ऊँगली सीधी करने की कोशिश की। जब उनसे ऊँगली सीधी नहीं हुई तब उन्होंने लोहे की मजबूत सांकल मँगवाकर ऊँगली में फँसाई। स्वयं सांकल को खींचकर देखा फिर भी ऊँगली सीधी नहीं हुई तब उन्होंने अपनी सहायता के लिये सभासदों को बुलाया, उनसे भी ऊँगली सीधी नहीं हुई, तब लगभग सभी उस जंजीर को अपनी ओर पूरा जोर लगाकर खींचने लगे फिर भी ऊँगली सीधी नहीं हुई तब नेमिकुमार के मन में मजाक सूझी। उन्होंने चलाकर टेढ़ी की हुई ऊँगली सीधी कर तुरंत टेढ़ी कर दी, ऊँगली अचानक सीधी होने से सभी लुढ़क गये। एक के ऊपर एक गिर गये। फिर नेमिकुमार ने अपना हाथ ऊपर उठाया। सांकल ऊपर उठाने से सभी सांकल से लटक गये। थोड़ी देर नेमिकुमार ने हाथ ऊपर ही रखा। एक–एक कर सभी नीचे गिर गये। कृष्ण सांकल से लटके रह गये। उन्हें देखकर नेमिकुमार आदि सभी मंद–मंद मुस्कुराये। श्रीकृष्ण इस घटना से शर्मिंदा हुये वे नेमिकुमार के आशय को समझ गये, उनके अतुल बल को समझ गये।

उस दिन से कृष्ण के मन में शंका घर कर गई थी कि नेमि के बल का पार नहीं है इसलिये इनके रहते हुये मेरा राज्य सुरक्षित नहीं है, ये कभी भी राज्य छीन सकते हैं। इसलिये वे मन में नेमिकुमार से डरे–डरे रहते थे।

वे समझ नहीं पाये कि जिनके इन्द्रादि दास हों उन्हें विश्व के वैभव से क्या प्रयोजन? जिनके भोजन, वस्त्रादि स्वर्ग के देव लाते हों, उन्हें इन भौतिक पदार्थों में क्या रुचि होगी? जो प्राय: अपने आत्मिक अमृत में डूबे हुये तृप्त रहते हैं, उन्हें तीनों विश्व के शासन से भी क्या तृप्ति मिलेगी परंतु श्रीकृष्ण की अपनी सोच थी उसमें कोई क्या करे?

उक्त घटना बीते काफी समय बीत गया। नेमिकुमार अब तीन सौ बरस के हो चुके थे। उनका ज्यादातर समय आत्मचिंतन, आत्मानुभव में बीतता था। वे सदा गंभीर तथा आत्मानुभव के प्रति जागरूक रहते थे। अपना उपयोग इधर–उधर नहीं भटकाते थे, उपयोग इधर–उधर न जायें, इसका सदा ध्यान भी रखते थे। वे स्वयं बुद्ध थे, उनको गुरु की आवश्यकता नहीं थी, हो भी क्यों? जिनको देखने मात्र से मुनिराजों की शंकाओं के समाधान होते हैं उन्हें गुरु की क्या आवश्यकता? जो विश्वगुरु हो उनका गुरु कौन हो? चैतन्य की मस्ती में मस्त रहने वाले नेमिकुमार को उस छोटे राज्य से कोई प्रयोजन नहीं था फिर भी कृष्ण के मन में शंका बनी ही रहती थी कि नेमि की वजह से उनका राज्य सुरक्षित नहीं है।

गर्मी के दिनों में एक दिन श्रीकृष्ण अपनी रानियों के साथ जलक्रीड़ा के लिये गये थे। वहाँ उन्होंने जलक्रीड़ा की। श्रीकृष्ण आदि के अनुरोध से सदा गंभीर रहने वाले नेमिकुमार भी जलक्रीड़ा के लिये जल में उतरे उन्होंने जलक्रीड़ा की। जलक्रीड़ा के बाद विरागी नेमिकुमार के शरीर को पोंछा गया उन्हें दूसरे वस्त्र पहनाये गये।

उस समय भगवान ने अपना गीला वस्त्र निचोड़ने के लिये श्रीकृष्ण की प्रेमपात्र, अनुपम सुंदरी सत्यभामा से विलासपूर्ण भाव से सहज ही कहा- सत्यभामा भाभी, भैय्या के वस्त्र तो आपने अब तक निचोड़ दिये परंतु हमारे वस्त्रों को कभी हाथ भी नहीं लगाया। आज एक दिन हमारे वस्त्र को भी निचोड़ दीजिये।

देवर नेमिकुमार के भावों को, आशय तथा मजाक को समझने वाली सत्यभामा ने बनावटी क्रोध से नेमिकुमार से कहा-

हे देवर जी! मैं नारायण की पत्नी हूँ। वे छह खण्ड के स्वामी हैं। उनके शरीर की कांति से रत्नादि की कांति और ज्यादा बढ़ जाती है। उनके पास कौस्तुभमणि है। वे महानाग नामक शय्या पर सोते हैं, जिसकी अनेकों देव रक्षक हैं, वे शाङ्र्ग नामक धनुष्य को धारण करते हैं, वे पृथ्वी के राजाओं के स्वामी हैं। आकाश और समुद्र को अपनी आवाज से हिला दे, ऐसे दैवी शंख को बजाते हैं, सुदर्शन चक्र चलाने वाले चक्रधारी हैं जिनकी हजारों रानियाँ हैं, उन रानियों में से एक मैं उनकी अतिप्रिय हूँ वे भी मुझे कभी आज्ञा नहीं देते। आप उनसे छोटे होकर भी विचित्र पुरुष जान पड़ते हो जो ऐसी आज्ञा दे रहे हो।

सत्यभामा ने ये सारी बातें झूठे क्रोध के साथ सिर्फ मज़ाक में ही कही थीं परंतु उसकी बातें श्रीकृष्ण की अन्य रानियों को अटपटी और अनुचित लगी थीं, क्योंकि वे जानती थी कि नेमिकुमार तीन लोक के नाथ, अतुल बलधारी अंतरंग से निर्मोही हैं इसी भव से मोक्ष जाने वाले चरमशरीरी हैं। दिव्यध्वनि के द्वारा जगत् के भोले जीवों का उद्धार करने वाले हैं। इसलिये अनेक रानियों ने उसे टोकते हुये कहा-

''अरी निर्लज्ज, त्रिलोकीनाथ की निंदा क्यों कर रही हो?'' किसी ने कहा-

''स्वर्ग के देव भी उनकी सेवा-सान्निध्य में अपना सौभाग्य समझते हैं।''

किसी दूसरी ने कहा-

''इनके जन्म से अपना हरिवंश धन्य हुआ है।''

किसी अन्य ने कहा-

''जिनके दर्शन मुनियों के लिये दुर्लभ होते हैं ऐसे जगद्वंद्य तीर्थंकर का निशदिन सान्निध्य क्या कम महापुण्य है?''

किसी अन्य ने कहा- ''सत्यभामे लगता है तेरी मति मारी गई है जो तेरे मुँह से ऐसे कठोर शब्द निकले।''

सत्यभामा को लगभग सभी ने टोका। वह स्वयं नेमिकुमार की ये सारी विशेषताएँ अतिशय भरी बातें जानती थी, पर वह आज त्रिलोकीनाथ, वीतरागी, तीर्थंकर के साथ ठिठोली की मुद्रा में थी। औरों की परवाह किये बिना उसने फिर मज़ाक करते हुये कहा–

अरे नेमि देवर जी दूसरों से कपड़े निचोड़वाने का इतना ही शौक है तो विवाह क्यों नहीं कर लेते? वह आपकी अर्द्धांगिनी आपके गीले कपड़े निचोड़ देगी, सेवा करेगी, आप जैसे त्रिलोकीनाथ का साथ पाकर संसार से तर भी जायेगी।

सत्यभामा की मज़ाक को मज़ाक में लेते हुये नेमिकुमार ने कोई जवाब नहीं दिया सिर्फ मुस्कुराकर वहाँ से चल दिये।

रागादि कषायों को अपने से भिन्न जानने वाले कषायों को स्वरूप से भिन्न अनुभव करते हुये भी उनके भावों में किंचित कषाय उत्पन्न हो ही गई वे तेज गति से राजमहल में आये। आकर सबसे पहले नागशय्या पर चढ़े। उस शय्या की रक्षा करने वाले देवों ने उनकी अगवानी की उनकी पूजा की। नागशय्या पर तेजी से चढ़ने से भूमि के भीतर कम्पन हुआ जो गिरनार पर्वत तक पहुँचा जिसे श्रीकृष्ण आदि ने महसूस किया।

बाद में उन्होंने शाङ्र्ग धनुष मोड़कर उस पर प्रत्यंचा (डोरी) चढ़ाकर टंकार ध्वनि की। उसकी आवाज की धमक चारों ओर फैल गई। उसके बाद एक हाथ में सुदर्शन चक्र लेकर एक ऊँगली पर तेज गति से घुमाया उससे चिनगारियाँ निकलने लगीं, जिनको दूर से ही देखा जा सकता था। दूसरे हाथ में शंख लेकर उन्होंने नाक से उसे बजाया। उसकी आवाज से समुद्र का पानी भी हिलने लगा।

धनुष आदि की आवाज से शौर्यपुरी में हाहाकार मच गया; लोग भय से इधर उधर भागने लगे। एक दूसरे की ओर देखने लगे, पूछने लगे, किसी को कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर में हुआ क्या है?

द्वारिका नगरी में हाथी–घोड़े सांकल आदि बंधनों को तोड़कर इधर–उधर भागने लगे। समुद्र में लहरें उछलने लगीं।

श्रीकृष्ण सोच में पड़ गये कि मेरे सिवा दूसरा शंख को फूंकने वाला, चक्ररत्न घुमाने वाला, शाङ्र्ग धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने वाला, नागशय्या पर उछल सकने वाला नेमि ही हो सकता है।

श्रीकृष्ण को भीतर ही भीतर एक अज्ञात खुशी होने लगी कि चलो इस जलक्रीड़ा में सत्यभामा की मज़ाक के कारण नेमिकुमार में कुछ तो कषाय उत्पन्न हुई और इसी कषाय के आवेश में शादी के लिये तो हाँ कहेगा। वरना जब भी शादी की चर्चा करते थे तो मना करता था या वहाँ से निकल जाता था।

अहो! जगत् के जीवों के विचारों को देखो – उन्हें तो हर किसी शादी की पड़ी रहती है, उन्होंने तीर्थंकर जैसों को भी शादी के बंधन में बाँधने की पड़ी रहती है। वाह रे कषायी जगत्। श्रीकृष्ण जो स्वयं

भावी तीर्थंकर थे, उन्हें भी अपने छोटे चचेरे भाई जो तीर्थंकर थे, उनकी शादी की ही फिकर थी वे चाहते थे कि नेमि विवाह कर ले।

कषाय को देखो वह तीर्थंकर के भीतर उत्पन्न होकर उत्पात मचाती है, वह जानती है कि ये मुझे जल्दी ही मिटा देंगे, तब भी उत्पात मचाती ही है, सामान्य जनों में उत्पात मचाये तो कौनसा कमाल है?

मज़ाक में उत्पन्न कषाय इस तरह का रूप दिखाती है, तब सचमुच की कषाय कैसा रूप दिखाती होगी? कल्पना करो।

श्रीकृष्ण सीधे अपने महल में आये, वहाँ नेमिकुमार की क्रीड़ाएँ देखकर खुश हुये, श्रीकृष्ण ने अनुज नेमि को गले लगाया। एक वर्तमान के तीर्थंकर को भावी तीर्थंकर ने गले लगाया और कहा– हे देव! आप शूरवीर हैं, विश्व में सबसे अधिक शक्तिशाली हैं। आपकी वीरता कौन नहीं जानता? सत्यभामा ने आपको नहीं पहिचाना, इसलिये उसने आपका अनजाने में अनादर किया। पहिचाना हो तो भी मात्र मज़ाक की भावना से ऐसा किया, उसके लिये हम आपसे क्षमा माँगते हैं। हे देव! क्षमा कर दीजिये और भी हल्की-फुल्की बातें करके शादी के लिये उनसे हाँ करवा ली। इधर भोजवंशी राजा उग्रसेन के पास उनकी पुत्री राजीमति (राजुल) की नेमिकुमार हेतु समुद्रविजय की संमति से विधिपूर्वक याचना की। राज उग्रसेन की स्वीकृति आयी कि हे श्रीकृष्ण जी, हम आपके अधीनस्थ राजा हैं, हम पर, हमारे राज्य पर, प्रजा पर आपका पूर्ण अधिकार है। हम स्वीकृति देने वाले कौन होते हैं? आपने हम पर, हमारी पुत्री पर बड़ा उपकार ही किया है जो हरिवंश लायक हमें समझा। हमारी पुत्री को त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर नेमिकुँवर जी के योग्य समझा। आपका हमारे आँगन में हृदय से स्वागत है।

श्रीकृष्ण, समुद्रविजय आदि ने जूनागढ़ जाकर नेमिकुमार की मंगनी कर दी। राजा उग्रसेन ने उनके स्वागत के लिये पलक-पावड़े बिछाये। उन सबका बहुत स्वागत सत्कार किया। अपनी श्रद्धा-भक्ति के अनुसार भेंट दी। इस तरह से नेमिकुमार की मंगनी समारोह सम्पन्न हो गया।

राजुल ने जब से अपना विवाह सम्बन्ध नेमिकुँवर के साथ तय होना सुना था तब से वह उनके राग में रंग गई थी। रंगे भी क्यों नहीं? जन्म-जन्मान्तर के संस्कार जो थे। यह वही राजुल का जीव है जो पूर्व में प्रीतिमति था। नेमिकुमार का जीव उस पर्याय में चिन्तागति नाम का राजकुमार था। उस समय उस पर्याय में चिन्तागति से विवाह न हो पाने पर निर्वृत्ति नाम की आर्यिका से दीक्षा धारण कर उग्र तपस्या की थी। अनेकों उत्तम पर्यायें धारण कर इस पर्याय में राजुल बनी। पूर्व में दोनों का परस्पर वात्सल्य भाव था पर विवाह नहीं हो पाया था।

इस पर्याय में राजुल उठते-बैठते सिर्फ नेमि, नेमि का ही ध्यान करती थी। अन्तरंग में वह विवेकवती थी ही इसलिये इस प्रकार की परिणति को राग की परिणति जानती थी।

ग्रीष्मकाल समाप्त होकर वर्षाकाल का चौमासा प्रारंभ होने में बस कुछ ही दिन शेष थे। नेमि-राजुल

के विवाह का दिन चौमासे से पूर्व ही था। सभी तैयारियाँ जोरों पर थी। द्वारिका में सभी के मन उमंग से भरे थे। नगरवासी उस दिन की प्रतीक्षा चाव से कर रहे थे।

वह दिन भी आ गया। नेमिकुँवर दुल्हा बनकर वर्णनातीत सुंदर लग रहे थै। एक तीर्थंकर दुल्हे के वेश में कितने सुंदर लग रहे थे यह तो प्रत्यक्षदर्शी ही जान सकता है।

नेमिकुँवर की बारात द्वारिका से जूनागढ़ की ओर चल दी। उस बारात में सभी के मन में एक से बढ़कर एक उमंग थी। सभी अपने सौभाग्य से अभिभूत थे। उमंग और उत्साह का चरम उस बारात में था।

पर श्रीकृष्ण के मन की शल्य अभी समाप्त नहीं हुई थी। रह रह कर श्रीकृष्ण को यह आशंका खाये जा रही थी कि शादी के बाद नेमि के मन में राज्य का विचार आया और मेरा राज्य छीन लिया तो मेरा राज्य जायेगा। मान-सम्मान जायेगा। भीतर ही भीतर यह भी जानते थे कि तीर्थंकर जैसे जीव के मन में ऐसे तुच्छ विचार नहीं आ सकते। फिर शल्य जब तक नहीं निकले दुःख देती ही है। श्रीकृष्ण ने एक दिन अपने मन की बात बलदेव को बतायी थी तब बलदेव ने कृष्ण को बताया था कि अरे कृष्ण तुम्हारे मन में ऐसा तुच्छ विचार आया ही कैसे? जो तीन लोक के नाथ हैं, जन्म से तीन ज्ञान के धारी हैं, हजारों देव उनकी सेवा में रहते हैं। वे तुम्हारे धरती के छोटे से टुकड़े को क्यों चाहेंगे? अरे, जो सदा निर्भर रहते हैं और रहना चाहते हैं वे चलाकर सम्पत्ति के पीछे क्यों भागेंगे? वे इतने पुण्यवान हैं कि सम्पत्ति ही उनके पीछे भागती है। निर्भयता की इच्छा वाला जीव चलाकर सिर पर भार क्यों रखना चाहेगा? साँप से बचने का इच्छा वाला जीव उसकी बांबी में क्योंकि हाथ फँसाना चाहेगा? सोलह तीर्थंकर भावनाएँ भाने वाला जीव सिर्फ अपने आत्मध्यान से उत्पन्न वीतराग भाव से संतुष्ट रहता है। वे छह खण्ड की ओर नहीं अपने अखण्ड चैतन्य की ओर देखते हैं। इसलिये हे कृष्ण तुम्हें ''श्री नेमि मेरे राज्य को छीनेंगे'' ऐसा सोचना ही नहीं चाहिये। बलदेव के समझाने से श्रीकृष्ण को कुछ शांति मिली। फिर भी वे चाहते थे कि नेमि को वैराग्य हो और वे राज्य छोड़कर चलें जाय। परंतु वे कभी अपनी चाह में सफल नहीं हो सके। नेमि के पुण्य के समक्ष उनका पुण्य नगण्य था। **जीवन में सफलता के लिये पुण्य चाहिये।** पुण्य के कारण ही धन का अम्बार लगता है, बड़े बड़े पद सहज ही मिलते हैं, सारी इष्ट-सामग्री जुड़ जाती है, मनुष्य जो यह सोचता है कि मैंने यह किया, यह किया दरअसल वह सब पूर्व पुण्य का कराया होता है। श्रीकृष्ण के पास नेमि से ज्यादा पुण्य होना चाहिये था जो वे सफल होते परंतु उतना पुण्य श्रीकृष्ण के पास नहीं था।

नेमिकुमार की बारात जूनागढ़ की ओर राजुल से वरने के लिये निकली। तीर्थंकर की बारात के वैभव, विशालता का वर्णन शब्दों में कैसे समाये? हजारों राजाओं से भरी बारात जूनागढ़ के पास पहुँची। बारात बहुत लम्बी थी। बीच में अन्तराल नहीं था। सद्य:प्रसूता कुछ गायें इस ओर रह गईं, उनके नवजात बछड़े उस ओर, कुछ पशु इस ओर कुछ उस ओर, कुछ माएँ इधर, उनके वत्स उस ओर। पशुओं की करुणा भरी आवाजें निकलने लगीं। वे आवाजें नेमिकुमार के कानों से टकराई। जीवन में पहली बार ऐसी करुणा भरी आवाजें सुनी थीं। वे सोच में पड़ गये - अरे, संसार के स्वार्थीपन को देखो, अपने विषय-कषायों की पूर्ति

के लिये दूसरे के दु:खों को भी नहीं गिनते। मुझे ही देखो, विवाह जैसे सांसारिक कार्य के लिये इन पशुओं को कैसे दु:खी कर रहा हूँ। इनको मारकर माँस खाया जायेगा न मैं विवाह करूँ, न इन पशुओं का वध हों, धिक्कार है ऐसे संसार के स्वार्थीपन को, मुझे तो वह मार्ग अपनाना चाहिये जिससे किसी को कष्ट न हो, आत्मा की संसार से मुक्ति हो। यह सोच उनको वैराग्य हुआ, उन्होंने सारथी से रुकने के लिये कहा और कहा ''मार्ग दो'' जिससे ये पशु आ-जा सके। फिर उन्होंने बारह भावनाओं का चिंतन प्रारंभ कर दिया। जो भी वहाँ आया सबको वैराग्य की ही चर्चा सुनाई दी। नेमिकुमार को जाति स्मरण ज्ञान हुआ।

स्वर्ग से लौकान्तिक देवों ने आकर उनके वैराग्य की अनुमोदना की, रथादि त्याग कर नेमिकुमार देवकुरु पालकी में सवार होकर वन की ओर गये। ''**नम: सिद्धेभ्य:**'' कहकर उन्होंने दीक्षा ली। जहाँ विवाह-उत्सव होना था, वहाँ देव-मानवों के द्वारा दीक्षा कल्याणक उत्सव मनाया गया, श्रावण शुक्ला षष्ठी जो नेमिकुमार का जन्मदिन था, वही उनका दीक्षा दिन भी। उनके साथ अनेकों राजाओं ने दीक्षाएँ लीं। देव दीक्षा नहीं ले पाने से सिर्फ पश्चाताप करते रहें। देव सोच रहे थे कि काश हम भी मनुष्य होते तो नेमिकुमार के साथ हम भी दीक्षा लेते। ये शेष मनुष्य अभागे हैं जो दीक्षा नहीं ले पा रहे हैं। देव दीक्षा-कल्याणक मनाकर चले गये, शेष मनुष्य राजा आदि अपने-अपने निवास स्थान की ओर गये।

राजुल को जैसे ही पता चला कि जिससे विवाह-बंधन बंधना था वे संसार-बंधन को तोड़कर चले गये तब उसने भी संसार का बंधन तोड़ कर दीक्षा लेने का दृढ़ निर्णय किया। वह पिताजी के पास गई उनसे दीक्षा की अनुमति माँगी, तब पिताजी ने समझाया-

बेटी! ऐसी नादानी क्यों कर रही हो? अभी सात फेरे नहीं हुये हैं, अन्य राजकुमार से तुम्हारा विवाह करा देंगे।

इस पर राजुल बोली-

पिताजी, यह नादानी नहीं समझदारी है; **संसार में रहना नादानी है, संसार को छोड़ने में तो समझदारी है। राग करने में नादानी है, वीतरागता में तो समझदारी ही है।** यह कार्य मुझे अब तक करना चाहिये था नहीं कर पायी यह नादानी थी, अब कर रही हूँ, इसमें तो समझदारी ही समझ में आती है। मैंने त्रिलोकीनाथ को पति माना था, सात फेरे केवल औपचारिक होते अन्य राजकुमार तीर्थंकर जैसे कैसे हो सकते हैं? अन्य राजकुमार मेरे लिये केवल पुद्गल का पिण्ड मात्र है क्योंकि विवाह का राग समाप्त हो गया है। पत्नी का कर्त्तव्य है, पति के सच्चे मार्ग पर चले। सो मैं भी उनके वीतरागी मार्ग पर चलूँगी। मुझे क्षमा कर दीजिये और उनके दिव्य वीतरागी मार्ग पर जाने की अनुमति दीजिये। हे पिताजी, मैं वीरपुत्री हूँ, मोक्षवीर की पत्नी हूँ, रो-धोकर संसार में नहीं रहूँगी। मैं भी एकावतारी होकर मोक्ष जाऊँगी। कृपया दीक्षा की अनुमति दीजिये।

राजुल ने पिता से अनुमति पाकर सैकड़ों कुमारिकाओं के साथ दीक्षा ली। गिरिनार की गिरिगुफा में कठोर तपस्या की। आज वह गिरिगुफा **राजुल की गुफा** के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ आत्मसाधना कर सल्लेखनापूर्वक देह त्याग कर देवपद प्राप्त किया। वह आत्मा शीघ्र ही मोक्ष पद प्राप्त करेगी।

... जिनमत में तो एक रागादि मिटाने का प्रयोजन है; इसलिये कहीं बहुत रागादि छुड़ाकर थोड़े रागादि कराने के प्रयोजन का पोषण किया है, कहीं सर्व रागादि मिटाने के प्रयोजन का पोषण किया है, परन्तु रागादि बढ़ाने का प्रयोजन कहीं नहीं है, इसलिये जिनमत का सर्व कथन निर्दोष है।

*****

सती द्रौपदी

5

सती द्रौपदी

भरतक्षेत्र की चम्पानगरी में मेघवाहन नाम का राजा राज्य करता था। इसी नगरी में सोमदेव ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी का नाम सोमिला था। सोमदत्त (युधिष्ठिर का जीव), सोमिल (भीम का जीव) तथा सोमभूति (अर्जुन का जीव) नाम के उसके तीन बेटे थे।

सोमदेव का अग्निभूति नाम का एक साला था अग्निला नाम की उसकी पत्नी थी और उसके धनश्री (नकुल का जीव), सोमश्री (सहदेव का जीव), नागश्री (द्रौपदी का जीव) – ये तीन बेटियाँ थीं।

सोमदत्त, सोमिल तथा सोमभूति को विवाह योग्य देखकर सोमदेव ने धनश्री, सोमश्री तथा नागश्री के साथ उन तीनों का विवाह करा दिया।

एक बार मुनिराज का उपदेश सुनकर संसार की यथार्थ स्थिति जानकर सोमदेव को संसार से वैराग्य हुआ और उसने जिनधर्म अंगीकार कर दीक्षा ली।

धर्मरुचि नाम के एक मुनिराज विहार करते हुये सोमदेव के घर के सामने से जा रहे थे, आहार का समय था। सोमदत्त आदि अत्यंत आवश्यक कार्य से नागश्री को आहार कार्य हेतु छोड़कर चले गये और जाने का मन तो नागश्री का भी था परंतु परिवार में छोटी होने से वह कुछ कह नहीं पायी और मन ही मन कुढ़ती रही उसने बेमन से आहार दिया। उसने मुनिराज को उसकी स्वतंत्रता में बाधक जानकर उनके आहार में जहर (कड़वी तुंबी का रस) मिला दिया। मुनिराज आहार के विषय में निरपेक्ष थे, उन्होंने सरस नीरस का विचार न करते हुये आहार ग्रहण किया, परंतु जहर से शरीर में पीड़ा होने लगी। प्राणान्त का समय जानकर उन्होंने सल्लेखना ग्रहण की तथा पंच परमेष्ठी का स्मरण करते हुये देह छोड़कर सर्वार्थसिद्धि नाम के स्वर्ग में देव बने।

नागश्री के द्वारा विष मिला देने से परम तपस्वी धर्मरुचि मुनिराज की मृत्यु हुई – यह समाचार जंगल में आग की तरह तुरंत चारों ओर फैल गया।

पाप पुण्य अपने दरवाजे स्वयं खोलते हैं जैसे पानी बहने का रास्ता खुद–ब–खुद बना लेता है। नगरनिवासियों ने उसे बहुत कोसा, भला बुरा कहा, चारों ओर उसकी निंदा हुई। अरे, आहार देने का इतना ही मन नहीं था तो आहार नहीं देती, वे जबरदस्ती करके घर में नहीं आये थे। कम से कम जहर तो नहीं देती। छोटी–सी त्रुटि से कितना बड़ा महापाप उसने बाँध लिया। तरह–तरह की गालियाँ, भर्त्सना के शब्दों

से उसे अपमानित कर दिया। कुछ लोगों ने उत्तेजित होकर उसके बाल काट दिये, मुँह पर कालिख पोती। गधे पर बिठाया। नगर में घुमाकर उसे नगर से बाहर कर दिया।

सोमदत्त आदि जब घर आये तब उन्हें इस बात का पता चला तो उन्होंने सोचा आज कितना बड़ा अनर्थ हो गया। आज हमारे आँगन में धर्म अपमानित हुआ है। हमने सावधानी क्यों नहीं रखी? हम जानते थे नागश्री के आचरण को; पर ध्यान क्यों नहीं दिया? नागश्री को इस महापाप का फल कई जन्मों तक भोगना पड़ेगा। सोमदत्त आदि को बहुत पश्चाताप हुआ। संसार व्यर्थ लगने लगा। **पश्चाताप और पाप धर्मसेवन से ही घुलते हैं,** यह सोचकर वे सभी घर से निकल गये उन्होंने **वरुण** नाम के मुनि के पास दीक्षाएँ ग्रहण कीं।

उधर नागश्री को नगर निकाला देने के बाद पेट भरने के लाले पड़े। पेट भरने के लिये अन्न भी भरपेट नहीं मिलता था, उसे भीख में भी अन्न नहीं मिलता था, जैसे तैसे झूठन से पेट भरकर जीवन जी रही थी। उसके द्वारा किया गया पाप सामान्य नहीं था, बहुत ही जघन्य था नी था, उसे इसका फल इसी जीवन में मिलना प्रारंभ हो गया उसे कोढ़ हुआ, रोम-रोम से बदबू आने लगी। अन्न नहीं होने पर भूख ज्यादा ही लगती है, पर खाने को कण भी नहीं था, न मिलने की आस थी। पीने को पानी नहीं था, न हि पास कोई पिलाने वाला था। ऐसी दयनीय दशा में तड़प-तड़प कर अवर्णनीय दुःख भोगा मरण कर पाँचवें नरक गई। वहाँ एक पल भी शांति नहीं थी।

पाँचवें नरक से निकल कर स्वयंप्रभद्वीप में **दृष्टिविष जाति का सर्प** बनी। सर्प योनि में भी उसके शरीर का आकार देखने में भयानक था। वहाँ से मरकर पुनः **तीसरे नरक** गई वहाँ तीन सागर काल तक कष्टों को सहती रही। तीसरे नरक से निकल कर **त्रस, स्थावरों की अनेक योनियों में दो सागर तक दुःख भोगती रही।**

जैसे-तैसे उसके पास पुण्य इकट्ठा हुआ और वह उसी चम्पानगरी में चाण्डाल के घर कन्या बनी वह भीख माँग कर पेट भरती थी उसे सब अछूत समझते थे दूर-दूर रहते थे। वह मंदिर, घर आदि के रास्तों को साफ करती थी। झाडू पोछे का काम करती थी, उसके बदले उसे रूखी-सूखी बासी रोटी मिलती, उससे पेट भर लेती।

एक बार चम्पानगरी में **समाधिगुप्त** नाम के मुनिराज आये थे। सभी लोग धर्मलाभ लेना चाहते थे, दर्शन का अवसर खोना नहीं चाहते थे, झुण्ड के झुण्ड उनके दर्शन कर धन्य समझ रहे थे। वह चाण्डाल कन्या भी देखा-देखी दर्शन के लिये आयी। उसने महाराज के दूर से ही दर्शन किये। महाराज ने उसे ममतामयी नजरों से देखा और कहा बेटी धर्माराधना करो तुम्हारा भला होगा।

जीवन में पहली बार उसे किसी ने इतने वात्सल्य से देखा तथा पहली बार कोई इतने प्यार से बोला। उसे बहुत अच्छा लगा, मुनिराज पर उसकी श्रद्धा कई गुणा बढ़ गई, क्योंकि **मीठे वचन विश्वास उत्पन्न करते ही हैं।**

उसने पूछा मुझे धर्म के बारे में कुछ भी पता नहीं, आराधना कैसे करूँ?

महाराज ने कहा- बेटी, कुछ नियम व्रत ले लो, मद्य, माँस, मधु का त्याग करो।

उसने कहा- ठीक है महाराज, आज से मैं मद्य, माँस, मधु का सेवन नहीं करूँगी।

उसने जीवन में कभी अपने नियम नहीं तोड़े। अब चम्पानगरी के लोग उसे सम्मान से देखते थे, उसे अच्छा लगता था। इस तरह नियमों का पालन करते हुये उसने शरीर छोड़ा।

मरकर वह चम्पानगरी में ही सुबन्धु व्यापारी के घर धनवती स्त्री से **सुकुमारी नाम की पुत्री** बनी, परंतु यहाँ भी पाप ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। मुनि को आहार में जहर देने का पाप अभी भी चल ही रहा था। उसके शरीर से बहुत दुर्गंध आती थी। जन्म के समय से ही पिताजी आदि सगे संबंधी भी उससे दूर रहते थे। माँ की ममता के सहारे वह जैसे-तैसे बड़ी हो गई जैसे पेड़ के सहारे बेल बड़ी होती है। उसके शरीर की बदबू के कारण उसे सभी **दुर्गन्धा** कहकर पुकारते थे।

जब वह बड़ी हो गई तो माँ-पिताजी को उसके विवाह की चिंता हो गई। उन्होंने उचित वर की बहुत तलाश की पर कोई भी उसके साथ विवाह के लिये 'हाँ' नहीं कह रहा था।

इसी नगरी में धनदेव नाम का छोटा व्यापारी था। उसकी पत्नी का नाम अशोकदत्ता था। जिनदेव, जिनदत्त नाम के दो पुत्र थे। सुबन्धु उसके पास विवाह का प्रस्ताव लेकर गया। उसे धन का लोभ देने की कोशिश की परंतु धनदेव यद्यपि छोटा व्यापारी था पर वह नेक ईमानदार था, दूसरे की मजबूरी का फायदा उठाना पाप समझता था। उसे सुबन्धु पर दया आयी। उसने बड़े पुत्र जिनदेव के साथ उसका विवाह करना चाहा। परंतु जिनदेव इसके लिये तैयार नहीं हुआ, दुर्गन्धा के साथ विवाह की बजाय मुक्ति कन्या के साथ विवाह अच्छा है - यह सोचकर वह घर छोड़कर **सुव्रत मुनि** के पास दीक्षित हो गया।

बड़े लोगों के आग्रह पर जिनदत्त दुर्गन्धा के साथ विवाह के लिये तैयार हो गया। परंतु विवाह के बाद दुर्गंध के कारण उससे दूर ही रहने लगा।

दुर्गंधा बार-बार अपने दुर्भाग्य को कोसती थी। वह धार्मिक विचारों में लीन रहने लगी। वह इसे अपने पूर्वजन्मों के कुकर्मों का दोष मानती थी। वह मानती थी कि इस दुनियाँ में और भी तो लड़कियाँ हैं, सभी के साथ ऐसा व्यवहार नहीं होता - जरूर मेरे पूर्व जन्मों के कर्म अच्छे नहीं थे वरना मैं ही ऐसी क्यों? क्यों जन्म से ही बदबूदार शरीर वाली बनी हूँ? इस घटना से सुकुमारी ने बहुत प्रकार से अपनी निंदा की।

पति होते हुये भी बिन पति का जीवन जीने वाली अपनी पुत्री की दु:खमयी दशा जानकर उसकी माँ धनवती उसे घर लिवा लायी। घर में भी माँ के अलावा पिताजी, भाई आदि सभी उससे दूर-दूर रहते थे। यहाँ तक कि उन्होंने उसके लिये घर के एक कोने में कुटिया बनाकर दी। वह उसी में रहती थी, सिर्फ माँ ही उसके पास आती जाती थी। उसे सदा समझाती थी कि -

बेटी, इस समय तुम्हारे पापकर्म के उदय के दिन चल रहे हैं। ये दिन भी निकल जायेंगे। अच्छे दिन आ जायेंगे। थोड़ा धैर्य रखो, हमेशा भगवान का स्मरण करती रहो, नियम शील की श्रद्धा करो, धर्म धारण करो, विलाप-विषाद मत करो। **बुरे दिनों में धैर्य ही एक शरण है।**

दुर्गन्धा माँ के कहे वचनों पर चलती व्रत, उपवास करती थी। एक दिन उसने उपवास किया तथा अनेक आर्यिकाओं से युक्त **क्षान्ता** नाम की आर्यिका को बड़ी भक्ति भाव से भोजन कराया।

क्षान्ता आर्यिका के संघ में कुछ दिन पहले ही दीक्षित हुईं, कोमल शरीर वाली, कम उम्र की दो आर्यिकाएँ थीं। उनके विषय में जानने की उसकी इच्छा थी। इसलिये आहार के पश्चात् नम्रता के साथ जिज्ञासावश उसने पूछ ही लिया कि हे आर्ये! आपके साथ ये कोमलांगी आर्यिकाएँ कौन हैं और इन्होंने इतनी कम उम्र में दीक्षा क्यों ग्रहण की है?

क्षान्ता आर्यिका ने उत्तर में कहा-

पूर्वजन्म में ये दोनों सौधर्म स्वर्ग में सौधर्म इन्द्र की देवियाँ थीं। विमला और सुप्रभा- इनके नाम थे। एक बार वे अपने स्वामी के साथ नंदीश्वर द्वीप गई थीं। वहाँ बड़े भक्ति भाव से जिनेन्द्र भगवान की पूजा, अर्चना की। वहाँ उन्होंने संसार से उदासीन होकर प्रतिज्ञा की थी कि-

''भविष्य में जब भी वे मनुष्य जन्म लेंगी तब निश्चय ही कठोर तपस्या करते हुये धर्म साधना करेंगी।''

स्वर्ग से निकलकर वे दोनों अयोध्या के राजा श्रीसेन के घर रानी सुकन्ता की कोख से **हरिषेणा** तथा **श्रीषेणा** नाम की पुत्रियों के रूप में जन्मीं। युवा होने पर राजा ने स्वयंवर विधि से उनका विवाह करना उचित समझा। स्वयंवर की सम्पूर्ण तैयार हुई, शुभ मुहूर्त में वे स्वयंवर मंडप में आईं। वहाँ पहुँचते ही उन्हें ऊपर आकाश में नंदीश्वर द्वीप जाने वाले देवों के विमान दिखे, जाति स्मरण ज्ञान हुआ। जिससे उन्होंने पूर्वभव की सारी घटनाएँ, अपनी प्रतिज्ञाएँ जानीं। उन्होंने वह वृत्तान्त पिताजी को सुनाया, उनसे दीक्षा के लिये आज्ञा माँगी। पिता की आज्ञा पाकर हमारे पास दीक्षित हुई हैं। अनेक स्थानों पर विहार करते हुये आज आपके घर हैं।

आर्यिकाओं की जीवनगाथा सुनकर वह विचारों में खो गई। सोचने लगी कि-

इन दोनों ने अनेक प्रकार की भोग-सामग्रियों को छोड़कर दीक्षा ली है, एक मैं हूँ, जो नाममात्र की भोग सामग्री में ही फँसी पड़ी हूँ। विचारों की गहराइयों से निकलकर, माता-पिता, भाइयों से आज्ञा लेकर उसने भी दीक्षा ली। वह आर्यिका माता बनी। एक समय पहले की अभागन अब जगत्पूज्य, जगद्वंद्य बन गई। उन्हीं के साथ रहकर व्रतों का पालन करने लगी।

एक बार वसन्तसेना नाम की वेश्या जा रही थी, उसके आगे-पीछे चार-पाँच चापलूस कामी थे। वसन्तसेना को देखकर सुकुमारी के मन में भाव आया कि ''काश, ऐसे अनेक पुरुष मेरी भी सेवा करते

तो ....।'' उसने ऐसे भावों को अपने पद के विरुद्ध जानकर पश्चाताप भी किया परंतु उस निदान (भाव) से उसे बंध हो चुका था। व्रतादिक का पालन करते हुये देह त्यागकर स्वर्ग में देवी बनी। अर्जुन (सोमभूति) का जीव उसी स्वर्ग में देव था, उसकी पत्नी (देवी) बनी।

वहाँ धर्मसाधना में लीन रहते हुये समय बिताया। बाद में माकन्दी के राजा द्रुपद की पत्नी सुदर्शना की कोख से **द्रौपदी** नाम की कन्या बनी। उसके धृष्टद्युम्न आदि अनेक भाई थे उसके हँसते खेलते हुये दिन बीत गये वह विवाह योग्य हो गई। द्रुपद ने उसका विवाह, स्वयंवर-पद्धति से करना उचित समझा।

यहाँ एक अन्य घटना जो इसी प्रसंग से जुड़ी है, जानना जरूरी है-

एक **सुरेन्द्रवर्धन** नाम का विद्याधरों का राजा था, उसके एक पुत्री थी, जो विवाह लायक हो गई थी, तब उसने एक निमित्त ज्ञानी से पूछा कि इसका पति कौन होगा? निमित्त ज्ञानी ने गंभीरतापूर्वक विचार करके बताया कि जो वीर कंदी में आकर तुम्हारे गांडीव धनुष को गोल करने एवं राधावेध करने में समर्थ होगा वही तुम्हारी पुत्री का एवं द्रुपद की पुत्री द्रौपदी का पति होगा। सुरेन्द्रवर्धन गांडीव धनुष लेकर द्रुपद के पास आया, निमित्त ज्ञानी की सारी बातें बता दीं।

द्रुपद ने राजाओं को निमंत्रण भेजे। स्वयंवर मंडप सजवाया, साथ ही वहाँ गांडीव सजवाकर रखवा दिया।

द्रौपदी अनुपम सुंदरी थी। उसके सौंदर्य की चर्चा पहले से ही फैली हुई थी। स्वयंवर में अनेक राजाओं की भीड़ जमा हो गई। **बिना पुण्योदय के कोई वस्तु प्राप्त नहीं होती** तब द्रौपदी जैसी अनुपम सुंदरी बिना विशेष पुण्य के कैसे प्राप्त होगी? जिसके पास वैसा पुण्य होगा, उसी का गला द्रौपदी के द्वारा पहनाई गई वरमाला से सुशोभित होगा, शेष हीन पुण्य या अल्प पुण्य वाले राजागण निराश ही लौटेंगे।

जिनकी चर्चा कथा के प्रारंभ में आई थी, वे सोमदत्त, सोमिल, सोमभूति स्वर्ग आदि जन्मों के बाद इस समय राजा पाण्डु की पहली पत्नी कुंती के गर्भ से क्रमश: युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन के रूप में जन्मे हैं। पाण्डु की दूसरी पत्नी माद्री के गर्भ से पूर्व में जो धनश्री व मित्रश्री थी, वे अनेक जन्मों के बाद इस जन्म में क्रमश: नकुल व सहदेव बने हैं। वे पाँचों पाण्डु के पुत्र होने से पाण्डव कहलाये और सभी स्वभाव से सज्जन, नीति के मार्ग पर चलने वाले थे।

पाण्डु ने मुनि से अपनी अल्पायु जानी, दीक्षा लेकर देह त्याग दी और सौधर्म स्वर्ग में देव बने। माद्री ने भी तपस्या का मार्ग अपनाया व आयु पूर्ण कर स्वर्ग में देवी बनी।

पाण्डु के धृतराष्ट्र और विदुर दो भाई थे, धृतराष्ट्र ने एक निमित्त ज्ञानी मुनि से पाण्डवों के द्वारा कौरवों का विनाश जानकर पाण्डवों और कौरवों में राज्य को आधा-आधा बाँट दिया और दीक्षा लेकर मुनि बन गये।

दुर्योधन स्वभाव से दुष्ट था, वह राज्य के बँटवारे से खुश नहीं था। उसने लाक्षागृह (लाख का घर)

बनवाया, उसमें पाण्डवों को रुकवाया और रात में उसमें आग लगवा दी, पाण्डव गुप्त मार्ग से बच निकले। वे दुर्योधन की नीयत जानकर गुप्त रूप से रहने लगे परंतु सूर्य के प्रकाश को कौन दबा पाया? अपने पराक्रमों से वे जगह-जगह सम्मानित होते रहे, वे माकन्दी में एक कुम्हार के घर ब्राह्मण का भेष धारण कर ठहरे हुये थे। वे भी कुतुहल व जिज्ञासावश द्रौपदी का स्वयंवर देखने आये।

द्रौपदी का स्वयंवर प्रारंभ हो गया तथा एक-एक कर राजा आते गये और गांडीव धनुष को झुकाने व राधावेध करने का प्रयत्न करने लगे परंतु धनुष चढ़ाना तो दूर कोई भी राजा उसका स्पर्श भी नहीं कर पाया, धनुष की किरणों से उनकी आँखें चौंधियाने लगतीं त्यों ही वे उसे छोड़कर लौट आते उसमें दुर्योधन भी सफल नहीं हुआ। जब सभी राजा असफल हो गये तब मंडप में सन्नाटा छा गया और सब स्तब्ध थे, शांत थे। सबके मस्तक लटक गये। द्रुपद, द्रौपदी, सुरेन्द्रवर्धन विद्याधर आदि सभी को चिंता हुई कि अब क्या होगा? द्रौपदी के विवाह का क्या होगा?

द्रुपद आदि की ऐसी दशा देखकर युधिष्ठिर को दु:ख हुआ, उसने अर्जुन को इशारे से अपने पास बुलाया, धीरे से कहा-

हे वीर! हे पुत्र! आप संसार में सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर हो। इन शूरवीर राजाओं में एक भी ऐसा नहीं निकला, जो धनुष को चढ़ा सका। आप जैसे धनुर्धर के होते हुये भी क्या द्रौपदी पतिविहीन ही रहेगी? द्रुपद जैसा सज्जन, धर्मात्मा, धर्मप्रिय राजा दु:खी हो क्या यह हमें अच्छा लगेगा? इसलिये जाइये और लक्ष्यवेध कीजिये।

अर्जुन सिद्ध भगवान को याद कर भाइयों को नमस्कार कर लक्ष्यवेध के लिये जाने लगा, तब उस ब्राह्मण को धनुष की ओर जाते हुये देखकर कई राजा मंद-मंद उपहास मुद्रा में हँस रहे थे, कई उसकी हँसी होने की प्रतीक्षा में थे। अर्जुन जब धनुष के पास गया तब उसके पुण्य प्रताप से धनुष की ज्वालाएँ अपने आप शांत हो गई उसने एक प्रयास में ही धनुष को झुकाकर लक्ष्य (राधा) वेध किया तो सभी के मुँह खुले के खुले रह गये।

द्रुपद खुश हुये और द्रौपदी का मन खिल उठा। सुरेन्द्रवर्धन विद्याधर के हृदय में आनन्द समा नहीं रहा था। हृदय में उमंगें, हाथ में वरमाला लेकर खुशी से चहकती द्रौपदी आगे बढ़ी जैसे ही वह अर्जुन के गले में वरमाला डाल रही थी तब हवा का तेज झोंका आया। वरमाला की कुछ पंखुडियाँ अर्जुन के पास खड़े भाइयों पर गिरी। इसी से **सती, पतिव्रता होते हुये भी सुकुमारी के जन्म में वसन्तसेना को देखकर बाँधे हुये निदान बंध के पापोदय से जनता में उसके सम्बन्ध में यह अपवाद (अपयश) फैल गया कि वह पंचभर्तारी (पाँच पतिवाली) है। इसलिये जो पदार्थ प्राप्त नहीं हो सकता, उसकी इच्छा करके पापबंध नहीं करें। इच्छा से पुण्य जलता है बढ़ता नहीं।** पाप किस जन्म में फल देगा? सर्वज्ञ के अलावा कोई नहीं जानता? इसलिये सावधान रहिये, पाप भाव को अपने पास भी भटकने नहीं दीजिये, अन्यथा दुर्गति को अपने पास ही जानिये।

लक्ष्यवेध समाप्त हुआ परंतु दुर्योधन के मन में ईर्ष्या की आग जल रही थी, उसने बगावत के स्वर में अन्य राजाओं से कहा– हम जैसे वीरों के होते हुये इन भिखारी ब्राह्मणों को मण्डप में क्यों आने दिया? यह हम क्षत्रियों का अपमान है घोर अनादर है।

कुछ राजाओं ने उसकी 'हाँ' में 'हाँ' मिला दी। कुछ ने कहा– हम सभी वीर असमर्थ रहे, तब वे आये, इसलिये द्रुपद को दोष देना ठीक नहीं है। दुर्योधन ने अपने पक्ष के राजाओं के साथ मिलकर विचार–विमर्श करके एक दूत द्रुपद के पास भेजा और कहलवाया कि–

हे महाराजा! दुर्योधन आदि शूरवीर राजाओं के रहते हुये आपने अपनी पुत्री एक ऐसे व्यक्ति के साथ ब्याह दी, जिसके कुलशील का पता नहीं, जो निर्धन भिखारी है यह कार्य आपके अनुरूप नहीं बल्कि अशोभनीय है। अत: इन ब्राह्मणों को बड़ा–सा उपहार देकर संतुष्ट करके किसी योग्य राजा के साथ द्रौपदी का विवाह कर दीजिये, अन्यथा हम सब को युद्ध के लिये बाध्य होना पड़ेगा। हम यह सहन नहीं कर पायेंगे कि वीर क्षत्रिय राजाओं के रहते हुये एक अज्ञात कुलशील वाले, अति साधारण, दरिद्र ब्राह्मण के साथ द्रौपदी रहे, किसी राजा के साथ ही द्रौपदी का विवाह कराने से आपकी शान बनी रहेगी वरना यह दाग सदा के लिये आपके चरित्र पर रहेगा कि द्रुपद ने वीर क्षत्रिय राजाओं के रहते हुये भी एक अज्ञात कुलशीली ब्राह्मण से बेटी ब्याह दी। अन्य लोग भी इसे उदाहरण बनाकर विजातीय विवाह करते रहेंगे।

द्रुपद को दुर्योधन आदि राजाओं का संदेश अप्रिय लगा वे न्यायप्रिय राजा थे उन्हें क्रोध आया परंतु परिस्थिति देखकर उसे दबा दिया, परंतु कठोर शब्दों में जवाब भिजवाया कि–

हे दुर्योधन आदि राजाओं! आप सब को पहले अवसर दिया परंतु आपके असफल होने पर आपके सामने इस वीर ने लक्ष्यवेध किया था जो स्वयंवर की शर्त थी, नियमानुसार जिसने शर्त पूर्ण की, वही द्रौपदी का पति है। असफलता से तो आप सभी के मुँह लटक गये थे, अब किस मुँह से बातें कर रहे हों?

हमारा महल भी प्रजा का ही होता है तब स्वयंवर मण्डप क्या चीज है? उस मण्डप में कोई भी आ सकता है। आने की मना नहीं है।

स्वयंवर में सफलता वीर को ही प्राप्त होती है, जो वीर है वही राजा है भले ही उसके पास राज्य न हो।

जिसने वीर, क्षत्रिय राजाओं से बढ़कर प्रयत्न किया, वह अज्ञात कुलशीली कैसे है? वह अतिवीर अब तो विश्वप्रसिद्ध है। रही बात दरिद्रता की, द्रुपद का दामाद दरिद्री नहीं हो सकता, जिसने द्रौपदी के गले में वरमाला डाली है, वह अब दरिद्री नहीं है। दाग मेरे चरित्र पर नहीं बल्कि आपके चरित्र पर रहेगा कि दुर्योधनादि वीर बैठे के बैठे ही रहे और एक साधारण व्यक्ति लक्ष्यवेध कर द्रुपद का दामाद बना। रही बात युद्ध की, द्रुपद, न्याय के लिये प्राणों को भी तुच्छ समझता है।

द्रुपद के उत्तर के साथ भावों को समझकर दुर्योधन व उसके पक्ष के राजा युद्ध की तैयारी करने लगे, उधर पाण्डव द्रुपद के पास गये। युद्ध के लिये पाँच रथ माँगे, द्रुपद चतुर थे, समझ गये कि ये साधारण

ब्राह्मण नहीं हैं, क्योंकि ऐसी माँग वीर (क्षत्रिय) ही कर सकते हैं। पाण्डवों ने रथों के आते ही द्रुपद को युद्ध जीतने का विश्वास दिलाया, निश्चिंत रहने के लिये कहा।

अब दोनों सेनाएँ आमने-सामने आ गई युद्ध होने लगा युद्ध में घनघोरता आ गई। अर्जुन के बाणों के सामने दुर्योधनादि सब को पस्त देखकर अर्जुन के साथ युद्ध के लिये द्रोणाचार्य आये। गुरु द्रोणाचार्य को सामने देखकर अर्जुन ने अपने परिचय वाला पत्र बाण के द्वारा उनके चरणों तक पहुँचाया। पाण्डवों को जीवित जानकर द्रोणाचार्य को प्रसन्नता हुई। उन्होंने यह समाचार दुर्योधन को सुनाया हवा की मानिंद यह खबर चारों ओर फैल गई। अमृत के समान मीठी लगी परंतु दुर्योधन के शरीर को इस खबर से ईर्ष्या, द्वेष रूपी बिच्छु डंक मारने लगे पर उसने अपनी पीड़ा बाहर प्रगट होने नहीं दी। पितामह भीष्म, गुरु द्रोणाचार्य, सुलझे विचार वाले कर्ण ने पाण्डवों से कौरवों को क्षमादान के लिये कहा, पाण्डवों ने गुरुजनों का मान रखा। कौरवों को क्षमा कर दिया। पाण्डवों की यह उदारता कौरवों के लिये आग में घी की तरह थी। उधर दुर्योधन ने जिनेश्वर की शपथपूर्वक कहा कि लाक्षागृह में आग उसने नहीं लगायी। हालाँकि लाक्षागृह में आग लगवाने की योजना दुर्योधन की ही थी। क्षमादान करने के पश्चात् सरल हृदयी पाण्डव कौरवों के गले मिले। कौरवों के गले पाण्डवों से मिल रहे थे परंतु दिल नहीं।

द्रुपद ने अर्जुन का युद्ध देखा तो समझ गये थे कि वे साधारण ब्राह्मण नहीं हैं, अब तो पक्का हो गया कि वे सब पाण्डव हैं, वरमालाधारी वीर कोई और नहीं बल्कि वीर, धनुर्धारी अर्जुन है। द्रुपद की खुशी का ठिकाना नहीं रहा, द्रौपदी का विवाह ठाट-बाट से हुआ। द्रौपदी को लेकर पाण्डव हस्तिनापुर आकर रहने लगे।

एक दिन दुर्योधन ने युधिष्ठिर से कहा- आज मन बेचैन हो रहा है। यदि आपका मन हो तो मन बहलाने के लिये शतरंज खेलते हैं। युधिष्ठिर सरलमना थे वे दुर्योधन के कपट को समझ नहीं पाये। वे शतरंज खेलने लगे, युधिष्ठिर का पक्ष हारने लगा। **एक बार का गलत रास्ते पर गया हुआ कदम सम्भला नहीं तो वह आदमी को विपत्तियों के गहरे गड्ढे में गिराता है।** पाण्डव जुये में धीरे-धीरे सब वैभव हार गये। युधिष्ठिर अपने भाइयों व पत्नियों को हार गये। भीम आदि ने उन्हें टोका था, परंतु **व्यसनों के नशे में सत्य सुनाई नहीं देता, जुआ तो व्यसनों का सिरमौर है उसे तो झूठ-मूठ में भी नहीं खेलना चाहिये।** अन्त में युधिष्ठिर स्वयं को भी हार गये तब महल में लौट आये। वे ठीक से बैठ भी नहीं पाये थे कि दुर्योधन के दूत ने आकर कहा कि अब आप दुर्योधन के अधीनस्थ होने से वे आपको आज्ञा देते हैं कि आप भाइयों के साथ वनवास जाइये, क्योंकि आप राजपाट को 12 वर्ष के लिये हार चुके हो, अत: आज रात्रि के अन्धेरे में ही निकल जाइये।

उधर दु:शासन रनिवास में गया द्रौपदी को जबरदस्ती बाहर निकालने लगा। द्रौपदी ने विरोध किया तो वह उसके बालों को पकड़कर घसीटते हुये बाहर लाया। भीष्म ने उसे ऐसा करने से मना किया, पर **क्या कषायों का ज्वर सद्विचार को सहन कर पाता है?** माँ समान अपनी भाभी का अपमान कर दु:शासन ने

अपनी दुर्गति तय की थी। द्रौपदी के बाल बिखर गये, साथ ही आँखों से आँसुओं की धाराएँ भी निकलती रहीं, बिलखती-बिसुरती द्रौपदी पाण्डवों के पास गई, सुबकते हुये उसने कहा-

आज मेरा घोर अपमान हुआ है, यह मेरा नहीं आपकी वीरता का अपमान है। मैं अबला हूँ पर आप सब तो वीरों में वीर कहलाते हो, आपके रहते मेरा अपमान क्यों हुआ? जिस मुँह को खुले हुये किसी ने नहीं देखा, इस पापी की वजह से उसे सबने खुला देखा। आप वीरों के साथ समझदार भी हों, आपको अपनी कुलवधू की रक्षा, सुरक्षा का ध्यान रखना चाहिये।

उसने भीम, अर्जुन की ओर मुखातिब होकर कहा- आप लोगों के सामने भी मेरा यों ही अपमान होता रहेगा तो आपकी गदा और धनुष किस काम के?

भीम, अर्जुन की त्यौरियाँ चढ़ गईं, दु:शासन का नाश करने के लिये युधिष्ठिर से आज्ञा माँगी। पुत्र समान भाइयों को युधिष्ठिर ने बड़े शांत स्वर से समझाया कि इस समय हमारा समय अनुकूल नहीं है। **पाप के उदय में समय अनुकूल नहीं हो तो शांत रहना ही एकमात्र उपाय होता है, पाप का उदय समाप्त होने तक शांत रहना चाहिये।** मेरी दुर्बुद्धि की वजह से आप सब पर इस तरह विपत्ति के बादल मँडरा रहे हैं। आप सब का बल संसार में सर्वश्रेष्ठ होते हुये भी मेरी दुर्बुद्धि की वजह से व्यर्थ हो गया है। कुछ काल तक हमें शांत ही रहना चाहिये। पुण्य का उदय आने पर अनुकूल समय आने पर, हम अवश्य ही इस अपमान का बदला लेंगे।

बड़े भाई के आगे आज्ञाकारी अनुज नतमस्तक हो गये।

युधिष्ठिर के निर्देशन पर सभी वनवास पर निकल गये। जाने से पहले वे सब द्रौपदी की सुरक्षा चाहते थे, वे चाहते थे कि द्रौपदी को किसी सुरक्षित स्थान पर रखकर वनवास में चले जायें पर द्रौपदी कैसे मानती? वह तो अपनी जिद पर अड़ी रही कि वह भी उनके साथ ही जायेगी।

द्रौपदी को साथ लेकर पाण्डव रात अन्धेरे में वनवास के लिये निकल गये।

मनोरंजन हेतु खेले गये थोड़े समय के खेल ने उन वीरों को वन में ऊबड़-खाबड़, कँकरीली जमीन पर रहने के लिये, पेड़ों की छाल के कपड़े पहनने के लिये, वन के फल, झील, नदियों का पानी पीने के लिये मजबूर होना पड़ा।

रात में जंगली, डरावने जानवरों की आवाजें, नीचे चुभन भरी धरती, ऊपर से सर्दी, गर्मी, बारिश की परेशानियों से ढंग से नींद नहीं आती थी।

वे सब पुण्यशाली थे, इसलिये अति कष्ट तो उन्हें नहीं था, पर थोड़ा कष्ट तो कष्ट ही था, आखिरकार वह था तो वन ही घर तो था नहीं। **पुण्य के उदय के बिना तिनका भी प्राप्त नहीं होता; महल, राजपाट की बात तो बहुत दूर की है।**

जब एक दिन उन्हें जंगल में मुनिसंघ दिखाई दिया तब उन्हें वनवास में भी पुण्य दिखाई दिया। उन्होंने जंगल में मंगल माना। आज यदि वे वन में नहीं होते तो जगत् के तारणहार मुनियों के दर्शन कैसे होते?

परंतु दुर्भाग्य ऐसा कि मुनिराजों के स्वागत-सत्कार आदि के लिये शुद्ध, प्रासुक वस्तुएँ पास नहीं थी, उन्हें आहार दे तो कैसे दे? स्वयं वन के फल खाने वाले मुनिराजों को आहार में क्या देते? देते तो कैसे? उन्हें आहार न देने की अपेक्षा मृत्यु भली लगी। वे अपनी निर्धनता, विवशता, लाचारी को मन ही मन धिक्कारने लगे।

आचार्य युधिष्ठिर आदि के भावों को अपने दिव्य ज्ञान से समझ गये। उन्होंने पाण्डवों को संबोधा कि-

हे धर्मवत्सल, धर्मप्रेमी युधिष्ठिर! तुम तो संसार की विचित्रता को समझते हो, आप सबने उसको भोगा है, भोग रहे हो, थोड़ी-सी दुर्बुद्धि आप को जंगल में लाई है। पूर्व में आपने जो पाप किया था, आज वह उदय में आया है, परंतु कुछ समय बाद वह समाप्त हो जायेगा। दुःखी मत होना, क्योंकि **पाप में समता धारण करना ही उपाय है।**

धर्म को वचनों के द्वारा प्रत्यक्ष प्रकट कर अमृत वचनों की वर्षा कर वे संघ सहित वहाँ से चले गये।

एक बार विद्याधरों के साथ दुर्योधन का युद्ध हुआ था, उसमें विद्याधरों ने दुर्योधन को हरा बंदी बना लिया था। यह घटना जब युधिष्ठिर को पता चली तो अर्जुन को भेजा। विद्याधरों को हराकर अर्जुन युधिष्ठिर के सामने दुर्योधन को लाया, युधिष्ठिर ने उसे प्रेम से गले लगाया, प्रेम से मिलकर अपने कुल की अच्छी परम्परा की याद दिलाकर अच्छे से राज्य की प्रेरणा के साथ विदा कर दिया।

दुर्योधन अपनी राजधानी में लौट आया परंतु वह बेचैन रहने लगा, विद्याधरों के द्वारा बंदी बनाया जाना उसे इतना नहीं अखरा था, जितना अर्जुन के द्वारा छुड़ाया जाना। दुर्योधन इस अपमान को सहन नहीं कर पा रहा था वह भीतर ही भीतर झूरने लगा, बेचैन रहने लगा, उसे इसमें पाण्डवों का प्रेम नहीं अपितु कृपा दिखी, अपना छोटापन दिखा। उसे लगा कि जीवन में बार-बार आने वाली परेशानियों, अपमानों का कारण पाण्डव ही हैं, जो उसका चैन बार-बार खींच रहे हैं, उसने सोचा कि पाण्डव नहीं रहे तो ही उसे इन सबसे निजात मिल सकती है, इसलिये उसने एक योजना सोची कि जो कोई पाण्डवों को गुप्त रूप से मारेगा उसे आधा राज्य देने की गुप्त रीति से घोषणा भी कर दी।

कनकध्वज ने दुर्योधन के सामने प्रतिज्ञा की कि मैं पाण्डवों को मारूँगा यदि असफल रहा तो स्वयं को अग्नि के हवाले कर दूँगा। इस कार्य की सिद्धि के लिये उसने **कृत्या** नामक विद्या की साधना प्रारंभ कर दी।

पाण्डवों का वन में समय बीत रहा था। एक दिन किसी देव ने द्रौपदी का अपहरण किया, उस देव के पीछे अर्जुन, भीम, नकुल भागे, परंतु देव के द्वारा निर्मित मायामयी जल को पीकर बेहोश हो गये।

इसी समय कनकध्वज को कृत्या विद्या सिद्ध हो गई उसने इस विद्या को पाण्डवों को मारने का आदेश दिया। उस विद्या ने पाण्डवों को बेहोश देखा, वह देव जिसने पाण्डवों को मायामयी जल से बेहोश कर दिया था, उसने भील के वेष में आकर उस कृत्या विद्या से पूछा- यहाँ किसलिये आयी हो?

विद्या ने कहा- यहाँ आयी थी अपने मालिक की आज्ञा से पाण्डवों को मारने के लिये पर वे तो पहले से ही मरे हुये हैं। अब मैं क्या करूं? भील भेषधारी देव ने उसे कहा कि जिसने भेजा उसी को मार दो तुम्हारा काम पूरा हो जायेगा। विद्या ने वैसे ही किया, कनकध्वज को मार दिया। देखो, पुण्य पाप का खेल, जो विद्या पाण्डवों को मारने के लिये सिद्ध की थी, **पुण्य के उदय से पाण्डव तो बच गये पर पाप के उदय से विद्या सिद्ध करने वाला अपने अधीन रहने वाली विद्या से मारा गया।**

देव ने विद्या के जाने के बाद पाण्डवों को होश में ला दिया और बताया, मैं सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र के आदेश से विद्या से आप लोगों की रक्षा के लिये आया था, आप की रक्षा का कार्य पूरा हो गया इसलिये जा रहा हूँ। आपकी धर्मश्रद्धा, धर्मभक्ति से प्रभावित होकर इन्द्र ने यह कार्य मुझे सौंपा था।

देव के जाने के बाद पाण्डव और अधिक गुप्त रूप से रहने लगे।

देखते ही देखते उनका 12 वर्ष का वनवास का समय बीत गया। अब एक वर्ष का अज्ञातवास का समय बाकी था। सबने अलग-अलग भेष धारण किये और विराट नगर आये, यहाँ के राजा का नाम विराट था। उसी विराट राजा की राजसभा की नौकरी का कार्य युधिष्ठिर ने प्राप्त किया। भीम, राजा की रसोई में रसोइया बना। नकुल, राजा की घुड़साल में घोड़ों की देखभाल का कार्य करने लगा। सहदेव राजा की गायें सम्भालने लगा। अर्जुन ने स्त्री का भेष धारण किया, वह नृत्य शिक्षिका का कार्य करने लगा। द्रौपदी दासी बनकर रानी सुदर्शना की सेवा करने लगी। सभी छद्म वेष में अपना-अपना कार्य कर रहे थे, समय-समय पर एक दूसरे से मिलते थे।

एक दिन रानी सुदर्शना का भाई कीचक बहन से मिलने आया था वहाँ उसकी नजर द्रौपदी पर पड़ी। द्रौपदी का सौंदर्य उसे इतना भाया कि वह उसे देखता ही रहा। वह उसे पाना चाहता था, प्रयत्न करने लगा, उसे पाने के लिये उसने द्रौपदी से बात की तब द्रौपदी ने उसे समझाया कि कहाँ आप राजा के साले साहब और कहाँ मुझ जैसी दासी? आपको मुझ जैसी दासी के लोभ में पड़ना शोभा नहीं देता। **लोभ में पड़ा आसक्त व्यक्ति विषय-कषायों में फँसकर दीनता को प्राप्त होता है,** वह द्रौपदी के सामने गिड़गिड़ाने लगा, विषयों की भीख माँगने लगा की तुम्हें पाये बिना मैं मर जाऊँगा- इस तरह व्याकुलता भरे वचन कहने लगा।

अन्त में द्रौपदी ने उससे कहा कि मुझे अबला समझने की भूल न करें, मेरे पाँच महा बलशाली गंधर्व रक्षक हैं। उन्हें पता चलेगा तो आपको जीवित नहीं रहने देंगे, अत: आपकी भलाई इसी में है कि आप मुझसे दूर ही रहिये और मेरा विचार अपने दिमाग से निकाल दीजिये। जब कीचक ने जबरदस्ती करने की कोशिश की तब द्रौपदी ने युक्ति से काम लिया, उसे अन्य दिन निश्चित स्थान पर मिलने के लिये बुलाया। उधर मिलने की खुशी में कीचक उछलता-कूदता चला गया और इधर द्रौपदी ने सारी बातें पाण्डवों को एकान्त में बुलाकर बता दी। युधिष्ठिर ने भीम को स्त्री के भेष में (द्रौपदी के स्थान पर) कीचक से मिलने के लिये भेजने की योजना बनाई।

निश्चित स्थान व समय पर स्त्री भेष में भीम पहुँच गये। कीचक तो उससे भी पहले उस स्थान पर पहुँच चुका था। भीम ने कीचक की जमकर पिटाई की, बुरे काम का बुरा नतीजा होता है। विषयवासना का बुरा फल देखकर उसे बड़ा भारी पश्चाताप हुआ, संसार की विचित्रता, भावों की असारता देखकर उसे वैराग्य हुआ। उसने **रतिवर्धन नाम के मुनि** के पास दीक्षा ली, कुछ समय **पहले जो विषयों से हारा हुआ था अब स्वयं तारणहार मुनि बना।** एकांत निर्जन स्थान पर चला गया। कीचक के निन्यानवें भाई थे। सब ने उसे खोजा पर कहीं नहीं पाया। उन्हें एक जलती हुई चिता दिखाई दी, किसी ने बताया कि यह जलती चिता कीचक की है तथा उसकी यह दशा शैलन्ध्री नाम की दासी के कारण हुई है। (द्रौपदी, शैलन्ध्री नाम से दासी का कार्य कर रही थी।)

उधर द्रौपदी ने यह समाचार चारों ओर फैला दिया कि कीचक अपनी कामवासना को पूरी करने के लिये उससे जबरदस्ती करने लगा था, तब एक गंधर्व उसकी रक्षा करने आया और उसने उसकी पिटाई की। यह बात सारे राज्य में आग की तरह फैल गई और यह समाचार राजा विराट तक पहुँचा, वह सकते में आ गया। लोग डरे हुये थे, वे जमा हो गये। कुछ लोग इस दु:खद घटना का कारण शैलन्ध्री (द्रौपदी) को जानकर उसे चिता में जलाने का प्रयास करने लगे तो वह जोर-जोर से करुण स्वर से विलाप करने लगी, सहायता के लिये पुकारने लगी। उसकी आवाज भीम के कानों तक पहुँची तो गुस्से में एक बड़े वृक्ष को जड़ से उखाड़कर वह चिता की ओर आया, उसे इस तरह देखा तो सबको गंधर्व के आने का भ्रम हो गया, लोग तो भाग गये पर कीचक के निन्यानवें भाई वहीं खड़े रहे, गुस्से में भीम का गुस्सा उन पर निकला, उसने उन्हें जलती चिता में डाल दिया। वे सब जीवित मारे गये।

उधर कीचक मुनि ध्यान, अध्ययन, कठोर तप में समय व्यतीत करते-करते घने जंगल में एकान्त निश्चल बैठे थे। वहाँ एक यक्ष पहले से ही था। उसने मुनि के मन की निर्मलता की परीक्षा के लिये आधी रात के समय द्रौपदी का रूप धारण कर मुनि के सामने पहुँच अनेक काम भरी क्रीड़ाएँ कीं। उसकी ये क्रीड़ाएँ जली हुई रस्सी की तरह साबित हुईं, जो मुनि के मन को बाँध न सकी। मुनि तो विकारों से दूर किसी दूसरी दुनिया में थे, जहाँ आत्मिक आनंद के सागर में डुबकियों के अलावा दूसरा कार्य था ही नहीं, उन्होंने वैराग्यजनी भावनाओं के चिंतन एवं आत्मिक शरण से अपनी शुद्धि की रक्षा की। मन को विकारी नहीं होने दिया, फलस्वरूप विषयवासना पर विजयपताका के रूप में उन्हें अवधिज्ञान प्रकट हुआ। उनकी अचल कठोर साधना देखकर यक्ष हार गया, उसने उनसे बार-बार क्षमायाचना की, पुन:पुन: नमस्कार, प्रणाम किया तथा बड़ी विनय के साथ द्रौपदी के प्रति उनके प्रेम का कारण पूछा तब मुनि ने अवधिज्ञान के बल पर जो बताया, वह इस प्रकार है-

एक समय मैं **तरंगिनी** नाम की नदी के किनारे, जहाँ **वेगवती** नाम की नदी का संगम होता है, वहाँ **श्रुद्र** नाम का म्लेच्छ था। मेरे परिणाम बहुत रौद्र रहते थे वहाँ एक बार मुनिराज आये थे उनके दर्शन से मेरे परिणामों में शांति छा गई, उनके दर्शन के बाद से मेरे परिणाम शांत रहने लगे।

मरकर मैं व्यापारी के घर **कुमारदेव** नामक पुत्र बना। वहाँ मेरी नागश्री नामक माँ ने **धर्मरुचि** नामक मुनिराज को विष मिलाकर आहार दिया था जिसने मुनि की मृत्यु हुई थी। इस जघन्य पाप से वह कुगतियाँ भटकती रहीं। मैं मरकर कुत्ता बना। कुत्ते का जीवन पूरा कर मैं **सित** नामक तापस के घर मधु नामक पुत्र बना। एक दिन किसी श्रावक ने **विनयदत्त** मुनि को आहार दिया तब मैं वहीं था, मुनिमुद्रा मुझे इतनी भाई कि मैं भी मुनि बना समाधिपूर्वक देह त्याग कर मैं **स्वर्ग में देव** बना तथा स्वर्ग से आकर इस समय मैं कीचक बना हूँ। मेरी माँ का जीव (जिसने महाराज को विषमिश्रित आहार दिया था वह) इस समय द्रौपदी बनी है। पूर्व संस्कारों के कारण इस जीवन में उसके प्रति प्रेम उमड़ा था।

मुनिराज से वैराग्य भरी घटनाएँ सुनकर यक्ष द्रवित हुआ, मुनि को नमस्कार कर वह चला गया।

इधर कीचक के गंधर्व द्वारा मारे जाने के समाचार सुनकर कौरव पक्ष का पक्षधर **जालन्धर** नामक वीर राजा दलबल के साथ विराट नगर आया। वहाँ वह गायें चुराने लगा, दरअसल उसे गायें नहीं चुरानी थीं, वह तो गायों को चुराने के बहाने राजा से युद्ध करना चाहता था। वहाँ उसकी इच्छा पूरी हुई, विराट राजा और उसके पुत्र युद्ध के लिये सेना के साथ आ गये, परंतु जालंधर की विराट सेना देखकर सहम गये। पाण्डवों ने उन्हें हिम्मत दिलाई, उनमें युद्ध हुआ जिसमें जालंधर ने विराट राजा को बंदी बना लिया और ले जाने लगा तब युधिष्ठिर की आज्ञा से भीम युद्ध के लिये गया। भीम ने जालंधर से युद्ध किया, जालंधर को हराकर विराट राजा को मुक्त कराया और जालंधर को ही बंदी बना लिया। जालंधर के बंदी बनाने के समाचार दुर्योधन तक पहुँच गये तो वह आग बबूला हो गया। वह स्वयं विशाल सेना के साथ युद्ध के लिये आया। उनमें घनघोर युद्ध होने लगा, युद्ध की भयंकरता देखकर दुर्योधन की सहायता के लिये पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य आदि एक-एक कर आये, अन्य कौरव आदि राजा भी आ गये। युद्ध लम्बी अवधि तक चलता देख, हिंसा पाप की जड़ जानकर अर्जुन ने सम्मोहन अस्त्र का प्रयोग कर कौरव पक्ष के सभी महारथियों को मूर्च्छित कर बंदी बना लिया। इस तरह से उस युद्ध में राजा विराट को विजय प्राप्त हुई।

युद्ध में चतुराई और पराक्रम देखकर राजा विराट को समझने में देर नहीं लगी कि पाँचों युद्धवीर कोई और नहीं बल्कि पाण्डव ही हैं, उन्होंने उनको बुलाकर उनका सम्मान किया, अपनी लघुता प्रकट की, क्षमा माँगी, खेद व्यक्त किया। पाण्डवों ने उन्हें सम्मान देकर अपनी परिस्थिति का कारण बताया और कहा- कि इसमें आपकी कोई भूल नहीं थी, आप क्षमा माँग कर हमें शर्मिन्दा मत कीजिये, आप बड़े हैं, हमारे हितैषी भी, इसलिये हम ही क्षमा माँगते हैं।

राजा विराट ने अपनी एकमात्र पुत्री का विवाह अर्जुन से कराने का प्रस्ताव रखा। अर्जुन ने यह कहकर मना कर दिया कि आपकी पुत्री को मैंने (वृहन्नला बनकर) शिक्षा दी है, उसका शिक्षा गुरु होने से मेरे लिये वह पुत्री के समान है, इसलिये मैं उससे विवाह नहीं कर सकता। हाँ, यदि आप उचित समझे तो सुभद्रा से उत्पन्न मेरा एक पुत्र - 'अभिमन्यु' है, वह विवाह योग्य भी हो गया है उसके साथ उसका पाणिग्रहण (विवाह) कराइये। राजा विराट को अर्जुन का प्रस्ताव अच्छा लगा, सभी ने अनुमोदना की और अभिमन्यु का ठाट-बाट से विराट की पुत्री से विवाह सम्पन्न हुआ।

विवाह के बाद पाण्डव कृष्ण के पास द्वारिका आ गये। उनका 12 वर्ष का वनवास व एक वर्ष का अज्ञातवास का समय पूरा हो चुका था। द्वारिका में पाण्डव आराम से रह रहे थे, एक दिन उन्होंने संधि प्रस्ताव के साथ एक दूत दुर्योधन के पास भेजा और आधे राज्य की माँग की। दुर्योधन ने गुस्से में आकर मना कर दिया।

उसी समय की बात है, द्वारिका का एक व्यापारी व्यापार करने के लिये जरासंध के राज्य में गया था। वहाँ वह जरासंध से मिला। राजा को दिव्य रत्न देकर नमस्कार किया। बातचीत में जरासंध ने पूछा कि वहाँ का शासक कौन है? दिव्य रत्न कैसे मिले? व्यापारी ने बताया-

तीर्थंकर नेमिनाथ जिनके सहयोगी हैं, ऐसे नारायण (चक्रवर्ती) कृष्ण वहाँ के आदरणीय शासक हैं। तीर्थंकर नेमिनाथ के जन्म के समय स्वर्ग के देवों ने कुबेर की आज्ञा से 15 माह तक रत्न बरसाये थे उनमें से ये कुछ रत्न लेकर आया हूँ।

जरासंध स्वयं को नारायण (चक्रवर्ती) समझता था, अपने आपको भरतखण्ड का सबसे बड़ा राजा (चक्रवर्ती) समझता था, इसलिये उसने जब व्यापारी के मुँह से कृष्ण की प्रशंसा सुनी वह चक्रवर्ती माना जाता है ऐसा सुना तब उत्तेजित हुआ, क्योंकि **अभिमानी दूसरे की प्रशंसा कब सहन कर पाता है?** उसने झूठे चक्रवर्तित्व के अभिमान में व्यापारी से कहा-

कृष्ण, यहाँ आकर हमें नमस्कार करें, हमारी अधीनता स्वीकार करें और सुख से राज्य करें नहीं तो युद्ध के लिये तैयार रहें।

व्यापारी चला गया, उसने यह समाचार श्रीकृष्ण को सुनाया। कृष्ण ने उत्तर के रूप में कुछ नहीं कहा, केवल मंद मंद मुस्कुराये और न ही उन्होंने जरासंध के पास कोई जवाब भेजा।

कई दिनों तक जवाब नहीं आया तब जरासंध ने कृष्ण (द्वारिका) पर आक्रमण का निर्णय किया। सहयोग के लिये दुर्योधन के पास एक दूत भेजा। दुर्योधन को यह अवसर अच्छा लगा, एक तीर से दो निशाने होते दिखाई दिये क्योंकि पाण्डव वहीं थे। दुर्योधन का साथ पाकर सेना लेकर जरासंध द्वारिका पर हमले के लिये निकल पड़ा। जरासंध के समाचार, उसकी युद्ध की घोषणा, सहयोगियों की जानकारी जानकर नारद ने कृष्ण को बतायी।

जरासंध ने व्यूह रचना करके सारी तैयारियाँ करके एक दूत कृष्ण के पास भेजा और कहलवाया कि मुझे नमस्कार करो, मेरी अधीनता स्वीकार करो, अन्यथा राज्य छोड़कर जाओ या युद्ध के लिये तैयार हो जाओ।

कृष्ण ने नमस्कार करने या राज्य छोड़कर जाने से एवं मना कर दिया। युद्ध के लिये तैयार होने के लिये कहा।

युद्ध की घोषणा हुई, दोनों ओर की विशाल सेनाएँ कुरुक्षेत्र में आमने-सामने आ गई, युद्ध प्रारंभ हुआ। दोनों ओर से भयंकर युद्ध प्रारंभ हुआ। उस युद्ध की भयंकरता का वर्णन शब्दों में संभव नहीं है।

एक बार इस महायुद्ध में कौरव पक्ष के जयाद्रि आदि अनेक राजाओं ने अभिमन्यु को घेर लिया था, उस पर एक साथ सबने शस्त्रास्त्रों से प्रहार किये, उसे घायल किया, उसे मरणासन्न, प्यासा देखकर कर्ण ने उसे पानी पिलाना चाहा पर अभिमन्यु ने यह कहकर मना कर दिया कि–

मेरा बचना संभव नहीं है ऐसा जानकर मैंने समाधि, सल्लेखना ग्रहण की है। मैंने अन्न–जल का त्याग किया हुआ है अब मैं पंचपरमेष्ठी के स्मरण के साथ देह छोड़ रहा हूँ।

युद्ध में शिखण्डी के द्वारा भीष्म, अर्जुन के द्वारा द्रोणाचार्य और जयद्रथ, युधिष्ठिर के द्वारा शल्य, भीम के द्वारा दुर्योधन, कृष्ण के पुत्र शम्बुकुमार के द्वारा अनेक वीर मारे गये।

श्रीकृष्ण जरासंध का वध कर चक्रवर्ती बने और युद्ध में श्रीकृष्ण, पाण्डवों की विजय हुई। युद्ध में विजय के बाद पाण्डव हस्तिनापुर आकर राज्य सम्भालने लगे।

पाण्डव राज्य को न्याय, नीति, प्रेम से चला रहे थे, प्रजा भी उनके राज में प्रसन्न थी, दिन देखते–देखते सुख से बीत रहे थे।

एक बार नारद हस्तिनापुर आये थे। पाण्डवों से मिलने के बाद द्रौपदी से मिलने की इच्छा से द्रौपदी के महल में गये और जब वे महल में आये, तब द्रौपदी श्रृंगार करके अपने सौंदर्य को दर्पण में निहार रही थी। अपने ही सौंदर्य के जाल में फँसी हुई द्रौपदी नारद को नमस्कार करना ही भूल गई, मौन ही रही। उसका नमस्कार न करना नारद को अखरा, हृदय तक चुभ गया। द्रौपदी के रूखे व्यवहार को नारद ने अपना अपमान समझा, हालाँकि द्रौपदी ने जानबूझकर ऐसा नहीं किया था। नारद ने मन की बात मन में ही रखी और वहाँ से चले गये।

बदला लेने की भावना से नारद ने द्रौपदी का एक सुन्दर चित्र बनाया। उस चित्र को लेकर **धातकीखण्ड द्वीप की अमरकंका नगरी के पद्मनाथ राजा** को दिखाया। पद्मनाभ राजा ने जब उसे देखा तो देखता ही रहा, वह हक्का–बक्का रह गया, इतनी सुंदर महिला उसे कहीं नहीं दिखी थी, इसलिये उसने उसको पाने की चाह मन में लिये हुये पूछा– यह कौन है?

नारद ने बताया– जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के कुरुजांगल देश की हस्तिनापुर नगरी के राजा युधिष्ठिर के छोटे भाई अर्जुन की पत्नी द्रौपदी है। आन्तरिक संताप और काम से पीड़ित हुये पद्मनाभ ने यह नहीं सोचा कि यह ब्याहता है, उसे पाने की इच्छा उसे दुर्गति में ले जायेगी, नारद तो अपना प्रयोजन सिद्ध समझ कर वहाँ से चले गये।

नारद के जाने के बाद राजा पद्मनाभ बेचैन रहने लगा, उसे द्रौपदी के बिना जीवन बेकार लगने लगा, वह बीमार रहने लगा, उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि क्या उपाय करे? जिससे उसे द्रौपदी की प्राप्ति हो जाये। बहुत सोचने के बाद उसे एक उपाय सूझा।

पद्मनाभ जंगल में गया। वहाँ उसने मंत्र की आराधना की। मंत्र की आराधना से उसने एक **संगम नाम के देव** को सिद्ध (आधीन) किया। सिद्ध होते ही संगम देव ने पद्मनाभ से किसी कार्य के लिये पूछा तब उसने द्रौपदी को लाने के लिये कहा।

संगम देव गया और रात्रि में पलंग पर सोई हुई द्रौपदी को पलंग सहित उठाकर लाया। सुबह आँख खुलने पर उसने अपने आपको एक अनजान जगह पाया और सामने एक अपरिचित व्यक्ति को हँसते हुये देखा, द्रौपदी ने इसे सपना समझकर पुन: आँखें बंद कर दीं।

पद्मनाभ ने उसके पास आकर धीरे से कहा– हे विश्वसुन्दरी देवी! यह सपना नहीं हकीकत है। मैं धातकीखण्ड द्वीप की अमरकंका नगरी का राजा पद्मनाभ हूँ। नारद ने आपका चित्र दिखाया उसे देखकर मंत्रमुग्ध हो गया था, आपको पाने के लिये मंत्र की आराधना की, उससे एक अधीन रहने वाला एक आज्ञाकारी देव सिद्ध हुआ। उसे आदेश देकर आपको यहाँ बुलवाया। मेरी आज्ञा से वह देव आपको पलंग सहित उठाकर यहाँ लाया। आप मेरी रानी बनना स्वीकार करके मुझे प्रसन्न करो, यहाँ मेरा अथाह वैभव है, उसका उपभोग करो मेरी महारानी बनकर आनंदपूर्वक जीवन जिओ।

द्रौपदी हकीकत जानकर डर गई, सहम गई, रोने लगी, अर्जुन को याद करने लगी, उसे वापिस छोड़ने के लिये कहा, परंतु **कामी व्यक्ति पर आँसू, विपत्ति, रोने, डरने का कोई असर नहीं होता।**

विनती बेअसर देखकर वीरांगना द्रौपदी ने गरजते हुये कहा–

मुझे अबला समझने की भूल मत करना, आप जानते नहीं हो किससे बात कर रहे हो? मेरे एक नहीं पाँच पाण्डव रक्षक हैं, जो इस धरती पर सबसे अधिक बलशाली हैं।

मैं सिर्फ अर्जुन की पत्नी हूँ, उसकी रहूँगी। तुम जैसे कायर की नहीं, जो परविवाहिता स्त्री को नींद में उठवाकर लाते हैं। मैं तुमसे विवाह करके नहीं बल्कि पाण्डवों के हाथों मरवाकर प्रसन्न करूँगी।

अर्जुन ही एकमात्र मेरा वैभव है, तुम्हारा तो क्या संसार का सारा वैभव मुझ जैसी विवाहिता के लिये सड़े-गले कचरे से भी बदतर है। **जिसके पास शीलरूपी खजाना नहीं उसके पास कुछ भी नहीं,** वह क्या आनंदपूर्वक जीवन जी सकता है? मैं मरकर भी अपने शील की रक्षा करूँगी वह मुझे प्राणों से भी प्यारा है।

द्रौपदी ने उसके सामने प्रतिज्ञा की कि– **जब तक अर्जुन के दर्शन नहीं होते तब तक अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगी।** उसने पंच परमेष्ठी का उच्चारण कर उनको नमस्कार करते हुये अन्न-जल त्याग दिये।

इधर हस्तिनापुर में सुबह होने पर द्रौपदी के दिखाई नहीं देने पर खलबली मच गई। किसी को समझ में नहीं आ रहा था कि बलशाली पाण्डवों के होते हुये कौन हिम्मत कर सकता है, द्रौपदी का अपहरण करने की? द्रौपदी का पता लगाने के लिये चारों ओर गुप्तचर फैला दिये गये परंतु कहीं से कोई सूत्र हाथ

नहीं लगा। द्रौपदी का कोई समाचार कहीं से भी नहीं मिल रहा था। ज्यों-ज्यों समय बीत रहा था, त्यों-त्यों पाण्डवों की चिंताएँ बढ़ रही थीं।

उधर द्वारिका में कृष्ण को द्रौपदी के अपहरण की सूचना सुनाई तब गुस्से में आकर कृष्ण ने युद्ध की तैयारी प्रारंभ कर दी, क्योंकि पाण्डव रिश्ते में यादवों के भाँजे थे, कृष्ण को क्रोध आना स्वाभाविक था।

नारद अपने अपमान का बदला चुकाता है या नहीं? यह देखने के लिये अमरकंका नगरी पहुँचा। पर यह क्या? अमरकंका पहुँचते ही द्रौपदी के सतीत्व और धर्मपरायणता के तेज के आगे उसका बदला लेने का विचार हार गया। द्रौपदी की ऐसी दयनीय दशा देखकर नारद को धक्का लगा, दु:खी हुआ, वह सोचने लगा- मैंने बिना सोचे समझे यह कैसा बदला लिया? द्रौपदी की धर्मनिष्ठा, सतीत्व के आगे मैं स्वयं बदल गया हूँ, हार गया हूँ।

नारद स्वयं पश्चाताप में डूब गया। उसी गमगीन पश्चाताप भरी हालत में डूबा हुआ वह सीधे कृष्ण के पास गया तथा द्रौपदी के अपहरण की कथा आद्योपान्त सुनाई तथा उसे लाने का उपाय, मार्ग, साधन आदि की जानकारी दी।

कृष्ण ने बिना देर किये हस्तिनापुर दूत भेजकर यह समाचार पाण्डवों को दिया। नारद के द्वारा बताये मार्ग व साधनों के साथ पाण्डव तथा कृष्ण लवण समुद्र के तट पर गये। वहाँ जाकर कृष्ण ने सोचा- इस भूतल/धरती पर कोई मनुष्य कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो? बिना देव की सहायता के समुद्र पार नहीं कर सकता है। हम बिना देव की सहायता इस समुद्र को पार नहीं कर पायेंगे, न ही अमरकंका पहुँच पायेंगे, इसलिये कृष्ण ने समुद्र के तट पर तीन उपवास का व्रत धारण किया, उससे समुद्र-रक्षक **स्वस्तिक** नाम का देव प्रसन्न हुआ। उसने आज्ञा माँगी, पूछा बताइये मैं आपकी क्या सेवा करूँ?

कृष्ण ने देव को सारी बातें बतायीं, उस देव ने उनको समुद्र जल पर चलने वाले रथ दिये। उन रथों पर सवार हो कृष्ण के साथ पाण्डव अमरकंका पहुँच गये।

वहाँ पहुँचते ही ऊँचे स्वर से शंखनाद किया, शस्त्रास्त्र सम्भाल कर पद्मनाभ को युद्ध के लिये ललकारा।

पद्मनाभ ने जब शंखनाद सुना तो सकते में आ गया, इस प्रकार की युद्ध की ललकार सुनकर तो और भी चकराया। फिर सम्भल गया, नगरी में युद्धभेरी बजवाकर युद्ध के लिये तैयार होकर आया। सामने मात्र 6 (छह) व्यक्ति देखकर प्रारंभ में तो मुस्कुराया और बात ही बात में युद्ध जीतने की उमंग से आगे बढ़ा। युद्ध करने लगा, परंतु युद्ध शुरू होते ही अर्जुन के बाणों से विचलित हो गया, उसके आक्रमण से बेचैन हो गया, समझ गया कि ये कोई साधारण वीर नहीं हैं, तभी तो समुद्र पार कर यहाँ तक पहुँच गये। छह होते हुये भी हमारी इतनी बड़ी सेना से भिड़ने की हिम्मत कर पाये हैं तब उसने सोचा अपनी जान बचाने में भी भलाई है, नहीं तो युद्ध में मृत्यु अवश्य होनी है। यह सोचकर वह वहाँ से भाग गया, नगर का मुख्य

दरवाजा बंद करवाया, पाण्डवों ने दरवाजा तोड़ा पद्मनाभ के पीछे भागे। डरा हुआ पद्मनाभ भागता–भागता द्रौपदी के चरणों पर गिरकर गिड़गिड़ाने लगा–

हे देवी! मैंने आपके साथ जो अन्याय किया, कुदृष्टि डाली, उसी का यह परिणाम है, उसी का फल भोग रहा हूँ मुझ पर रहम करो, मेरी रक्षा करो, मुझे अपने चरणों में शरण दो, मेरे प्राण बचाओ, मेरे प्राण अब आपके हाथों में हैं। पाण्डवों की क्रोधाग्नि से भस्म हो जाऊँगा। मैं मरना नहीं चाहता, मुझे बचाओ..... मुझे बचा लो, आप जो कहेंगी, वह करने के लिये तैयार हूँ।

द्रौपदी ने उसे बताया स्त्री के कपड़े, गहने आदि पहनकर स्त्री के भेष में पाण्डवों के चरणों पर गिरो, वे उदारमना इस भेष में देखकर आपको माफ कर देंगे। उसने वैसा ही किया, स्त्री का भेष धारण किया और ज्योंही कृष्ण के साथ पाण्डव वहाँ पहुँचे, त्योंही उनके चरणों पर गिरा और क्षमा माँगी, पाण्डवों ने उसे क्षमा कर दिया, क्योंकि शरणागत को क्षमा करना, अभयदान देना पाण्डवों की रीति रही है।

पाण्डवों ने द्रौपदी को आहार जल देकर उसकी पारणा करायी। बाद में पद्मनाभ ने सबका सम्मान कर सम्मान के साथ विदा किया। क्षमा माँग कर आपस के दुर्भाव समाप्त किये।

उन सबका संगम हुआ। यह सब पाण्डव–द्रौपदी के पूर्व पुण्य का उदय ही था। उसके (पुण्य के) बिना उनका मिलन असंभव था तथा धातकी द्वीप से द्रौपदी की प्राप्ति भी असंभव ही थी। **पुण्य असंभव को संभव कर देता है, पाप से संभव भी असंभव होता है।**

द्रौपदी को लेकर कृष्ण के साथ पाण्डव द्वारिका आये, क्योंकि उन्हें नेमिनाथ के वैराग्य होने के समाचार मिले थे। वे नेमिनाथ के दीक्षा कल्याणक समारोह में पहुँच गये।

नेमिनाथ को दीक्षा के बाद कुछ समय बाद ही केवल ज्ञान प्रकट हो गया। इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने समवशरण (धर्मसभा) की रचना की। पाण्डव भगवान के वंदन, दर्शन, अमृतवचन सुनने के लिये आये।

सभी भगवान के दर्शन, वंदन करके धर्मसभा में यथायोग्य स्थान पर बैठ गये। उन्होंने भगवान से अपने पूर्वजन्मों के बारे में पूछा। भगवान से अपने पूर्वजन्मों के बारे में सुनकर उन्हें संसार से वैराग्य हुआ। पाँचों पाण्डवों ने दीक्षा, संन्यास ग्रहण किया, मुनि बने एवं आत्मसाधना में लीन हो गये।

निर्दोष तपस्या करते हुये, उपसर्ग सहन करते हुये शत्रुंजय तीर्थक्षेत्र से युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन ने मोक्ष प्राप्त किया। इसी क्षेत्र से शांत परिणामों से देह छोड़कर नकुल और सहदेव सर्वार्थसिद्धि नामक स्वर्ग गये।

द्रौपदी ने आर्यिका जीवन तप साधना में बिताकर समाधि पूर्व शरीर त्याग कर सोलहवें स्वर्ग में देव बनी।

*****

सती चन्दनबाला

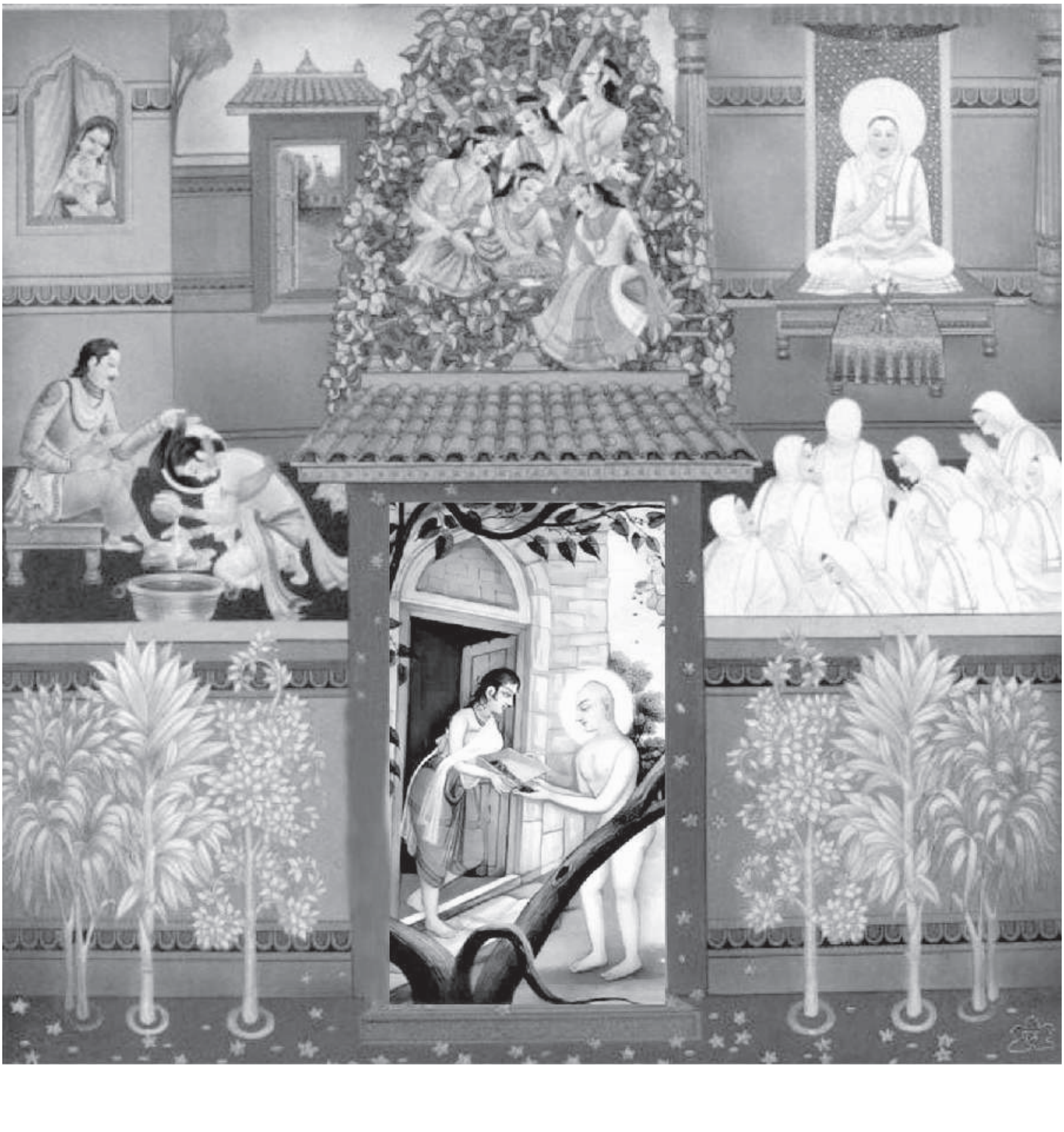

6

सती चन्दनबाला

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में एक **सिंधु** नाम का देश था। उस देश में **वैशाली** नाम की नगरी थी। इस नगरी में चेटक नाम के राजा रहते थे। इनकी रानी का नाम **सुभद्रा** था।

चेटक के धनदत्त, धनभद्र आदि दस पुत्र थे और प्रियकारिणी, मृगावती, सुप्रभा, प्रभावती, चेलना, ज्येष्ठा और चंदनबाला ये सात पुत्रियाँ थीं।

इनमें से प्रियकारिणी का विवाह कुण्डलनगर के राजा सिद्धार्थ के साथ हुआ था और चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर इनके पुत्र थे। राजा शतानीक के साथ मृगावती का, दशरथ राजा के साथ सुप्रभा का, उद्धायन राजा के साथ प्रभावती का, श्रेणिक के साथ चेलना का इस प्रकार पाँच पुत्रियों के विवाह हुये थे।

ज्येष्ठा ने **यशस्वी** नाम की आर्यिका के पास दीक्षा ली थी और चंदनबाला, जो अभी बालिका ही थी, उसने यशस्वती आर्यिका के पास धर्म का उपदेश सुना तथा सम्यग्दर्शन के साथ श्राविका के व्रत ग्रहण किये थे।

एक दिन चंदनबाला **अशोक वन** में खेल रही थी तब आकाश मार्ग से विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी के सुवर्णाभ नगर का राजा मनोवेग अपनी मनोवगा नाम की पत्नी के साथ जा रहा था। उसकी निगाह चंदनबाला पर पड़ी; उसे देखते ही वह पूर्व संस्कारों के कारण उस पर आसक्त हुआ।

उसने उस समय पत्नी को सुवर्णाभ नगर ले जाकर महल में छोड़ा और **रुपिणी विद्या** के द्वारा अपना दूसरा रूप बनाकर सिंहासन पर बैठ विमान से अशोक वन में आया और अशोक वन में खेलती हुई चंदनबाला को लेकर विमान से अपने नगर की ओर जा रहा था।

मनोवेगा को बिना बताये अचानक तेजी से चले जाने से अपने पति पर शक हुआ। उसने **आलोकिनी** नाम की विद्या से पति मनोवेग को एक रोती हुई सुंदरी के साथ आते हुये देखा तो वह तुरंत ही गुस्से से भर गई, उसने भेष बदले हुये पति का पीछा किया। सबसे पहले उसने उसके सिंहासन को बायें पैर से लात मारी, जिसके कारण रुपिणी विद्या वहाँ से भाग गई, मनोवेग का असली रूप सामने आया। वह पत्नी से डर कर और तेजी से भागने लगा। मनोवेगा ने उतनी ही तेजी से उसका पीछा किया। उससे कहा– यदि अपना जीवन चाहते हो तो इस **सुंदरी** को छोड़ दो।

पत्नी से डरे हुये मनोवेग ने पर्णलघ्वी नाम की विद्या की सहायता से उसे **भूतरमण** नाम के वन में ऐरावती नाम की नदी के दाहिने किनारे पर छोड़ दिया। उस वन में चंदनबाला ने णमोकार मंत्र बोलते हुये वह रात बितायी।

दूसरे दिन सुबह कालक नाम का भील वहाँ आया। चंदनबाला ने उसे डर के कारण अपने आभूषण उतार कर दिये, धर्म का उपदेश भी दिया। आभूषण और उपदेश पाकर वह भील बहुत संतुष्ट हुआ।

वह भील चंदनबाला को लेकर भीमकूट नाम के पर्वत पर रहने वाले सिंह नाम के भीलों के सरदार के पास उसे ले गया। भीलों का सरदार सिंह मन से पापी था। चंदनबाला को देखकर उसका हृदय काम से भर गया। भील सरदार की माँ पुत्र के भावों को समझ गई। उसने पुत्र से कहा–

यह देवी है इसे छूने का विचार भी मत करना, नहीं तो यह शाप, शोक, दुःख देगी। माँ की बातें सुनकर सरदार चंदनबाला को देवी समझकर उससे डर गया। चंदनबाला कुछ दिन सरदार की माँ के साथ रही।

एक दिन वत्स देश के कौशाम्बी नगर के **सेठ वृषभसेन** का मित्रवीर नाम का कर्मचारी भीलों के सरदार सिंह के पास आया था। मित्रवीर और सिंह में मित्रता थी। सिंह ने चंदनबाला को मित्रवीर को सौंप दिया।

मित्रवीर चंदनबाला को लेकर कौशाम्बी नगर आया। उसने उसे बाजार में बेचना चाहा तब भारी भीड़ के बीच उसकी बोलियाँ लगायी जा रही थीं। एक बुजुर्ग वेश्या उसे भारी रकम देकर खरीदना चाहती थी। संयोगवश सेठ वृषभसेन उधर से जा रहे थे। उन्होंने उस सुंदरी अबला की सबसे ज्यादा बोली लगाकर उसे खरीद लिया और उसे लेकर घर आये। **देखो, पाप के उदय से तीर्थंकर महावीर की मौसी, राजा चेटक की राजकुमारी भरे बाजार नीलाम हुई,** उन्होंने अपने कर्मचारी मित्रवीर को इस तरह के कृत्य के लिये बहुत डाँटा।

उन्होंने चंदनबाला से कहा–

बेटी, यह अपना ही घर समझो, मुझे अपना धर्मपिता समझो। चंदनबाला वृषभसेन को पिता तथा सेठानी सुभद्रा को माता समझती थी। सेठ भी उसे 'बेटी' 'बेटी' कहते-कहते न थकते थे।

यहाँ चंदनबाला का समय आनंद से बीत रहा था। वह अपना ज्यादातर समय देवधर्म में बिताती थी। वहाँ रहते-रहते उसका काफी समय बीत गया।

एक दिन वह सेठ को पानी का लोटा दे रही थी, उस समय उसके बाल खुलकर नीचे बैठे हुये सेठ पर फैल गये। संयोगवश उसी समय सेठानी उधर से निकल रही थी। उसने सेठ और चंदनबाला को इस हालात में देख लिया। उस समय सेठ ने बाल को समेटकर हाथ में देते हुये कहा– बेटी, बाल सम्भालो।

सुभद्रा ने सेठ के शब्द तो सुने नहीं, वह शक से भर गई। उसने सोचा–

कितने बड़े धोखेबाज हैं वृषभसेन, मुँह से बेटी कहते हैं और मन से नीयत खराब रखते हैं और इस कलमुँही को देखो, पिता कहती है और गंदे खेल खेलती है।

वह क्रोध से ओंठ चबाकर चुपचाप चली गई, परंतु प्रतिशोध लेने के लिये बेताब थी। सेठ के घर से जाते ही उसे पकड़ कर सबसे पहले बाल काट दिये; फिर उसे सांकलों से बाँधकर तहखाने में कैद कर दिया।

सेठ घर आये, तब उन्होंने चंदनबाला को घर में नहीं देखा। उन्होंने पत्नी से पूछा– सुभद्रा, बेटी चंदना दिखाई नहीं दे रही है? कहाँ गई है?

सेठानी मन ही मन सोचने लगी– देखो कितनी धूर्तता दिखा रहे हैं। उसके बिना मन नहीं लग रहा है। कह रहे हैं बेटी कहाँ है? उसने सेठ से कहा– मुझे नहीं पता? बताकर भी नहीं गई। सेठ ने भी सोचा यहीं कहीं गई होगी, परंतु शाम तक भी नहीं आई तब सेठ ने उसे कई जगह तलाश किया परंतु वह नहीं मिली, तब किसी अनहोनी के डर से चिंता में पड़ गये।

सेठ के जाने पर सेठानी उसे खराब भोजन पानी पहुँचाती थी, स्वयं जाकर मारण–ताड़न भी करती थी।

चंदनबाला व्रतधारिणी श्राविका थी। इसलिये वह सोचती थी कि **मेरे पूर्व पापकर्म का ऐसा तीव्र उदय आया है, यह सेठानी सुभद्रा तो निमित्त मात्र है।** इसी विचार के साथ हमेशा भगवान की भक्ति व तत्त्व चिंतन में लीन रहती थी, आत्मनिंदा करती रहती थी। उसने अपने समाचार उस देश के राजा शतानीक के पास भी नहीं भेजे जो उसके जीजाजी थे, उनकी पत्नी मृगावती चंदनबाला की बड़ी बहन थी। **सब कर्मों का खेल है–** यह सोचकर सेठानी के अत्याचारों को शांत भाव से सहती रहती थी।

एक दिन (भगवान) मुनि महावीर आहार के लिये उसी नगरी में आये, झरोखे से उसे उनके दर्शन हुये, उन्हें आहार देने के उसके भाव हुये। उसके आगे बढ़ते ही उसके सभी बंधन टूट गये। सिर पर लंबे घने काले बाल उग आये।

चंदनबाला ने विधिपूर्वक पड़गाहन कर आहार कराया, उसे आहारदान से संतुष्टि मिली। उसका मिट्टी का सकोरा उत्तम धातु के पात्र में बदल गया था, वह खराब अन्न दिव्य अन्न में बदल गया था।

देवों ने उसका सम्मान किया। उन्होंने रत्नवर्षा, सुगंधित पुष्पवर्षा की, सुगंधित जलवर्षा की, देव दुन्दुभि बजायी, सुगन्धित वायु इत्यादि पञ्च आश्चर्य किये।

चंदनबाला के आहारदान की चर्चा तुरंत ही चारों ओर फैल गई। राजा शतानीक, रानी मृगावती समाचार सुनते ही वहाँ आये। चन्दनबाला से मिले, उसे गले लगाया और पूछा– यहाँ कैसे पहुँची? तब चंदनबाला ने उसे अब तक की हकीकत विस्तार से बतायी।

घबड़ाये हुये सेठ-सेठानी चंदनबाला के चरणों पर गिर गये। चंदनबाला ने उन्हें क्षमा कर ऐसा करने से मना कर दिया।

चेटक भी समाचार मिलते ही आ गये, बेटी से मिले, उन्होंने चंदनबाला से कहा- बेटी, घर चलो।

चंदनबाला ने कहा-पिताजी, घर में ही तो थी। कर्मों ने रहने नहीं दिया। कर्मों की लीला है, वह खेलती हुई मुझको उठाकर ले गया, उसी ने जंगल में पटका, बाजार में बिकवाया, सांकलों से बँधवाया, मुनि महावीर को आहार कराया।

हे पिताजी! अब इससे ज्यादा कर्मों के कहर सहने के लिये मुझमें शक्ति नहीं है।

चेटक- बेटी, अब तो पाप का समय बीत गया।

चंदनबाला- लेकिन पिताजी, आगे का पता नहीं, कर्म कब कैसे उदय में आये? कौन जानता है? पिताजी, मैं तो महावीर स्वामी के शरण में जाऊँगी, उन्हीं के मार्ग को अपनाऊँगी। उन्हीं के दर्शन से मेरे अभी के कष्ट दूर हुये हैं, उनके मार्ग पर चलने से कष्ट सदा के लिये दूर होते हैं- ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है मैं उनकी वंदना करना चाहती हूँ।

इसके बाद चेटक, चन्दनबाला आदि सभी ने महावीर स्वामी की वंदना की, चंदनबाला ने महावीर स्वामी के पास आर्यिका दीक्षा ली।

वहाँ राजा चेटक ने गणधर से प्रश्न किया कि भगवान! चंदना पर ऐसे कष्ट क्यों आये? किस कारण से उसे दु:ख उठाने पड़े? उसने पूर्व में कौन-सा कर्म किया था, जिससे उसे इस जन्म में राजपुत्री होते हुये भी यातनाएँ भोगनी पड़ी।

गणधर भगवान ने बताया-

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में मगध देश में **वत्सा** नाम की नगरी है। **प्रसेनिक** मगध देश का राजा था। इस नगरी में **अग्निभूति** नाम का ब्राह्मण रहता था उसकी दो पत्नियाँ थीं- एक ब्राह्मण जाति की और दूसरी वैश्य जाति की।

ब्राह्मण जाति की महिला से उसे शिवभूति नामक पुत्र की प्राप्ति हुई तथा चित्रसेना नाम की एक बेटी हुई। शिवभूति (मनोवेग के जीव) का विवाह सोम शर्मा ब्राह्मण की बेटी सोमिला (चंदनबाला के जीव) से हुआ था तथा चित्रसेना का विवाह देव शर्मा ब्राह्मण से हुआ था। कुछ वर्षों के बाद चित्रसेना विधवा हो गई थी, इसलिये वह अपने पुत्रों को लेकर भाई शिवभूति के घर आ गई थी।

सोमिला को चित्रसेना का बच्चों के साथ घर आना अच्छा नहीं लगा था। सोमिला उसे हमेशा ताने मारती थी, जली कटी सुनाती थी। चित्रसेना कर्मों के उदय जानकर सोमिला के अत्याचारों को सहन करती थी।

सोमिला ने चारों ओर यह बात फैला दी थी कि चित्रसेना का शिवभूति के साथ गंदा सम्बन्ध है। चित्रसेना ने इस आक्षेप को भी सह लिया, परंतु मन ही मन उसने निदान बाँधा था कि इस झूठे आरोप का बदला अवश्य लूँगी।

एक दिन सोमिला ने **शिवगुप्त मुनिराज** को आहार दिया था। शिवभूति ने उसे आहार देने के लिये डाँटा था, सोमिला ने मुनिराज का स्वरूप समझाकर शिवभूति को शांत कर दिया। शिवभूति तब से मुनिराज को स्वयं आहार देने लगा तथा आहार की अनुमोदना करने लगा। इस तरह से उनकी आयु पूरी हुई

शिवभूति मर कर बंगदेश के कान्तपुर नगर में राजा सुवर्ण वर्मा और रानी विद्युल्लेखा का महाबल नाम का पुत्र जन्मा। सोमिला मर कर अंगदेश के राजा श्रीषेण और रानी धनश्री की कनकलता नाम की बेटी के रूप में जन्मी।

सुवर्ण वर्मा और धनश्री भाई-बहन थे। महाबल और कनकलता का परस्पर अनुराग देखकर यहाँ महाबल और कनकलता का विवाह होना तय किया था। परन्तु उनके माता-पिताओं ने उन दोनों से कहा-

जब तक विवाह नहीं होता है, तब तक आप दोनों अलग-अलग रहना। परंतु दोनों काम के ताप को सहन नहीं कर सके। दोनों चोरी-छिपे आपस में मिलते रहे। उन दोनों के माता-पिताओं को इस बात का पता चला, तब उन्होंने उन दोनों से कहा कि आप लोगों ने हमारी मर्जी के विरुद्ध कार्य किया है। मना करने पर भी आपस में मिलते रहे हो, अत: हमारे राज्यों से दूर चले जाओ।

वे दोनों वहाँ से दूसरे देश में चले गये। एक प्रयत्न नाम के नगर में रहने लगे। वे दोनों परिश्रम करके भोजनादिक व्यवस्था कर प्रसन्न थे। एक दिन उन्हें **मुनिगुप्त** नाम के मुनिराज के दर्शन हुये, वे आहार के लिये नगर में आये थे, उन्होंने मुनिराज को विधिपूर्वक आहार दिया। वहाँ उनका समय आनन्द से बीत रहा था।

एक दिन महाबल चैत्रमास में वन में घूमने गया। वहाँ उसे साँप ने काट खाया। जिससे वह तुरन्त ही मृत्यु को प्राप्त हुआ। महाबल की मृत्यु से कनकलता बहुत दु:खी हुई। उसने भी तलवार से आत्मघात कर जीवन समाप्त किया।

पलाश द्वीप के पलाश नगर में महाबल नाम का राजा था। उसकी रानी का नाम काञ्चनलता था। इनके घर **कनकलता का जीव पद्मलता नाम की कन्या के रूप में जन्मा।**

भरतक्षेत्र के अवन्ति देश में उज्जयिनी नाम का नगर है, इस नगर में धनदेव नाम का सेठ रहता था, उसकी पत्नी का नाम धनमित्रा था। **महाबल का जीव इनके घर में नागदत्त नाम का बेटा बना।** नागदत्त के अर्थस्वामिनी नाम की छोटी बहन थी।

एक बार धनदेव ने धनमित्रा को छोड़ दिया और दूसरी स्त्री के साथ विवाह कर लिया। धनमित्रा दु:खी होकर नागदत्त और अर्थस्वामिनी को लेकर दूसरे देश में चली गई, वहाँ उसे **शीलदत्त मुनिराज** के दर्शन हुये। धनमित्रा ने ज्ञान प्राप्त करने के लिये नागदत्त को शीलदत्त मुनिराज को सौंप दिया।

नागदत्त ने मुनिराज से श्रावकों के व्रत लिये। श्रावक धर्म का पालन करते हुये वह शास्त्रों का अभ्यास करने लगा। अभ्यास करते-करते वह विद्वान बना। उत्तम कवि उसने शास्त्रों की व्याख्याएँ सुनाकर बहुत-सा धन पाया, माँ और अपनी बहन का भरण पोषण करने लगा। नंदी गाँव के एक सेठ के पुत्र के साथ अपनी बहन अर्थस्वामिनी का विवाह कराया।

एक दिन नागदत्त माँ से आज्ञा लेकर पिता धनदेव से मिलने उज्जयिनी गया। पिता के चरण-स्पर्श किये। पिता ने उसका बहुत स्वागत किया, गले मिले।

नागदत्त ने पिता धनदेव से अपने हिस्से का धन माँगा। तब पिता ने कहा-

हे पुत्र! अपने घर का सारा धन पलाश द्वीप के पलाश नगरमें राजा महाबल के पास रखा है उसे लाकर तू ले ले।

नागदत्त अपने दो सौतेले भाई नकुल और सहदेव को लेकर नाव पर बैठकर समुद्री रास्ते से पलाश द्वीप पहुँच गया। वहाँ उसने देखा कि उस द्वीप में कोई मनुष्य नहीं है। जो भी हो महल में जाकर देखता हूँ- यह सोचकर वह महल के भीतर गया। वहाँ उसने एक जगह एक अकेली कन्या को बैठा हुआ देखा। उसने उससे पूछा-

यह नगर ऐसा क्यों हो गया है? तुम कौन हो?

इसके उत्तर में उस कन्या ने उसे बताया कि-

पहले इस नगर के दो स्वामी थे वे आपस में हिस्सेदार थे। उनमें से एक क्रोधी था। उसने राक्षस विद्या सिद्ध की थी, इसलिये वह भी राक्षस नाम से प्रसिद्ध हुआ था। उसने क्रोध में आकर आधे हिस्सेदार महाबल राजा और नगर को नष्ट कर दिया। इस नगर के राजा महाबल और रानी काञ्चनलता की मैं पद्मलता नाम की पुत्री हूँ।

मेरे पिता के पास मंत्रों से सिद्ध की हुई तलवार थी, जिसे वे कभी अलग नहीं रखते थे, परंतु आज भूल से उन्होंने वह तलवार दूर रख दी, अवसर देखकर उस राक्षस ने मेरे पिता और माता को मार दिया है, उसने मुझे अपनी बेटी समझकर छोड़ दिया है। इस समय वह कहीं गया है, अभी मुझे लेने के लिये आयेगा।

नागदत्त पास ही रखी उस तलवार को लेकर मुख्य द्वार के पास छिप गया। ज्योंही वह राक्षस आया, उसने उस तलवार से उस पर प्रहार किये। घायल राक्षस णमोकार मंत्र बोलता हुआ धरती पर गिरा।

मरणासन्न राक्षस के मुँह से णमोकार मंत्र को सुनकर नागदत्त सोचने लगा- यह मैंने क्या किया? मैंने एक श्रद्धानी जैनी को मारा है। मुझसे कितना बड़ा पाप हुआ है?

यह सोच उसने तुरंत ही तलवार फेंक दी। राक्षस से पूछा-

हे भद्र आप कौन हो? आपका धर्म क्या है?

उस मरणासन्न राक्षस ने कहा-

मैं विद्याधर हूँ। जैन धर्म का पक्का श्रद्धानी हूँ। मैं भी एक सच्चे श्रावक का पुत्र हूँ, लेकिन स्वभाव से क्रोधी हूँ। देखो, क्रोध के कारण कैसा पाप कर चुका हूँ? क्रोध कितना बुरा है? **क्रोध के कारण मित्र शत्रु हो जाता है। क्रोध से धर्म नष्ट हो जाता है। राज्य नष्ट हो जाता है। क्रोधी पर माता भी क्रोध करने लगती है। क्रोध से अधोगति होती है, देखो, क्रोध के कारण ही मैं मृत्यु को प्राप्त हो रहा हूँ, इसलिये अपना भला चाहने वाले मनुष्य को क्रोध छोड़ देना चाहिये।**

राक्षस ने उस नागदत्त से पूछा- आप कौन हैं?

उसके उत्तर में नागदत्त ने कहा- मैं यहाँ मेहमान हूँ। पिता के कहने से धन वापिस पाने के लिये यहाँ आया था। महल के भीतर जाने पर कन्या को दु:खी देखकर उसकी रक्षा की दृष्टि से आप पर प्रहार जैसा घृणित कार्य कर बैठा- इसका मुझे बेहद खेद है। यह कहते हुये उसकी आँखों में आँसू आ गये।

राक्षस ने कहा- बेटा, रोओ मत, आपकी जगह मैं होता तो मैं भी ऐसा ही कार्य करता।

नागदत्त ने कहा- मुझे क्षमा कीजिये।

राक्षस ने कहा- बेटा, यह सब पूर्वकर्म का उदय है, इसमें तुम्हारा क्या दोष है? इसलिये क्षमा जैसी कोई बात नहीं है, फिर भी क्षमा करता हूँ। नागदत्त ने उसका समाधि-मरण कराया। जिससे राक्षस स्वर्ग को प्राप्त हुआ।

इसके बाद नागदत्त अपना धन और पद्मलता को लेकर जहाज पर बैठकर आने वाला था। परंतु नकुल, सहदेव, पद्मलता और धन लेकर फुर्ती से जहाज पर बैठ गये और वहाँ से चल दिये। उन दोनों ने नागदत्त को जहाज पर बैठने को मौका नहीं दिया। उन्होंने जहाज की रस्सी काट दी थी। वे दोनों जब उज्जयिनी पहुँचे, तब पिता धनदेव और अन्य लोगों ने उनसे पूछा-

नागदत्त भी आपके साथ गया था, वह कहाँ है?

उन्होंने कहा- वह यहाँ से हमारे साथ गया था, वहाँ जाकर वह किसी और जगह चला गया। कहाँ गया? हमें नहीं पता। इधर नागदत्त की माँ धनमित्रा पुत्र के नहीं आने से चिंतित हो गई थी, क्योंकि नागदत्त कुछ दिनों की कहकर गया था पर बहुत दिन बीत गये तो भी वह नहीं आया था। अनहोनी की आशंका से वह रोने लगी, उसने **श्री शीलदत्त** मुनिराज का आश्रय लिया। वह मुनि के पास गई। उसने रोते-रोते ही मुनिराज से अपने मन की बात बताई और पूछा कि मेरे बेटे नागदत्त के साथ क्या हुआ?

मुनिराज को उस पर दया आई उन्होंने अवधिज्ञान से जानकर बताया कि घबराओ मत।

''माते! आपका पुत्र बिना कष्ट के शीघ्र ही आपके पास आयेगा।''

संतुष्ट होकर धनमित्रा घर गई।

इधर नागदत्त ने भाइयों का धोखा देखकर विचार किया कि–

मनुष्य धन के लिये क्या–क्या पाप नहीं करता? पर धन मनुष्य से सारे पाप करवाकर उसे नरक आदि दुर्गतियों में भेज देता है, खुद यहीं पड़ा रहता है। धरा का धन धरा पर धरा का धरा रह जाता है। धन के लिये यह जीव सारे रिश्ते–नाते भुला देता है। देखो, मेरे भाई धन के लालच में मुझे यहाँ छोड़कर चले गये। वे धन माँगते तो मैं वैसे ही उनको दे देता, वास्तव में **लालच बुरी बला है।** इसमें भाइयों का भी क्या दोष है? मैंने ही पूर्वजन्मों में धन के लालच में किसी को ऐसा ही धोखा दिया होगा। उसी कर्म का परिणाम है कि ये मेरे भाई मुझे धोखा देकर गये हैं। अस्तु, जो भी हो, मैं शांत परिणामों को नहीं छोड़ूँगा। धर्म की शरण नहीं छोड़ूँगा– ऐसा सोचते–सोचते उसे वहाँ एक जिनमंदिर दिखा। वह उस जिनमंदिर में गया, उसने जिनेन्द्र भगवान के दर्शन किये। दर्शन कर ''और कहाँ जाऊँ, यहीं बैठता हूँ, यहाँ और कोई शरण भी तो नहीं है।'' ऐसा सोचकर चिंताओं से घिरा वह वहीं बैठ गया।

संयोगवश एक जैन श्रद्धानी विद्याधर उस मंदिर में आया था। उसने जिनेन्द्र भगवान के दर्शन किये। दर्शन करने के बाद जिनभक्त नागदत्त को चिन्ताग्रस्त देख विद्याधर ने पास जाकर उससे पूछा–

हे साधर्मी बन्धु! ऐसे उदास क्यों बैठे हो?

उसके उत्तर में नागदत्त ने अपनी अब तक की सारी हकीकत उसे बतायी।

विद्याधर ने नागदत्त की सहायता की। उसे बहुत सारे रत्न दिये। उसे अपने विमान पर बिठाकर लाया और मनोहर नाम के उद्यान में उतार कर अपने देश चला गया।

हे जीवों! देखो पुण्य पाप के फलों को। नागदत्त का पाप का उदय आया था, तो भाई ही उसे धोखा देकर चले गये। पुण्य का उदय आया तो एक अनजान विद्याधर मिला। न केवल विद्याधर मिला बल्कि वह विद्याधर बहुत सारा धन देकर सुरक्षित जगह छोड़कर चला गया।

नागदत्त वहाँ से बहन के घर आया। भाई–बहन प्रेम से मिले। उसने अपनी आप–बीती सुनाई। अर्थस्वामिनी भाई से मिलकर बहुत खुशी हुई, उन्होंने खूब बातें की, नागदत्त कुछ दिन बहन के घर रहा।

एक दिन अर्थस्वामिनी के ससुर नागदत्त के पास आकर कहने लगे–

हे नागदत्त! धनदेव, अपने बेटे नकुल के लिये हमारी पुत्री का हाथ माँग रहे हैं। उन्होंने हमें वहाँ बुलाया है परंतु हम निर्धन हैं, उनसे बात करने के लिये कैसे जायें?

नागदत्त ने उन्हें रत्न दिये और कहा– अब आप निर्धन नहीं हैं, आप जाएये। बेटी के विवाह की बात पक्की कीजिये।

इस पर अर्थस्वामिनी के ससुर ने कहा–जिसने आप के साथ धोखा किया है उससे हम अपनी कन्या कैसे ब्याहें? ऐसे धोखेबाज के साथ कन्या ब्याहने की बजाय उसका जीवन भर कुँवारी रहना ठीक है।

नागदत्त ने उनसे कहा- आपका विचार भावुकता से भरा हुआ है। कन्या का विवाह तो कहीं न कहीं करना ही है जब वे चलाकर हाथ माँग रहे हैं तो अपनी कन्या दे दीजिये।

देखिये, उदारता महापुरुषों की, वे चाहते तो इन्कार कर सकते थे परंतु उन्होंने ऐसा नहीं किया, नागदत्त उदार विचार वाला था।

इसके बाद भी अर्थस्वामिनी के ससुर बेटी के विवाह की बात करने हेतु जाने के लिये तैयार नहीं दिखे तब उसने कहा-

चलिये, मैं आपके साथ चलता हूँ।

इसके बाद नागदत्त, अर्थस्वामिनी के ससुर उज्जयिनी गये। वहाँ उन्हें पुण्य योग से मुनि दिखे सबसे पहले मुनिराज के दर्शन किये।

उसके बाद नागदत्त राजा के पास गया। उसने राजा को दिव्य रत्न भेंट स्वरूप दिये। राजा प्रसन्न हुआ। राजा ने पूछा-

हे नागदत्त! कहाँ से आ रहे हो? कहाँ गये थे?

नागदत्त ने शुरू से अन्त तक की सारी घटनाएँ एक-एक करके बतायीं। नागदत्त की दु:ख भरी बातें सुनकर राजा को धनदेव पर बहुत गुस्सा आया। धनदेव और उसके पुत्रों को बंदी बनाने के लिये आदेश दिया, नागदत्त ने राजा को ऐसा करने के लिये मना कर दिया।

राजा ने उसकी अच्छाइयाँ देखकर नागदत्त को बहुत-सा धन देकर 'नगर सेठ' पद भी दिया तथा राजसभा में भी सम्मानित पद दिया। नागदत्त की माँ को सेवकों के द्वारा वहीं बुलवाया। पद्मलता के साथ उसका विवाह कराया।

राजा ने राजसभा में कहा-

देखो, पुण्य का महात्म्य अलग ही होता है। पुण्य का महात्म्य देखना हो तो नागदत्त को देखो। बचपन से लेकर अब अनेक बार संकटों से घिरा, परंतु पुण्य ने उसकी हर बार सहायता की; पुण्य के कारण राजपुत्री के साथ उसका विवाह हुआ। पुण्य के कारण विद्याधर मिला, विद्याधर ने अनेक रत्न दिये। विद्याधर ने सहायता कर उसे नया जीवन दिया, हमसे मित्रता हुई। इसलिये कहना पड़ेगा कि-

पुण्याज्जलायते वह्निर्विषमप्यमृतायते।
मित्रायन्ते द्विष: पुण्यात्पुण्याच्छाम्यन्ति भीतय:।।

दुर्विधा: साधना: पुण्यात्पुण्यात्स्वर्गश्च लभ्यते।
तस्मात्पुण्यं विचिन्वन्तु हतापत्सम्पदेषिण:।।

अर्थ:- पुण्य के उदय से अग्नि जल बन जाती है, पुण्य से विष भी अमृत हो जाता है। पुण्य से शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। पुण्य से सभी डर शांत हो जाते हैं। पुण्य से निर्धन मनुष्य भी धनवान होते हैं। पुण्य से स्वर्ग भी प्राप्त होता है। बिना बाधा की सम्पत्ति चाहने वालों को पुण्य रूप विचार करने चाहिये।

नागदत्त का सम्मान व प्रभाव देखकर धनदेव, उसकी स्त्री और बेटे राजसभा में आकर ''क्षमा करो'' ''क्षमा करो'' कहते हुये नागदत्त के चरणों का स्पर्श करना चाहते थे परंतु नागदत्त ने उन्हें चरण स्पर्श करने नहीं दिये। धर्म का उपदेश देकर धर्म मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। उन सबको उत्तम श्रावक धर्म धारण कराया। नागदत्त ने समुद्र यात्रा से पूर्व समुद्र के किनारे पर सकुशल लौटने पर जिनेन्द्र भगवान की भव्य पूजा करने का निर्णय किया था। उसके अनुसार नागदत्त ने एक भव्य जिनपूजन की।

नागदत्त ने जीवन पर्यन्त श्रावक धर्म का पालन किया। आयु के अंत में संन्यास धारण किया। देह छोड़कर सौधर्म स्वर्ग में ऋद्धिधारी बड़ा देव बना। पद्मलता भी धार्मिक जीवन बिताकर देह छोड़कर उसी स्वर्ग में देवी बनी। अर्थस्वामिनी भी स्वर्ग गई।

नागदत्त का जीव स्वर्ग से आकर भरतक्षेत्र के विजयार्ध पर्वत पर शिवशंकर नगर में विद्याधर राजा पवनवेग और रानी सुवेगा का मनोवेग नाम का पुत्र हुआ है। नागदत्त की छोटी बहन अर्थस्वामिनी का जीव स्वर्ग से आकर यहाँ मनोवेगा हुई। देखो, कर्मलीला पूर्व जन्म के भाई-बहन यहाँ पति-पत्नी बने हैं। राक्षस विद्याधर का जीव स्वर्ग से आकर यहाँ आकर राजा चेटक बना है। नागदत्त की माँ धनमित्रा भी स्वर्ग गई थी, स्वर्ग से आकर यहाँ आकर राजा चेटक की सभद्रा नाम की रानी बनी है। **पद्मलता का जीव स्वर्ग से आकर यहाँ चेटक की चंदनबाला नाम की सबसे छोटी पुत्री बना है।** नकुल का जीव संसार में भटकता हुआ यहाँ अब सिंह नाम का भीलों का सरदार बना है।

सहदेव का जीव संसार में भटकता हुआ यहाँ अब मित्रवीर नाम से सेठ वृषभदेव का नौकर बना है। नागदत्त के पिता धनदेव का जीव भी स्वर्ग गया था, वह स्वर्ग से आकर यहाँ वृषभसेन नाम का सेठ बना है। पूर्व में जो चित्रसेना थी, वह संसार में अनेक जन्म धारण करने के बाद अब यहाँ सेठ वृषभसेन की सुभद्रा नाम की पत्नी बनी है। पूर्वभव के स्नेह के कारण मनोवेग ने चंदनबाला का अपहरण किया था। पूर्व के चित्रसेना के भव में बाँधे निदान के कारण सेठ की पत्नी सुभद्रा ने इस जन्म में उसे कष्ट पहुँचाये थे।

मनोवेग इसी भव में वैराग्य धारण कर मोक्षपद प्राप्त करेंगे। चंदनबाला ज्ञान व तप के प्रभाव से गणिनी आर्यिका का पद प्राप्त कर अच्युत स्वर्ग में देव बनेगी। कुछ ही भवों के बाद मोक्ष पद प्राप्त करेगी।

*****

सती मैना सुन्दरी

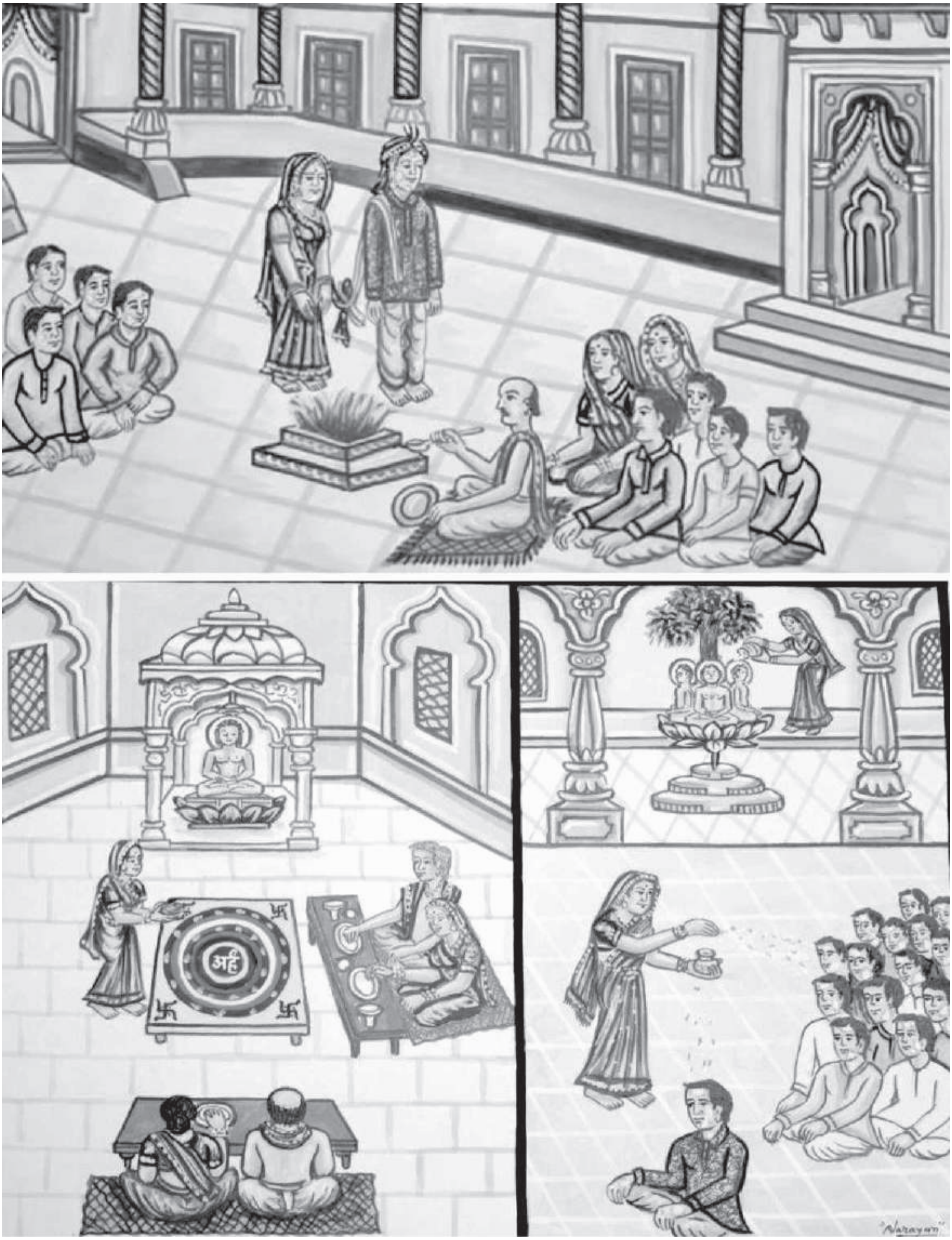

7

सती मैना सुन्दरी

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में मालव देश था। इस देश में उज्जयिनी नगरी के राजा का नाम पुहुपाल था। राजा की रानी का नाम निपुणसुंदरी था। इनकी दो बेटियाँ थीं, बड़ी बेटी का नाम सुरसुंदरी और छोटी बेटी का नाम मैनासुंदरी था।

जब बेटियाँ पढ़ने लायक हो गईं, तब राजा ने उनसे पूछा हे बेटियों! आप पढ़ने योग्य हो गई हों। मैं आपकी इच्छाओं का ध्यान रखते हुये आपसे पूछना चाहता हूँ कि आप अपनी इच्छाएँ बतायें कि किन गुरुओं से पढ़ना चाहती हों? उन्हीं गुरुओं से पढ़ने की व्यवस्था करूँ?

पिताजी की भावना को जानते हुये सुरसुंदरी ने कहा- पिताजी, मैं अन्य गुरु के पास पढ़ना चाहती हूँ। मैनासुंदरी ने कहा- पिताजी, मैं जैनगुरु के पास पढ़ना चाहती हूँ।

बेटियों की भावना के अनुसार सुरसुंदरी को उसके गुरु के पास और मैनासुंदरी के लिये जैनगुरु के पास पढ़ने की व्यवस्था की। दोनों बेटियाँ अपने-अपने गुरुओं से विद्याएँ पढ़कर आ गईं, कुछ समय और बीत गया।

एक दिन राजा अपने मंत्रियों के साथ राज-काज के बारे में चर्चा कर रहे थे। तभी किसी कार्य से सुरसुंदरी पिताजी के पास आई थी। उसकी युवावस्था देखकर राजा के मन में उसके विवाह का विचार आया।

राजा पहुपाल ने बेटी से पूछा- बेटी, आप अपनी इच्छा के अनुसार वर के बारे में बताइये जिससे उसी के साथ मैं आपका विवाह संबंध करा दूँ।

सुरसुंदरी ने आँखें नीचे कर उत्तर दिया- पिताजी, **विद्या, वैभव, रूप, यौवन आदि उत्तम ऐश्वर्य पुण्य के उदय से प्राप्त होते हैं।** उन्हें मैंने आपके आशीर्वाद से प्राप्त कर लिया है। आपने इच्छित वर के विषय में पूछा है तो उस विषय में मेरा नम्र निवेदन यही है कि कौशाम्बी नगरी के राजा का पुत्र हरिवाहन विद्या, वय, बुद्धि एवं बल से मेरे अनुरूप है इसलिये वर के रूप में वही मुझे अभीष्ट है।

पहुपाल ने हरिवाहन के साथ सुरसुंदरी का विवाह बड़े ठाट-बाट से सम्पन्न कराया।

एक दिन भगवान आदिनाथ की पूजन कर मैनासुंदरी गंधोदक लेकर पिताजी के पास गई। पहुपाल ने कहा- आओ बेटी, बैठो।

मैनासुंदरी पिताजी के पास जाकर बैठ गई।

उसके हाथ में जल देखकर राजा ने पूछा– बेटी, आपके हाथ में यह क्या है?

मैनासुंदरी– पिताजी, यह गंधोदक है भगवान के अभिषेक का जल है।

पहुपाल– यह क्यों लाई हो?

मैनासुंदरी– पिताजी, आपके लिये लाई हूँ इसे उत्तम अंग अर्थात् मस्तक पर विनयपूर्वक लगाना चाहिये। इसकी एक छोटी बूँद भी जमीन पर नहीं गिरनी चाहिये। उस पर अपने या अन्य के पाँव पड़ेंगे तो बड़ी अविनय होती है अविनय से पाप लगता है। शुद्ध हाथ से, शुद्ध विनय भावना से इसे माथे पर ही लगाना चाहिये अन्य स्थानों पर नहीं इसे लीजिये। मस्तक पर लगाइये, इसकी विनय से पुण्य लगता है।

इसे पाने में विद्याधर, देव, श्रेष्ठ मनुष्य आदि अपना सौभाग्य समझते हैं। मेरु पर तीर्थंकर भगवान का 1008 (एक हजार आठ) कलशों से अभिषेक करते हैं। वह जल इतना होता है कि एक नदी बह जाये, परंतु देवता आदि परम भक्ति से उसे अपने मस्तक पर धारण करते हैं। वे लोग इतनी संख्या में होते हैं कि वह गंधोदक जल की नदी सूखकर अल्प–सी रह जाती है।

शास्त्रों में जिनप्रतिमा को एक हजार साक्षात् तीर्थंकरों से भी अधिक बताया है। यह जिनप्रतिमा जी के अभिषेक का पवित्र जल है, इसे विनय के साथ स्वीकार कीजिये।

मैनासुंदरी की बात से राजा पहुपाल प्रभावित हुये और उन्होंने उस गंधोदक को विनयपूर्वक अपने मस्तक पर लगाया। राजा बेटी की जिनभक्ति से प्रसन्न हुये, उन्होंने प्रेम से उसका मस्तक सूँघा और प्रसन्न होकर उसकी परीक्षा के लिये प्रश्न पूछा।

बेटी, यह पुण्य क्या होता है?

मैनासुंदरी– पिताजी, आप स्वयं विद्वान हैं, आप जानते ही हैं कि पुण्य क्या है? फिर भी आप मेरे ज्ञान को परखने के लिये पूछ रहे हैं तो मैं अपने गुरु की शिक्षा के अनुसार बताती हूँ–

अर्हन्त देव, दयामय धर्म एवं निर्ग्रन्थ गुरु की सेवा से पुण्यबंध होता है। वीतरागता की पोषक वाणी बोलने से पुण्यबंध होता है। वीतरागता की पोषक चर्या से पुण्यबंध होता है। हिंसादि पाँच पाप, माँस भक्ष्ण आदि सात व्यसन, पाँच इन्द्रियों के विषय इनके त्याग से पुण्यबंध होता है। देवपूजा, स्वाध्याय आदि षट् आवश्यक पालने से पुण्यबंध होता है। मन, वचन, काय से किसी भी प्राणी की निंदा नहीं करने से, किसी प्राणी को कष्ट न पहुँचाने से पुण्यबंध होता है।

संसारी प्राणी को धर्म, तत्त्व का उपदेश देने से, उन्हें सही वीतरागता के रास्ते पर लाने से, लाने का प्रयत्न करने से पुण्यबंध होता है। अहिंसा के पालन से पुण्यबंध होता है। सत्य बोलने से, चोरी नहीं करने से, कुशील सेवन नहीं करने से, अल्प परिग्रह की भावना से पुण्यबंध होता है। धर्मात्माओं की सेवा,

सहायता करने से पुण्यबंध होता है। दया धर्म से, अणुव्रत, महाव्रतों के निरतिचार पालन करने से पुण्यबंध होता है।

पिताजी, पुण्य से वैभव, निरोग शरीर, अनुकूल भोग, उच्च गति प्राप्त होते हैं, वीतराग भाव से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

मैनासुंदरी के उत्तर से प्रसन्न हुये राजा पहुपाल ने देखा कि मैनासुंदरी विवाह योग्य हो गई है, इसका विवाह करना चाहिये। यह सोचकर उन्होंने कहा–

बेटी, सुरसुंदरी की तरह तुम्हारा विवाह भी तुम्हारी इच्छा के अनुसार योग्य वर से करा देंगे; इसलिये जो वर तुम्हें इच्छित हो बताइये, उसी के साथ तुम्हारा विवाह करा देंगे।

मैनासुंदरी– पिताजी, कुलीन कन्याएँ अपने मुँह से वर के बारे में कहा नहीं करती हैं। वे माता–पिता की इच्छा को ही सर्वोपरि मानती हैं। वे माता–पिता से अपने वर के बारे में कहने में लज्जा का अनुभव करती हैं। जिन्होंने भगवान का मार्ग नहीं पहिचाना, तत्त्व का ज्ञान जिन्हें नहीं हैं, वे ही अपने मुँह से वर के बारे में कहती हैं।

पहुपाल– बेटी, अपने वर के बारे में बताने में लज्जा कैसी?

मैनासुंदरी– पिताजी, भगवान आदिनाथ की दो बेटियाँ थीं– ब्राह्मी, सुंदरी। पिताजी का मान भंग न हो इसलिये उन्होंने अपने मन से न तो अपने वर के बारे में बताया, न उन्होंने विवाह किया। स्त्री–पर्याय की पराधीनता का भण्डार जानकर उन्होंने दीक्षा ली। ऐसा करके वे स्त्री–पर्याय का छेद कर स्वर्ग में देव बनी। इसलिये हे पिताजी! अपने मुँह से अपने वर के बारे में बताना संस्कृति के विरुद्ध होने से लज्जाजनक है। उन कन्याओं के वैसे कार्य की कोई भी बुद्धिमान मनुष्य प्रशंसा नहीं करता है।

सुशील कन्याओं को सदैव समभाव में रहना चाहिये और यही सोचना चाहिये कि सर्वज्ञ भगवान ने जो अपने ज्ञान में देखा होगा, उसी के साथ विवाह होगा, वही होकर रहेगा। बड़े–बड़े महात्मा लोग भी कर्मजाल में फँसने से नहीं बच पाये तो तब हम जैसे साधारण शक्तिहीन व्यक्तियों की तो बात क्या है?

यह तो माता–पिता का ही कर्त्तव्य है कि वे जब अपनी कन्या को विवाह योग्य देखें तब कुल–रूप–गुण–वय–विद्या–बल इत्यादि में समता देखकर उपर्युक्त वर के साथ उसका विवाह करा दें।

उन्हीं कन्याओं की प्रशंसा होती है तथा वे ही कुलीन कही जाती हैं, जो अपने गुरुजनों के द्वारा स्थापित विवाह–सम्बन्ध को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेती हैं तथा प्राप्त पति के साथ प्रेम से रहकर अपने को सुखी एवं धन्य समझती हैं। धैर्यपूर्वक पति की सेवा में संलग्न रहती हैं।

प्रथम तो माता–पिता अपनी संतान का अहित या अकल्याण न कभी करते हैं, न वे ऐसा सोच सकते हैं। दूसरी बात यह है कि कर्म की गति को कोई रोक नहीं सकता। इस संसार में इष्ट–अनिष्ट वस्तुओं का संयोग–वियोग पूर्व कर्मानुसार स्वयमेव समयानुसार संघटित या विघटित अवश्य ही होता रहता है।

इसलिये मैं आप से इस विषय में कुछ भी नहीं कहना चाहती हूँ। आपका पूर्ण अधिकार है आप अपनी इच्छानुसार चाहे जिसके साथ मेरा विवाह करा दें, मेरे भाग्य में जो लिखा होगा, वही होगा।

मैनासुंदरी के इस प्रकार के उपदेश को सुनकर पहुपाल तिलमिला उठे। वे क्रोध में अँधे हो गये। तत्त्व को, सौहार्द को भूल गये। उन्होंने कहा–

बेटी, आपके भाग्य के विधाता हम हैं, हम चाहे तो आपका भाग्य बना सकते हैं और चाहे तो बिगाड़ सकते हैं। क्या आपके गुरु ने आपको यही पढ़ाया है?

मैनासुंदरी– पिताजी, आप कैसी अतत्त्वज्ञान की बात कर रहे हैं। आप हमारे भाग्य के विधाता नहीं हैं। आप हमारे भाग्य को न बना सकते हैं, न बिगाड़ सकते हैं। हर प्राणी हर समय अपने पूर्व कर्म का फल भोगता है– यही मेरे गुरु ने पढ़ाया है।

मैनासुन्दरी के इस जवाब ने आग में घी का काम किया, राजा पहुपाल का क्रोध और बढ़ गया। उन्होंने कहा–

हमारे घर में रहती हो, स्वादिष्ट भोजन करती हो, अच्छे–अच्छे वस्त्रादि धारण करती हो, हमारे दिये उत्तम भोगों को प्राप्त करती हो, फिर भी बड़ी मूर्खता के साथ कहती हो कि यह सब अपने ही कर्मों के द्वारा प्राप्त किया है। इसे कृतघ्नता के अलावा और क्या कहा जाये?

राजा के क्रोध भरे वचन सुनकर भी मैनासुन्दरी ने धैर्य के साथ जवाब दिया–

मेरे गुरु के वचन कदापि असत्य नहीं होते हैं यह कृतघ्नता नहीं है, बल्कि जिनाज्ञा को स्वीकार करना है। इसे स्वीकार करने में हम सब का भला है इसी में रहकर सभी ने निर्णय पाया है, जो इससे भिन्न सोचता है वह दुःख पाता है।

वहीं बुजुर्ग मंत्री आये हुये थे, उन्होंने शांत करने के लिये राजा से कहा– समय आने पर सब ठीक होगा। आप इस समय शांत हो जाइये।

राजा पहुपाल ने सोचा मैनासुन्दरी के वचनों की कठोर परीक्षा करनी चाहिये एवं उसे और उसके गुरु को समझना ही चाहिये कि वे सही नहीं हैं।

राजा पहुपाल का उद्यान भ्रमण का समय हो गया था, वे घूमते–घूमते विचारों की उधेड़बुन में बहुत दूर निकल गये, उन्हें पता ही नहीं चला कि वे कितनी दूर आ गये।

राजा पहुपाल को एक स्थान पर मनुष्यों की भारी भीड़ दिखाई दी। उस भीड़ में उन्हें एक कोढ़ी मनुष्य दिखा। उस कोढ़ी कुमार को देखकर राजा को मैनासुन्दरी के वचन याद आये। अपने मन में विचार कर मैनासुन्दरी को यह पाठ सिखाने की इच्छा से कि उसके विचार झूठे हैं, मेरे ही विचार सही हैं तथा कर्मों का फल देखने की इच्छा से वे उस कोढ़ी कुमार से बातें करने लगे। राजा के सभी साथी आश्चर्यचकित थे कि राजा एक कोढ़ी के साथ इतना घुलमिल कर बातें क्यों, किसलिये कर रहे हैं?

उस कोढ़ी कुमार ने पूछा– आप कौन हैं? यहाँ कैसे आये हैं?

पहुपाल ने बताया– मैं मालव देश का राजा हूँ। मेरा नाम पहुपाल है। उद्यान भ्रमण के लिये निकला था, घूमते–घूमते इधर आया। यहाँ लोगों की भीड़ देखी, जिज्ञासावश आप तक आया। मन किया, इसलिये आप से बातें करने लगा हूँ। आप बताइये, आप कौन हो? यहाँ कैसे आये?

उस कोढ़ी कुमार ने कहा– राजन्! मैं अशुभ कर्मों को भोगने वाला मनुष्य हूँ। कर्म ही मुझे यहाँ लाये हैं।

राजा ने सोचा मेरी बेटी मैनासुन्दरी कर्मों की प्रधानता मानती है, यह कुमार भी कर्मों की प्रधानता की भाषा बोल रहा है। अत: यही वर कन्या के लिये योग्य रहेगा, वह भी अपने कर्मों का फल पायेगा, बेटी के कर्मों के विचारों की परीक्षा भी हो जायेगी।

उन्होंने कोढ़ी कुमार से कहा– हमारी छोटी बेटी मैनासुंदरी है, उसका आपके साथ विवाह करना चाहते हैं। आप कृपा कर उसे पत्नी के रूप में स्वीकार कीजिये।

उस कोढ़ी कुमार को आश्चर्य हुआ, वह सोचने लगा यह राजा है। अपनी बेटी का विवाह मुझ जैसे कोढ़ी के साथ क्यों करना चाहता है? कोई साधारण मनुष्य भी अपनी बेटी का विवाह कोढ़ी के साथ कराना नहीं चाहता। भले ही बेटी आजीवन कुँवारी रहे, पर निर्धन से निर्धन मनुष्य भी कोढ़ी के साथ अपनी बेटी ब्याहना नहीं चाहता। इस राजा को ऐसी क्या सूझी, जरूर इसमें कोई राज है। उसे जानना चाहिये, एक कन्या का जीवन क्यों बर्बाद हो? उसने राजा से पूछ ही लिया। आपको वर के रूप में कई राजकुमार मिलेंगे, आप मुझ जैसे कोढ़ी के साथ अपनी पुत्री का विवाह क्यों कराना चाहते हो?

पहुपाल ने कहा– आप ही हमारी बेटी के लिये योग्य वर हो।

कुमार– मुझ जैसा कोढ़ी योग्य वर कैसे हो सकता है?

राजा– हमारी बेटी में और हममें विवाद हुआ था वर के विषय में। वह कहती है– मनुष्य कर्म का फल भोगता है, उसे जो भी राजभोग प्राप्त हुये हैं, उसके अनुसार कर्म के उदय से प्राप्त हुये हैं। हमारे अनुसार उसे राजभोग हमने प्राप्त कराये हैं। वह हमारी नहीं मानती, हम उसकी नहीं मानते। वह कहती है, उसके निर्ग्रन्थ गुरु की यही शिक्षा है। हमने उसे इच्छित वर के लिये कहा था, लेकिन वह कहती है– जिनाज्ञा कुलीन लड़की अपने मुँह से अपने पति के बारे में स्वयं नहीं कहती माता–पिता जिससे कहे वह उसी के साथ विवाह कर सुखी रहेगी। हम उसके और उसके गुरु के वचनों की परीक्षा के लिये ही आपके साथ उसका विवाह कराना चाहते हैं आप भी कर्म की बात कर रहे हो, वह भी यही कहती है। हम उसके और उसके गुरु के वचनों की परीक्षा करना चाहते हैं, आप हमारा साथ दीजिये, हमारा निवेदन स्वीकार कीजिये। उसके साथ विवाह के लिये हाँ कह दीजिये।

वह कुमार मन ही मन सोचने लगा– यदि मैं मना करता हूँ तो यह राजा किसी और मुझ जैसे के साथ

उसका विवाह करा देगा। कम से कम मैं उस जिनश्रद्धानी कन्या की जिनभक्ति में सहायक तो रहूँगा, उसकी भक्ति में बाधक नहीं रहूँगा, क्योंकि मैं भी जिनभक्त हूँ, वह भी जिनभक्ता है, हो सकता है, दूसरा ऐसा व्यक्ति राजा को नहीं मिला तो उस बेचारी का जीवन नरक बन जायेगा। मैं हाँ कह देता हूँ, बाकी समय उसके भाग्य का, कर्मोंदय का खेल है उसने विवाह के लिये हाँ कह दी।

उस कुमार ने व अन्य लोगों ने राजा से अपने विचार पर पुनर्विचार के लिये कहा; परन्तु राजा ने सबसे कहा– मेरा यही अंतिम निर्णय है। मंत्री आदि से कहा– आप लोग शुभ मुहूर्त देखकर विवाह की तैयारियाँ कीजिये, शीघ्र ही शुभ मुहूर्त में उसका विवाह करायेंगे।

घर आकर उसने मैनासुन्दरी से कहा– मैंने तम्हारे लिये कोढ़ी वर ढूँढ़ा है। अब तुम उसी को प्रेमपूर्वक वरण कर लो।

मैनासुन्दरी– आपने नहीं, मेरे कर्मों ने ढूँढ़ा है। यदि मेरे भाग्य में वही है तो मैं इससे नाराज नहीं होवूँगी, मैं उन्हें प्रेमपूर्वक ही वरण करूँगी। मेरे मन में जरा भी खेद नहीं है। बल्कि उनके प्रति भी साम्य भाव ही है। वे मुझे सहर्ष स्वीकार हैं। इस जन्म में आपका चुना हुआ वही वर मेरे लिये सर्वश्रेष्ठ हैं, उनके अलावा शेष पुरुष मेरे लिये भाई या पिता समान हैं।

मैनासुन्दरी के ये निष्कपट शब्द भी राजा पहुपाल को नहीं जँचे। उन्होंने बड़े रूखे स्वर से कहा–

तू अत्यंत हठीली है, तेरा स्वभाव कठोर है, तेरा हृदय विवेक रहित है। मेरी बात को अब भी मान, अपना हठ छोड़ दे, मैं अभी भी तेरी इच्छानुसार सुन्दर राजकुमार के साथ तेरा विवाह करा दूँगा।

मैनासुन्दरी– पिताजी, मैंने मन से उन्हें अपना वर मान लिया है, वे ही मेरे लिये सबसे सुन्दर है और राजाओं के राजा हैं।

पहुपाल– बेटी, तेरा हठ, जिद्द निराले हैं। मैं हार गया अब तू अपने कर्मों का फल भोग।

मैनासुन्दरी– पिताजी, नाराज मत होइये, मन में पश्चाताप मत कीजिये। मुझे सहर्ष विदा कीजिये। मैं हर पल अपने ही पूर्व कर्म को भोग रही हूँ, आगे भी भोगूँगी, हर समय समता भाव रखूँगी, उनकी खूब सेवा करूँगी।

पिताजी आप चिंता न करें, कर्म की गति अत्यन्त विचित्र होती है। **शुभ कर्मों का जब उदय होता है, तब अनिष्ट वस्तु भी इष्ट हो जाती है। इसके विपरीत जब अशुभ कर्मों का उदय होता है तब इष्ट वस्तु भी अनिष्ट हो जाती है।** जो होना था, सो हो गया उसके सम्बन्ध में विशेष विचार करना व्यर्थ है।

यदि किसी राजकुमार के साथ विवाह हो जाय, उसके बाद उनको कोढ़ हो गया तो क्या मैं उन्हें छोड़ दूँगी? नहीं, कदापि नहीं।

मैनासुन्दरी की बातों को सुनकर राजा को यह निश्चय हो गया कि यह अपना हठ नहीं छोड़ सकती। तब राजा ने विवश होकर ज्योतिषियों से शुभ मुहूर्त पूछा व उसके विवाह का दिन निश्चित कर दिया।

जिस कोढ़ी कुमार के साथ मैनासुन्दरी का विवाह तय कर दिया था वह कोढ़ी कुमार कौन है? आइये जानते हैं-

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में अंगदेश है। इस देश में एक सुन्दर नगरी है जिसका नाम चम्पापुर है। चम्पापुर के पास मंदारगिरि है जहाँ से बारहवें तीर्थंकर श्री वासुपूज्य स्वामी मोक्ष गये हैं।

चम्पापुर के राजा का नाम **अरिदमन** था। इनके छोटे भाई का नाम वीरदमन था। अरिदमन की पत्नी का नाम कुन्दप्रभा था। इनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम **श्रीपाल** रखा गया था। जब श्रीपाल आठ वर्ष का हुआ तब पाँच अणुव्रत एवं आठ मूलगुण धारण कर गुरु के पास अध्ययन के लिये गया। वहाँ कम समय में ही अनेक विद्याओं एवं कलाओं में निपुण हो गया। जब वह विद्याओं और कलाओं में पारंगत होकर घर आया तब राजदरबार में समय-समय पर जाकर राज्य का कार्य देखता था। योग्य समय में राजा अरिदमन ने उसका युवराज पद पर अभिषेक किया।

कुछ वर्ष पश्चात् राजा वृद्धावस्था में पहुँच गये तब उन्हें शरीर की दशा देखकर संसार से वैराग्य हो गया। श्रीपाल का राज्याभिषेक कर उन्होंने दीक्षा ली।

श्रीपाल राज्य का संचालन न्याय-नीति धर्मपूर्वक करते थे। उनके राज्य में प्रजा प्रसन्न थी। धन वैभव बढ़ रहा था। सब ओर शांति थी।

श्रीपाल का शरीर कामदेव के समान सुंदर था, निरोग भी था। एक दिन पापकर्म का ऐसा तीव्र उदय आया कि उनका कामदेव के समान सुंदर शरीर कोढ़ नाम की बीमारी से ग्रस्त हो गया, दुष्ट पापकर्म को उनका सुख देखा नहीं गया। कोढ़ के कारण उनका शरीर गलने लगा। शरीर से पीप, गंदा खून बहने लगा, शरीर से बदबू आने लगी, शरीर में पीड़ा होने लगी।

यह कोढ़ उनके पास रहने वाले सात सौ लोगों को भी हो गया। इन सात सौ लोगों में मंत्री, सेनापति, पुरोहित, अंगरक्षक, खजांची, न्यायाधीश आदि प्रमुख पदाधिकारी शामिल थे। इन सबके शरीर से बदबू इतनी ज्यादा आने लगी कि कोई प्रजाजन इनके पास आने से कतराने लगा था।

प्रजा का कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रकार का काम हो, इनके पास नहीं जाता था। प्रजा यही चाहती थी, हमारे राजा जल्दी ठीक हो जाये, परंतु सब जानते हैं, **चाहने से कुछ नहीं होता, कर्म के उदय के अनुसार होता है। कर्म बड़ा बलवान है। उस पर किसी का वश नहीं चलता, उसने तीर्थंकर जैसे महापुण्यशाली जीव को भी संकट में डाला है।** अन्य सामान्य लोगों की तो बात ही क्या करें?

कर्म बली अति जगत में, सबहिं जीव वश कीन।
महाबली पुनि वे पुरुष, कर्म करे जिन छीन।।

अर्थ- जगत में कर्म अत्यन्त बलवान है, जिसने सभी जीवों को वश में किया है, परंतु इन कर्मों से भी बदलाव वे पुरुष हैं, जिन्होंने कर्मों का नाश किया है।

श्रीपाल और उनके सात सौ पदाधिकारियों का कोढ़ इतना बढ़ गया था, उनके शरीर को छूने वाली हवा भी दुर्गन्धित होकर दूर-दूर तक दुर्गन्ध फैला रही थी।

राजा की बीमारी से लोगों को मानसिक संताप था ही, उनकी बदबूदार हवा से उन्हें और परेशानी होने लगी। इससे सभी लोग अत्यंत क्षुब्ध, व्याकुल, परेशान, बेचैन रहने लगे। फिर भी श्रीपाल उन्हें इतने प्रिय थे कि कोई भी शिकायत करने उनके पास नहीं गया। कई लोग घर बार छोड़कर दूसरी जगह जाने लगे, कितने ही जाने की तैयारी में थे। धीरे-धीरे नगर सुनसान होने लगा।

नगर को बचाने के उद्देश्य से नगर के गणमान्य वृद्ध लोग श्रीपाल के चाचा वीरदमन के पास गये। उन्होंने सारी कहानी वीरदमन से कहकर निवेदन किया कि इस विषय में कुछ उपाय ढूँढ़िये। वीरदमन ने उन्होंने सांत्वना देकर भेजा, स्वयं श्रीपाल के पास गये, उन्हें सारी हकीकत बतायी।

श्रीपाल अत्यंत न्यायप्रिय व प्रजावत्सल थे। उन्होंने राज्य छोड़कर व्याधि ठीक होने तक जंगल में रहने का निर्णय किया। राज्य का भार चाचा वीरदमन को सौंपा एवं स्वयं सात सौ पदाधिकारियों के साथ वन में चले गये।

पुत्र के अचानक चले जाने से उनकी माता कुन्दप्रभा के दुःखों का ठिकाना नहीं था। वह निरंतर विलाप करती रहती थी। पहले पति दीक्षा लेकर चले गये। अब बेटा भी बीमारी के कारण घर छोड़कर चला गया। उस बेचारी के पास दुःख के अलावा और कुछ नहीं बचा था।

कर्म का फेर जानकर प्रजा ने इस वियोगजनित दुःख को सहा एवं धीरे-धीरे शोक को भूलकर अपने-अपने कार्य में लग गये। वीरदमन अपनी राजव्यवस्था में लीन हो गये।

राजा श्रीपाल अपने सात सौ वीरों के साथ देशाटन करते हुये भिन्न-भिन्न स्थानों पर घूमते हुये नगरों के बाहर वन, उद्यान आदि में रहने लगे। इसी प्रकार घूमते-फिरते अनेक प्रकार के कष्ट भोगते हुये वे इस समय उज्जयिनी के बाहर उद्यान में ठहरे हुये थे। जहाँ उनकी मुलाकात राजा पहुपाल से हुई थी, उसी मुलाकात में उनका मैनासुंदरी के साथ विवाह तय हुआ था।

शुभ मुहूर्त में श्रीपाल, मैनासुंदरी का विवाह सम्पन्न हो गया। विवाह में नगरवासी, स्वजन, परिजन सभी आये थे, परन्तु किसी के मन में विवाहोत्सव के उल्लास और उमंग नहीं थे। सभी लोग ऊपरी मन से दिखावटी कर्त्तव्य निभाने के लिये सन्नद्ध दिखे।

राजा की दुर्बुद्धि पर सभी मन ही मन कुढ़ रहे थे, मैनासुन्दरी को कोढ़ी वर के साथ देखते ही बहुत से लोगों के नेत्रों में आँसू भर आये थे। विचित्र दृश्य था। हर तरफ विषाद का वातावरण था। कहीं बाजे बज रहे थे। कहीं सिर पर हाथ टेके लोग अपनी विवशता एवं कन्या की दीनता पर बिलख रहे थे। कोई नवागन्तुक आश्चर्यमय, परस्पर विपरीत बेमेल जोड़ी को देखकर चकित रह जाता था, वह समझ नहीं पाता था कि यह आनंदोत्सव है या विषाद सभा।

इत्र इत्यादि के प्रयोग से भी श्रीपाल के शरीर की दुर्गन्ध कम नहीं हुई थी, पास जाने की इच्छा वाले उन्हें दूर से ही देख रहे थे। राजा के घर जैसी शादी होनी चाहिये वैसी तैयारियाँ पूरी थीं पर जोश या उत्साह की कमी थी। स्त्रियों ने गीत गाये पर नीरस स्वर से। कर्मचारियों ने अपनी-अपनी व्यवस्थाएँ देखीं पर बेमन से।

दर्शकों के चेहरों पर शोक, चिन्ता, भय, ग्लानि, विरक्ति, आश्चर्य, क्रोध के भाव स्पष्ट दिख रहे थे, उपस्थित सभी लोग विचारमग्न थे। उस जनसमुदाय में कुछ ऐसे लोग भी थे जो केवल कौतुक देखने के अभिप्राय से वहाँ आये हुये थे। उन्हें किसी की हानि-लाभ अथवा भलाई-बुराई से कोई प्रयोजन नहीं था, धीरे-धीरे भीड़ बढ़ती गई।

गृहस्थाचार्य ने विधिपूर्वक पञ्चपरमेष्ठी, जिनवाणी की साक्षी में विवाह सम्पन्न कराया। विवाह के बाद वे अपने शिविर में आ गये। उन्हें पहुँचाने के लिये जो लोग आये थे, उनकी मुखाकृतियों पर शोक, भय, ग्लानि एवं लज्जा के भाव स्पष्ट दिख रहे थे।

सामान्य रूप से कन्या की विदाई में सभी की आँखें नम हो जाती हैं। यहाँ कोढ़ी वर और राजकुमारी दुल्हन के बेमेल संयोग को देखकर सभी की आँखें भर आयी थीं। टपाटप आँसू की बूँदें छलक रही थी। मानो वर्षाकाल के मेघ ही बरस रहे हों।

ऐसी परिस्थितियाँ देखकर राजा पहुपाल भी अत्यन्त खिन्न एवं लज्जित थे। परंतु अब क्या किया जा सकता था? किसी की कर्म रेखा भला मिट सकती है? सबके मुख से केवल हाय! और हाय! हाय! के आर्तनाद के अलावा अन्य किसी प्रकार का कोई शब्द नहीं सुनाई पड़ता था।

मैनासुन्दरी की माता तथा बड़ी बहन सुरसुंदरी उसके गले से लिपट कर विलाप करने लगी- हा कन्या! तूने पूर्वजन्म में न जाने कौनसे पाप कर्म किये थे, जिसके फलस्वरूप तुझे आज अथाह दुःख सागर में डूबने के लिये बाध्य होना पड़ रहा है। अपनी आयु किस तरह से पूर्ण कर पायेगी? तूने जिद क्यों की? क्यों नहीं इच्छानुसार पति की याचना की? कहाँ तू कोमलांगी राजकुमारी, राजभोगों में पली, बढ़ी और कहाँ कोढ़ी पति का साथ! न घर का ठिकाना, न भोजन-पानी का ठिकाना? कर्म अत्यंत क्रूर है, उसे तनिक भी दया नहीं आयी। भला, अबलाओं पर भी कोई इस प्रकार अन्याय करता है? यह अन्याय ही नहीं घोर अन्याय है।

राजा को संबोधित करते हुये रानी कहने लगी- स्वामी, आप तो दया के सागर हैं, प्रजा का पालन पुत्र की तरह करते हो, परन्तु बेटी के विवाह के समय आपके वे गुण कहाँ गये थे? आपने ऐसा अनुचित कार्य क्यों कर डाला?

रानी के इस करुण क्रंदन को सुनकर पत्थर हृदय भी पिघल जाता, फिर साधारण मनुष्य की बात ही क्या है? निदान, राजा पहुपाल की आँखों में भी आँसू भर आये, वे भी विलाप करने लगे।

हे कुबुद्धि! तू जबरदस्ती मेरे पास ही क्यों आयी? क्या तुझे दूसरी जगह नहीं मिली थी? इस सरलहृदया, कोमलांगी मेरी बेटी को कष्टों के पहाड़ के नीचे क्यों दबा दिया? क्या इतने से तेरा पेट भर गया? या और कुछ बाकी है? वे अपनी कुमति को धिक्कारने लगे।

मंत्रियों ने मुझे बहुत समझाया था पर न जाने क्यों उस समय मेरी बुद्धि पर पत्थर पड़े थे?

राजा के करुण-रुदन को देखकर सभी का रोना और जोर से निकल पड़ा, जैसे रुका हुआ पानी बह निकला हो।

इधर करुण-क्रन्दन का करुण दृश्य था।

दूसरी ओर मैनासुन्दरी की मुखाकृति पर तनिक भी शोक नहीं था। उसका चेहरा अपार शांति से भरा था, वह साम्य भाव से भीगी हुई थी, उसके चेहरे पर अपार आनंद था।

वह शीलवती थी, सती थी, इसलिये ऐसा भयंकर अनर्थ होता हुआ देखकर भी उसके चरित्र में कोई शिथिलता नहीं आई बल्कि उसका हृदय एक प्रकार से दृढ़ निश्चय एवं नये आनंदोल्लास से भरा हुआ था।

वह आश्चर्यचकित थी कि लोग उसके विवाह के शुभ अवसर पर हर्षोल्लास के विपरीत शोक के भाव क्यों प्रकट कर रहे हैं? माता-पिता-बहन दु:खी क्यों हैं?

उसने सबसे कहा- आप लोग इस तरह के शोक के भाव प्रदर्शित कर क्यों मेरे आनंद में काँटे बो रहे हों?

हे मेरे माता-पिता, बन्धु आदि हितचिंतकों! मुझे पक्का विश्वास है कि आप लोग मेरे हितैषी हैं। इसमें आप लोगों का कोई दोष नहीं है। कर्म के अनुसार जो होना था वह हुआ। **पाप के उदय को बदलते देर नहीं लगती। पाप के उदय में धैर्य रखना चाहिये।**

आप लोगों को यह जान लेना चाहिये कि स्त्री का सर्वस्व उसका पति ही होता है। उसके संबंध में अपशब्दों को, निंदा के वचनों को कोई भी पतिव्रता स्त्री सुनना नहीं चाहेगी। उसका कुल, शील एवं सतीत्व एकमात्र पति पर ही निर्भर है। कर्मानुसार जिस प्रकार का भी पति प्राप्त हो जाता है, कुलीन कन्याएँ उसी को प्रिय एवं पूज्य समझती हैं। उनके लिये पति के अतिरिक्त संसार के सभी पुरुष पिता, भ्राता एवं पुत्र के समान हैं। आप लोग मेरे पतिदेव को महाकुरूप एवं रोगग्रस्त देख रहे हैं- यह गूढ़ सांसारिक रहस्य है परंतु मेरी दृष्टि में वे कामदेव के समान सुन्दर हैं। मेरी समझ में आप लोगों के पश्चाताप का किञ्चित्मात्र भी मूल्य नहीं है। मुझे पूर्णरूप से संतोष है कि मैंने ऐसे सर्वगुण सम्पन्न, रूपवान एवं पराक्रमी वीर को पति के रूप में प्राप्त किया है। यदि पुण्योदय होगा तो थोड़े ही दिनों के बाद मेरे पतिदेव पूर्ण नीरोग हो जायेंगे। यदि नहीं भी होंगे तो मुझे कोई दु:ख नहीं होगा।

इसलिये आप लोगों से मेरा निवेदन है कि आप लोग शांत हो जाइये। मेरे संबंध में किसी भी प्रकार

की व्यर्थ की चिंता न करें। **संसार के सभी जीव कर्माधीन हैं। दुःख के बाद सुख, सुख के बाद दुःख होता ही है– यही संसार चक्र है।**

पूर्वोपार्जित कर्मफल समझ कर ही उदय प्राप्त वर्तमान स्थिति का सामना समभाव से करना चाहिये।

इस प्रसंग में जो कुछ हुआ है, उसमें पिताजी का कुछ भी दोष नहीं है, इसलिये मेरी विनम्र प्रार्थना है कि आप लोग व्यर्थ ही दोष देकर उन्हें मानसिक क्लेश न दें।

मैनासुंदरी के इस प्रकार के सारगर्भित बातों को सुनकर सभी निरुत्तर हो लौट आये। राजा को परम संतोष के साथ घोर पश्चाताप हुआ। विदा होती हुई मैनासुंदरी से उन्होंने क्षमायाचना की, पश्चाताप प्रकट किया। अपने सामर्थ्य के अनुरूप बहुत-सी वस्तुएँ भेंट दीं। एक हजार दासियाँ और हाथी आदि भेंट दिये।

मैनासुन्दरी के ज्ञान, चारित्रिक वैभव को देखकर श्रीपाल को बहुत संतोष हुआ, आश्चर्यचकित रहे कि क्या इतनी दृढ़ श्रद्धानी महिलाएँ होती हैं?

मैनासुंदरी के चले जाने के बाद भी कुछ दिनों तक नगर में बराबर इसी बात की चर्चा होती रही। समय के साथ-साथ इस घटना पर परदा पड़ता गया एवं क्रमशः इस बात को नगर के सभी लोग भूल गये। मैनासुन्दरी के साथ विवाह के दिन से ही श्रीपाल को साता वेदनीय के शुभ लक्षण प्रकट होने लगे। **शीलवान लोग जहाँ भी जाते हैं, वहाँ मंगल ही होता है,** उनके शरीर में पीड़ा कम होने लगी।

मैनासुंदरी तन, मन एवं वचन से स्वामी की सेवा में अहर्निश तत्पर रहने लगी, उसे इस कार्य में थोड़ी भी ग्लानि का अनुभव नहीं होता था बल्कि उसे परम संतोष होता था।

वह अपने हाथों से श्रीपाल के अंगों से बहते पीब व खून को साफ करती थी, उनके घावों पर पट्टी बाँधती थीं। नहलाना, कपड़े पहिनाना आदि सभी कार्य मनोयोग से करती थी। दुर्गंध का विचार न कर उनके पास छाया की तरह रहती थी।

प्रतिदिन अतिथियों को, उनके बाद में पति को, बाद में भोजन करती थी। रात्रि में पति सेवा के कारण रात्रि जागरण करती थी। मैनासुंदरी अपने पति की सेवा का अत्यंत कठोर परिश्रम वाला नियम बिना खेद तथा विनय के साथ करती थी। मैनासुन्दरी की इस प्रकार की सेवा भावना देखकर श्रीपाल भी आश्चर्यचकित हो गये थे।

एक दिन श्रीपाल ने कहा– हे शीलवती सुंदरी जब तक हमारे पापकर्म का उदय है तब तक आप हम से दूर ही रहिये। हमें भीषण ग्लानि का अनुभव होता है। आप जैसी सुन्दरी को मुझ जैसा कोढ़ी पति प्राप्त हुआ, क्या यह कम खेद की बात है?

मैनासुन्दरी ने बहुत मधुर स्वर से कहा– हे देव, आप ने यह क्या कहा? मुझे आपके शब्द प्रीतिकर नहीं लगे। आपने ऐसा कठोर आदेश देने का विचार ही कैसे किया? क्या हमने कोई भयंकर अपराध किया

है? अथवा हमारी सेवा में कोई त्रुटि रह गई है? क्या आपको लगता है कि हम स्वप्न में भी आपको छोड़ सकते हैं?

हे नाथ! जैसे शरीर से छाया, चन्द्र से चांदनी, अग्नि से उष्णता दूर नहीं रह सकते उसी प्रकार मैं भी कदापि आपसे दूर नहीं रह सकती। भले ही सुमेरु चलायमान हो जाये, सूर्य पश्चिम से उगे, जल में अग्नि उत्पन्न हो परंतु मैं पति सेवा से विमुख नहीं हो सकती। इस तथ्य को आप पत्थर की लकीर की तरह समझ लीजिये कि इस संसार में स्त्रियों की सुख-प्राप्ति का मूल कारण पति सेवा ही है। यदि स्त्रियाँ अपने मूलाधार पति को ही तिरस्कार पूर्वक छोड़ देती हैं तो फिर उनका आलम्बन भला दूसरा कौन हो सकता है? वृक्ष से गिरने वाले फल को और कौन आधार हो सकता है? उसे तो धरती पर गिरना ही है। विवाहिता के लिये वर ही सर्वस्व है।

पुराणों में सीता, द्रौपदी आदि को देखिये, उन्होंने पति सेवा के लिये भौतिक सुखों को तिलाञ्जलि दी थी। वे जंगलों में भयंकर हिंसकों के बीच रहीं। उन्होंने प्राणों को हथेली पर रखा, कंटीले रास्ते पर चलीं, कंकड़-पत्थरों की ठोकरें खायीं परंतु पति संग के अतुलनीय सुख के आगे ये सब क्लेश उन्हें नगण्य लगे थे। पति के संग को वे मर जाने पर भी छोड़ने को तैयार नहीं थीं। तो मैं आप से दूर क्यों रहूँ? वह भी आपकी ऐसी अवस्था होने पर आप रोग-शय्या पर पड़े हुये हैं, इस दशा में आपको छोड़कर मैं एक क्षण भी अलग नहीं रह सकती।

आप अपनी निंदा क्यों करते हो? यदि मैं ऐसी अवस्था में होती तो क्या आप मेरा साथ छोड़ देते? यह पाप का उदय है, किसी के भी हो सकता है, मेरे भी, पाप का उदय जल्दी बदल भी सकता है। मैं तो आप जैसे उत्तम पति को प्राप्त कर अपने को अत्यंत सौभाग्यवती समझती हूँ। आप धर्म के कट्टर श्रद्धानी हैं।

मैं सौभाग्यशाली हूँ कि पति के साथ-साथ एक धर्मात्मा की सेवा का अवसर मुझे मिला है। संसार में उन्हीं स्त्रियों का जीवन धन्य है, जिन्होंने पति की थोड़ी-सी भी सेवा करके अपने जीवन को पवित्र बना लिया हो। आपको देखकर मेरा हृदय प्रफुल्लित एवं नेत्र तृप्त हो जाते हैं। मेरी उपयोगिता भी तभी तक है जब तक मैं आपकी सेवा में तत्पर हूँ। आपका साथ छोड़ना इसका मतलब शीलव्रत छोड़ना है। मैं अपने शील को कदापि नहीं छोड़ सकती। मेरा जो कुछ भी है शील ही है। इसलिये हे जीवन धन पुन: ऐसा मत कहिये। इसके अलावा चाहे जो दण्ड दीजिये।

मैनासुन्दरी के उत्तर से निरुत्तर हुये श्रीपाल मैनासुन्दरी के साथ पञ्च परमेष्ठी की शरण में रहने लगे।

एक दिन सौभाग्य से वन में मुनि का आगमन हुआ। मैनासुन्दरी ने उन्हें पूछा-भगवन् इस व्याधि को दूर करने का क्या उपाय है?

मुनिवर बोले-धर्म और धैर्य की शरण ही एकमात्र उपाय है, इसलिये सिद्धचक्र का चिंतन-मनन-

ध्यान-पाठ करो। समय पर साता का उदय आने पर सब ठीक हो जायेगा। व्याधि दूर हो जायेगी, सिद्धचक्र का विधान करो। कार्तिक, फाल्गुन, आषाढ़ महीने में अंतिम आठ दिन अष्टाह्निका व्रत पालन करो। ये धर्म पर्व के दिन हैं। इन दिनों में किया थोड़ा-सा धर्म अधिक फल देता है। जैसे सही समय पर बोया गया बीज बहुत फल देता है तथा इन दिनों में किया गया पाप बहुत ज्यादा फलता है। धर्म के संबंध में और भी उपदेश देकर मुनिराज चले गये।

उस दिन से श्रीपाल, मैनासुन्दरी का धर्म का उत्साह और भी बढ़ गया था, वे धर्म में दत्तचित्त होकर रहने लगे।

कार्तिक महीना आ गया था। मैनासुन्दरी ने अष्टाह्निका पर्व में आठ दिन का उपवास कर सिद्धचक्र का विधान किया। जिनेन्द्र मंदिर में जाती। अभिषेक का जल लाती सब पर लगाती। इधर श्रीपाल आदि के असाता का अंत और साता का उदय आया था। श्रीपाल आदि सभी साथियों का कोढ़ दूर होकर उनके शरीर पहले की तरह दमकने लगे थे, सभी रोगमुक्त होकर पूर्व की तरह सुन्दर हो गये थे, उनके दिव्य शरीर को देखकर कोई नहीं कह सकता था कि इनके कोढ़ जैसी भीषण बीमारी थी।

राजा श्रीपाल एवं उनके सात सौ साथी कोढ़ रहित होकर नीरोग हो गये।

पापकर्म का उदय नष्ट होने पर मैनासुन्दरी श्रीपाल आनन्दपूर्वक जीवन बिताने लगे।

मैनासुन्दरी इस बात को कदापि नहीं भूलती थी कि भौतिक-सुख चरम-सुख नहीं है, इसलिये वह सदा धर्मानुष्ठान में लीन रहती थी। वह जानती थी-

बीज राख फल भोगवे, ज्यों किसान जग मांहि।
त्यों बुधजन सुख भोगवे, धरम बिसारे नाहिं।।

उसका विश्वास था- धर्म से ही परम पद मोक्ष की प्राप्ति होती है। वह धर्म में लीन रहने वाली धर्मात्मा थी।

श्रीपाल की माता कुन्दप्रभा के दिन बड़ी कठिनाई के साथ बीत रहे थे, एक दिन उन्हें अवधिज्ञानी मुनि के दर्शन हुये। उन्होंने अपने बेटे के बारे में पूछा-

मुनिराज ने अपने अवधिज्ञान से जानकर श्रीपाल की सभी बातें बतायीं। अपने पुत्र का कोढ़ दूर होने एवं मैनासुंदरी जैसी धर्मात्मा पत्नी के साथ पाने की बात सुनकर रानी कुन्दप्रभा प्रसन्न होकर अपने घर लौट गई। घर पहुँच कर माता कुन्दप्रभा अपने देवर वीरदमन को श्रीपाल के समाचार सुनाकर श्रीपाल, मैनासुंदरी से मिलने के लिये तत्काल उज्जैन की ओर निकल गई। रानी का मन पुत्र से मिलने के लिये अत्यंत व्याकुल था, रात दिन यात्रा कर वह थोड़े ही दिनों में उज्जैन पहुँच गई।

जब नगर के बाहर उद्यान में एक सुन्दर राजमहल पर उनकी दृष्टि पड़ी तब उन्हें बड़ा विस्मय हुआ,

वह उस महल की ओर बढ़ी। पास ही से जाते हुये एक प्रहरी से उन्होंने पूछा–

यह राजमहल किस भाग्यशाली का है?

इस प्रश्न के उत्तर में उस प्रहरी ने कहा कि– हे माताजी! इस उद्यान में श्रीपाल नाम का एक कोढ़ी अपने सात सौ साथियों के साथ आया था, बहुत दिनों तक ठहरा। राजा के दुराग्रह और उस कोढ़ी के सौभाग्य से उसका विवाह राजपुत्री मैनासुन्दरी के साथ हुआ था। मैनासुन्दरी की सेवा और उसके साता के उदय से वह और उसके साथी रोगमुक्त हो गये। यह राजमहल उसी भाग्यशाली का है।

कुन्दप्रभा प्रसन्न होकर महल के पास गई। उसने द्वारपाल से कहा–

तुम्हारे स्वामी से कहो उनकी माता कुन्दप्रभा द्वार पर आयी है।

श्रीपाल ने यह बात मैनासुंदरी से कही, वे दोनों आये। माता से मिले। मैनासुंदरी को बहुत अच्छा लगा। माता के मिलन से वे दोनों बहुत प्रसन्न थे। उनको गर्मी में पेड़ की छाया की तरह माता का साथ आनन्ददायक लगा। मैनासुन्दरी ने उनके चरण स्पर्श किये तब उन्होंने पटरानी बनने का आशीर्वाद दिया। हे बेटी, यह तुम्हारे धैर्य एवं शील का परिणाम है कि आज मेरा पुत्र पूर्ण नीरोगी कामदेव के समान सुंदर हो गया।

मैनासुंदरी– माताजी, यह उनके पूर्वकृत पुण्य का उदय है। इसमें मैंने क्या किया?

कुन्दप्रभा– बेटी, धन्य हो। आप जैसी बहू पाकर मेरा जीवन भी धन्य हो गया।

उस दिन से वे तीनों एक साथ प्रसन्नता से रहने लगे थे।

इधर राजा पहुपाल की दयनीय दशा हो गई थी, उसे देखकर रानी निपुणसुंदरी ने उनसे पूछा–

नाथ, आपका शरीर दिनोंदिन दुर्बल क्यों होता जा रहा है? आपको मैं सदैव उदास देखती हूँ। आपका मुख कांतिहीन क्यों हुआ है? आजकल तो और भी अधिक उदास दिख रहे हो क्या कारण है?

रानी के प्रश्न के उत्तर के रूप में राजा ने रानी से अपने मन की बात मैनासुंदरी संबंधी पश्चाताप की बात बतायी।

रानी ने कहा– **होनी को कौन टाल सकता है? अपने कर्मों का फल प्राणी को अवश्य भोगना पड़ता है।** मैनासुंदरी का ऐसा ही कर्मों का उदय था। हम कर ही क्या सकते थे? इसलिये चिंता का सर्वथा परित्याग कर देना ही अति उत्तम है। इस प्रकार रानी ने पति को धैर्य प्रदान किया और कहा कि हमारे पुण्योदय से मुनिराज का समागम हुआ है। क्यों न हम उन्हीं से उसके भाग्य के बारे में पूछे?

यह सोचकर राजा पहुपाल और रानी निपुणसुंदरी स्नान कर मंदिर गये, भगवान के दर्शन कर मुनिराज के दर्शन कर उनके पास बैठ गये। ज्योंही वे अपनी शंका के निवारण हेतु पूछने वाले थे, उसी समय उनकी दृष्टि पास ही बैठे हुये स्त्री–पुरुष पर पड़ी। स्त्री को पहिचानने में देर नहीं लगी क्योंकि वह मैनासुन्दरी थी,

परन्तु उसके साथ के अपरिचित पुरुष को वे पहिचान नहीं पाये, राजा पहुपाल की मुखाकृति एकदम से बदल गई त्यौरियाँ चढ़ गईं। क्रोध से चेहरा तमतमाने लगा।

उस पुरुष को अन्य पुरुष जानकर राजा-रानी सोचने लगे इस पुत्री ने क्या कर डाला? परपुरुष का संसर्ग इसे कैसे अच्छा लगा? हम इसे शीलवती समझते थे। यह तो कुलकलंकिनी निकली।

मैनासुन्दरी माता-पिता के भावों को समझ गई कि उनके मन में क्या बात है? वह निश्छल भाव से अपने पति के साथ उठी और अपने माता-पिता के और पास गई। नम्रतापूर्वक उन्हें प्रणाम किया। इस पर भी वह अपने माता-पिता के ध्यान को अपनी ओर आकृष्ट करने में असफल रही तब उसे निश्चय हो गया था। उसके माता-पिता के मन में अनुचित संदेह है। उसे दूर करने के भाव से लज्जा से मस्तक नीचे कर उसने कहा- हे पिताजी, हे माताजी! यह जो मेरे साथ पुरुषोत्तम हैं, वे आपके दामाद ही हैं। वे कौशाम्बी के राजा श्रीपाल हैं। जो विवाह के समय कोढ़ी थे, धर्म के प्रभाव से उनका अशुभ कर्म का नाश हो गया है। वे नीरोग हो गये हैं।

पुत्री के वचनों पर पहुपाल राजा और निपुणसुंदरी रानी को विश्वास नहीं हुआ। वे कहने लगे-

बेटी, तुझमें इतनी निर्लज्जता कहाँ से आ गई? हम तुम्हारी बातों को कदापि सत्य नहीं मान सकते।

श्रीपाल ने सोचा- इस समय मुझे बोलना ही चाहिये, क्योंकि ये लोग अन्य विचार करके इस शीलवती के चरित्र पर शंका कर रहे हैं। उन्होंने नम्रता के साथ कहा-

हे माताजी, हे पिताजी! आप भ्रम में हैं। अपनी सती कन्या की बातों पर अविश्वास न कीजिये। मैनासुन्दरी जैसी कन्या पाकर आपका वंश धन्य हो गया है यह साधारण स्त्री नहीं है यह सतियों का मुकुटमणि कही जा सकती है। इसके अखण्ड शील एवं सतीत्व की जितनी प्रशंसा की जाये उतनी कम ही है। इसके पुण्य प्रभाव से ही न केवल मेरा, बल्कि मेरे सात सौ साथियों का कोढ़ दूर हो गया है। मैं वही कोढ़ी श्रीपाल हूँ, इसमें किञ्चित् भी संदेह मत करना। देखिये, अभी भी मेरे अँगूठे में किञ्चित् कोढ़ शेष है।

अपने दामाद के मुँह से ये शब्द सुनकर अँगूठे का कोढ़ देखकर उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया कि ये ही हमारे दामाद हैं। हमने व्यर्थ ही अपनी बेटी पर शक किया है। अपनी कन्या एवं दामाद को देखकर उनकी आँखें तृप्त नहीं हो रही थीं। प्रसन्नता के कारण उनके शरीर पुलकित हो उठे, उन्होंने उनको गले लगाया, उनकी आँखों से अश्रुधारा बह चली। राजा पहुपाल ने पुन: एक बार पश्चाताप प्रकट किया, क्षमा माँगी। आत्मभर्त्सना की।

माता-पिता के कहने पर मैनासुन्दरी ने अब तक की सारी घटनाएँ सुनायी।

सभी प्रसन्न होकर अपने-अपने महल में लौट गये।

पत्नी मैनासुंदरी, माता कुन्दप्रभा के साथ आनन्दपूर्वक रहते हुये श्रीपाल का बहुत समय बीत गया। सुख के दिन शीघ्र बीत जाते हैं।

एक रात अचानक ही श्रीपाल की नींद भंग हो गई। आँखें खुलने के बाद वे बड़ी भारी चिंता में डूब गये। चिंता में भी भला कहीं नींद आती है? वे शय्या पर पड़े-पड़े करवटें बदलते रहे। पति चिंता में व्याकुल हो और पत्नी सुख की नींद सोये- यह कैसे हो सकता है? मैनासुंदरी जाग गई। पति की दशा देखकर उसने पूछा-

नाथ! आपकी असमय चिंता का क्या कारण है?

श्रीपाल- हे प्रिये, चिंता का कोई विशेष कारण नहीं है।

परंतु यह अवश्य है कि यहाँ रहने पर लोग मुझे ''राजदामाद'' ''घरजँवाई'' कहते हैं, मेरे पिताजी का कोई उल्लेख नहीं करता। **पिता के नाम का उल्लेख न हो तो पुत्र को पुत्र होने का कोई अधिकार नहीं है,** यह सोच ही मेरी चिंता का कारण है।

मैनासुन्दरी- आप सच कह रहे हैं। पुरुष के श्वसुर के घर रहने को कौन उत्तम कह सकता है? पुत्र को कुलदीपक कहा जाता है, वह कोई ऐसा कार्य करे, जिससे कुल संसार में प्रकाशित हो।

श्रीपाल- इसलिये मेरे मन में विचार आया है कि पराक्रम और बाहुबल दिखाऊँ! जिससे मेरा कुल संसार में चमके। इसमें आपको मेरा साथ देना होगा।

मैनासुन्दरी- नाथ, मैं तो हरदम आपके साथ हूँ।

श्रीपाल- हे प्रिये! सुनो, मैंने यह निश्चय कर लिया है कि अन्यत्र जाकर मैं अपने बाहुबल से राज्य एवं ऐश्वर्य प्राप्त करूँगा।

इन वचनों को सुनकर मैनासुन्दरी हताश हो गई। उसे स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि उसे पति से एक क्षण के लिये भी अलग होना पड़ेगा। उसने बड़े ही दीन स्वर में निवेदन किया- हे नाथ, मुझमें इतना साहस नहीं है कि मैं आपकी आज्ञा के प्रतिकूल चल सकूँ। आपका आदेश शिरोधार्य है, परंतु इस अबला को इतना बतला दीजिये कि इस दासी को आपके दिव्यदर्शन कब प्राप्त होंगे? आपके मिलन की आशा ही व्याकुल चित्त को धैर्य धारण करायेगी। वही मेरे जीवन का एकमात्र आधार होगा।

पत्नी के दीनतापूर्ण वचन सुनकर श्रीपाल ने आश्वासन देते हुये कहा-

हे प्रिये! आज से ठीक बारहवाँ वर्ष पूरा होते ही इसी अष्टमी के दिन आकर मैं तुमसे अवश्य मिलूँगा। इसमें कोई अंतर नहीं आ सकता। यह मेरी प्रतिज्ञा समझो।

मैनासुन्दरी- हे स्वामी! आपका हृदय खिन्न न हो, कोई अपशकुन न हो इस भय से मैं कुछ भी कहने की स्थिति में नहीं हूँ। **पति की इच्छानुसार चलना ही पत्नी का पवित्र धर्म है,** परंतु आप भी जानते हैं कि

मोह कितना प्रबल होता है? इसी मोह के कारण आपके वियोग से उत्पन्न दु:ख को याद करते ही मेरा मन अधीर हो रहा है। वह कभी भी नहीं चाहता कि आपके चरणारविन्द से उसे कुछ क्षण भी दूर रहना पड़े। इस दासी की प्रार्थना है कि इस दासी पर दया कर इसे भी साथ ले चलो। बारह वर्ष का समय तो बहुत है, मैं बारह पल भी आपके वियोग को सहन करने में असमर्थ हूँ। मुझे साथ लेकर जीवनदान देकर आप अक्षय पुण्य के भागी बनेंगे एवं मुझ पर आपका असीम उपकार होगा। नाथ, मुझे भी अपने साथ ले चलिये।

मैनासुंदरी मोह में आतुर होकर श्रीपाल की ओर देखने लगी। श्रीपाल भी चाहते थे कि मैनासुंदरी से एक पल भी अलग नहीं रहूँ, पर उसे साथ तब ले जा सकते थे जब खुद का कोई ठिकाना हो। वे सोच रहे थे–मेरा कोई ठिकाना तय नहीं है। इसे अज्ञात कष्टों में क्यों ले चलूँ? यहाँ यह माँ की सेवा करेगी, महल में सुरक्षित रहेगी, मैं शीघ्र ही लौटकर आऊँगा। उन्होंने मैनासुन्दरी से कहा–

हे प्रिये! अधीर मत होवो। मैं निश्चित समय पर अवश्य आऊँगा, हमारा पुनर्मिलन होगा। मोह में मत पड़ो, क्योंकि **मोह सांसारिक जीवों का घोर शत्रु है।** मेरा अनुरोध मान लो, मुझे सहर्ष अपनी स्वीकृति प्रदान कर उत्साहित करो।

मैनासुन्दरी को जब यह निश्चय हो गया कि स्वामी उसकी प्रार्थना पर अब कोई विचार नहीं करेंगे एवं उनका जाना निश्चित है; तब दीनतापूर्वक उसने कहा–

अच्छा, आपको जब जाना ही है एवं किसी प्रकार मेरी प्रार्थना को स्वीकार नहीं कर सकते हैं तो मैं क्या कर सकती हूँ? अस्तु आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। परंतु मेरी एक छोटी–सी प्रार्थना है कि इस दासी को अपनी सेवा का जो अधिकार आपने प्रदान किया हुआ है, उसका सदैव स्मरण रखियेगा। आशा है, आप इस प्रार्थना को अवश्य स्वीकार कर लेंगे।

अन्त में एक निवेदन और भी है– यदि आप अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार ठीक बारह वर्ष के पूर्ण होने के बाद इसी अष्टमी तक नहीं लौटे एवं मैं आपका दर्शन नहीं कर पाई तो दूसरे दिन यानी नवमी के प्रात:काल मैं निश्चय ही जिनदीक्षा ले लूँगी। संसारजाल से छूटने के लिये इस उचित मार्ग का अनुसरण करूँगी। आपके शुभ आगमन की प्रतीक्षा निश्चित समय के बाद मैं एक दिन भी नहीं करूँगी।

श्रीपाल ने कहा– हे प्रिये! एक ही बात को बार–बार दोहराने से क्या लाभ है? आपसे मिलने के लिये मैं भी उतना ही बेचैन रहूँगा, जितनी आप हैं, अत: मेरा विश्वास करो निश्चित समय से पूर्व हमारा मिलन अवश्य होगा। अब हमें खुशी से विदा दीजिये।

श्रीपाल जब जाने लगे तब मैनासुंदरी ने श्रीपाल के दुपट्टे का छोर पकड़कर रोकने की कोशिश की। उसने कहा– स्वामी आप सचमुच ही जा रहे हो, मैं तो सोच रही थी कि शायद आप मजाक कर रहे हैं? मेरी परीक्षा ले रहे हैं।

श्रीपाल ने सोचा मोह कितना बलवान होता है। उन्होंने मैनासुन्दरी से कहा– देवी, मैं मजाक नहीं कर रहा हूँ, न आपकी परीक्षा ले रहा हूँ। **परीक्षा वहाँ ली जाती है, जहाँ विश्वास न हो।** हमें आप पर पूर्ण विश्वास है।

पति की बातों को सुनकर मैनासुन्दरी ने करबद्ध होकर उन्हें नमस्कार किया एवं उनके चरणों पर अपने मस्तक को झुका दिया।

किसी तरह पत्नी को मनाकर इसी तरह माता को समझाकर माँ का चरण स्पर्श कर श्रीपाल जाने लगे; तब कुन्दप्रभा ने उसे आशीर्वाद देते हुये कहा–

श्री बढ़े अरु अतुल बल, बढ़े धर्म से स्नेह।
चतुरंग दल को संग ले, आवो सुत निज गेह।।

आशीर्वाद देने के बाद कुन्दप्रभा ने मस्तक पर कुमकुम का तिलक लगाया, श्रीफल भेंट किया।

श्रीपाल ने विदा ले, विदेश की राह पकड़ी।

श्रीपाल उज्जैन के उद्यान में बने महल से निकल कर अनेक वन, ग्राम, नगर पार कर पैदल ही **वत्सनगर** पहुँचे। नगर के पास एक मनुष्य मंत्रसाधना कर रहा था। उसे सिद्धि प्राप्त नहीं हो रही थी। उसके निवेदन पर श्रीपाल ने मंत्र साधना कर प्राप्त विद्या उसी मनुष्य को दे दी। उसके बदले में उस विद्याधर ने जलतरंगिनी व शत्रु निवारिणी दो विद्याएँ दीं।

दो विद्याएँ लेकर श्रीपाल आगे बढ़े। कई दिनों की यात्रा के बाद **भृगुकच्छपुर** (भरुच) पहुँच गये। एक दिन वहाँ उन्हें एक धवल नाम का सेठ मिला, वह कौशाम्बी का रहने वाला व्यापारी था, व्यापार के लिये भरुच आया था, उसके जहाज समुद्र में अटक गये थे। उसे किसी मनुष्य की तलाश थी, जिसकी बलि दे सके। धवल सेठ ने मीठी बातों में फँसाकर श्रीपाल की बलि देनी चाही। श्रीपाल ने सेठ से कहा– तुम्हें बलि ही देनी है या जहाज चलाने हैं। सेठ ने कहा– हमें तो जहाजों को चलाने से प्रयोजन है, श्रीपाल के धक्का देने से धवल सेठ के जहाज चल पड़े।

सेठ ने कहा था– आप हमारे साथ चलिये, क्योंकि समुद्र में दस्युओं का डर है। श्रीपाल तैयार हुये, उसके बदले व्यापार के लाभांश का दसवाँ हिस्सा माँगा। सेठ राजी हो गया। श्रीपाल ने समुद्री यात्रा में दस्युओं का पराभव किया। दस्यु श्रीपाल की शरण में आये। श्रीपाल की प्रशंसा कर दस्युओं ने श्रीपाल को बहुत से बहुमूल्य रत्न उपहार के रूप में दिये।

श्रीपाल हंसद्वीप पहुँचे, वहाँ सहस्रकूट चैत्यालय था। उसके वज्रसमान प्रचण्ड द्वार लम्बे समय से बंद थे। दर्शन की इच्छा से गये हुये श्रीपाल के धक्का देने से दरवाजे खुल गये, अवधिज्ञानी मुनि के पूर्व के वचनों के अनुसार वहाँ के राजा कनककेतु ने अपनी पुत्री रयणमंजूषा का विवाह श्रीपाल के साथ किया, वे वहीं रुक गए।

धवल सेठ व्यापार करता हुआ हंसद्वीप पहुँचा ।

धवल सेठ के आग्रह पर श्रीपाल रयणमंजूषा को लेकर समुद्र यात्रा के लिये रवाना हुये। रयणमंजूषा की सुंदरता देखकर धवल सेठ की नीयत बदल गई। योजना बनाकर सेठ ने श्रीपाल को रस्सियों से बाँधकर समुद्र में फेंक दिया। श्रीपाल एक लकड़ी के सहारे समुद्र पार कर किनारे पर पहुँच गये। वे जिस जगह पहुँचे वह कुंकुम द्वीप था। पूर्व में अवधिज्ञानी मुनि के कहे अनुसार वहाँ के राजा सतराज ने अपनी पुत्री गुणमाला का विवाह श्रीपाल के साथ कराया।

रास्ते में रयणमंजूषा के साथ जब धवल सेठ ने जबरदस्ती करने का प्रयास किया तब जलदेवता ने बाँधकर अपनी गदा के प्रहारों से धवल सेठ को पीटा, उसने रयणमंजूषा के चरणों पर गिरकर माफी माँगी।

कुछ दिनों के बाद धवल सेठ भी व्यापार करता हुआ कुंकुमद्वीप पहुँचा था। वहाँ श्रीपाल को देखकर डर गया। श्रीपाल को भांड़ों का सरदार सिद्ध करने की भावना से भांड़ों को धन का लालच देकर राजा की सभा में भिजवाया। वहाँ उन भांड़ों ने ऐसा दृश्य उपस्थित किया कि राजा को लगा कि श्रीपाल भी भांड़ ही है, इसलिये राजा ने उसे फाँसी देने का निर्णय सुनाया। श्रीपाल धवल सेठ की चाल समझ गये। उन्होंने गुणमाला को चोरी छिपे रयणमंजूषा के पास भेजा। रयणमंजूषा ने राजा को सारी हकीकत बतायी, राजा को श्रीपाल की हकीकत पता चली। तब राजा सतराज ने श्रीपाल से क्षमा माँगी, राजा के नौकर धवल सेठ को पीटते हुये लाये। श्रीपाल के चरणों पर गिरकर धवल सेठ ने माफी माँगी, श्रीपाल ने उसे क्षमा कर दिया।

इस तरह पुण्य के कारण श्रीपाल को हर जगह विपत्ति में भी लाभ होता गया। श्रीपाल का अनेक स्त्रियों के साथ विवाह हुआ। उनका समय सुख में बीत रहा था।

श्रीपाल जब एक दिन रात्रि के समय कुंकुमद्वीप में सुख से सो रहे थे, तो सहसा उनकी नींद टूट गई। नींद टूटने के बाद उन्हें मैनासुंदरी की याद आई। उन्हें अपनी प्रतिज्ञा भी याद आई। उनका मन उद्‌विग्न हुआ। बारह वर्ष का समय पूरा होने में कुछ ही दिन बाकी रहे थे। उन्हें यह चिंता और सता रही थी कि सही समय पर नहीं पहुँच पाने पर मैना सुन्दरी दीक्षा लेगी, ऐसा होने पर मैनासुन्दरी से उनका मिलन नहीं हो पायेगा। उसकी अपेक्षा करना उचित नहीं है। उसी पतिव्रता की सेवा के कारण उन्हें कामदेव समान सुन्दर शरीर, विपुल वैभव, ये रानियाँ आदि प्राप्त हुईं हैं। यदि वह मनोयोग से सेवा नहीं करती तो हो सकता है, मैं आज भी कोढ़ की पीड़ा सहता रहता। मुझसे कैसी गलती हो गई? मैं उसे कैसे भूल गया? बारह वर्ष में कुछ ही दिन बाकी है, उनकी नींद उड़ गई, सुबह होने पर वे राजा के पास गये, सारी हकीकत बतायी। राजा से आज्ञा लेकर श्रीपाल वहाँ से चले, उनके पास विशाल सेना थी, हजारों रानियाँ, लाखों दास-दासियाँ थे।

श्रीपाल विशाल सेना व परिकर के साथ उज्जैन पहुँचे, विशाल सेना को देखकर लोग डर कर राजा पहुपाल के पास गये, राजा ने सेनापति को बुलाकर सेना को तैयार करने का आदेश देकर शाम होने से महल में चले गये।

शाम होने से श्रीपाल ने सेना को ठहरने का आदेश दिया। रात्रि होने पर सभी तो सो गये, पर श्रीपाल की आँखों में नींद नहीं थी। हो भी कैसे? क्योंकि आज बारह वर्ष पूरे हुये थे, आज अष्टमी थी, कल नवमी। यदि आज रात को मैनासुंदरी से मिलन नहीं हुआ तो कल प्रात: वह दीक्षा लेगी।

रात इसी तरह के विचारों में जागते-जागते बिताकर रात्रि के अंतिम प्रहर में वे अपने शिविर से निकल कर गुप्त रास्ते से महल में पहुँच गये।

श्रीपाल माँ कुन्दप्रभा के कमरे तक पहुँच गये, उस कमरे से वार्तालाप के शब्द सुनाई दे रहे थे, वे द्वार पर खड़े होकर वार्तालाप सुनने लगे - मैनासुंदरी अपनी सास से कह रही थी-

हे माताजी, बारह वर्ष बीत गये। पर आपके पुत्र नहीं आये। उनसे मैंने कह दिया था कि यदि वे निश्चित समय तक नहीं आये तो मैं जिनदीक्षा लूँगी, उसके अनुसार अब आज बारह वर्ष पूरे हुये हैं। प्रात:काल होते ही मैं दीक्षा लूँगी क्योंकि पति प्रेम भी प्राप्त न हो और संयम भी धारण न कर सकूँ तो इस जीवन का क्या लाभ है?

हे माता! जहाँ तक मुझसे बना, मैंने आज तक आपकी सेवा की है। उसमें किसी प्रकार की त्रुटि रह गई हो कृपया क्षमा कर दें और मुझे जिनदीक्षा की अनुमति दीजिये।

कुन्दप्रभा- बेटी, आपकी सेवा में कोई कमी नहीं थी। तुम्हारी जैसी बहू पाकर मैं धन्य हो गई और दो चार दिन धैर्य धारण करो। यदि दो-चार दिन के बाद भी मेरा पुत्र नहीं आता है तो मैं भी तुम्हारा साथ दूँगी, मैं और तुम साथ ही दीक्षा लेंगे। मुझे पूर्ण विश्वास है कि एक-दो दिन में मेरा पुत्र अवश्य आयेगा।

मैनासुन्दरी- माँजी, मुझे भी उनके वचनों पर विश्वास है, परंतु न जाने कौन सी बाधा आ पड़ी कि वे निश्चित समय पर आने में असमर्थ हो गये, परंतु बिना संदेश के मैं यह कैसे मानूँ कि वे एक-दो दिन में आयेंगे।

कुन्दप्रभा- बेटी, जहाँ बारह बरस काटे उसकी प्रतीक्षा में, वहाँ दो-चार दिन और धैर्य धारण करो। लम्बे अंतराल के बाद घर आकर तुम्हें नहीं देखने से बेचैन हो जायेगा। पश्चाताप के अलावा उसके पास कुछ नहीं रहेगा, इसलिये दो-चार दिन और रुको, वह नहीं आया तो मैं भी दीक्षा लूँगी।

मैनासुन्दरी- माताजी, मोह में पड़कर और अधिक समय को अब यों ही व्यर्थ बिताना ठीक नहीं है। आप भी अब मोह को छोड़ दें एवं मेरे साथ चलें, हम दोनों मिलकर धर्म के रास्ते की यात्रा पूरी करेंगे। मेरी जैसी पत्नियाँ तो उन्हें अनायास ही प्राप्त हो जायेंगी, अब अधिक अपमान सहने के लिये निचेष्ट बैठे रहना उचित नहीं है।

इस प्रकार सास-बहू परस्पर वार्तालाप कर रही थीं कि श्रीपाल ने धीरे से दरवाजा खटखटाया और कहा- माँ दरवाजा खोलो, आपका पुत्र दरवाजे पर खड़ा है।

श्रीपाल के अमृत तुल्य मधुर सुनकर दोनों ही आनंदविभोर हो गईं, दोनों के हृदय के भाव तत्काल

बदल गये, शोक के स्थान पर आनंद लहराने लगा। उनके हर्ष की कोई सीमा न थी। शीघ्र ही द्वार खोल दिये। श्रीपाल मिलन की अधीरता के साथ भीतर जा पहुँचे। उन्होंने आदरपूर्वक नतमस्तक होकर प्रणाम किया। माता ने प्रसन्न हृदय से आशीर्वाद दिया। मैनासुन्दरी पति के चरणों से लिपट गई। उसने कहा– हे स्वामी, मैं महाभाग्यशाली हूँ।

उसके बाद श्रीपाल माँ एवं मैनासुन्दरी को उसी गुप्त द्वार से लेकर शिविर में गये। माँ को उच्चासन पर बिठाकर सभी रानियों से परिचय कराया कि ये आपकी आदरणीय सास है।

तथा मैनासुन्दरी की ओर इशारा कर कहा– कि ये हमारी पटरानी है। यह सब जो कुछ भी वैभव आप देख रही हो, यह जो कामदेव समान सुन्दर शरीर देख रही हों, वह सब कुछ इनकी सेवा का परिणाम है। मैं उस समय की दु:खावस्था को कभी नहीं भूल सकता हूँ, जब मैं विपत्ति का मारा, कोढ़ी का शरीर लिये दीनहीन होकर मारा–मारा फिर रहा था, परदेशी था, इन्होंने मुझे पति के रूप में स्वीकार कर पहला उपकार किया, रात–दिन सेवा कर दूसरा उपकार किया। समय–समय सम्भाल करके इन्होंने असंख्य उपकार किये हैं, इनके उपकार का बदला हम कभी नहीं चुका पायेंगे, यह हमारी प्रथम पत्नी पटरानी मैनासुन्दरी हैं।

इन दोनों के पुण्यप्रताप से आप जैसी आठ हजार पत्नियाँ और अतुल्य वैभव प्राप्त कर सका हूँ।

मैनासुन्दरी ने श्रीपाल के मुँह से प्रशंसा सुनकर मुँह नीचे कर कहा– हे नाथ, मैं तो सामान्य नारी हूँ, मैं आपके चरणों की धूलि हूँ। यह तो मेरा ही सौभाग्य है कि मैंने अपने पूर्वपुण्य के प्रताप से आप जैसे उत्तम पति को प्राप्त किया है। आपके सम्पर्क से महत्ता पाई है। आप कोटिभट हैं, पराक्रमी हैं, धीर–वीर हैं। यह दासी आपके सेवा में ही अपना सौभाग्य समझती है।

इस तरह श्रीपाल के साथ मैनासुन्दरी का पुनर्मिलन हो गया। फिर सुख से, सुख के दिन बीतने लगे।

एक दिन मैनासुन्दरी को पिता की याद आयी और उसे लगा कि पिताजी धर्म के दृढ़श्रद्धानी नहीं हैं। उन्हें धर्म का दृढ़ श्रद्धान कराना चाहिये। यह अभिप्राय उसने श्रीपाल को बताया। श्रीपाल ने योजना समझाकर एक दूत से कहलवाया कि राजा पहुपाल कम्बल ओढ, कुल्हाड़ी कन्धे पर रख, लंगोट पहनकर हमारे सामने आये, तो ही उनका राज्य सुरक्षित है, नहीं तो युद्ध के लिये तैयार रहें।

मंत्रियों के समझाने पर सामने वाले राजा को बलशाली जानकर राजा पहुपाल इसके लिये तैयार हुये। दरअसल श्रीपाल उनका घमंड दूर करना चाहते थे। पहुपाल को दूसरे दूत से कहलवाया कि हम न आपको दास बनाना चाहते हैं, न कहे अनुसार कम्बल आदि ओढ़कर आना है, आप तो हमारे पूजनीय हैं।

जब श्रीपाल और पहुपाल का मिलन हुआ तब पहुपाल श्रीपाल को पहिचान नहीं पाये और कहने लगे– हे नरशिरोमणि! आप कौन हैं?

तब श्रीपाल ने कहा– मैं आपका छोटा दामाद श्रीपाल हूँ। बारह वर्ष के लिये परदेश भ्रमण के लिये गया था। आपके आशीर्वाद से सकुशल लौटा हूँ। परिचय के बाद दोनों गले मिले। प्रसन्न हुये। उसके बाद पहुपाल मैनासुन्दरी से कहने लगे–

हे बेटी! मैं बहुत लज्जित हूँ। मैंने आपके प्रति बहुत बड़ा अपराध किया है, तू मुझे क्षमा कर दे। तू धर्म के रहस्य को, धर्म के मर्म को जानने वाली है, शील का पालन करने वाली सती है। मैं धर्म के रहस्य से अनभिज्ञ था, इसलिये मुझसे अपराध हुआ है। परंतु तुम्हारे कारण मुझे धर्म का श्रद्धान हुआ है। धर्म का मर्म पता चला है। आज मुझे तुम पर गर्व है और गर्व के साथ कहना चाहता हूँ कि **बेटी हो तो मैनासुन्दरी जैसी।**

मैनासुन्दरी ने पिताजी से कहा– पिताजी, आप बड़े उपकारी हैं, आपने मेरी परीक्षा नहीं ली होती तो शायद यह सुअवसर देखने को नहीं मिलता।

पहुपाल ने श्रीपाल का अभिषेक कराया, उन्होंने उत्सव मनाया। आनंद से रहने लगे।

कुछ दिन रहकर वे अपने मूल राजधानी को प्राप्त करने के लिए चम्पापुरी की ओर चल पड़े। चाचा वीरदमन के पास दूत भेजकर संदेश दिया कि राज्य लौटा दीजिये। वीरदमन नहीं माना तब श्रीपाल युद्ध कर वीरदमन को पराजित कर अपनी मूल राजधानी चम्पापुर में आनन्दपूर्वक रहने लगे।

वीरदमन ने दीक्षा लेकर मोक्ष पद प्राप्त किया।

श्रीपाल पूर्व की तरह प्रजा का पालन करने लगे। श्रीपाल, मैनासुन्दरी प्रतिदिन चार प्रकार के संघों को भक्तिपूर्वक दानादि करते थे। सम्पूर्ण दिन धर्मध्यानपूर्वक बिताते थे, उनका समय सुखपूर्वक व्यतीत हो रहा था।

कुछ समय बीतने के बाद पटरानी मैनासुन्दरी के गर्भाधान हुआ, गर्भ के दौरान गर्भकाल पूरा होने तक प्रतिदिन दान दिया गया। शुभ समय पर मैनासुन्दरी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया। शुभलक्षणों वाले बालक का नाम धनपाल रखा। उसका जन्मोत्सव बड़े समारोह पूर्वक मनायागया।

कुछ समय बाद मैनासुन्दरी ने क्रमश: महापाल, देवरथ एवं महारथ नाम के तीन और पुत्ररत्नों को जन्म दिया। समय आनंद से बीतने लगा।

एक दिन श्रीपाल मैनासुन्दरी के साथ बैठे हुये थे, तभी माली ने चम्पापुर में केवली भगवान के पधारने का शुभ समाचार दिया। श्रीपाल मैनासुन्दरी आदि केवली भगवान के दर्शन के लिये गये, दर्शन कर एक ओर बैठ गये, उपदेश सुना। उपदेश सुनने के बाद अपने पूर्वभव जानने की जिज्ञासा प्रकट की। केवली भगवान ने बताया–

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में रत्नसंयमपुर नाम का नगर था। तुम वहाँ श्रीकण्ठ नाम के विद्याधरों के राजा थे। एक दिन मंदिर से लौटते समय मुनिराज के दर्शन हुये थे। तुमने भक्तिपूर्वक मुनिराज के दर्शन किये। उपदेश सुना। व्रत लिये परंतु कुसंगति में रहकर आपने व्रतों का पालन नहीं किया। व्रत त्याग दिये। इतना ही नहीं तीव्र मोह के कारण तुमने मिथ्यात्व का सेवन किया। जैनधर्म की निंदा करने लगे।

एक दिन सात सौ वीरों के साथ जंगल में क्रीड़ा करने के लिये जा रहे थे। रास्ते में मुनिराज के दर्शन हुये थे, परन्तु ''यह कोढ़ी है, यह कोढ़ी है'' ऐसा कहकर उनकी निंदा की थी। आज्ञा देकर उन मुनिराज को समुद्र में फिंकवा दिया। करुणा उत्पन्न होने पर उन्हें समुद्र से बाहर निकलवाया।

कुछ दिनों बाद पुन: मुनि के दर्शन हुये। तुमने 'यह भ्रष्ट है, भ्रष्ट है', कहकर उनकी निंदा की थी और कहा था– इसका मस्तक काट देना चाहिये। यह कहकर उनका सिर काटने के लिये तलवार निकाली थी। पुन: दयावश तलवार वापिस रख दी।

एक दिन आपने ये सारी घटनाएँ अपनी श्रीमती नाम की रानी को सुनाई। तब रानी ने आपको धर्म की, व्रतों की, मुनिराजों की महिमा बतायी। उसने बताया– थोड़ी भी धर्म निंदा, मुनि निंदा से नरक की घोर वेदनाएँ भोगनी पड़ती हैं, आपने तो घोर अनर्थ किये हैं, उनके फल सोचकर मैं सिहर जाती हूँ।

उस दिन से आपने धर्म में मन लगाया। व्रत धारण कर निरतिचार पालन करने लगे। जीवन भर धर्म और व्रतों का पालन कर अंत में संन्यास पूर्वक देह छोड़ी। परिणाम स्वरूप स्वर्ग में देव बने। आपकी श्रीमती नाम की रानी आपकी देवी बनी। स्वर्ग से आकर तुम श्रीपाल बने हो और श्रीमती का जीव मैनासुन्दरी बना है।

पूर्व में मुनि को ''कोढ़ी'' कहकर निंदा की थी, इसलिये इस भव में तुम्हें कोढ़ हुआ था। मुनि को समुद्र में फिंकवाया था, इसलिये तुम्हें भी समुद्र में फिंकवा दिया गया। मुनि को समुद्र से निकलवाने के पुण्य से समुद्र को तैरकर पार कर किनारे तक पहुँच गये हो। मुनि 'भ्रष्ट है, भ्रष्ट है'– कहकर निंदा की थी, इसलिये भाड़ों ने तुम्हें 'यह हमारा पुत्र है, पुत्र है'– ऐसा कहा था। मुनि को मारने के लिये तलवार निकाली थी, इसलिये राजा सतराज ने तुम्हें फाँसी की सजा सुनाई थी। दयावश तुमने तलवार वापिस रख ली थी, इसलिये राजा ने तुम्हारी हकीकत जानकर फाँसी की सजा वापिस ले ली थी।

तुमने पूर्व में सिद्धचक्रविधानव्रत कर उद्यापन किया था, जिसके परिणाम स्वरूप तुम्हें अपार वैभव की प्राप्ति हुई है। श्रीमती के भव में श्रीमती के जीव ने तुम्हारा उपकार किया था, उसी श्रीमती के जीव ने इस भव की मैनासुन्दरी ने तुम्हारे ऊपर उपकार किया है। अपने पूर्वभव सुनकर श्रीपाल को संसार से वैराग्य हुआ। उस दिन से वे उदास रहने लगे।

एक दिन उन्होंने बिजली की चमक देखी। उन्होंने चिंतन किया– यह संसार, शरीर का संयोग, विषयभोग सभी बिजली की तरह हैं, इनमें स्थायित्व या सार नहीं है। उनका वैराग्य बढ़ गया। उन्होंने दीक्षा ली। तप करके केवल ज्ञान और मोक्ष प्राप्त किये।

मैनासुन्दरी ने भी आर्यिका व्रत ग्रहण कर घोर तपश्चरण किया। तप के प्रभाव से स्त्रीलिंग का नाश कर सोलहवें अच्युत स्वर्ग में बाईस सागर की आयु वाला देव पद प्राप्त किया। यह देव यहाँ से निकलकर मोक्ष जायेगा।

*****

सती अनन्तमति

8

सती अनन्तमती

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में सुप्रसिद्ध अंग देश था। चम्पापुर इस देश की राजधानी थी। वहाँ वसुवर्धन नाम का राजा राज्य करता था, उसकी रानी का नाम लक्ष्मीमति था। उनका एक प्रियदत्त नाम का पुत्र था। प्रियदत्त की पत्नी का नाम अंगमति था।

प्रियदत्त की अनन्तमति नाम की एक पुत्री थी। यह पुत्री बचपन से ही धार्मिक संस्कारों वाली, नम्र और सुंदर थी। प्रतिदिन मंदिर जाना, दर्शन, पूजन, भक्ति करना उसकी दिनचर्या के अंग थे। वह मुनिदर्शन से प्रसन्न होती थी, माता-पिता की आज्ञा में रहना उसे अच्छा लगता था। प्रियदत्त और अंगमति आदि पूर्ण परिवार धार्मिक था। धर्म के संस्कारों से पूरा परिवार संस्कारित था।

अनन्तमति पर परिवार के संस्कार थे, उसकी स्वयं की भी धर्म में रुचि थी। अनन्तमति इन्हीं संस्कारों में पली बढ़ी थी।

एक बार अष्टाह्निका महापर्व के शुभ अवसर पर **धर्मकीर्ति मुनिराज** का संयोग हुआ था, सभी चम्पापुर वासी दर्शन के लिये जाते थे, उपदेश सुनकर शक्ति के अनुसार व्रत नियम लेते थे।

प्रियदत्त, अंगमति अपने परिवार के साथ मुनिराज के दर्शन के लिये गये थे। उन दोनों पति-पत्नी ने आठ दिन के ब्रह्मचर्य का नियम लिया और अपनी पुत्री अनंतमति को भी ब्रह्मचर्य का नियम दिलाया। मुनिराज धर्मकीर्ति विहार कर वहाँ से चले गये समय बीतते देर नहीं लगती। कुछ महीने, वर्ष यों ही बीत गये।

अनन्तमति पूर्ण युवती हो गई। उसकी पूर्ण युवावस्था देखकर प्रियदत्त ने उसके लिये वर खोजना प्रारंभ कर दिया। घर में विवाह की चर्चा, विवाह की धूमधाम देखकर अनन्तमति ने पिताजी से कहा-पिताजी, आपने मुझे ब्रह्मचर्य व्रत दिलाया था। ये विवाह की तैयारियाँ किसलिये कर रहे हो?

अनन्तमति की बात सुनकर प्रियदत्त चौंक पड़ा, उसे विस्मय हुआ। उसने अनन्तमति से कहा-

बेटी, मैंने जो ब्रह्मचर्य व्रत दिलाया था, वह तो आपको बालिका देखकर मजाक में दिलाया था। मैंने सोचा बालिका ही तो है और जैसे हमने आठ दिन के लिये ब्रह्मचर्य व्रत लिया है इसे भी दिला देते हैं, आठ दिन की ही तो बात है। वह तो एक तरह से मजाक था, क्योंकि जिस स्वयं की, व्रत की समझ न हो, उसे व्रत दिलाने से कोई लाभ नहीं होता है, उस परिहास का क्या तुम यथार्थ समझ गई हो?

इस पर गंभीर होकर अनन्तमति बोली–

पिताजी! **धर्म, व्रत, नियम, न्याय के विषय में कभी भी हँसी–मजाक नहीं करना चाहिये, न इन्हें कभी मजाक समझना चाहिये। नियम छोटा हो या बड़ा– अपनी शक्ति के अनुसार लेकर गंभीरतापूर्वक उसका पालन करना चाहिये। व्रत नहीं लेने का कोई विशेष दंड नहीं है परंतु नियम लेकर उसे तोड़ने का फल नरक–निगोद ही है।** मैं व्रत–नियम के प्रति गंभीर हूँ, मैंने उसे मजाक नहीं समझा था, न कभी समझूँगी मैं उसे प्राण देकर भी आजीवन निभाऊँगी।

अनन्तमति की इन बातों को सुनकर हताश, दु:खी हुये प्रियदत्त ने बेटी से कहा–

बेटी! वह नियम तो मात्र आठ दिन के लिये था। हमने भी मात्र आठ दिन के लिये ही लिया था। आपको भी आठ दिन के लिये ही दिया था।

पुन: और भी गंभीर होकर अनन्तमति ने कहा–

पिताजी, न तो आपने, न ही मुनिराज ने मुझे यह बताया कि यह नियम आठ दिन के लिये है। पिताजी मेरे हितैषी हैं, मुनिराज तो सभी का सदा भला ही चाहते हैं, इसलिये मेरा भला जानकर ही वह नियम मुझे दिलाया होगा– यह सोचकर मैंने भी मन से उसे स्वीकार किया। समय की सीमा न तो आपने बतायी, न किसी और ने, इसलिये मैंने उसे आजीवन ग्रहण किया है।

इसमें न तो आपकी गलती है, न मेरी, होनी अटल होती है, जो होनी थी, वह हो गई, जो हुआ वह अच्छे के लिये ही हुआ, क्योंकि व्रत, नियमों से सभी का उद्घार ही होता है, नियम लेने में, उसे आजीवन पालने में मेरा भला ही है। भला, नियमों से, व्रतों से कभी किसी का बुरा हुआ है? देवता आदि भी व्रती को ही नमस्कार करते हैं, उनकी सहायता करते हैं। अव्रती को न कोई नमस्कार करता है, न ही सहायता।

पिताजी, आप स्वयं ज्ञानी हैं, आपको क्या बताऊँ? धर्म की बातें, धर्म के संस्कार आप से ही पाये हैं। आपको दु:खी देखकर कहने का मन हुआ है। वैसे भी पिताजी, **''अनादिकाल से इस जीव ने नाना योनियों में भटकते–भटकते भोगते–भोगते दु:ख ही तो पाये हैं। विवाह आदि भोग–साधनों से पापबंध ही होता है। महापुरुषों ने इन्हें पाप का साधन जानकर दूर से ही छोड़ा है।''** तीर्थंकर जैसे पुण्यशालियों में पाँच तीर्थंकर तो आजीवन ब्रह्मचारी रहे हैं। वे पाँच बालयति अर्थात् बचपन से ही नियमधारी थे।

पिताजी, **व्रत तो पुण्यशालियों के भाग्य में ही होते हैं, पापियों को तो व्रतों को धारण करने की भावना भी नहीं होती है। यमपाल चाण्डाल, अंजन चोर जैसे पापी भी व्रतों के कारण तर गये हैं।**

इसलिये पिताजी, मेरा ब्रह्मचर्य व्रत आजीवन समझिये, मैं उसमें सुखी, प्रसन्न, सुरक्षित हूँ। व्रत दु:ख की नहीं, खुशी और पुण्य की बात है।

आप इसकी अनुमोदना करके पुण्य के भागी बन जाइये। मेरे विवाह का विचार छोड़ दीजिये। इस जन्म में मेरा विवाह असंभव है।

अनन्तमति की दृढ़ता, गंभीरता और ज्ञान की बातें सुनकर प्रियदत्त अचंभित थे। उन्होंने कभी सोचा भी नहीं था कि अनन्तमति धर्म व व्रतों के प्रति इतनी दृढ़, गंभीर और जानकारी वाली होगी। उसके उत्तर से हतप्रभ प्रियदत्त ने सिर्फ इतना ही कहा–

बेटी, धन्य हो, धन्य है तुम्हारी व्रतों की आस्था। तुम्हारे जैसी बेटी पाकर हमारा कुल धन्य हो गया है हम माँ–बाप भी धन्य हो गये। उन्होंने उसकी ब्रह्मचर्य की दृढ़ता देखकर उसके विवाह का विचार छोड़ दिया।

अनंतमति भी धर्मध्यान व स्वाध्यायादि शुभ कार्यों में व्यस्त रहने लगी।

एक दिन चैत्र महीने में अनन्तमति महल के बाहर के उद्यान में अकेली झूला झूल रही थी।

उसी समय कुण्डलमण्डित नाम का विद्याधर अपनी पत्नी के साथ ऊपर विमान से जा रहा था। यह विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी के विद्याधरों का राजा था किन्नरपुर उसकी राजधानी थी।

कुण्डलमण्डित उसे देखकर ठगा–सा रह गया, वह कामबाणों से घायल हो गया। उसने सोचा कि यह देवकन्याओं से भी अधिक सुन्दर कन्या कौन है? उसने अपनी अवलोकिनी विद्या से पता लगा लिया कि वह कन्या कौन है?

उसकी सुन्दरता से घायल हुआ कुण्डलमण्डित विद्याधर बेचैन हो गया। अनन्तमति की एक झलक उसे दु:खी कर गई। उसने सोचा कि यह कन्यारत्न उसे नहीं मिला तो उसका जीवन बेकार है। इसे जैसे भी बने पाना ही चाहिये।

यह सोचते–सोचते कुण्डलमण्डित पत्नी को लेकर किन्नरपुर गया, वहाँ पत्नी को महल में छोड़कर पत्नी से बिना कुछ कहे वहाँ से अनन्तमति को पाने के लिये चल दिया।

पति के बिना कुछ कहे, शीघ्रतापूर्वक जाने से कुण्डलमण्डित की पत्नी को शक हो गया, वह भी चोरी छिपे उसके पीछे चली गई।

कुण्डलमण्डित जबरदस्ती करके अनन्तमति को लेकर विमान में बिठाकर चला। अनन्तमति इस अकस्मात घटना से बेचैन, व्याकुल होकर विलाप करने लगी। उसकी करुण चीत्कारें सुनकर कुण्डलमण्डित की पत्नी को बहुत गुस्सा आया। उसकी आँखें लाल हो गईं। मुँह तमतमाने लगा। गुस्से से उसका शरीर काँपने लगा। उसे समझते देर नहीं लगी कि कुण्डलमण्डित ने उसके साथ धोखा किया है। वह इस कन्या को भी धोखे से जबरदस्ती ले जाना चाह रहा है। उसका पति जबरदस्ती करके वह उस शीलवती का शील भंग करना चाहता है। वह जोर से चिल्लाकर कहने लगी–

अरे दुष्ट, रुक, अधर्म का कार्य करके अपने को नरक में ले जा रहा है। तेरा मन पापी है, तुझे मैं ऐसा अधर्म पाप करने नहीं दूँगी। शीलवती के शील से खिलवाड़ नहीं करने दूंगी। रुक, कहाँ जाता है? मैं तुझे नहीं छोडूँगी।

पत्नी की आवाज सुनकर उसकी क्रोधित आकृति देखकर कुण्डलमण्डित डर गया, डर के मारे अनन्तमति को छोड़ने में ही अपनी भलाई समझी। पर्णलब्धी विद्या के सहारे उसे घने जंगल में छोड़ा। उसने सोचा पत्नी को शांत कर पुन: यहाँ आकर उसे ले जाऊँगा।

उस दिन उस समय शाम हो गई थी, जंगल घना था, रास्ते का पता नहीं था, इसलिये उस समय अनन्तमति ने एक सुरक्षित स्थान देखकर, इस समय अपने पाप का उदय जानकर पंचपरमेष्ठी के स्मरण में रात जैसे-तैसे हिंसक जानवरों के भय से जागते-जागते बितायी।

सुबह होने पर भीलों का राजा शिकार के लिये निकला। उसने रोती हुई एक सुन्दर कन्या को देखा। वह भी उसकी सुन्दरता से घायल हो गया था। परन्तु वासना को मन में दबाकर उसके पास गया। यहाँ कैसे आयी? पूछने पर उसने भोले मन से सारी हकीकत बता दी।

उसे उसके घर पहुँचाने की कहकर अपने घर ले गया। वहाँ उसने पहले मीठी-मीठी बातों से उसे मनाने की कोशिश की। उससे कहा- मैं तुझे अपनी पटरानी बनाऊँगा, मुझे पति के रूप में स्वीकार करो।

उसकी बातों से तिलमिलाई अनन्तमति ने कहा-

अरे धोखेबाज, तुमने मुझे मेरे घर पहुँचाने का वादा किया था। घर पहुँचाने के बदले वासना का गंदा खेल दिखा रहा है। तुम जैसे माँसाहारी पापी की परछाई को भी अशुभ मानती हूँ, तुम्हारे साथ रहना, विवाह करना तो स्वप्न में भी नहीं सोच सकती। मैं आजीवन ब्रह्मचर्य को धारण करने वाली कन्या हूँ। मुझे मरना पसंद है पर व्रत को तोड़ना पसंद नहीं है। यह कहकर वह फूट-फूट कर रोने लगी।

अनन्तमति की अटल दृढ़ता देखकर भी भीलराजा ने उसके साथ जबरदस्ती करनी चाही। सच है- ''**पापियों के मन पर परिस्थितियों का असर नहीं होता।**'' पापी तो हर हाल में अपने पाप की सिद्धि चाहता है। उसने साम, दाम, दण्ड सभी उपाय अपनाये, उसने उसके चरणों पर गिरकर वासना की पूर्ति चाही परंतु सती शीलवती अनन्तमति पर उसकी किसी भी बात का असर नहीं हुआ। **शील, सतीत्व ही जिसका सर्वस्व होता है उस पर बाहर के प्रलोभनों या भय की बातों का प्रभाव नहीं पड़ता।**

अंत में थक हारकर उसे पाने का अंतिम उपाय समझकर उसके साथ जोर जबरदस्ती करना शुरू की, उसी समय वनदेवी ने आकर भीलराज को डराया, धमकाया। कहा-

यह देवी है इसे छूना भी मत। नहीं तो जलकर राख हो जाओगे। उसकी पिटाई की और कहा कि इसे इसके सुरक्षित स्थान पर छोड़कर आओ।

वनदेवी के डर, मारे एवं धमकाने से डरा हुआ भीलराजा उसी समय उसे लेकर गया।

जंगल से थोड़ी दूरी पर एक बस्ती थी। वहाँ एक पुष्पक नाम का सेठ था। भीलराजा अनन्तमति को लेकर जा रहा था तब उसे रास्ते पर पुष्पक सेठ मिला। सेठ ने पूछा- कहाँ जा रहे हो?

भीलराजा ने सारी वास्तविकता बताकर कहा– इस शीलवती को उसके घर पहुँचाने जा रहा हूँ।

सेठ– जंगल में रहने वाले तुम्हें रास्तों का पता नहीं है। तुम्हें इसे पहुँचाने में बहुत देर लगेगी, मैं इसे उसके घर पहुँचा दूँगा।

भीलराजा– जरूर पहुँचा देना। इस काम में देरी मत करना।

सेठ अनन्तमति के सौंदर्य जाल में उलझ गया था, वह उसे अपने घर ले गया। एकान्त देखकर उससे कहने लगा–

मैं यहाँ का सबसे अमीर व्यक्ति हूँ। मेरे पास धन की कोई कमी नहीं है। अभी जवान हूँ। वैसे भी अमीर कभी बूढ़े नहीं होते। तुम इस धरती की सबसे सुंदर कन्या हो। मैं इस बस्ती का सबसे अमीर व्यक्ति हूँ। मुझे पति के रूप में स्वीकार कर कृतार्थ करो।

कहाँ वह काला कलूटा भील और कहाँ तुम जैसी अनुपम सुंदरी। अच्छा हुआ उसके चंगुल से छूटकर मुझ जैसे गुणों की कद्र करने वाले के पास आई, यहाँ तुम सुरक्षित समझो, मैं तुम्हारे चरणों का दास बनकर रहूँगा, तुम्हें सेठानी बनाकर रखूँगा, यह कहकर वह उसके उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा।

अनन्तमति मन में विचार करने लगी। **यह संसार कितना विचित्र है। यहाँ हर किसी को अपने पाप की पूर्ति की पड़ी है। स्वार्थ पूरा करने के लिये छल, कपट हर साधन अपनाते हैं। किसी के दुःख दर्द से किसी को कोई वास्ता नहीं। सबको बस अपने स्वार्थ सिद्ध करने हैं।**

वह सोच रही थी यह सेठ थोड़ी देर पहले कितना भोला बना था, अब कैसे राक्षस बन गया। सच है– **वासना में मनुष्य राक्षस बनता है।** मेरे पाप का उदय अभी भी चल ही रहा है। क्या करूँ? इन पापियों को कैसे समझाऊँ?

अनन्तमति को इन विषय लम्पटियों की बातें काँटे की तरह चुभ रही थी। परंतु वह लाचार, बेबस थी। उसने सोचा मुझे डरना नहीं चाहिये, डटकर मुकाबला करना चाहिये। डरे तो वे जो पाप करते हैं।

उसने सेठ से निडर होकर कहा–

अहो, सेठ आश्चर्य है, अपनी बेटी समान कन्या से वासना की इच्छा रखते हो, शर्म करो। आपकी बातें यदि आपकी पत्नी और समाज को बताऊँ तो आपकी क्या इज्जत रहेगी? समाज में किसी को मुँह दिखाने लायक नहीं रहोगे। आपकी वासना अपनी धर्मपत्नी से शांत नहीं हुई तो मुझ जैसी कन्याओं से कैसे होगी? वासना बड़ी शत्रु है। स्वर्ग में देवांगनाओं से जीव की भूख नहीं मिटी तो मुझ जैसी अबला मनुष्यिनी से कैसे मिटेगी?

वासना की पूर्ति के लिये कैसे मायाचारी कर रहे हो? आपने भील से मुझे घर पहुँचाने की बात कही थी। अब ये कपट-छल किसलिये? क्या तुम्हें पाप से डर नहीं लगता है?

पाप का फल कितना भयंकर होता है? इसके कारण यह जीव धर्म से बहुत दूर हो जाता है और कष्टों का बोझ लिये जीता है। इससे डरो। **उत्तम दुर्लभ मनुष्य भव मिला है, उसका पापों का रास्ता छोड़कर धर्म के रास्ते पर चलकर सदुपयोग करो।**

मैं आजीवन ब्रह्मचारिणी व्रतधारिणी कन्या हूँ। यह शरीर भोगों के लिये नहीं, तप के लिये है। **यह तप नरक, तिर्यंच, देव गति में नहीं है। सिर्फ मनुष्य गति में ही है। तप करो, दूसरों का ताप हरो।** आपको ऐसी बातें करते समय विवेक रखना चाहिये था। विवेक नहीं रहा तो मनुष्य और तिर्यंच में भेद ही क्या है?

मैं किस पर विश्वास करूँ? मैं तुम्हें अपना रक्षक समझती थी, तुम तो भक्षक निकले। मैंने तुम में पिता देख रही थी, तुम तो पतित निकले। मुझे दुःख हो रहा है तुम्हारे जैसी उमर वाले का चरित्र देखकर। तुम्हारे धन, वैभव, जीवन को धिक्कार हो, लाखों बार धिक्कार हो। तुम्हारे वासनामय चरित्र से तुम्हारा वंश कलंकित हो रहा है। तुम मनुष्य नहीं मनुष्य के रूप में राक्षस दिख रहे हो।

इस प्रकार निडरता के साथ की गई अपनी भर्त्सना से सेठ घबरा गया। अपने पाप का घड़ा फूट न जाय। इस डर से उसने बाहरी मन से अनन्तमति से क्षमायाचना की, परंतु उसके मन में अपमान के कारण प्रतिशोध की आग जल रही थी, इसलिये उसने मन में कुटिल विचार करके कहा- मुझे क्षमा करो। चलो, मैं तुम्हें तुम्हारे घर पहुँचाता हूँ।

पुष्पक सेठ अनन्तमति को लेकर घर से निकला। रास्ते में उससे कामसेना नाम की कुट्टिनी वेश्या के घर ले गया। वहाँ उसे देकर उसने अपनी प्रतिशोध की भावना पूरी की।

कामसेना ने अनन्तमति को अनेक प्रलोभन दिये। अनेक प्रकार से डर दिखाया। लेकिन उसका मन तो सुमेरु की तरह अटल था। उसने सोचा- देखो, पाप अभी शांत नहीं हुआ है। न जाने क्या-क्या दिन देखने पड़ेंगे? पाप का उदय तो ऐसे ही दुर्दिन दिखायेगा और ऐसे ही कुसंगों में, संकटों में फँसायेगा। जो भी हो मुझे तो मरण के बल पर भी धर्म की, नियम की, व्रत की रक्षा करनी है।

वहाँ अनन्तमति ने अन्न-जल का त्याग किया था। उससे वह कामसेना समझ गई कि वह हवा में तीर चला रही है। उसे महिलाओं की पहिचान थी। वह यह भी समझ गई कि अनंतमति ऐसी वैसी महिला नहीं है, धर्मात्मा है। न केवल धर्मात्मा बल्कि दृढ़ श्रद्धानी महिला है। उसने उसे दुःखी करने में कोई कसर बाकी नहीं रखी थी। वह तो चाहती थी, यह एक बार भ्रष्ट हो जाये तो इसके द्वारा बहुत धन कमायेगी। वह अपूर्व सुंदरी थी, परंतु कर्मगति विचित्र होती है। उसमें चाहा हुआ कभी नहीं होता।

यह कर्म की ही लीला है कि राजपरिवार में जन्मी अनन्तमति आज वेश्या के घर कष्ट भोग रही थी। भला हो धर्म का और उसकी दृढ़ता का उसने अपनी दृढ़ता नहीं छोड़ी थी, न ही धर्म छोड़ा था। न ही परिणामों में विचलितपना आने दिया, न परिणाम मलिन किये। आये हुये पाप के उदय को शांत भाव से सहती रही। उसने उस कामसेना वेश्या से भी कहा-

हे माताजी, आप इस पाप के काम को छोड़ दीजिये। धर्म की शरण लेकर पाप को धो दीजिये। पूर्व पापकर्म के कारण आज हम स्त्री पर्याय में है। स्त्री पर्याय के नाश के लिये धर्म ही एकमात्र शरणभूत, उपाय है। आप अपना उद्धार कीजिये। मुझसे तो ऐसे काम के बारे में तो सपने में भी मत सोचिये। आपकी सोच मेरे द्वारा कभी पूरी नहीं होगी। मुझे तो पिता के घर या किसी आर्यिका के पास छोड़ दीजिये।

कामसेना ने सोचा यह बिना खाये-पिये है, मर जायेगी तो पाप लगेगा। बदनामी होगी। राजा को पता चलेगा तो न जाने क्या सजा मिलेगी। डर कर उसे उसके घर छोड़ने के लिये कह कर ले गई।

कामसेना घर से तो यह सोचकर निकली कि उसे उसके घर पहुँचा दूँगी। जिसके बदले उसे इनाम मिलेगा। परंतु उसे डर लगा कि कहीं अनन्तमति ने सच बता दिया तो इनाम के बदले मौत मिलेगी। उसने रास्ते में विचार बदला। वह उसे दूसरे राज्य में ले गई। जहाँ का राजा सिंहराज था।

सिंहराज राजा भोगी, लम्पटी था, उसका सारा समय विषयभोगों में ही निकलता था। उस राजा के बारे में उसने पूर्व में सुना भी था। वह लेकर राजा के पास गई। सिंहराज उसे देखकर आश्चर्य में पड़ गया, उसने ऐसी सुंदरी पहले नहीं देखी थी, उसे देखते ही उसने कामसेना को मुँहमाँगा इनाम देकर विदा किया।

अनन्तमति के पास आकर कहने लगा- मैं तुम्हें पटरानी का पद देता हूँ। मैं राजा हूँ, तुम भी राजकुमारी हो, हमारा संबंध योग्य है, मुझे स्वीकार करो। आप जैसी सुन्दर कन्या मैंने आज तक नहीं देखी है। मैं रानी नहीं, महारानी बनाकर रखूँगा। एक बार हाँ कह दो। मैं ठाट-बाट से विवाह कर आपको सबके सामने अपनी धर्मपत्नी बनाऊँगा, पटरानी का पद दूँगा।

अनन्तमति सोचने लगी- हाय रे कर्म, जहाँ भी जा रही हूँ, वहाँ सभी चमड़ी के स्वादी ही मिल रहे हैं। कभी कोई धर्मात्मा से संयोग होता तो धर्म की सुविधा होती, चैन की साँस लेती। इन पापियों से मुक्त होती तो शायद आनन्द की साँस लेती। लेकिन कर्म का लेखा किससे मिटा है? इसने तीर्थंकरों को भी नहीं छोड़ा है, मैं तो साधारण महिला हूँ। न जाने कितना बड़ा पाप किया था, पूर्वजन्मों में जो नष्ट होने का नाम ही नहीं ले रहा है। इस पापी राजा को क्या जवाब दूँ? लेकिन मौन रहने से भी काम नहीं चलेगा। उसने हिम्मत जुटाकर कहा-

हे भाई! यथा राजा तथा प्रजा- यह कहावत आपने सुनी होगी। तुम जैसे राजा लोग पराई स्त्री देखकर पाप की सोचते हो, यदि सामान्य प्रजा ऐसा करे तो उसमें उसका क्या दोष है? खुद करो तो पाप नहीं और प्रजा करें तो पाप है।

तुम नीति पर रहोगे तो प्रजा का न्याय कर पाओगे। खुद ही अन्यायी बनोगे तो प्रजा न्याय के लिये किसकी ओर देखेगी? सोचो, धर्म तो राजा के आश्रय से रहता है, टिकता है। तुम ही अधर्मी बनोगे तो तुम्हारे राज्य में धर्म निराश्रित होकर नष्ट हो जायेगा।

मैं बालब्रह्मचारिणी हूँ। मुझे अपनी बहन समझ सकते हो। पत्नी के रूप में देखने का विचार भी मत करना।

वासना का विचार कर बुद्धि को गंदा मत करो। कितने पुण्य की बात है– मनुष्य हो, मनुष्यों के राजा हो। धर्म के मार्ग पर चलकर अपना और प्रजा का भी कल्याण कर सकते हो। धर्म का निमित्त बनकर निरंतर पुण्य लाभ ले सकते हो। धर्मात्माओं से वात्सल्य रखो, उनकी शरण लो, उनकी रक्षा करो, मैं तुम्हारी बहन के समान हूँ। मैंने जिस दिन ब्रह्मचर्य का नियम लिया था, उसी दिन से मुझे संसार के सभी पुरुष पिता, भाई और पुत्र के समान हो गये हैं।

मुझ जैसी अबला की रक्षा करो। मुझे मेरे पिता के घर या किसी आर्यिका के पास छोड़ दो।

सिंहराज के पापी मन में न दया उत्पन्न हुई, न पाप वासना कम हुई। सच है कि **तीव्र कषायी को उपदेश नहीं देना चाहिये।** उस सिंहराज को धर्म से भी डर नहीं लगा। उसने अनन्तमति के साथ जबरदस्ती करनी चाही। तब अनन्तमति जोर-जोर से विलाप करने लगी। तभी वह वनदेवी आई, उसने सिंहराज को खूब खरी-खोटी सुनाई। उसने कहा–

इस सती को आँख उठाकर भी मत देखना, यदि इसको छुयेगा तो तेरा सर्वनाश कर दूँगी। देवी ने उसे भयंकर दण्ड दिया। उसे खूब मार लगाई। देवी की मार से उसके उग्र, भयंकर स्वरूप से डरे हुये सिंहराज ने सेवकों को बुलाकर उसे उसी समय वन में छोड़कर आने की आज्ञा दी। सेवक आज्ञानुसार उसे जंगल में छोड़कर आ गये।

जंगल में अनन्तमति सोच रही थी– कहाँ जाऊँ? रास्तों का पता नहीं, दिशाओं का पता नहीं, पाप का उदय भोगे बिना छूटेगा नहीं। यह सोच वह पंचपरमेष्ठी का स्मरण कर तत्त्व चिंतन कर शुद्धात्म भावना के साथ उस रात वहीं रही। सुबह होने पर धर्ममय चिंतन के साथ वहाँ से चल दी। जिधर रास्ता दिखा, उधर वह चल दी। जो भी फल मिले उसे खाया। झरनों का प्रासुक जल पिया।

ऐसे अनेक जंगल, पहाड़, झरनों को पार करती हुई वह शहर के पास आई। जंगलों के साथ उसके पाप का भी अंत हो चुका था। उसे नगर क्या दिखा? मानो उसे पुण्य का सुप्रभात ही दिखा।

वह उस नगर की ओर चली। नगर के बाहर बनी एक जैन नसियाँ थी। वहाँ **पद्मश्री आर्यिका** ठहरी हुई थी अनन्तमति को लगा पाप का उदय समाप्त हुआ है तभी तो आर्यिका जी के दर्शन हुये हैं।

उसने आर्यिका के दर्शन किये। अपनी शरण में लेने का निवेदन किया।

पद्मश्री आर्यिका ने पूछा– बेटी, तुम कौन हो?

इसके उत्तर में अनन्तमति ने अपने जीवन की सारी घटनाएँ परिचय के साथ बतायीं।

आर्यिका ने कहा– बेटी, पाप का उदय सबको विचलित करता है, धन्य हो तुम, तुमने ऐसे तीव्र पाप के उदय में भी हिम्मत नहीं हारी। अब तुम्हारे पाप का उदय समाप्त हुआ है। आप निर्भीक होकर धर्म में मन लगा सकती हो हमारे साथ रहकर अपने नियम का पालन करो। धर्म की साधना, आराधना करो। उस दिन से वह आर्यिका के साथ रहकर धर्म की साधना करने लगी।

इधर अनन्तमति के पिता-माता को अनन्तमति के अचानक खो जाने से अपार दुःख हुआ। उन्होंने उसे कई जगह खोजा पर उसका कहीं पता नहीं लगा।

उन्हें सारा घर-परिवार श्मशान जैसा लगने लगा, वे उदास रहने लगे। उन्होंने सारा संसार सूना-सूना लगता था। उन्हें घर में एक-एक क्षण बहुत लम्बा लगने लगा। उनका मन घर में नहीं लगता था इसलिये वे उदास होकर घर से निकले। परिवार के लोगों ने प्रियदत्त को रोका, पर उन्होंने किसी की नहीं सुनी। उन्हें जाता देख परिवार के लोग भी उनके साथ गये।

प्रियदत्त आदि ने अनेक सिद्ध क्षेत्रों, अतिशय क्षेत्रों और निर्वाण क्षेत्रों की वंदनाएँ कीं। अनेक तीर्थ क्षेत्रों की वंदनाएँ करके वे अयोध्या पहुँचे। अयोध्या में प्रियदत्त का साला जिनदत्त रहता था। वे जिनदत्त के घर गये। जिनदत्त ने सबका बड़े प्रेम से स्वागत किया। प्रियदत्त से अनन्तमति के बारे में सुनकर जिनदत्त के परिवार को बहुत दुःख हुआ।

दूसरे दिन सुबह नहा-धोकर जिनदत्त मंदिर गये। उनकी पत्नी ने पद्मश्री आर्यिका को आहार के लिये प्रार्थना की थी। पद्मश्री के पास जो कन्या थी उसे कुछ समय पहले बुलाया और कहा- बेटी, थोड़ा पहले आकर चौक में रंगोली बना देना।

कन्या पहले आकर रंगोलियों से चौक पूर कर चली गई। प्रियदत्त की नजर चौक की रंगोली पर गई तब उनको अनन्तमति की याद आई। उनकी आँखों से टपटप आँसू गिरे। उन्होंने जिनदत्त की पत्नी से तुरन्त पूछा- यह रंगोली किसने बनाई है। मुझे उससे जल्दी मिला दो।

जिनदत्त की पत्नी ने बताया-

नसियाँ जी में पद्मश्री नाम की आर्यिका आई हुई है। उनके पास एक दो दिन पूर्व ही कहीं से कोई ब्रह्मचारिणी कन्या आकर रहने लगी है। आज पद्मश्री आर्यिका आहार के लिये घर आने वाली है। उनके पास रहने वाली बालिका से चौक में रंगोली बनाने के लिये कहा था, वही बालिका रंगोली बनाकर गई है।

प्रियदत्त ने कहा- मुझे अभी इसी समय उससे मिलवा दो। प्रियदत्त के कहने पर सभी नसियाँ जी में गये। आर्यिका माता के दर्शन किये। अनन्तमति पर दृष्टि पड़ते ही सभी की आँखों से आँसुओं की धाराएँ निकलीं। सब अनन्तमति से गले मिले। उसकी आपबीती की करुण कथा सुनी।

पुत्री के मिलने से प्रियदत्त की खुशी की कोई सीमा नहीं थी। सभी प्रसन्न हो गये। परस्पर बातचीत करने के बाद प्रियदत्त ने कहा-

बेटी अनन्तमति घर चलो।

अनन्तमति ने हाथ जोड़कर कहा-

पिताजी, मैंने संसार का रूप देख लिया है। मन वैराग्य रस से भरा हुआ है। अब कहीं जाने-आने का मन नहीं है। सिर्फ पञ्च परमेष्ठी देवशास्त्र गुरु के शरण में रहने का मन है। सांसारिक कष्टों को देखकर डर गई हूँ। मेरी आप से प्रार्थना है कि मुझे दीक्षा लेने की आज्ञा दीजिये।

बेटी की बात सुनकर प्रियदत्त को अचम्भा हुआ। वे दुःखी होकर कहने लगे-

बेटी, दीक्षा का मार्ग बड़ा कठिन है, तुम्हारा शरीर कोमल है, इस राह पर कठिनाइयाँ देखकर मेरा निवेदन है कि अभी घर चलो, कुछ दिन घर रहकर धर्मसाधना करो। बाद में दीक्षा ले लेना।

अनन्तमति संसार से पूर्ण उदास हुई थी। उसने कहा- पिताजी, आयु का क्या भरोसा? कौन-सा दिन अन्तिम दिन है कोई नहीं जानता।

मेरा मन संसार से पूर्ण रूप से उदास हो चुका है। मैं घर ही तो थी। कर्म ने मुझे कहाँ-कहाँ भटकाया? कैसे-कैसे दिन दिखाये? अब मैं कर्म के अधीन नहीं रहना चाहती। आप तो मुझे दीक्षा की अनुमति दीजिये।

बेटी की दृढ़ता देखकर प्रियदत्त ने कहा- बेटी, मोही मन नहीं मानता है, वीतरागता का मार्ग प्रशस्त मार्ग है। उस पर चलने पर ही कष्टों व कर्मों का अन्त होता है। बेटी, इस मार्ग पर कठिनाइयाँ देखकर विचलित मत होना। इस पर अनन्तमति बोली-

पिताजी, आप विश्वास कीजिये मैं कर्मों पर विजय पाकर ही रहूँगी। क्षण भर के लिये भी विचलित नहीं होऊँगी। इसके बाद अनन्तमति की दीक्षा की विधि सम्पन्न हुई। सबने उसका अनुमोदन किया।

आर्यिका अनन्तमति ने कठोर तपस्या की। उसने एक-एक माह के उपवास आदि कर कर्मों को क्षीण करके संन्यास मरण किया।

देह के साथ उसकी स्त्री पर्याय का नाश हुआ। वह सहस्रार स्वर्ग में देव बनी। वह देव पर्याय से निकलकर शीघ्र ही मोक्ष पद प्राप्त करेगी।

*****

सती मनोवती

9

सती मनोवती

सेठ हेमदत्त के घर की सजावट किसी राजमहल से कम नहीं दिख रही है, कहीं पर मोतियों की झालरें लटक रही हैं, कहीं पर मखमल के चंदोये बंधे हैं। दरवाजों-दरवाजों पर सुन्दर-सुन्दर रत्नों से जड़े हुए तोरण बंधे हुए हैं। कहीं पर रंग-बिरंगी काँच के झरोखे से छन-छन कर आती हुई सूर्य की किरणें इन्द्रधनुष की आभा बिखेर रही हैं तो कहीं पर रेशमी पर्दे आकाशगंगा के समान लहरा रहे हैं। घर और बाहर का भाग चारों तरफ से नगर के नर-नारियों से खचाखच भरा हुआ है। सेठानी हेमश्री आज खुशी से फूली नहीं समा रही हैं, सो ठीक ही है उसके लाडले सातवें पुत्र बुद्धिसेन की शादी होकर घर में अतिशय रूपवती बहू आई हुई है। आज सेठ जी के यहाँ जीमनवार है। बल्लभपुर शहर के सभी स्त्री-पुरुष प्रसन्नमुख दिख रहे हैं, कोई जीमकर जा रहे हैं और कोई आ रहे हैं। गली-गली में धूम मची हुई है। सभी के मुख पर एक ही चर्चा है कि भाई ! हेमदत्त सेठ का आखिरी संबंध बहुत अच्छा हुआ है उन्हें बहुत अच्छे समधी मिले हैं। हस्तिनापुर के सेठ महारथ बावन करोड़ दीनारों के धनी हैं, उनकी सुपुत्री मनोवती बहुत ही सुशील कन्या है। उसने भी पूर्वजन्म में महान् पुण्य अर्जित किया होगा जो उसे ऐसा घर और वर मिला है, क्या सुन्दर अनुरूप जोड़ी है? कोई महिला चर्चा कर रही है, अरी बहन! अपने सेठ हेमदत्त भी छप्पन करोड़ दीनारों के मालिक हैं। इनके बड़े-बड़े व्यापार हैं, ये बड़े नामी जौहरी हैं। सुना है कि इनके नये समधी भी बहुत विख्यात जौहरी हैं। वे भी तो बल्लभपुर शहर में बहुत ही विख्यात पुरुष हैं। दूसरी बोल उठती है, बहन! सम्पत्ति का क्या देखना, बस लड़के को लड़की अनुकूल चाहिए और लड़की को पति अनुकूल चाहिए जिससे उन दोनों का दांपत्य जीवन सुख से चले। फिर यदि पैसा भाग्य में है तो लड़का अपने आप अपने पुरुषार्थ से कमाकर धनी बन जाता है और भाग्य में नहीं है तो कई पीढ़ियों का कमाया हुआ धन भी पता नहीं चलता कि किधर चला जाता है। मैं तो मेरी कन्या के लिए यही सोचा करती हूँ कि इसे पति धर्मात्मा मिले। तीसरी बोलने लगती है सच है बहन, मेरी लड़की का पति दुर्व्यसनी है, सारी बाप की कमाई की पचासों करोड़ सम्पत्ति बरबाद कर दी। मेरी लड़की के गहने जेवर भी बेच कर खा गया। क्या करूँ, मैं तो बहुत दुःखी हूँ। तभी एक महिला बोलने लगती है हाँ सच है बहन ! इस मनोवती ने तो खूब ही पुण्य किया होगा, तभी इसे सर्वगुणसम्पन्न पति मिला है। इस प्रकार से शहर में तरह-तरह की मधुर चर्चायें चल रही हैं।

सेठ हेमदत्त अपनी बैठक में आनन्द से बैठे अपने रिश्तेदारों से मनोविनोद कर रहे हैं। अकस्मात् सेठानी जी पहुँचती हैं तो सभी इधर-उधर हो जाते हैं। सेठानी उदासमुख हुई यथोचित स्थान पर बैठ

जाती हैं। सेठ जी सेठानी को चिंतित उदास मुख देखकर आश्चर्य से पूछते हैं – कहिये, क्या बात है? अपने यहाँ आज तो चारों तरफ मंगल ही मंगल हो रहा है, खुशी का कोई पार नहीं है, फिर इस समय आपका मुख उदास क्यों दिख रहा है? अरे! घर में कामकाज करने वाले तो बहुत लोग हैं और फिर दास–दासियाँ आपके इशारे पर दौड़ रहे हैं फिर भला आप इतना क्यों थक गयीं? सेठानी विनम्रता से उत्तर देती हैं कि मैं कामकाज से नहीं थक गई किन्तु मेरी चिन्ता का कुछ कारण दूसरा ही है।

''सो क्या है?'

''नई बहू तो मौन लिए बैठी है कुछ बोलती ही नहीं है।''

''तो क्या हो गया? इसकी चिन्ता तुम्हें क्यों हो गई? (हँसने लगते हैं)''

''अभी तक घर की किसी भी महिला ने खाना नहीं खाया है और आप कहते हैं कि चिन्ता क्यों हो गई?''

सेठ जी आश्चर्यचकित होकर पूछते हैं –

''क्यों? खाना नहीं खाने का क्या कारण है?''

''जब सब जीमन निपट चुका, तब हमने सभी आगत मेहमानों को भी जिमा दिया, आप लोग सभी जीमकर आ गये। तब मैं बहू के पास गई और बोली कि बहू ! चलो भोजन करो, मुझे खड़े–खड़े घंटों हो गये किन्तु वह कुछ बोलती ही नहीं है।''

''अरे! यह रंग में भंग कहाँ से आ गया है?''

सेठजी एक मिनट कुछ सोचते हैं पुनः सेठानी को समझाते हुए कहते हैं –

''आप चिन्ता न करें। मेरी समझ में नयी बहू संकोच कर रही होगी, छोड़ो, आप सभी लोग भोजन कर लो फिर देखा जायेगा।''

सेठानी वापस चली आती हैं, सब लोग भोजन कर लेते हैं। मनोवती निश्चिंत और प्रसन्नचित्त अपने मन में णमोकार मंत्र का जाप कर रही है। दूसरे दिन भी यही स्थिति रहती है। तब सेठजी कहते हैं देखो! आज अपने सभी परिवार के लोग भी भोजन नहीं करेंगे और तभी भेद खुलेगा अन्यथा नहीं। फिर भी मनोवती मौन है, मन में महामंत्र का जाप चल रहा है। जब पूरे परिवार ने अन्न–जल नहीं लिया और फिर भी बहू ने मौन नहीं छोड़ा, तब सेठजी ने तुरंत ही हस्तिनापुर खबर भेज दी। सेठ महारथ और सेठानी महासेना एकदम घबरा उठे। हाय ! मेरी पुत्री पर यह क्या मुसीबत आई? और तत्क्षण ही अपने पुत्र मनोज कुमार को बल्लभपुर के लिए रवाना कर दिया और आप चिंतित हो सोचने लगे –

महासेना माता बोलती हैं कि –

''विदा करते समय मैंने मनोवती को कितनी शिक्षाएं दी थीं कि बेटी ! अब तू जहाँ जा रही है, वही

तेरा घर है। तेरी सासू हेमश्री ही तेरी माता हैं और तेरे ससुर हेमदत्त ही तेरे पिता हैं। तू उन्हें कुछ दिन में इतना आकर्षित कर लेना कि वे तेरे विषय में यह पुत्रवधू है या पुत्री? ऐसा भेद ही न कर सकें?''

महारथ सेठ भी कहते हैं –

''मैंने भी तो यही शिक्षा दी थी कि बड़ों की आज्ञा पालना और छोटों पर प्यार रखना, जिससे घर में वातावरण सदैव सुखद स्वर्ग जैसा रहेगा।''

''अपनी कन्या पर मुझे विश्वास है कि उससे कोई भी गलती नहीं हो सकती है। फिर भी पता नहीं क्या कारण है जो कि वह तीन दिन से भूखी है?''

माता रो पड़ती है तभी सेठ जी सान्त्वना देते हुए कहते हैं –''आप इतनी समझदार होकर यह बच्चों जैसे कार्य क्यों कर रही हो? शांति रखो, मनोज गया है। वह आयेगा तो सारी बात स्पष्ट हो जायेगी। व्यर्थ ही मन में नाना प्रकार के संकल्प–विकल्प करके मन को क्यों खिन्न कर रही हो?''

''सच है, पुत्रियों के पीछे सदैव दुःख ही दुःख रहते हैं। युवती हुई तो ब्याह की चिन्ता? ब्याह हो जाये तो उसको विदा करते समय कलेजा फटता है, उसको याद कर–करके रोना आता रहता है और यदि उसे ससुराल में सुख न मिला तो फिर रातदिन घुलन ही घुलन रहती है।''

''व्यर्थ ही इतना संताप क्यों करती हो? तुम्हें क्या पता, सारी हस्तिनापुरी नगरी के लोग इस घर और वर की सराहना कर रहे हैं और फिर ससुराल की अनुकूलता तुम कैसे नहीं समझ रही हो? देखो ! उस आदमी ने तो यह भी बताया था कि कल के दिन सेठजी स्वयं निराहार रहे हैं और सारे परिवार ने भी भूख हड़ताल कर दी है कि जिससे बहूरानी कुछ बोलें और भोजन करें किन्तु वह फिर भी मौन है।''

इतना सुनकर सेठानी चुप हो जाती हैं और सेठजी बाहर चले जाते हैं–

मनोजकुमार बल्लभपुर पहुँचकर सेठजी के घर पर पहुँचते हैं। सब लोग स्वागत करते हैं। पुनः पहले यही बोलते हैं – भाई! आपकी बहन ने तीन उपवास कर लिये, आज चौथा दिन है। क्या कोई व्रत चल रहा है? या अन्य कोई कारण है? पहले इस बात का निर्णय करो, पीछे कोई अन्य बात होगी। मनोज बहन से मिलता है और बोलता है–

''बहन ! तुमने यह क्या किया? यहाँ के मंगलमयी वातावरण को अमंगलीक क्यों बना दिया? तुमने भोजन क्यों नहीं किया?''

''भ्रात ! मैंने महामुनि के निकट ऐसी प्रतिज्ञा ली थी कि जब मैं जिनमंदिर में जिनेन्द्रदेव के समक्ष गजमोती चढ़ाऊँगी, तब भोजन करूँगी। सो भाई ! यहाँ पर कहीं मुझे गजमोती तो दिखते नहीं हैं अतः तुम कुछ नहीं बोलना, बस जल्दी से मुझे घर लिवा ले चलो, मैं वहीं गजमोती के पुंज चढ़ाकर जिनदर्शन करके भोजन करूँगी।''

मनोज सेठ हेमदत्त से मिलकर निवेदन करते हैं कि आप अभी इसे मेरे साथ भेज दीजिए। घर पहुँच कर भोजन करेगी। आप कोई चिन्ता न करें। लड़की भोली है। संकोच कर रही है। तब सेठ जी ने कहा आपकी यह बात कुछ महत्त्व नहीं रखती है। जो कारण है, सो आपको स्पष्ट करना ही पड़ेगा। फिर यहीं पर भोजन करने के बाद मैं तुम्हारे साथ विदा कर दूँगा। तब मनोज कुमार ने सारी स्थिति स्पष्ट कर दी। सेठ जी सुनकर हँस पड़े और तत्क्षण ही अन्दर पहुँचकर बहू को पुत्री के समान समझाते हुए बोले- बेटी मनोवती ! तूने व्यर्थ ही संकोच क्यों किया? मुझे क्यों नहीं बताया? और इतना कहते ही तुरंत भंडारी को बुलाकर भंडार खुलवा दिया।

हीरे-मोती-माणिक और रत्नों के ढेरों की जगमगाहट से देखने वालों की आँखें चकाचौंध हो गईं। उनका प्रकाश घर भर में फैल गया, मानों सेठ जी का पुण्य ही अपना उद्योत फैला रहा है।

मनोवती ने सास-श्वसुर की आज्ञा से स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहन कर गजमोतियों के पुंज डिब्बी में रखे और जिनमंदिर पहुँच गई। अतीव भाव-भक्ति से श्री जिनेन्द्रदेव के दर्शन करके अपने जीवन को कृतार्थ माना और प्रभु के सन्मुख गजमोतियों के पुंज चढ़ा दिये। घर आकर भोजन किया। अनन्तर मनोज कुमार के आग्रह से सेठजी ने बहू की पीहर के लिए विदाई कर दी। सभी ने उसके धैर्य की सराहना की। देखो ! बहू बहुत ही सुलक्षणा है। अपने नियम के निर्वाह में अटल है। धैर्य के साथ तीन उपवास कर गई, रोने-धोने का काम नहीं, घबराने का भी काम नहीं, प्रसन्न मुख ही रही। यह एक होनहार स्त्रीरत्न है।

मालिन अपने पतिदेव से कह रही है। देखो न ! कितने बेशकीमती मोती हैं। माली की आँखें मोतियों की जगमगाहट से उन पर नहीं टिक रही हैं। वह स्तब्ध रह जाता है। ओहो ! बहुत बड़े आश्चर्य की बात है। मेरे यहाँ न जाने कितनी पीढ़ियों से इसी मंदिर जी की सेवा का काम चल रहा है, मेरे पुरखों ने कभी भी ऐसा बढ़िया मोती आँखों से भी नहीं देखा था। आज इस बल्लभपुर में कौन ऐसा पुण्यवान् आया है जो इन मोतियों को चढ़ा गया है? क्या मंदिर जी में देवता लोग तो नहीं आये हैं? हमने बहुत बार अपने बाबा के मुख से सुना था कि जैन मंदिर जी में कभी-कभी देवता लोग दर्शन को आया करते हैं। हो सकता है उन्होंने ऐसे दिव्य मोतियों के पुँज चढ़ाए हों? कुछ भी हो देखो चुन्नू की माँ ! इन्हें अपने घर में नहीं रखना है। मालूम है तुम्हें! अगर राजा को पता चल जायेगा कि एक माली के घर इतनी उत्तम वस्तु है तो वह मुझे चोर समझकर मेरी सारी संपत्ति लुटवा लेगा और मुझे देश से भी निकाल देगा।

भाई ! यह बढ़िया माल अपने घर में कैसे रखा जा सकता है? इसलिए तुम बगीचे से बढ़िया चमेली के फूल ले आओ और उन फूलों के साथ में इनकी माला बनाकर राजमहल में ले जाना। तुम्हें इनाम भी अच्छा मिलेगा ! समझ गई ना........ बस चतुराई से काम करना।

मालिन बहुत ही सुन्दर हार गूंथकर राजमहल में पहुँच जाती है और महाराजा साहब की छोटी महारानी के गले में पहना देती है। रानी विभोर हो उठती हैं और उसे बहुत सी सुवर्ण की मुहरें इनाम में

दे देती हैं। उधर बल्लभपुर नरेश मरुदत्त महाराज को रनवास से कुछ सूचना मिलते ही वे अकस्मात् राजदरबार से चलकर बड़ी महारानी मनोरमा जी के महल में पधारते हैं और महारानी की अतीव विक्षिप्त मनःस्थिति को देखकर अवाक् रह जाते हैं –

''प्रिये! राजवल्लभे ! अकस्मात् ही तुम्हारी चिन्ता का क्या कारण है? कहो शीघ्र ही स्पष्ट कहो!...... किसकी मृत्यु नजदीक आई है कि जिसने तुम्हारे मन को व्यथित किया है? क्या उसे नहीं मालूम कि मेरा शासन कितना कठोर है?''

महारानी जैसे-तैसे अपने धैर्य को संभालकर आँसू पोंछते हुए बोलती हैं –

''महाराज! अब मैं इस घर में जीवित नहीं रह सकती। ओह !...... मेरा इतना अपमान !...... आपका मेरे प्रति सब दिखावटी प्रेम है, आपको तो अपनी कुसुमा रानी पर ही सच्चा प्रेम है और यही कारण है कि आज यह दुर्दिन मुझे देखने को मिला। बस अब मुझे आपका किंचित् भी प्रेम नहीं चाहिए। मुझे तो बस एकमात्र विष चाहिए।''

महाराज का सारा शरीर निश्चेष्ट जैसा हो जाता है। वे एकटक महारानी को देखते ही रह जाते हैं पुनः सान्त्वना देते हुए कहते हैं –

'प्राणवल्लभे! तुमने आज मेरे प्रति यह अन्यथा कल्पना कैसे बना ली है? क्या मैंने कभी तुम्हारी उपेक्षा की है? अथवा तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट दिया है? कहो तो सही आखिर बात क्या है? मेरे हृदय को इस तरह क्यों व्यथित कर रही हो?''

''बस बस! अब आप अपनी इन चिकनी-चुपड़ी बातों को रहने दीजिए। अब तो जो होना था, सो हो ही गया। अब मुझे इस संसार में रहकर ऐसा अपमान नहीं झेलना है।''

''देवि ! बिना कुछ कहे आखिर मैं कोई केवलज्ञानी तो नहीं हूँ, तुम अपने अपमान को बताओ तो सही! फिर देखो उसका सही प्रतिकार होता है या नहीं? एक बार मुझे प्रेम की परीक्षा में उत्तीर्ण होने का अवसर तो दो? बोलो, किसने तुम्हारा अपमान किया है?

'नाथ ! इस नगर में मेरा क्या सम्मान है? आप ही बताइये ! जब जाति की मालिन भी मेरा अपमान कर सकती है तो इससे बढ़कर दुःख की बात मेरे लिए अब और कौन सी हो सकती है?''

महाराज अतीव आश्चर्य के साथ आगे की पूरी बात समझने की इच्छा व्यक्त करते हैं –

''अरे ! मालिन !..... उसने क्या अपमान किया है?''

''वह आज एक सुन्दर हार बनाकर लाई थी जिसमें एक-एक चमेली की कली के बीच में बहुत ही ऊँची जाति के सुन्दर-सुन्दर गजमोती गुंथे हुए थे। उसने वह हार....... आपकी प्राण-प्यारी महारानी कुसुमाजी को पहना दिया। यदि आप उसका सम्मान अधिक न करते होते तो मालिन का भला ऐसा अतिसाहस क्यों होता?''

राजा मरुदत्त सारी स्थिति को स्पष्ट समझ लेते हैं और एक बार तो उस मालिन के प्रति क्रोध से आगबबूला हो उठते हैं। दूसरे ही क्षण अपने को एक तुच्छ महिला के प्रति क्रोध करना कर्तव्य नहीं है, ऐसा सोचकर अपने क्षत्रियोचित धर्म को लक्ष्य में रखते हुए रानी को सान्त्वना देते हैं–

''महादेवि! बस! इतनी तुच्छ सी बात को लेकर आपको इतना विषाद ! ओह ! वल्लभे ! उसके लिए तो मालिन ने फूल सहित मोतियों का हार बनाया है और तुम्हारे लिए बस एकमात्र गजमोतियों का ही हार बनवाऊँगा। उठो, मुखप्रक्षालित करो और विषाद का सर्वथा त्याग कर यह भाव भी मन से निकाल दो कि मेरे हृदय में तुम्हारे सम्मान में किंचित्मात्र भी कमी है। देखो ! तुम इतनी समझदार स्त्रीरत्न होकर इन क्षुद्र बातों में नाना प्रकार के विकल्पों को क्यों कर रही हो?''

महाराज स्वयं महारानी का हाथ पकड़कर उठाकर मुख प्रक्षालित कराते हैं और वातावरण शान्त हो जाता है।

दूसरे दिन महाराज मरुदत्त रत्नों से जटित सिंहासन पर विराजमान हैं। दूसरी तरफ मंत्री, आमात्यगण बैठे हुए हैं और सामने एक तरफ सभासद लोग उपस्थित हैं। वातावरण प्रसन्न है, समय देखकर राजा ने मंत्री से कहा –

''मंत्रिन्! बल्लभपुर शहर के सभी जौहरियों को बुलाना है।''

''जो आज्ञा महाराज!''

मंत्री ने शीघ्र ही कर्मचारियों को बुलाकर आदेश दिया कि जाओ शहर के सभी जौहरियों को राजदरबार में उपस्थित होने के लिए सूचना करो। कर्मचारियों ने तत्काल ही सरकार की आज्ञा शिरोधार्य करके प्रत्येक जौहरी की दुकान–दुकान पर पहुँच कर उन्हें महाराज का आदेश सुना दिया कि महाराज ने आप सबको याद किया है। तब सभी जौहरी सेठ आपस में मिलकर विचार–विमर्श करने लगे, क्या कारण है जो आज महाराज ने हम सबको ही अकस्मात् बुलाया है? अवश्य ही कुछ न कुछ रहस्य होना चाहिए? जो भी हो, अन्त में सबों ने यही निर्णय किया कि अपन सब लोग एक साथ चलें और कोई भी बात हो, उसका उत्तर भी एक तरह का ही होना चाहिए। सब दरबार में उपस्थित होते हैं। महाराज भी सबका विशेष रूप से सम्मान करते हैं और सभा में बैठने का आदेश देते हैं। कुछ क्षण कुशल समाचार के अनन्तर महाराज मंद–मंद मुस्कान से सभासदों को अभिषिक्त करते हुए के समान ही बोलते हैं –

''आप लोग जौहरी हैं अतः गजमोती पैदा कर दीजिए और जो कीमत लगे सो हमसे लीजिए।''

सभी सेठगण एक क्षण आपस में एक–दूसरे का मुख देखने लगते हैं, पुनः उन्हें जब उस समूह में कोई भी इस कार्य के लिए सक्षम नहीं दिखता है तब वे एक स्वर में कहते हैं –

''महाराज ! यह काम तो हम लोगों में से कोई भी नहीं कर सकता है। गजमोती पैदा करना बहुत कठिन काम नहीं असंभव ही है।''

''देखो ! कुछ क्षण और सोच लो, सभी लोग अपने-अपने को तोल लो, फिर बोलो।''

कुछ देर बाद भी सभी जौहरी यही उत्तर देते हैं कि हम लोगों में से किसी के यहाँ भी गजमोती नहीं हैं और न ही हम लोग कहीं से ला सकते हैं। उन्हीं में हेमदत्त सेठ भी थे उन्होंने भी ना कर दिया। पुनः सभी लोग महाराज से निवेदन करते हैं -

''महाराज! और कुछ आज्ञा दीजिए कि जिसका हम लोग पालन कर सकें।''

''बस! हमें इस समय गजमोतियों की आवश्यकता थी। आप किसी के पास नहीं हैं सो ठीक! लेकिन ध्यान रखना, आज से लेकर आगे भविष्य में भी कुछ दिन बाद भी, छह महीने या वर्ष बाद भी यदि किसी के यहाँ गजमोतियों का पता चल गया तो समझ लेना हाँ !......बस !.......उसकी खैर नहीं है। उसको इतना कड़ा दंड दिया जायेगा कि उसकी खाल खींचकर उसमें भूसा भर दूँगा।''

उस समय महाराज मरुदत्त का चेहरा एकदम लाल सुर्ख हो रहा था और अधर ओंठ फड़क रहा था। फिर भी जैसे-तैसे महाराज ने अपने क्रोध को शांत किया और मन मसोस कर रह गये। वे आखिर कर भी क्या सकते थे? मंत्रीगण धीरे-धीरे क्षुब्ध वातावरण को शांत कर देते हैं और अन्य विषय की चर्चा छेड़ देते हैं। अनन्तर कुछ देर बाद सभा विसर्जित कर दी जाती है और सभी अपने-अपने घर आ जाते हैं।

सेठ हेमदत्त भी अपने घर पहुँचते हैं और अत्यन्त चिंता समुद्र में डूब जाते हैं। सोचते हैं, हाय ! हाय यह क्या हुआ? हाय! मेरे मुख से हाँ क्यों नहीं निकला? मैंने भी सबके साथ में ना क्यों कर दिया? मेरा कौन से कर्म का उदय आ गया? क्या मेरी जिन्दगी अब शेष नहीं है? ओह ! चार-छह महीने बाद पुनः बहू आयेगी। वह गजमोती चढ़ायेगी। वह तो किसी भी हालत में नहीं मानेगी चूँकि उसका नियम है। जब उसने पहली बार में आकर तीन उपवास कर डाले तो पुनः उसे कैसे रोका जा सकता है? अब क्या होगा?....... उसी समय सेठ जी अपनी बैठक में बैठ जाते हैं और तत्क्षण ही अपने बड़े छहों पुत्रों को बुला लेते हैं तथा किवाड़ बंद करके एकांत में मीटिंग करते हैं।

''बेटे धनदत्त! इस विषय पर तुम्हारा क्या अभिमत है? कहो, यह तो बहुत बड़ा धर्मसंकट आया हुआ है। अब मेरी तो कुछ बुद्धि काम नहीं करती है। बोलो बेटा! अब क्या करना होगा?''

''पूज्य पिता! आप इतने चिंतित क्यों हो रहे हैं? अरे ! जब आपके हाथ में पूरी सत्ता है, हम सब आपके आदेश को पूर्णतया पालन करते आ रहे हैं और करते रहेंगे, आपका कोई पुत्र भी ऐसा नहीं है जो कि आपकी आज्ञा में मीन-मेख निकाल सके। पूज्यपाद ! आप तो जो उचित समझिये सो आदेश दीजिए।''

''मैं तो किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो रहा हूँ। बहू तो घर में आयेगी ही और गजमोती चढ़ायेगी ही। फिर क्या होगा......?''

''पिताजी ! क्या बहू का घर में आना जरूरी ही है?'' सेठ हेमदत्त एकदम चौंक उठते हैं–

''ऐं! बेटा ! तुम यह क्या कह रहे हो? क्या बहू छोड़ दी जायेगी?''

''नहीं, नहीं, पिताजी!...... मैंने यह तो नहीं कहा कि बहू को छोड़ देना होगा या बुद्धिसेन की दूसरी शादी करनी होगी।''

''तो तुम्हारा क्या अभिप्राय है? कहो सो सही !''

''तात! मेरी समझ में तो यही आता है कि आप ऐसी दुर्घटना के प्रसंग में बुद्धिसेन को ही घर से निकाल दीजिए। न होगा बाँस न बजेगी बांसुरी। जब बुद्धिसेन ही घर में नहीं होगा तो बहू कैसे घर में आयेगी?''

धनदत्त अपने पाँचों भाइयों का मुख देखने लगते हैं और सभी संकेत से स्वीकृति देकर उसी की बात का समर्थन कर देते हैं –

''ओहो! पिताजी! आपकी चिंता को समाप्त करने का और अपने ऊपर आने वाले संकट को दूर करने का भाई साहब ने कितना बढ़िया उपाय सोचा है। बस, बस, यही बात हम सबको जँच रही है। आपको यही आदेश दे देना चाहिए और बहुत ही जल्दी करना चाहिए। इसमें आपको कुछ भी आगा-पीछा नहीं सोचना चाहिए।''

सेठजी अपना माथा धुनने लगते हैं और उनकी आँखों से टपाटप आँसू टपकने लगते हैं –

''हाय हाय ! यह क्या हो गया? बेटा! मेरे से ऐसा कार्य असंभव है। मैं इस निरपराधी सुकोमल सुकुमार बुद्धिसेन को कैसे घर से निकाल दूँ? भला उसने किसी का क्या बिगाड़ा है?''

सभी एक साथ बोल उठते हैं–

''तो ठीक है पिताजी ! वह आपका लाडला है तो आप उसे न निकालिये। हम छहों भाई अपनी भार्याओं के साथ निकल जायेंगे। कोई चिंता की बात नहीं है, आप शान्ति की श्वास लीजिए। पिताजी ! आपके अश्रु हम लोग देख नहीं सकते हैं, न तो जीवन में हमने कभी आपकी आँखों में पानी देखा था और न ही अब देखने का प्रसंग लाना चाहते हैं। बस आप धैर्य धारण करें। हम लोगों का यह अन्तिम निर्णय है।''

सेठजी एकदम विह्वल हो उठते हैं और पुत्रों को पकड़कर अपने वक्षस्थल से लगा लेते हैं–

''प्यारे पुत्रों! तुम लोग यह क्या बोल रहे हो? क्या तुम लोगों के चले जाने के बाद हमारी आँखों का पानी रुक जायेगा? क्या तुम्हारी माता अपने प्राण धारण रख सकेगी? उसकी क्या स्थिति होगी और मेरी क्या गति होगी? तुम लोगों को भला कुछ तो सोचना चाहिए।''

धनदत्त, सोमदत्त आदि पुत्र पिता के वक्ष से अपने को अलग करते हैं और पुनः दीर्घ निःश्वास लेकर कुछ क्षण बाद बोलते हैं –

''पिताजी ! इस समय आपके सामने अपने वंश की रक्षा का, अपनी सम्पत्ति की रक्षा का एक ही उपाय है कि या तो आप उस एक बुद्धिसेन को अपनी आँखों से ओझल करें या तो हम छहों को? इसके सिवाय अपने कुल की या अपने धन की रक्षा के लिए आपके पास कोई भी चारा नहीं है। आप स्वयं सोचें।''

सेठजी कुछ क्षण तक नाना ऊहापोहों में अपने आपको भूल जाते हैं पुनः सावधान हो अपने मोह को संवृत कर बुद्धिसेन को निकालने की बात सोचते हैं। पुत्रों के कहे अनुसार हाथ में कागज और लेखनी लेकर उसे घर से निकल जाने का आदेश लिखना चाहते हैं परन्तु कलम उनकी जहाँ की तहाँ स्थित है। वे मन ही मन विचार कर रहे हैं....... कहाँ से यह बहू आई जो कि डाकिन बन गई, हाय! वह तो मेरी आँखों के तारे को ही मुझसे जुदा कर रही है। कहाँ की इसकी प्रतिज्ञा है कि गजमोती चढ़ाना? यह भी कोई नियम है? बड़ी शहंशाह की पुत्री बनी है। ऐसा मालूम पड़ता है कि इसे अपने पिता की सम्पत्ति का बहुत बड़ा गर्व था कि जिससे इसने ऐसा नियम ले रखा है, बड़ी धर्मात्मा बनी हुई है।........

सेठजी के मन में उस मनोवती के प्रति और उसकी प्रतिज्ञा के प्रति नाना प्रकार की अवहेलना के भाव उठ रहे हैं। वे पुनः एक बार अपने बड़े पुत्र धनदत्त की तरफ देखकर बोल उठते हैं –

''बेटा ! अपने को यह कैसी पुत्रवधू मिल गई? और कैसी निराली इसकी प्रतिज्ञा है? जो कि आज हम सबको संकट में डालने के लिए कारण बन रही है। यह भी कोई नियम है कि रोज ही गजमोतियों के पुंज चढ़ाना और फिर भोजन करना। क्या चावल के पुंजों से, नाना तरह के फलों से, फूलों से और अनेक प्रकार के सरस व्यंजन पकवान से, अष्ट द्रव्य के भरे हुए थालों से पूजा नहीं होती? भगवान् संतुष्ट नहीं होते? इसे क्या सूझी जो इसने ऐसी प्रतिज्ञा ले ली?''

''सचमुच में बात यही है। प्रतिज्ञा लेने का भी कोई तरीका होता है चाहे जो कुछ ले लिया। भला उसे यह भी तो सोचना चाहिए था कि जब मैं ससुराल जाऊँगी तो क्या होगा? जब उसे यहाँ गजमोती न मिलते तो? यदि घर में या अपने शहर में ही गजमोती न होते तो?.....क्या होता? कब तक भूखी रहती? वास्तव में लड़की निरी मूर्ख दिखती है और पापिनी भी। जभी तो उसके घर में पैर रखते ही ऐसी समस्या आकर खड़ी हो गई है। यह क्या घर को निहाल करेगी? यह तो सभी को मृत्यु के मुख में पहुँचाने के लिए साक्षात् कोई महामारी ही है या कोई चुड़ैल ही है जो कि बहू के रूप में आ गई है। इसका काम बहुत जल्दी खत्म करना होगा नहीं तो पता नहीं और भी क्या-क्या आपदाएं आ जावें?''

सेठजी बहू की प्रतिज्ञा की निन्दा तो कर डालते हैं किन्तु पुनः उसके भोले चेहरे को स्मरण में लाकर विह्वल हो उठते हैं। ओहो! वह कितनी भोली कन्या थी! साक्षात् देवी का ही तो रूप! क्या तो उसके नियम की दृढ़ता! ओह! यह मेरा छोटा पुत्र मुझसे एक मिनट को भी दूर हो तो कलेजा फटने लगता था और अब मैं इसे निकालकर घर में कैसे रहूँगा? हेमश्री के मन में क्या बीतेगी? अभी तो उसे कुछ पता

नहीं है और यदि उसे पता चल जायेगा तो शायद उसको घर से निकालना शक्य नहीं होगा फिर क्या होगा? क्या सचमुच में ये छहों बेटे चले जायेंगे? क्या ये सुपुत्र मेरी छाती पर वज्रप्रहार कर देंगे?....... सेठजी इन्हीं चिन्ताओं में डूबते-उतराते हुए हाथ में लेखनी लिये हैं। लिखना चाहते हैं किन्तु उनकी आँखों से वर्षा ऋतु के समान झड़ी लग जाती है। उन्हें कागज दिखता ही नहीं है। इसी बीच में धनदत्त ने पिता के हाथ से कागज और कलम छीन लिया और बोला- 'पिताजी ! लाइये, आपका आदेश मैं लिख देता हूँ।''

सेठजी बिलख-बिलख कर रोने लगते हैं और मन ही मन बहू की प्रतिज्ञा को कोसते हैं। धनदत्त पत्र लिखता है-

''प्रिय बुद्धिसेन ! यदि तुम्हें पूज्य पिताजी के वचन मान्य हैं तो इस घर की देहली के अन्दर पैर नहीं रखना, वापस उल्टे पैर इस देश से बाहर चले जाना। आपके लिए यह पिता का आदेश है।''

धनदत्त ने धाय को आवाज देकर बुलाया और उसे वह कागज देकर कहा। जाओ ! तुम दरवाजे पर बैठ जाओ! जब बुद्धिसेन आयेगा उसे यह कागज दे देना। कह देना कि पहले यह पत्र पढ़े और फिर अन्दर प्रवेश करे। धाय जाकर बैठ जाती है और बुद्धिसेन दुकान से घर आते हैं। धाय के हाथ से पत्र पाकर उसे पढ़ने लगते हैं। उसकी आँखों के सामने अंधेरा छा जाता है। वह एक बार सोचते हैं कि मैं नींद में तो नहीं हूँ? क्या ऐसा भी हो सकता है? मैंने भला क्या अपराध किया? पिताजी ने बचपन से लेकर आज तक मुझे कभी भी फटकारा तक नहीं, स्वप्न में भी गुस्सा नहीं किया और आज एकदम ऐसा क्रोध उन्हें मुझ पर क्यों आया कि जो देश से निकाल रहे हैं? आखिर रहस्य क्या है? उन्होंने मुझे कुछ दोष क्यों नहीं बताया?... कुछ देर तक स्तब्ध खड़ा रहता है पुनः सोचता है अहो ! छहों भाई कुशल व्यवसायी हो चुके हैं इसलिए मुझे घर से निकाल रहे हैं अथवा .... मेरे ही कुछ अशुभकर्म का उदय आ गया है इसमें किसी का क्या दोष? अब मुझे तो इस पत्र ने पिता से मिलने की, उनके चरण छूने की या माता से आशीर्वाद लेने की भी तो गुंजाइश नहीं दी है। अब मेरा कर्तव्य क्या है? मैं भूखा-प्यासा ऐसे ही किंकर्त्तव्यविमूढ़ हुआ यहाँ से शीघ्र ही चला जाऊँ और आज ही इस शहर की सरहद के बाहर हो जाऊँ। बस! बस! मेरा यही कर्तव्य है। क्या कुलीन मनुष्य कभी संकटों से घबराते हैं? क्या वे ऐसे समय में अपनी बुद्धि का, अपने भाग्य का सहारा नहीं लेते हैं?....... अब मैं भी अपने दैव की परीक्षा करूँ। आखिर देखूँ तो सही कि मैंने पूर्वजन्म में क्या-क्या किया है?.

बुद्धिसेन उल्टे पैरों वापस लौट जाते हैं और इधर जब बहुत समय व्यतीत हो जाता है तब माता हेमश्री पुत्र के घर न आने से चिंतित हो उठती हैं। जैसे-तैसे करके उसे भी अंत में यह सारी रामायण सुना दी जाती है और वह पुत्र के वियोग में पागल हो उठती हैं। तत्क्षण मूर्च्छित हो जाती हैं। बहुयें उनको शीघ्र परिचर्या करके होश में लाती हैं। सेठजी स्वयं आकर पहले तो वे आप ही पुत्रवियोग से शून्यहृदय होते हुए रोने लगते हैं पुनः जैसे-तैसे अपने धैर्य को समेट कर शान्ति से बैठकर हेमश्री को सान्त्वना देते हैं।

''प्रिये ! आप अब शोक दूर करो, जो होना था वह हो गया। अब यदि अपने भाग्य में होगा तो फिर इस जीवन में अपने को उसका मुख दिखेगा अन्यथा इन्हीं पुत्रों को देखकर संतप्त मन को शांत करो। वेदना मुझे भी है और अत्यधिक है परन्तु दैव के आगे किसी की कुछ भी नहीं चलती है।''

''स्वामिन्! आप जो भी कहते हैं सो सच है किन्तु मेरे साथ आपने इतना बड़ा धोखा क्यों किया? आपने मुझसे पहले बात क्यों नहीं की? मैं एक बार तो अपने प्यारे बेटे का ललाट चूम लेती। मैं एक बार उसे अपनी छाती से लगा लेती, फिर आप निकाल देते।''

''देवि ! समस्या उस समय ऐसी ही थी कि यदि मैं जरा भी ढील कर देता तो ये छहों बेटे जाने को तैयार थे....... बस अब तुम धैर्य धारण करो।''

हेमश्री फूट-फूटकर रोती है। सेठ हेमदत्त बार-बार उसके आँसू पोछते हैं और दिलासा देते हैं। इसी बीच में धनदत्त आदि पुत्रों ने भी आकर माँ से कहा -

''माता! यदि तुम्हें बुद्धिसेन ही प्यारा है तो यह लो, हम लोग जाते हैं और उसे वापस भेजते हैं।''

''पुत्रों! तुम ऐसा क्यों बक रहे हो? मेरे लिए तो जैसे वह, वैसे ही तुम सब। मैंने तो जैसे तुम्हें नव-नव महीने पेट में धारण किया, जन्म दिया और लाड़-प्यार किया, वैसे ही तो उसको नव महीने उदर में रखा और जन्म दिया है किन्तु तुम्हीं बताओ अब मैं कैसे धैर्य धरूँ? मेरा तो कलेजा फटा जा रहा है। हाय! हाय! मैं कैसे अपने प्राण धारण करूँ?''

हेमश्री पुनः बेहोश हो जाती है और सभी पुत्र रो पड़ते हैं -

हाय! हाय! यह क्या हुआ? हम लोग भी कैसे भाई का वियोग सहन करेंगे? जब उसकी बाल चेष्टाएं हमारे सामने खेलेंगी तो हम उसका मुख कैसे देख सकेंगे? वह सुकोमल शरीर बुद्धिसेन कहाँ जायेगा? कहाँ भटकेगा? क्या खायेगा? क्या पियेगा? कहाँ सोयेगा? अपनी जिंदगी कैसे बितायेगा? उसे भी जब माँ-बाप की, भाइयों की याद आयेगी तो क्या करेगा? कुछ क्षण के लिए घर में शोकसमुद्र उमड़ पड़ता है पुनः धीरे-धीरे कर्म सिद्धान्त को सोच-सोचकर सब एक-दूसरे को समझाते हैं। माता ! प्रत्येक प्राणी अपने कर्म के अधीन है। फिर वह तो पुरुष है, विवेकशील है, कुशल है, जहाँ कहीं भी जायेगा कुछ न कुछ व्यवसाय करके अपनी गृहस्थी बना लेगा। अब छोड़ो उसकी चिंता। सभी जीव अपने-अपने भाग्य के अधीन हैं। कोई भी किसी का करने-धरने वाला नहीं है। अपने प्राणों की रक्षा का, धन की रक्षा का बहुत बड़ा प्रश्न सामने उपस्थित होने से ही ऐसा कठोर निर्णय लेना पड़ा है पिताजी को। क्या किया जाये? अन्य कोई चारा भी तो नहीं था। इसी तरह से सभी एक-दूसरे को समझाते हुए संतोष की सांस लेते हैं फिर भी कुछ दिनों तक बुद्धिसेन की याद सबको सताती रहती है और मन मसोस कर तथा मनोवती की प्रतिज्ञा को कोसकर रह जाया करते हैं, दिन निकलते जा रहे हैं।

मन में विचार तरंगें तरंगित हो रही हैं और पैर उन्हीं तरंगों के सहारे आगे बढ़ते जा रहे हैं। मानों

वे विचारलहरों के समान चलना ही जानते हैं, रुकना नहीं। सचमुच में दैव की लीला बड़ी विचित्र है, एक क्षण में क्या से क्या हो गया? और बल्लभपुर की यह वायु भी तो मेरे अनुकूल चल रही है, हो सकता है कि यह बहुत शीघ्र ही मुझे शहर की सीमा के बाहर निकालना चाह रही हो अथवा.......हो सकता है कि यह मेरे पथ में सहचारिणी बन रही हो अथवा हो सकता है कि यह मेरे वियोग से संतप्त होकर ही मेरे पीछे-पीछे भागी चली आ रही हो कौन जाने? कुछ भी हो, पीछे से चलती हुई वायु तो मुझे जल्दी-जल्दी चलने की ही प्रेरणा दे रही है यदि यही वायु आगे होकर बहती तो मुझे मार्ग में चलने में बाधा अवश्य डाल देती।

शहर से बाहर कुछ दूर निकल जाने के बाद सुन्दर-सुन्दर बगीचे दिखते हैं। मानों वे कुमार से कहते हैं कि ठहरो-ठहरो! एक रात्रि हमारे यहाँ विश्राम कर लो किन्तु विश्राम का क्या काम ? चलना है बस चलते ही रहना है नींद का काम नहीं, ठहरने का नाम नहीं। बुद्धिसेन जब अवंती देश की हद को पार कर जाते हैं तो आगे बढ़ते हैं। सामने अहीर की बस्ती है, चारों तरफ गायों के झुंड के झुंड दिख रहे हैं। प्रत्यूष बेला हो चली है। मन्द सुगन्ध हवा बह रही है। किसान हल लेकर खेतों की ओर चले जा रहे हैं, ग्वाल लोग गायों के थन से दूध निकाल रहे हैं। बछड़े माँ का दूध पी-पीकर रंभा रहे हैं। ग्वालिन अपने सिर पर दही के घड़े को रखे हुए निकली और वह बुद्धिसेन के सामने आ खड़ी हुई। वह युवक को सिर से पैर तक बार-बार देखती है और सोचती है यह तो कोई राजकुमार है या देवकुमार या कोई जौहरियों का पुत्र है? कौन है? यह पैदल ही क्यों चला जा रहा है? इसको कहाँ जाना है? इसका गन्तव्य कहाँ है? आखिर को वह पूछ बैठती है -

''भाई! आप कौन हैं? और कहाँ जा रहे हैं?''

कुमार बुद्धिसेन के पैर रुक जाते हैं उनकी विचार तरंगें वहीं पर टकराकर ठहर जाती हैं। वे स्वयं सोचते हैं-मैं कहाँ आ गया? यह गाँव कौन सा है? अब मुझे किधर जाना है? कहाँ जाना है? और क्या करना है? रात्रि भर चलते-चलते थका हुआ शरीर है, पैर भी जवाब देने लगे। तब कुमार वहीं पर एक वृक्ष के नीचे बैठ जाते हैं और उस ग्वालिन की तरफ देखकर उसके प्रश्न को सुना-अनसुना कर देते हैं। फिर भी वह महिला कहने लगी- आप बहुत थके हैं। आज इसी गाँव में आराम कीजिए। मालिक ! यह गाँव आपका ही है। पुनः वह आगे बढ़ जाती है। सामने बगीचों में मयूर नाच रहे हैं। एक मयूर आकर बुद्धिसेन के सामने भी अपने पूरे पंखों को फैलाकर नाचने लगा। ओहो ! आज से एक सप्ताह पहले जब मैं हस्तिनापुर शहर में दूल्हा बनकर ब्याहने गया था बारात में हजारों जौहरी थे। रथों की, हाथियों की, घोड़ों की, पालकियों की कोई गणना नहीं थी। उस समय मेरा भी मन मयूर ऐसे ही नाच रहा था और आज चिन्तारूपी रत्नाकर में गोते लगा रहा है। उसी समय गाँव के प्रसिद्ध पटेल ने देखा कि यह कोई युवक राजकुल का हो या उत्तम वैश्यकुल का, निश्चित ही यह पुण्यपुरुष है किन्तु भाग्य ने ही शायद इसे धोखा दिया है। चलो कुछ भी हो, अपने गाँव में आये मेहमान की खातिरदारी करना अपना परम कर्तव्य है। वह कुमार को अपने साथ ले जाकर आतिथ्य सत्कार करता है।

कुमार मन में सोच रहे हैं कि मेरी शादी हुए कुल सात–आठ दिन हुए हैं। मेरी धर्मपत्नी मनोवती पतिव्रता महिला है। यदि उसे यह समाचार मिलेगा कि मेरे पति को घर से निकाल दिया और वे कहीं चले गये हैं तो उसके मन पर क्या बीतेगी? अकस्मात् दुःखी होकर यदि वह आत्मघात कर ले तो क्या होगा? ''मेरा कर्तव्य है कि कहीं व्यापार के लिए जाने के पहले हस्तिनापुर जाकर उसे सारी घटना सुना दूँ और सान्त्वना देकर अन्यत्र कहीं दूर देश में जाकर उत्तम व्यवसाय करके पुनः उसे वहीं पर लिवा लाऊँगा........।''

''पटेलजी ! हस्तिनापुर का मार्ग किधर से जाता है?''

पटेलजी सही रास्ते का दिग्दर्शन कराते हुए–

''बन्धु ! मार्ग तो इधर से जाता है। आप कुछ दिन यहाँ ठहरें तो अच्छा है।''

''मुझे जल्दी ही हस्तिनापुर पहुँचना है।''

बुद्धिसेन निकल पड़ते हैं और एक–एक फर्लांग पर बैठ–बैठकर जैसे–तैसे कुछ दिनों में रास्ता पारकर हस्तिनापुर के बाहर बगीचे में आ जाते हैं। सूर्य अस्ताचल को जा रहा है और अपनी मधुर लालिमा से दिशाओं को अपना अनुराग भरा प्यार समर्पित कर रात्रि भर के लिए विदाई ले ली है। प्रातः फिर वापस आने का आश्वासन भी दे गया है। इसी बीच में बुद्धिसेन भी हद से ज्यादा थके हुए थे। उनकी विचार सरणि भी तरणि के समान अस्ताचल को ढूंढने लगी। वे सोच रहे हैं कि अभी–अभी कुछ दिन ही हुए कि मैं यहाँ ब्याहने आया था तो कितना परिकर समूह साथ में था। राजशाही ठाठ से क्या कुछ कम ठाठ था? और आज मैं अकेला इस दुरवस्था से इस शहर में प्रवेश करूँ? ससुराल वाले क्या समझेंगे? क्या कहेंगे? क्या सोचेंगे? अपने माता–पिता का कितना बड़ा अपमान होगा?. . सोचते–सोचते कुमार विह्वल हो उठते हैं और अपने घर की इज्जत का, अपनी इज्जत का सबसे बड़ा सवाल सामने आकर उन्हें वापस चलने को बाध्य कर देता है। आखिर तो वह अन्तिम निर्णय में आ जाते हैं कि यहाँ से वापस जाकर धन कमाकर अपनी इज्जत की सुरक्षा रखते हुए ही यहाँ आना ऐसे नहीं! किन्तु श्रम सहचर के रूप में उन्हें जैसे–तैसे रात्रि भर वहीं बगीचे में सोने की सलाह देता है। लाचार होकर बुद्धिसेन को मानना ही पड़ता है।

उषा देवी कुमार को शुभ सूचना देने के लिए आना चाहती थी कि उसके पहले मालिन वहाँ आ जाती है और चमेली, बेला, जुही आदि के सुन्दर–सुन्दर खिले हुए फूलों को चुन–चुन कर अपने टोकरे में रखती चली जाती है। वे फूल भी प्रसन्न होकर आपस में हँस रहे हैं क्योंकि उन्हें तो जिनेन्द्रदेव के सम्मुख पहुँचने का सौभाग्य मिलने वाला है। धीरे–धीरे मालिन उषा के अनुराग (लालिमा) के साथ–साथ बुद्धिसेन के पास पहुँच जाती है। बड़े गौर से निहारती है। ओहो! यह तो मेरे ही सेठजी का जंवाई है, अभी–अभी दस पन्द्रह दिन तो हुए ही हैं जब यह ब्याहने आया था.......। वह शीघ्र ही वहाँ से चल पड़ती है और आकर सेठ महारथ से कहती है।

''सेठजी ! आपके जंवाई साहब आपके बगीचे में पधार गये हैं। आप जल्दी जावो।''

''ऐं! क्या, क्या? बुद्धिसेन जी आये हैं?''

''हाँ, हाँ, सरकार, हाँ! वे ही हैं।''

ओहो! इस संसार में लक्ष्मी का कोई भरोसा नहीं है। अभी पन्द्रह दिन ही तो हुए हैं। क्या बात हुई? या तो चोरों ने धन लूट लिया होगा या राजा ने धन छीन लिया होगा, या तो और कोई संकट आया होगा। कुछ भी हो, कोटिध्वज के सुपुत्र मेरे जंवाई बुद्धिसेन कुमार हैं। उन्हें जल्दी से घर ले आना है। ऐसा सोचकर सेठजी तत्क्षण ही बगीचे में पहुँचकर उसका हाथ पकड़कर हिलाकर जगाते हैं और बड़े प्रेम से अपने वक्षस्थल से चिपका लेते हैं। घर में लिवा लाकर स्नान-भोजन आदि कराते हैं। तथा घर में सभी महिलाओं को कड़ी सूचना दे देते हैं कि कोई भी स्त्री इनसे आने का कारण न पूछे।

फिर महिलाओं में कानाफूसी दिन भर चलती ही रहती है। आखिर को बिना बुलाये ससुराल आने का क्या कारण है? पैदल ही क्यों आये? अकेले ही क्यों आये?.

''बहन ! ऐसा करो कि इनसे अपने में से यदि कोई पूछ लेगा, तब तो सेठजी बहुत ही क्रुद्ध होंगे अतः मनोवती को ही इनके पास भेज दो, वही सब कारण समझ लेगी और इससे सेठजी को भी गुस्सा नहीं आएगा।

''हाँ, हाँ! बहन, आपने बहुत बढ़िया उपाय सोच निकाला, चलो चलें, अपन पहले सेठानी जी को तो मना लें।'' ''हूं, वे तो इस बात पर सहज ही राजी हो जावेंगी।''

''तो बस, उन्हीं की आज्ञा से आज रात्रि में मनोवती को कुंवर जी के पास भेज देवो, सारी स्थिति का स्पष्टीकरण हो जायेगा।''

''ठीक, बहुत ठीक।''

रात्रि में मनोवती पतिदेव के निकट पहुँचती है, उन्हें प्रणाम करके शारीरिक कुशल क्षेम पूछती है और विनय से पास में बैठ जाती है। बुद्धिसेन भी पहले सामान्यतया 'संब ठीक है' ऐसा उत्तर देते हैं और कुछ क्षण को चुप हो जाते हैं। मनोवती पुनः धीरे-धीरे संकोच छोड़कर पति के सम्मुख हाथ जोड़कर पूछती है -

''प्राणनाथ! आज अकस्मात् आपका शुभागमन कैसे हुआ?..... कृपया मुझे बताकर मेरे मन को हल्का कीजिए।''

''प्रिये! कर्मों की गति बड़ी विचित्र है, अब घर में मेरे छहों भाई अच्छे कुशल व्यवसायी हो गये हैं अतः शायद उन्हें मेरी आवश्यकता नहीं महसूस हुई होगी, हो सकता है इसी कारण से पिता ने मुझे

देश से निकाल दिया हो। सही कारण क्या है सो मुझे भी मालूम नहीं है? हाँ, मेरा ऐसा अनुमान है हो सकता है कि यह गलत भी हो? अन्य ही कुछ कारण हो?''

मनोवती को पतिदेव के मुख से देश निर्वासन का समाचार सुनकर इतना दुख नहीं हुआ कि जितना दुःख पति के मुखकमल की उदासीनता से हुआ, उसका हृदय एकदम विदीर्ण हो उठा। वह कुछ क्षण स्तब्ध सी रही। पति के मुख की तरफ एकटक देखती रही। अनंतर उसने साहस बटोरकर कहा –

''स्वामिन्! आपके सामने तो मेरे में कुछ भी बुद्धि नहीं है फिर भी मैं अपनी तुच्छ बुद्धि से ही कुछ निवेदन करना चाहती हूँ यदि आपकी आज्ञा हो तो कुछ शब्द कहूँ?''

बुद्धिसेन उसके शब्दों को सुनने की उत्सुकता से ही सम्मति देते हुए गंभीर मुद्रा में हो जाते हैं और मनोवती कहना प्रारंभ करती है –''देव! आप पुरुष हैं, आपको चिंता किस बात की? अपने पुरुषार्थ के बल पर मनुष्य जब बड़े–बड़े कार्य कर सकता है, तब अपना गार्हस्थ्य जीवन बनाना क्या कोई बड़ी बात है? आप बिल्कुल निश्चिन्त होइये और अपने पुरुषार्थ से अपने सुखद भविष्य का निर्माण कीजिए।''

''सो तो मेरा निर्णय ही है, मैं तो केवल यहाँ तुम्हें सूचित करने मात्र ही आया हूँ। अब मैं कहीं दूर देश में जाकर धन अर्जन करके वापस आकर तुम्हें ले जाऊँगा, तब तक तुम यहीं पीहर में सुख से रहो।''

इस बात को सुनते ही मनोवती का साहसी हृदय भी आहत हो गया। वह विह्वल हो उठी, आश्चर्य भरी दृष्टि से पति के मुख को देखते हुए बोलती है –

''आप यह क्या कह रहे हैं? यह अघटित बात सर्वथा असंभव है। आप यहीं हस्तिनापुर में रहिए। मेरे पिता जी के यहाँ सम्पत्ति की कोई कमी नहीं है। उनसे कुछ धन लेकर आप व्यापार कीजिए।''

''प्रिये! यह संभव नहीं है। मैं ससुराल में रहकर अपने माता–पिता के नाम को नहीं लजाना चाहता, मैं ससुर से धन लेकर व्यापार करके अपनी उन्नति नहीं करना चाहता, मैं अन्यत्र कहीं जाकर धनार्जन करूँगा। यहाँ किसी भी हालत में नहीं रुकूँगा।''

''आपका इतना कोमल शरीर है कि तीन–चार दिन में तो क्या स्थिति हुई है? आप धूप और छाया के कष्टों को परदेश में कैसे सहन करेंगे? स्वामिन्! मेरे तुच्छ निवेदन को स्वीकार कीजिए और यहीं पर व्यापार करने की सोचिये।''

''प्रियतमे! केवल तुम्हारे मोह से खिंचकर मैं इधर आया हूँ बस तुम्हें जानकारी देना मेरा एकमात्र लक्ष्य था। अब तुम सभी बातें छोड़कर मुझे दूर देश में जाने की स्वीकृति देवो, जिससे मेरे मन में अशांति न रहे।''

जब मनोवती ने समझ लिया क़ि ये यहाँ नहीं रुकेंगे, तब वह धैर्य के साथ बोलती है –

''प्राणनाथ! यदि आपका निर्णय सर्वथा यही है कि यहाँ नहीं रहना, तब तो मुझे भी आप अपने साथ ले चलिये।''

''वाह! यह भी कोई बात है। मैं वन-वन में रास्ते रास्ते में भटकते हुए न जाने कब कहीं पर स्थित हो पाऊँ? आज यहाँ कल कहाँ? फिर मैं तुम्हें कहाँ-कहाँ साथ लिए फिरूँगा? और फिर प्रवास के कष्टों को झेलना क्या कोई आसान बात है? तुम भूख-प्यास की बाधाओं को, ठंडी, गर्मी के सभी कष्टों को कैसे सहन कर सकोगी?'

''और आप कैसे सहन करेंगे?''

''पुरुषों में और महिलाओं में बहुत अन्तर है।''

''यह कोई बात नहीं है कभी-कभी पुरुषों की अपेक्षा से अधिक संकट महिलाएं हँसते-हँसते झेल लेती हैं। स्वामिन्! मैंने बचपन में दिगम्बर मुनि के मुख से शिक्षा पाई, छह महीने तक गुरुदेव के चरण सानिध्य में रहकर मैंने सभी विद्यायें सीखी हैं मुझे अपने कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का पूरा ज्ञान है, आप प्रवास में नाना प्रकार के कष्ट उठायें और मैं सुख से पीहर में रहूँ? ओह!...... असंभव है, ऐसा कभी नहीं हो सकता. .. कभी नहीं हो सकता। मैं भी आपके मार्ग के कंटकों को दूर करते हुए सती सीता के समान आपके साथ चलूँगी।''

'नहीं, नहीं! प्रिये! तुम बिल्कुल मत सोचो। अपना विचार बदलो और मेरे प्रस्थान में विघ्न मत बनो।'

'मैं कभी भी अपने विचार नहीं बदल सकती, साथ ही चलूँगी।'

'देखो, प्रियतमे ! यह हठ सर्वथा अनुचित है।'

'आप कुछ भी कहें किन्तु मुझे तो यही उचित लगता है अतः मैं आपके पथ का अनुसरण करूँगी।'

'मैं आपको साथ ले चलने के लिए किसी भी हालत में तैयार नहीं हूँ।'

'जैसी आपकी इच्छा !....... परन्तु आप यह बात निश्चित समझ लीजिए कि आपके यहाँ से प्रस्थान करते ही मैं अपघात करके इस जीवन को समाप्त कर दूँगी।'

बुद्धिसेन सहसा चौंक पड़ते हैं -

'ओह !.....प्रिये! तुम क्या कह रही हो? क्या इस तरह प्राण त्याग करना तुम्हारा कर्त्तव्य है? तुम्हें ऐसे संकट के समय धैर्य धारण करना चाहिए और आगे के अच्छे दिनों की प्रतीक्षा करनी चाहिए।'

मनोवती अधिक न बोलकर घबरा कर रोने लगती है और बुद्धिसेन उसे हर तरह से समझाने का प्रयत्न करते हैं। अन्त में मनोवती यही कहती है कि मैं आपके बिना इस घर में एक दिन भी जीवित नहीं रहूँगी। तब कुमार कुछ ढीले पड़ जाते हैं-

'तो ठीक है, यदि आपको चलना ही है तो मेरी आज्ञा का पालन करो। ये रत्नों के, मोतियों के आभूषण एक-एक उतारकर यहीं छोड़ दो। अन्यथा लोग कहेंगे कि देखो ! कैसा ठग आया था कि जो तमाम रत्नों के जेवर ले गया...... हाँ फिर जल्दी करो।'

मनोवती प्रसन्नता से गद्‌गद् हो उठती है और तत्क्षण ही जल्दी-जल्दी सारे आभूषण उतारकर वहीं पलंग पर डाल देती है। गजमोतियों का हार खींच कर उतार फेंकती है कि जिससे उसके मोती बिखर जाते हैं और वहीं पलंग पर एक-दूसरे के पास आते-जाते हुए ऐसे दिखते हैं कि मानों इन्हें भी अपने इष्ट (साथियों) का विरह इष्ट नहीं है इसलिए सब एक जगह एकत्रित हो जाते हैं। भुजबंद, कंकड़, अंगूठी, स्वर्ण की करधनी आदि सभी आभूषण उतारने के बाद उसने कहा-

''प्राणनाथ! आप देखिये अब मेरे पास कुछ भी आभूषण नहीं है।''

बुद्धिसेन भी दृष्टि से देखते हैं कि इसने सर्व अलंकार दूर कर दिये हैं। मात्र गले में एक मंगलसूत्र है जो कि सौभाग्य का चिन्ह है, वही रह गया है। बस आधी रात का समय था। वे दोनों शीघ्र ही खिड़की के रास्ते से निकल कर हस्तिनापुर से बाहर जाने की सड़क पकड़ लेते हैं। मनोवती भी प्रसन्नमना महामंत्र का जाप्य करते हुए पतिदेव के पीछे-पीछे चली जा रही है।

जो हमेशा हाथी पर चढ़कर प्रस्थान करते थे, जो सुकुमारांगी महिला पालकी में या रथ पर बैठकर ही बगीचे की सैर के लिए निकलती थी, आज वे दम्पत्ति बड़े प्रेम से नंगे पैर काँटों और कंकड़ों की परवाह न करते हुए चलते चले जा रहे हैं मार्ग में छोटे-छोटे गाँव आते हैं। ग्रामीण जन इन्हें देखकर सोचने लगते हैं। ये युगल दम्पत्ति कौन हैं? क्या महादेव ही पार्वती को साथ लेकर विश्व की यात्रा के लिए निकले हैं या श्रीकृष्ण भगवान् अपनी लक्ष्मी के साथ विचरण कर रहे हैं? इनका रूप कितना सुन्दर है, क्या ये स्वर्ग से उतरते हुए कोई देव दम्पत्ति हैं? या कोई राजवंश के भावी होनहार हैं? लोग मार्ग में कुतूहल से आकर घेर लेते हैं और परिचय पूछने लगते हैं, तब कुमार बुद्धिसेन मुस्करा देते हैं और आगे बढ़ जाते हैं।

आज एक दिन व्यतीत हो चुका है, रात्रि भी निकलती चली जा रही है। कब अर्द्धरात्रि आई और कब चली गई पता ही नहीं है। क्योंकि चलना, चलते चलना ही अपना लक्ष्य है। गंतव्य स्थान क्या है? कहाँ पहुँचना है? कौन जाने? दो दिन निकल गये, दो रात्रि व्यतीत हो गई, आज तीसरा दिन है। शरीर में पूरी थकान है। मनोवती कभी मन में महामंत्र का जाप्य करती है, कभी मुनिराज के धर्मोपदेश का स्मरण करती है, तो कभी पतिदेव के समक्ष उन शिक्षाओं को सुनाने लगती है कि जो उसे बचपन में मुनिराज के मुखकमल से सुनने को मिली थीं। आज चौथा दिवस है दोनों ही रतनपुर के सुन्दर बगीचे में पहुँचे हैं। ठंडी-ठंडी हवा दोनों की थकान को दूर करते हुए उन्हें मानों वहीं बैठने की प्रेरणा दे रही है। बगीचे की सुन्दरता को देखकर और पथिक से शहर का नाम ज्ञात कर कुमार वहीं पर ठहर जाते हैं।

''स्वामिन्! यह अशोक वृक्ष की छाया जिनशासन के समान सुखदायी प्रतीत हो रही है, यह देखो! सामने आम्रवृक्ष अपने फलों के भार से झुक गया है। मानो वह गर्वत्याग की सूचना ही दे रहा है और इधर यह एरण्ड वृक्ष सीना तान कर उद्दण्ड मनुष्य के समान खड़ा है परन्तु छाया से शून्य है। एक तरफ

सरोवर में कमल खिल रहे हैं, उन पर भ्रमर गुंजार कर रहे हैं। इधर चमेली और जुही की लता फूलों से महक रही है।''

''मुझे तीन दिन-रात्रि के प्रवास की पूरी थकान थी। मैं सोच रहा था इस समय आपकी क्या स्थिति होगी? किन्तु आपका धैर्य वास्तव में सराहनीय है।''

मनोवती पतिदेव के पैर दबाने लगती है और विश्रांति के लिए प्रार्थना करती है। बुद्धिसेन को कुछ नींद आ जाती है। तब धीरे से उठकर मनोवती पास के सरोवर में स्नान करके अपने कपड़े सुखाने लगती है और केशों को भी खोलकर सुखाने लगती है। उसी समय केशों में कहीं पर एक बेशकीमती रत्न उलझा हुआ था, वह उसके हाथ में आ जाता है वह उसे देखने लगती है, इतने में बुद्धिसेन उठकर बैठ जाते हैं। मनोवती पास में आकर बोलती है -

''स्वामिन्! आज तीन दिन हो गये आपको, न भोजन है न पानी। आपका मुखकमल बिल्कुल मुरझा गया है। अब..

बीच में ही बात काटकर बुद्धिसेन बोल उठते हैं -''और आपका मुखकमल क्या खिल रहा है? वह तो मेरे से भी अधिक कुम्हला गया है।''

फिर गंभीर मुद्रा में होकर बोलते हैं -

''सचमुच में बिना अन्न-जल के इस शरीर की स्थिति अधिक नहीं रह सकती है। अभी तो शरीर से सर्वथा निर्मम ऐसे योगी भी शरीर की स्थिति के लिए आहारार्थ नगरों में, श्रावकों के गृहों में विचरण करते हैं।

''सच है शरीर के बिना धर्म की साधना भी तो असंभव है। इसलिए तो तीर्थंकरों ने स्वयं आहार ग्रहण किया है और अन्य मुनियों के लिए निर्दोष आहार ग्रहण करने का उपदेश दिया है।''

कुछ क्षण वातावरण शांत रहता है पुनः मनोवती बोलती है-''पतिदेव! यह देखिये, मेरे केशों में यह एक नग उलझा हुआ था, वह धोखे से ही आ गया है। मेरी समझ में अब आप इसे लेकर शहर में जाइये और किसी के यहाँ गिरवी रखकर उसके बदले कुछ धन लेकर भोजन की सामग्री लाइये।''

बुद्धिसेन वह नग लेकर चुपचाप चले जाते हैं और कुछ देर बाद भोजन सामग्री लाकर दे देते हैं। मनोवती अपनी कुशलता से बगीचे में बाँस के बर्तन और पत्तों के दोने बनाकर भोजन-सामग्री तैयार करती है। बुद्धिसेन भोजन आदि से निवृत्त होते हैं। मनोवती पतिदेव को भोजन कराती है।

आज पहली बार बगीचे में उसने अपने पतिदेव को जिमाया है। वह मन ही मन प्रसन्न है। फिर पतिदेव से निवेदन करती है कि आप शहर में जाइए। कुछ अपने व्यापार-धंधे का सिलसिला जमाइये। इधर आप पति को शहर भेजकर अपने हिस्से का भोजन भूखों को जिमा देती है और स्वयं बैठकर महामंत्र का जाप्य करती है।

शाम होते ही पतिदेव आ जाते हैं किन्तु कुछ सफलता उन्हें नहीं मिलती है। मन में उदासीनता होते हुए भी बुद्धिसेन पत्नी से दिन भर की कुशलता को पूछकर बैठ जाते हैं। मनोवती भी हास्य विनोद में पति की निराशता और थकान को समाप्त कर देती है।....... दूसरे दिन फिर मनोवती ने पति को जिमा दिया और आप अपने हिस्से का भोजन गरीबों को खिला दिया। ऐसे ही तीसरा दिन भी व्यतीत हो गया।

बुद्धिसेन ने देखा, मनोवती का शरीर अत्यन्त शिथिल हो गया है, मुख बहुत ही म्लान है। मन में सोचने लगा। हाय! देखो! दुर्दैव की लीला, यह कुमारी मेरे साथ इस प्रवास में एकदम कैसी सूख गई है। अब क्या होगा? यह कैसे जीवित रह सकेगी?.

''प्रियतमे! तुम्हारा मुख अत्यन्त म्लान हो चुका है, शरीर भी बिल्कुल सूख गया है। तुम मुझे तो अच्छी-अच्छी शिक्षाएँ देती हो और स्वयं तुम्हें क्या हो गया है? तुम मार्ग में चलने में इतनी कमजोर नहीं दिख रही थीं कि अभी जितनी दिख रही हो। क्या कारण है सो कहो?

मनोवती बात को पलटकर हँसते हुए बोली-

हम ''स्वामिन्! आपको स्वयं व्यापार में सफलता न मिलने से ही दिखता है कि चिन्ता अधिक हो रही है और इसलिए शायद आप मुझे कमजोर देख रहे हैं।''

''नहीं, नहीं! ऐसी बात नहीं है, क्या तुम्हें शरीर में कोई कष्ट है? कहो ! सच सच कहो।''

''नहीं स्वामिन्! कुछ भी कष्ट नहीं है केवल आपको भ्रममात्र है। मैं स्वस्थ हूँ। हाँ, मन की अस्वस्थता से कुछ शरीर में फर्क आ जावे तो मैं क्या करूँ?''

''आप मुझसे कुछ छिपा रही हैं?''

''नहीं, नहीं स्वामिन्! मैं आपसे क्या छिपाऊँगी? आप निश्चिंत रहें कोई खास बात नहीं है।''

बुद्धिसेन बेचारा मनोवती की शारीरिक स्थिति को देखकर आश्चर्य में है कि आखिर बात क्या है? अंत में वह चुप हो जाते हैं और भाग्य के विषय में सोचते-सोचते उनके नेत्र सजल हो जाते हैं। कुछ क्षण माता-पिता की निष्ठुरता पर क्रोधित होते हैं तो पुनः अपने भाग्य की निष्ठुरता को कोसते हैं। धीरे-धीरे नींद आ जाती है। रात्रि व्यतीत हो जाती है। रोज की तरह आज पुनः सूर्य निकलता है। बुद्धिसेन स्नान आदि से निवृत्त होकर शहर में व्यापार करने के लिए चले जाते हैं।

मनोवती की स्थिति वास्तव में गंभीर है। हस्तिनापुर से निकलकर मार्ग में चार दिन व्यतीत हुए। अब यहाँ रतनपुर के बगीचे में तीन दिन बीत चुके हैं। बिना अन्न के, बिना पानी के सात दिन निकल चुके हैं। अब मनोवती मन में सोच रही है। मैं क्या करूँ? यदि पति से कुछ कहूँ तो उन्हें सिवाय चिन्ता के और क्या होगा? वे यही कहेंगे कि तुम मेरे साथ क्यों आई? उन्हें गजमोती कहाँ मिलेगा वे स्वयं जिस स्थिति में हैं तो मेरे नियम को कैसे पूर्ण करेंगे? अब मेरा शरीर कितने दिन टिक सकेगा? क्या होगा?

''भगवन्! आपके सिवाय अब मेरा यहाँ कोई भी रक्षक नहीं है। मेरे दुर्दैव ने ही तो मेरे पति को घर से निकाल दिया है। नहीं तो वहाँ क्या कमी थी? हे जिनेन्द्रदेव ! अब आपके सिवाय मुझे किसी की भी शरण नहीं है। एक मात्र अकारण बंधु आप ही मेरे प्रभु हैं। हे त्रैलोक्यनाथ ! जब-जब भक्तों पर संकट आया है, तब-तब आपने ही तो उनकी रक्षा की है।''

मनोवती मन ही मन भगवान से प्रार्थना कर रही है। उसका यह निश्चय है कि भले ही प्राण चले जायें, लेकिन अपनी प्रतिज्ञा भंग नहीं करना। उसे विश्वास भी है कि अनाथों के नाथ भक्तों के रक्षक भगवान् मुझ पर कृपा अवश्य करेंगे। किसी न किसी प्रकार से कुछ न कुछ उपाय अवश्य दिखेगा और जब मेरी प्रतिज्ञा पूरी होगी, मैं श्री जिनेन्द्रदेव के सन्मुख गजमोतियों को चढ़ाऊँगी, तभी भोजन करूँगी अन्यथा नहीं।

मनोवती पुनः भगवान् से प्रार्थना करती है -

प्रभो! जब आपकी भक्ति के प्रसाद से अनन्तानन्त संसार की परम्परा समाप्त हो जाती है, जब आपकी भक्ति के प्रसाद से सम्पूर्ण कर्म जड़मूल से निर्मूल हो जाते हैं, जब आपकी भक्ति से सम्पूर्ण मनोरथ सफल हो जाते हैं, देवाधिदेव ! जब आपकी भक्ति से कल्याण परम्पराएं अपने आप दौड़ती-चली जाती हैं, जब आपकी भक्ति से बड़े-बड़े विघ्नकर्म चूर-चूर हो जाते हैं, तब पुनः मेरी भी प्रतिज्ञा क्यों नहीं पूर्ण होगी? क्या मेरे हृदय में सच्ची भक्ति नहीं है?....... प्रार्थना करते-करते मनोवती कुछ क्षण के लिए ध्यान में एकाग्र हो जाती है.....।

कुछ देर बाद एकदम उसका पैर नीचे को धंसता है। वह चौंक उठती है। पैर की तरफ देखती है तो एक शिला है जो कि एकदम नीचे खिसक रही है। वह धीरे से उस शिला को उठाती है तो उसको सीढ़ियाँ दिखती हैं वह धीरे-धीरे नीचे उतर जाती है।

अहा हा!! यह विशाल जिनमंदिर! चारों तरफ रत्नों की जगमगाहट ! वह हर्ष विभोर हो जय-जयकार करने लगी-णमो अरिहंताणं..........

ऐसा मंदिर आज तक मैंने देखा ही नहीं है! क्या दिव्य सजावट? क्या दिव्य जिनेन्द्रदेव की रत्नमयी प्रतिमा? सिंहासन, छत्र, चामर आदि दिव्य विभूतियाँ ! चन्द्रोपक तोरण रत्नों की चकचकाहट! एक से एक बढ़कर चित्रकला! भक्ति में तन्मय हो प्रभु का दर्शन करती है। पुनः मन में सोचती है कि मैं स्नान करके पूजा कर लेती कि उसी समय उसकी दृष्टि एक तरफ पड़ती है। जहाँ धौतवस्त्र हैं। जल से भरे हुए घड़े रखे हैं। वह स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण कर प्रभु का अभिषेक पूजन करना चाहती है तो उसे गजमोती कहीं नहीं दिख रहे हैं। वह सोचने लगी कि जब तक मैं गजमोती नहीं चढ़ाऊँगी, तब तक मेरी पूजा अधूरी ही तो रहेगी......।

सामने दृष्टि डालते ही गजमोतियों का ढेर लगा हुआ है। हर्ष में नाच उठती है। नाना प्रकार से

स्तुतियों का उच्चारण करते हुए त्रिभुवनपति जिनेश्वर की अभिषेक-पूजाविधि करके गजमोतियों को मनमाने चढ़ाकर अपने जीवन को कृतार्थ कर लेती है। वह समझती है कि बस आज ही तो मेरा जन्म लेना सार्थक हुआ है, आज मैं धन्य हो गई, पवित्र हो गई। मेरी स्त्रीपर्याय से छूटने का सर्वोत्तम कारण और साक्षात् मुक्ति को प्राप्त करने का मूल कारण सम्यग्दर्शनरूपी महारत्न मुझे मिल गया है।

पुनः मनोवती को उसी जीने से वापस आते समय दो मोती दिखते हैं उन्हें वह उठाकर हाथ में लेकर शिला उठाकर ऊपर आ जाती है और शिला वापस ढक देती है। कुछ क्षण वहीं बैठकर पतिदेव की प्रतीक्षा करती है। इतने में कुमार बुद्धिसेन आते हैं। वह उठकर स्वागत करती है और विनम्र शब्दों में बोलती है – स्वामिन्! अब शीघ्र ही भोजन सामग्री लाइये। मुझे भूख लग रही है। बुद्धिसेन तत्क्षण उल्टे पैर मुड़ जाते हैं। अहो! क्या कारण है कुछ समझ में नहीं आ रहा है? मेरी प्राणों से प्यारी भार्या का मुख पीला हो रहा है, शरीर यष्टि शिथिल हो चुकी है, आँखें अंदर को धँसी जा रही हैं। क्या चिंता से ही इतनी दुर्बलता आयी है या किसी व्याधि ने घेर लिया है? क्या बात है?. ... दीर्घ निः श्वास लेते हैं......। अरे दुर्दैव ! तू बड़ा ही निष्ठुर है। आज यहाँ रतनपुर में भी मुझे आये चार दिन हो गये, कुछ भी ठिकाना नहीं है। कुछ देर बाद कुमार ने चावल, दाल, मसाला, साग-सब्जी आदि सामान मनोवती के सामने रख दिया। उसने भोजन तैयार किया, पतिदेव को जिमाया और पुनः आप भोजन किया।

ओहो! आज आठवां दिन है। सात दिन तक उपवास करके आठवें दिन अपनी प्रतिज्ञा को निभाने के लिए देवों के आसन हिला दिये। धन्य है यह प्रतिज्ञा! और धन्य है यह दृढ़ता! धन्य है धैर्य और धन्य है साहस! जिसकी प्रतिज्ञा पूर्ति के लिए देवगण भी कटिबद्ध हुए। जिसकी प्रतिज्ञा को पूर्ण कराने के लिए सौधर्म इन्द्र ने आदेश किया और अर्धनिमिष में जिनमंदिर का भव्य निर्माण हो गया। वह मनोवती भी धन्य है और इस लोक में सदैव उसकी धवल कीर्तिपताका लहराती ही रहेगी।

बगीचे में बसंतऋतु अपनी मधुरिमा से सबका मन आकर्षित कर रही है। अशोक की लाल-लाल कोंपल को खा-खाकर तोते क्रीड़ा कर रहे हैं। आम्र की ताजी मंजरियों को खा-खाकर कोयल अतीव मधुर शब्द बोल रही हैं। पक्षीगणों की कलरव ध्वनि से सारा बगीचा पुलकित हो रहा है। मानों वह मनोवती के गुणगान को गाने में ही एकतान हो गया है। कहीं पर लताएँ फूलों को बिखेर रही हैं और एक तरफ बकुलवृक्ष मौलसिरी की कलियों को बिखेरते हुए मानों मनोवती की अर्चना ही कर रहा है।

मनोवती प्रसन्न है और पति की उदासीनता को दूर करने के लिए निवेदन करती है –

''स्वामिन्! आप उदासीन क्यों हैं? चार दिन हुए बाजार में जाकर आप वापस आ जाते हैं दिनभर आपका कैसा व्यतीत होता है? किसी का कुछ परिचय हुआ या नहीं?''

बुद्धिसेन दीर्घ निःश्वास लेकर कहते हैं-''प्रिये! मैं क्या बताऊँ? मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि मेरा

भाग्य इस समय बिल्कुल साथ नहीं दे रहा है। बहुत लोगों से मेरा परिचय हो चुका है। सब प्रेम से बोलते हैं, पास में बिठाते हैं किन्तु किसी ने अभी तक यह नहीं कहा कि तुम मेरे से कुछ द्रव्य लेओ और व्यापार धंधा करो। मुझे भी किसी से कुछ माँगते हुए शर्म आती है। मैं क्या करूँ? मुझे ऐसा लगता है कि अब मेरे से कुछ भी नहीं होगा?''

''आप इतनी जल्दी निराश क्यों हो रहे हैं? जब तक अपने पास धर्म है, तब तक अपने को कोई भी चिंता नहीं है आज नहीं कल, कल नहीं परसों, कुछ न कुछ व्यापार का सिलसिला जमेगा ही।' 'यदि अपना पुण्य का ही उदय होता तो अपने को अपने पिता ही घर से क्यों निकाल देते? अपना भाग्य इस समय बहुत ही कमजोर दिख रहा है।''

मनोवती अपने पति को एक मोती देती है और कहती है-''अब आप उठिये, चिन्ता छोड़िए, मैं जैसा कहती हूँ वैसा कीजिए। जहाँ पर वह नग आपने गिरवी रखा है, वहीं पर जाकर उनसे एक मुहर ले लीजिए। फिर आप सीधे राजदरबार में पहुँचिये। यदि द्वारपाल आपको रोकेगा तो आप उसे मुहर दे दीजिए और आगे राजा के पास पहुँचकर उनके समक्ष भेंटरूप में यह मोती प्रदान कर दीजिए। फिर देखिए अपना भाग्य तत्काल पल्टा खा जायेगा।''

कुमार मनोवती के कहे अनुसार मोती लेकर चल पड़ता है और उसी उपाय से राजा के पास पहुँचकर वह मोती उन्हें भेंट करता है। राजा उस मोती को बार-बार देखते हैं और आश्चर्य से पूछते हैं-

''आप कौन हैं? कहाँ से आये हैं? आपका शुभनाम क्या है और आपके साथ और कौन-कौन हैं?''

''मेरा नाम बुद्धिसेन है? मैं बल्लभपुर के प्रख्यात जौहरी हेमदत्त सेठ का पुत्र हूँ मेरी धर्मपत्नी मेरे साथ हैं?''

''अच्छा! तो आप अभी कहाँ ठहरे हुए हैं?''

''मैं शहर के बाहर मकरकेतु नामक बगीचे में ठहरा हुआ हूँ।''

''मंत्रिन्! खजांची साहब को बुलाओ।''

''जो आज्ञा महाराज!

तत्क्षण ही खजांची साहब उपस्थित हो जाते हैं -''हुकुम कीजिए महाराज!''

''देखो, मुहरों से भरा हुआ स्वर्ण थाल ले आओ और उत्तम-उत्तम वस्त्र आभूषण जो कि युगल दम्पत्ति के लिए हों, ऐसे वस्त्र आभूषण ले आओ।''

खजांची कुछ देर बाद सब वस्तुएँ उपस्थित कर देता है और महाराज कुमार बुद्धिसेन को पुरस्कार में देते हैं और मंत्री से कहते हैं -

''मंत्रिन्! तुम स्वयं जाकर शहर के भीतर उत्तर दिशा में जो बड़ी हवेली है, वह इनके लिए खुलवा दो तथा नौकर-चाकर आदि सभी वस्तुओं से इनकी पूरी व्यवस्था कर दो।''

अनन्तर महाराज दूसरे मंत्री से कहते हैं - ''मंत्रिन्! आप अपने रत्नपारखी पुष्पराज को तो बुलाओ।

''जो आज्ञा महाराज!''

तत्काल ही पुष्पराज महोदय पधारते हैं और महाराज का अभिवादन कर अपने उचित स्थान पर बैठ जाते हैं।

''हाँ! देखिये तो सही, यह मोती बहुत बढ़ियां प्रतीत हो रहा है।''

पुष्पराज देखकर विस्मयचकित हो उठता है।

''राजन्! इतना बढ़िया मोती तो इस मर्त्यलोक में मिलना ही कठिन है। यह कोई दिव्य मोती है।''

''इसका मूल्य?''

''हूँ !! राजन्! इसका मूल्य तो.. है यह तो कोई एक अमूल्य वस्तु है।.... मेरी समझ में नहीं आ रहा

''फिर भी.....'' ''इसकी कीमत तो अगर आप आँकना ही चाहें तो महाराज !...... इसकी कीमत पचास करोड़ मोहरों से कम नहीं समझिये।''

''ओहो! इतनी कीमती वस्तु इस जौहरी पुत्र को कैसे मिली? कुछ भी हो, अपने भाग्य में थी अपने पास आ गई। मंत्रिन्! भण्डारी को बुलाओ।

भण्डारी आकर साष्टांग नमस्कार कर एक तरफ खड़ा हो जाता है - ''आज्ञा दीजिए महाराज!''

''हाँ, लो यह मोती बहुत ही बेशकीमती है। तुम इसे बहुत ही संभाल कर भण्डार में रखो।''

''बहुत ठीक!''

भण्डारी चला जाता है और डिब्बे के अंदर मोती को रखकर उसे तिजोरी में रखकर बंद कर देता है।

कुमार बुद्धिसेन बगीचे में पहुँचकर मनोवती को सारा समाचार सुनाते हैं और राजा के आदेश के अनुसार मंत्री स्वयं उनके साथ में थे। उनके साथ ही पत्नी को लेकर शहर की हवेली में आ जाते हैं।

प्रातःकाल मनोवती ने देखा कि अपने पास में वे दोनों मोती मौजूद हैं। वह सोचने लगी कि जब मैंने इनमें से एक मोती राजा को भेंट में भेजा था तो यह वापस यहाँ कैसे आ गया? कुछ देर बाद वह सब रहस्य समझ गई और पुनः पति से बोली- ''आज आप पुनः राजा के पास एक मोती भेंट करके आइये।''

''ठीक है! लाओ।''

बुद्धिसेन उस मोती को लेकर राजदरबार में पहुँचकर राजा के समक्ष भेंट करते हैं। राजा एकदम प्रसन्न हो उठता है– ''वाह! कितनी सुन्दर जोड़ी मिलाई ! मंत्रिन्! भंडारी को बुलाओ कि वे कल का मोती लेकर आवें।''

भण्डारीजी को सूचना मिलते ही तिजोरी से डिब्बा निकालते हैं तो उनके होश गुम हो गये, वे सन्न रह गये। यह क्या? आखिर मोती गई कहाँ? उनके सिर की चोटी से लेकर पैर की एड़ी तक पसीना बह चला। जैसे–तैसे वे अपने को संभाल कर और खाली डिब्बी लेकर महाराज के समक्ष काँपते हुए पहुँचते हैं और नमस्कार करते हैं–

''हाँ भंडारी जी ! लाइये मोती ! जोड़ी मिलानी है।''

''महाराजाधि.......राज......!''

वह बोलते–बोलते रुक जाता है – ''ये क्या ! मोती गायब हो गई। अच्छा! मैंने जो कह दिया था कि वह बेशकीमती है इसलिए गायब कर दी, इतनी जल्दी.......!

महाराज क्रोध में पागल हो उठते हैं और भंडारी के हाथ से डिब्बा गिर जाता है। बुद्धिसेन को उस भंडारी पर दया आ जाती है।

''सरकार! कोई न कोई चोर आज..... महल में आया होगा जिसने यह मोती चुराई है मम म.. .. महाराज! मैंने चोरी नहीं की......।''

''अरे धूर्त! इस एक मोती के लिए ही चोर आया था और कुछ चोरी न करके केवल इसी एक मोती को ही ले जाता बस, बस ! तू ही चोर है और कोई नहीं।''

''महाराज ! महाराज ! मेरे ऊपर दया दृष्टि करो। महाराज ! मैं निर्दोष हूँ।''

''चुप रह, चुप रह, ज्यादा मत बोला...... अभी.......। इसे फाँसी पर चढ़ाने के लिए ले जाओ। कोतवाल! इधर आ......।''

बुद्धिसेन बीच में ही महाराज को शांत करते हुए कहते हैं। ''महाराज! आप शांत होइये। मैं आपको कल इसकी जोड़ी लाकर देऊंगा।।''

सभी दरबारी लोग एकदम धन्य–धन्य बोल उठते हैं– ''कुमार! आप धन्य हैं! आपने आज भंडारी के प्राणों की रक्षा की है। आप महा पुण्यशाली जीव हैं और महान हैं।''

बुद्धिसेन वहाँ से आकर अपनी धर्मपत्नी मनोवती से सारी कथा सुना देते हैं...... और कहते हैं –

''हाँ, तो अब दूसरी मोती भी देवो, अपने पास मत रखो।' मनोवती चिढ़कर बोलती है – ''वाह!

बिना समझे–बूझे आपने राजा को दूसरी मोती देने का आश्वासन कैसे दे दिया? मैंने तो आपको कल एक मोती दी थी और एक आज दे दी। भला अब मेरे पास तीसरी मोती कहाँ से आयेगी?''

बुद्धिसेन एकदम अवाक् रह जाते हैं और सोचने लगते हैं यह क्या हुआ? पुनः मनोवती के मुख को देखते हैं। तब मनोवती हंसकर विनम्र शब्दों में कहती है –

''अबकी बार तो मैं आपकी बात रख लूँगी और मोती दे दूँगी। परन्तु मेरे स्वामिन्! अब आगे से आप बिना जाने–बूझे ऐसी गलती नहीं कर देना।''

इसके बाद वह अपने पति को अपनी दर्शन प्रतिज्ञा के विषय में आद्योपांत घटना सुनाती है, वह कहती है– ''प्रियतम! मैंने बाल्यकाल में दिगम्बर मुनिराज के समीप ही विद्या ग्रहण किया था, मेरे संस्कार धर्म के बहुत ही उज्ज्वल थे। जब मैं यौवन अवस्था में आई, मेरे पिता ने पुरोहित के द्वारा बहुत से देशों का अन्वेषण करके मेरे लिए आपको योग्य वर निर्धारित किया। मैंने समझ लिया कि अब मेरी शादी होने वाली है। एक दिन पुनः मैं महामुनि के निकट गई और दर्शन–स्तुति करके उनसे प्रार्थना करने लगी–भगवन्! मुझे कोई ऐसा नियम दीजिए कि जिससे मेरा जीवन सार्थक हो जावे।...... उस समय मुनिराज ने मुझे सर्व रत्नों में शिरोमणि शीलव्रत दिया पुनः मैंने और कुछ इच्छा व्यक्त की तब उन्होंने पुष्पांजलि व्रत करने का उपदेश देकर उसकी विधि बताई और मैंने गुरु से यह व्रत भी ग्रहण किया है।

इतने पर भी मुझे संतोष नहीं हुआ और मैंने ऐसा नियम लिया कि मैं जिनेन्द्रदेव के मंदिर में जब गजमोती के पुंज चढ़ाऊँगी, तभी भोजन करूँगी। स्वामिन्! इसी नियम से मैंने आपके घर में तीन उपवास कर डाले थे और फिर भाई मनोज कुमार के आने पर भेद खुलने पर आपके पिता ने मुझे ढेरों गजमोती दिखाये थे और उन्होंने कहा ''बेटी! जब तक तू जियेगी, तब तक ये मोती खत्म नहीं होंगे। तू मनमाने गजमोती चढ़ा और जिनेन्द्र देव की आराधना कर।'' लेकिन मेरे दुर्भाग्य ने आपको ही उनसे जुदा कर दिया।

मैं इस रतनपुर के बगीचे में तीन दिन तक भूखी रही और रास्ते से चार दिन की निराहार थी। सात उपवास के बाद भी मैंने मन चंचल नहीं किया। प्रतिज्ञा से च्युत होने का मेरे मन में अणुमात्र भी विकल्प नहीं हुआ। जब आप बार–बार मेरे शरीर की अस्वस्थता पर चिन्ता व्यक्त कर रहे थे।... प्राणनाथ! मैं उस समय अपने आपको पत्थर का बनाकर स्थिर थी। मैं आपसे क्या कहती और आप मेरी क्या सहायता करते? किन्तु... धर्म का प्रभाव अचिन्त्य है। देवों ने आकर मुझे जिनेन्द्रदेव के दर्शन कराये और मेरी प्रतिज्ञा पूरी की। बगीचे में अकस्मात् नीचे मेरा पैर धसका, मैंने शिला उठाकर देखा तो विशाल जिन मंदिर था... ओहो! उसका क्या वर्णन करना! वहाँ मैंने गजमोती चढ़ाये और पुनः आते समय शिला के पास मुझे ये दो मोती मिले। ये नर–मादा मोती हैं इनका यह स्वभाव है कि ये अकेले कभी नहीं रहेंगे–नियम से नर मोती मादा के पास आ जायेगा। सारे रहस्य को सुनकर बुद्धिसेन आश्चर्य से

अपनी प्राणप्रिया का मुख अवलोकन करते हैं और आनन्द में विभोर हो जाते हैं। अपने भाग्य को धन्य समझते हैं।

अर्धरात्रि में पुनः वह 'नर मोती' उड़कर मनोवती के पास रखी हुई 'मादा मोती' के पास आ जाता है। दूसरे दिन बुद्धिसेन पुनः मनोवती से मोती लेकर राजा के दरबार में पहुँचता है और राजा को भेंट में प्रदान करता है। राजा पुनः भंडारी को बुलवाते हैं और भंडारी तो मोती का डिब्बा खाली देखकर वहीं स्तब्ध हो जाता है। वह सोचता है अरे! मैंने डिब्बे में रखकर तिजोरी में डिब्बा रखा और उसे सात ताले की कोठरी में बंद करके रखा था तो भी यह क्या हुआ?

खैर! जैसे-तैसे साहस करके भण्डारी दरबार में उपस्थित होता है और पुनः राजा के सामने गिड़गिड़ाता है। राजा आज तो उसके ऊपर आगबबूला हो उठते हैं किन्तु बुद्धिसेन कुमार महाराज के क्रोध को शांत करते हैं और कहते हैं - ''राजाधिराज! इन मोतियों का रहस्य देखिये! मैं अभी आपकी इस मोती का जोड़ा मिलाये देता हूँ और अब ये आपके महल में रहेंगे। यह जो मोती मैं आपको दे गया वह 'नर' मोती था। यह हजारों कोश की दूरी पर क्यों न हो किन्तु उड़कर 'मादा' मोती के पास पहुँच जाता है यह इसका स्वभाव है अतः अभी तक दो दिन हुए यह 'नर' मोती बराबर उड़कर चला जाता रहा है। इसमें आपके भण्डारी का रंचमात्र भी दोष नहीं है।'

दूसरा मोती देते हुए -'लीजिए महाराज ! यह 'मादा' मोती है, अब ये दोनों आपके यहाँ रहेंगे।'

रतनपुर नरेश यशोधर अत्यधिक प्रसन्न होकर मन में सोचते हैं-यह कुमार उत्तम कुल प्रसूत है, बुद्धिमान् है और पुण्यवान् है। इसने मुझे अनुपम भेंट दी है बदले में मैं भी इसे कृतार्थ करूँ....... कुछ क्षण सोचकर महाराज निर्णय कर लेते हैं कि इसे अपनी 'गुणवती' कन्या देना।

''कुमार बुद्धिसेन ! मैं आपसे बहुत ही प्रसन्न हूँ और आपसे अपना स्थायी संबंध स्थापित करना चाहता हूँ।..... मेरी एक गुणवती नाम की कन्या है। मेरी दृष्टि में वह सर्वथा आपके ही योग्य है। आप उसे स्वीकार करें तो मैं कृतकृत्य हो जाऊँ।''

बुद्धिसेन राजा की बात सुनकर लज्जा से अपना माथा झुका लेते हैं और मौन से ही स्वीकृति दे देते हैं भला राजपुत्री किसे नहीं भायेगी?

महाराज उसी समय मंत्री से कहकर ज्योतिषी को बुलवाते हैं और शुभमुहूर्त निकलवाते हैं। शहर भर में चर्चा फैल जाती है कि गुणवती राजपुत्री के भाग्य से अकस्मात् रतनपुर में कोई एक 'नररत्न' आया है। राजा ने वैशाख सुदी तीज को कन्या का विवाह निश्चित कर दिया।

बुद्धिसेन वहाँ से उठकर घर पहुँचते हैं और मनोवती से कहते हैं 'प्रिये ! तुमने मुझे मेरे द्वारा राजा को मोती की भेंट दिलाकर गहरे बंधन में बँधवा दिया।'

''क्या हुआ कहिए तो सही? आप तो बहुत ही प्रसन्न दिख रहे हैं।''

राजा ने अपनी कन्या के साथ मेरी शादी करने का निर्णय कर लिया है और मुहूर्त भी.......।

मनोवती बीच में ही बात काट कर हँसते हुए –

''अच्छा, अच्छा ! तो आप राजजमाई हो गये। ठीक है अब तो आप मुझे न भूल जाना।''

''वाह! प्राणबल्लभे ! कैसी बातें कहती हो? यह सब तुम्हारा ही प्रसाद है। तुम्हारी ही प्रतिज्ञा के प्रभाव से ये मोती मिले और मोतियों की भेंट से ही मुझे राजसम्मान प्राप्त हुआ है। प्रिये! यह एकमात्र तुम्हारी प्रतिज्ञा का ही चमत्कार है। जो चंद मिनटों में अप्रतिम वैभव से मिला रहा है, रंक से राव बना रहा है और उच्च स्थान पर पहुँचा रहा है। सच है......धर्म के प्रसाद से ही विष भी अमृत बन जाता है, दुर्दिन भी मंगलमयी हो जाते हैं और आकाश से भी रत्नों की वर्षा होने लगती है।''

''इसलिए स्वामिन्! हमेशा धर्म की उपासना करते रहिए।''

''ठीक ही है प्रिये ! जब धर्म की मूर्तिस्वरूप तुम मेरे घर में विद्यमान हो तो भला मैं धर्म से पराङ्मुख कैसे हो सकूँगा? प्रिये! मैं सदैव तुम्हारी आज्ञा का पालक ही रहूँगा।''

''आप यह क्या कह रहे हैं? आप तो सदैव हमारे पूज्य हैं। मैं सदैव आपकी आज्ञाकारिणी आपके चरणों की दासी हूँ। आपके सुख में सुखी और दुःख में दुःखी होना यह मेरा परम कर्तव्य है और मेरा परम सौभाग्य है कि आप मुझे अपने साथ लेते आये हैं।''

''सच है प्रिये ! यदि आप मेरे साथ न होतीं तो आज यह उन्नति का दिन देखने को नहीं मिलता।''

इसी प्रकार से उभय दम्पत्ति सुखपूर्वक वार्तालाप करते हुए कुछ क्षण बाद निद्रा देवी की गोद में पहुँच जाते हैं। प्रातः मंगल वाद्यों के साथ प्रभाती होती है। दोनों उठकर अपनी धर्म क्रिया में तत्पर हो जाते हैं।

वैशाख सुदी तीज के दिन बड़े ठाटबाट से कुमार बुद्धिसेन का विवाह राजकन्या गुणवती के साथ हो जाता है। महाराज यशोधर अपने जमाई को अपना चौथाई राज्य देकर उसे अनेकों ग्रामों का राजा बना देते हैं। मनोवती भी प्रसन्न है, क्यों न हो? क्योंकि उसकी प्रतिज्ञा के प्रभाव से यह सब उन्नति हो रही है। विवेकशील पत्नी अपने पतिदेव की उन्नति को देखकर अपनी ही उन्नति समझती है। मनोवती तत्त्वज्ञान से भरपूर है। उसने मुनिराज के पास धर्म ग्रन्थों का गहरा अध्ययन किया है, वह अपने में मगन है।

कुमार बुद्धिसेन अब जौहरी पुत्र ही नहीं रहे बल्कि राजा हो गये हैं और मनोवती उनकी महारानी है। बुद्धिसेन अपनी बुद्धि के बल से उस रतनपुर में सभी के स्नेहभाजन बन चुके हैं और मनोवती भी सभी के लिए एक आदर्श महिलारत्न प्रख्यात हो चुकी है। मनोवती का धवल यश चारों तरफ अपनी सौरभ को बिखेर रहा है। महल के उद्यान में चारों ओर हरियाली ही हरियाली दिख रही है। क्रीड़ा सरोवर जल

से परिपूर्ण भरे हुए हैं और उनमें लाल कमल खिल रहे हैं किसी सरोवर में श्वेत कमल फूल रहे हैं। पवन उन कमलों की पराग मिश्रित सुगन्धी को चुरा-चुराकर ले जा रहा है और मनचाहा सबको बांट रहा है। मेघ की गर्जना सुनते ही मयूरों का तांडव नृत्य शुरू होता है। एक मयूर तो अपनी मयूरनी के सामने थिरक-थिरक कर नाच रहा है। सरोवरों में राजहंस अपनी हंसी के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं, बत्तखें पानी में तैरती हुई ऐसी मालूम पड़ती हैं मानो विद्याधरों के छोटे-छोटे विमान ही पृथ्वी पर उतर आये हों। भास्कर भगवान् अपने सहस्रकरों से दिनश्री का आलिंगन करके अब परदेश प्रस्थान के समय उसे अपनी भुजाओं से अलग करना चाहते हैं किन्तु दिनश्री स्वामी के वियोग को सहन करने में असमर्थता व्यक्त करते हुए ही मानो रंग-बिरंगी साड़ी पहनकर पति के साथ चलने को तैयार हो जाती है किन्तु भास्करदेव के पुनर्मिलन के आश्वासन से वह वहीं ठहर जाती है।

महल के अग्रिम भाग से मनोवती के नेत्र चारों ओर की शोभा को निरख रहे हैं। अकस्मात् सामने से कौन आ रहा है? ओहो! पतिदेव!........ आज इधर कैसे चले आ रहे हैं? क्या कोई विशेष कारण आ गया? क्या बिना कारण से नहीं आते......? हो सकता है कि आज कोई पुरानी स्मृति आ गई हो।

कुमार बुद्धिसेन ऊपर पहुँचते हैं और मनोवती स्वागत के लिए खड़ी हो जाती है। पतिदेव के उचित आसन पर बैठने के अनंतर मनोवती भी पास में बैठ जाती है-

''आप राजजमाई हो गये हैं, फिर भला आज इधर कैसे आ गये? कोई विशेष हेतु?.....''

बुद्धिसेन अतीव शर्म से माथा नीचा कर लेते हैं, कुछ भी जवाब नहीं दे पा रहे हैं। मन-ही-मन सोचने लगते हैं-ओहो! मैंने बहुत बड़ी गलती की है- ''...अब तो आप राजा के एकमात्र स्नेहभाजन हैं। फिर गुणवती जैसी गुणवती राजदुलारी आपके चरण दाबती है। सच है, राज्यलक्ष्मी और मद को न करे ऐसा होना प्रायः कठिन ही है.....।''

मनोवती कुछ क्षण रुक जाती है किन्तु बुद्धिसेन जब एक शब्द भी नहीं बोलते हैं तब पुनः वही बोलती चली जाती है।

''स्वामिन्! वे बातें तो सर्वथा भूल जाने की ही हैं कि आपको आपके पिता ने घर से निकाल दिया और आप हस्तिनापुर आये, मैंने हठपूर्वक आपका साथ किया। हाँ! अब तो आप राजठसक में डूबे हुए हैं पुनः आपको मेरी स्मृति आज कैसे आ गई?''

''अस्तु! कोई बात नहीं है। आपने मुझे भुला दिया तो भी आपकी कोई हानि नहीं होगी किंतु....... स्वामिन्! ऐसे ही राज्यलक्ष्मी के नशे में होकर आप धर्म को नहीं भुला देना कि जिसके प्रसाद से आप इस वैभव को प्राप्त हुए हैं।''

''मेरे से यद्यपि बहुत बड़ा अपराध हुआ है फिर भी आपका हृदय विशाल है आप एक बार क्षमा दान दीजिए..... शायद भविष्य में पुनः ऐसी गलती अब नहीं हो सकेगी।' कुछ क्षण सोचकर, 'प्राणप्रिये! अब आप जो भी आदेश दें, मैं करने को तैयार हूँ।''

मनोवती शांत हो जाती है और पुनः विनम्र शब्दों में बोलती है – ''प्रियतम्! आपने प्रत्यक्ष में धर्म के फल को देखा है कि जिसने जंगल में अपने को उठाकर मंगल में स्थापित किया है। चारों पुरुषार्थों में यह धर्म पुरुषार्थ ही प्रथम पुरुषार्थ है। जितने भी संसार के उत्तम–उत्तम सुख हैं, वे सब धर्मरूपी बगीचे के ही फल हैं और तो क्या अक्षय–अनंत–अविनाशी मोक्ष सुख भी इस धर्म के प्रसाद से ही मिलता है और धर्म का निकेतन श्रीजिनमंदिर ही है अतः मेरी इच्छा है कि आप एक विशाल जिनमंदिर का निर्माण कराइये।''

बुद्धिसेन अतीव प्रसन्न होकर – ''प्रिये! आपने बहुत ही उत्तम बात सोची है। यह कार्य तो मैं अवश्य ही करूँगा। प्रातः ही ज्योतिषी से मुहूर्त निकलवा कर नींव रखा देनी है.....।''

''स्वामिन्! आगम में जिनमंदिर बनवाकर उसमें जिनप्रतिमा के विराजमान कराने का पुण्य अचिन्त्य कहा है। इस महान् कार्य से आपका सर्वत्र यश फैलेगा और परलोक में भी उत्तम फलों की प्राप्ति होगी। जिनबिम्ब निर्माण का फल तो अन्त में मोक्षपद ही माना गया है।''

''आपके आदेश का पालन अतिशीघ्र करूँगा। अब आप और कुछ सुनाइये।''

हँसकर मनोवती कहती है– ''मुझे तो जो भी सुनाना था सुना दिया, अब आप ही कुछ सुनाइये चूँकि आप बहुत दिन बाद आये हैं इतने दिनों में आपको राजनीति का भी काफी अनुभव आ चुका होगा।''

''क्षमा याचना के बाद आप मेरी गलती को पुनः क्यों दोहरा रही हैं? मैं तो इस समय सहजभाव से ही पूछ रही थी यदि आपको कुछ नहीं बताना है तो छोड़िये।''

मनोवती कुछ क्षण सरस मधुर वार्तालाप के द्वारा पति के मन को हल्का करती है। प्रेमपूर्ण वातावरण में बुद्धिसेन अपनी पत्नी के गुणों का मूल्यांकन करते हुए मानो उसे अपना सर्वस्व समर्पित करते हुए ही उसके गाढ़ आलिंगन में बँध गये थे..।

चारों तरफ चिड़ियाँ चहचहा रही हैं, मंगल बाजे बज उठे, वैतालिक ने प्रभाती के मधुर गान से मंगलमयी ऋषभदेव यश गाया, मनोवती उठती है और सबसे पहले महामंत्र का स्मरण करते हुए पंचपरमेष्ठी को नमस्कार करती है पुनः पतिदेव के चरण स्पर्श करके अपने प्रभातिक कार्यों में संलग्न हो जाती है। बुद्धिसेन भी स्नानादि से निवृत्त होकर अपनी सुमुखि मनोवती के साथ जिनेन्द्रदेव का अभिषेक–पूजन करके भोजन करते हैं और वहाँ से चलकर सीधे राजदरबार में पहुँचते हैं।

महाराज यशोधर अपने जमाई का समुचित सत्कार करके अपने पास ही भद्रासन पर बिठा लेते हैं और कुशल क्षेम पूछकर व्यंग्य रूप से मनोविनोद करते हुए कुमार के मन को प्रसन्न करते हैं। समय पाकर बुद्धिसेन निवेदन करते हैं–

''पूज्यपाद! आपके समक्ष मैं कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।''

‘‘कहिये कहिये ! मैं तो इसी प्रतीक्षा में हूँ कि आप लोगों का कुछ उपकार कर सकूँ।’’

‘‘महाराज! आपकी पुत्री मनोवती एक विशाल जिनमंदिर बनवाने की इच्छा व्यक्त कर रही है।’’

यशोधर अतीव प्रसन्न हो गद्‌गद् होकर – ‘‘बहुत अच्छा है, बहुत अच्छा है! वाह ! क्या उत्तम विचार है। धन्य है वह रमणीरत्न, धन्य है! कुमार ! तुमने ऐसी धर्मपत्नी पाकर वास्तव में जीवन में सब कुछ पा लिया है। तुम बहुत ही पुण्यशाली आत्मा हो......। अच्छा तो तुम इस रतनपुर शहर में जहाँ चाहो वहाँ, जितनी जगह में चाहो उतनी जगह में, जितना बड़ा मंदिर चाहो उतनी बड़ी जगह घेरकर काम शुरू करा दो।’’

‘‘ज्योतिषी से पहले मुहूर्त निकलवाना होगा।’’

‘‘हाँ, हाँ, मंत्रिन्! ज्योतिषी को शीघ्र ही बुलावो।’’

कुछ ही क्षण में ज्योतिषी आकर यथोचित् अभिवादन करता है –

‘‘जय हो ! जय हो ! महाराजाधिराज की जय हो!’’

‘‘हाँ, पण्डित जी विराजिये।’’

पंडित जी कर्मचारी के द्वारा प्रदत्त आसन पर बैठ जाते हैं।

‘‘मंदिर जी के निर्माण हेतु बहुत ही उत्तम मुहूर्त निकालिए।’’

पंडित कुछ देर तक पंचांग देखते हैं और गणित का हिसाब करते हुए पूछते हैं –

‘‘राजन्! किनके नाम से?’’

‘‘हमारे जमाई बुद्धिसेन के नाम से।’’

बुद्धिसेन की तरफ देखकर ‘‘धन्य हो महाराज, धन्य हो! आप बड़े ही महिमाशाली हो। श्रीमान् जी! कल सुबह साढ़े आठ बजे का मुहूर्त बहुत ही श्रेष्ठ है। इस मुहूर्त पर किये गये निर्माण का यश.......क्या बताऊँ आपको, युग–युग तक इस पृथ्वी तल पर फैलाता रहेगा। जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र की कीर्ति आज भी भूमण्डल पर फैल रही है और न जाने कब तक फैलती रहेगी और ऐसे ही महाराज! इस मुहूर्त पर मंदिर के निर्माण को प्रारंभ करने से आप लोगों की कीर्ति अमर हो जायेगी।’’

‘ठीक, ठीक! बहुत ठीक! अब विधानाचार्य को बुलवाकर उनसे समझ लीजिए, कल प्रातः किन–किन वस्तुओं की आवश्यकता होगी। अच्छा, आप तो अब प्रमुख मंत्री के साथ जाकर जगह का निर्णय कीजिए, देर न कीजिए।’’

‘‘जो आज्ञा महाराज!’’

बुद्धिसेन प्रमुख मंत्री के साथ स्थान का निर्णय करके एक कोश की जगह को घेर कर रत्नचूर्ण से लाइन डलवा देते हैं। पुनः मनोवती के महल में पहुँचकर सारी बात सुना देते हैं।

प्रातःकाल विधानाचार्य की आज्ञा के अनुसार कुमार अपनी धर्मपत्नी मनोवती के साथ शुभ्र धौत वस्त्र पहन कर श्री जिनेन्द्र देव की आराधना करके उस स्थान पर पहुँच कर श्री जिनभवन के नींव खनन की विधि को विधिवत् करते हैं। एक कोश के चारों ओर नींव की खुदाई शुरू हो जाती है। पुनः शुभ मुहूर्त में शिलान्यास विधि करके निर्माण काम चालू करा देते हैं। योग्य कार्य-संचालक को बुलाकर बुद्धिसेन आदेश देते हैं –

''हाँ, देखिये, धनपालजी ! मैंने तिजोरियों की कोठी खुलवा दी है। जितना द्रव्य लगे लेते जाइये और खुले मन से खुले हाथों द्रव्य खर्च कीजिए। जो भी कारीगर (मिस्त्री) और मजदूर आवें, उन्हें काम पर लगाइये। किसी को वापस नहीं करना। समझ गये ना!''

''हाँ सरकार! समझ गया। बहुत ही बढ़िया काम होगा। हमें तो बड़े-बड़े मंदिरों का, रजवाड़ों का और हवेलियों का बहुत बड़ा अनुभव है। मैं तो अच्छे-अच्छे नक्शे बनाने वालों को, चित्रकारों को और अच्छे-अच्छे कारीगरों को बुलाऊँगा। बड़ा शानदार मंदिर बनेगा महाराज ! आप तो देखते ही हर्ष में विभोर हो उठेंगे।''

''ठीक है, और जो कुछ भी आवश्यकता हो, मुझे कहना।' चारों तरफ दूर-दूर देश में चर्चा फैल जाती है कि बहुत बड़ा जिनमंदिर बन रहा है। तमाम मजदूर चले आ रहे हैं और काम दिन पर दिन द्रुतगति से चल रहा है।

दैव की लीला बड़ी विचित्र है, यह कभी किसी पर रहम नहीं करता है। अतिशय कठोर प्रकृति वाला है। चौदह परदेशी लोग आकर रतनपुर के बाहर बगीचे में ठहरे हुए हैं। उनके साथ छोटे-छोटे बच्चे रो रहे हैं। वे लोग कई दिनों के भूखे हैं। धनदत्त, सोमदत्त, विनयदत्त, जिनदत्त, अमरसेन और धरसेन छहों भाई खड़े-खड़े चर्चा कर रहे हैं। सभी स्त्रियाँ किंकर्तव्य-विमूढ़ हुई बैठी हुई बच्चों को चुप कर रही हैं। बच्चे जोर-जोर से रो रहे हैं, भूख से व्याकुल हो रहे हैं। बेचारे वृद्ध दंपत्ति आँखें गीली किये हुए बैठे कुछ सोच रहे हैं। धनदत्त आगे बढ़कर कहता है –

''चलो भाई चलो ! अब देरी ना करो, देखो ना! परसों उस छोटे से गाँव में भीख में कुछ सूखे चने मिले थे जो कि माँ और पिता से तो खाये भी नहीं गये थे। कल दिन-रात चलते-चलते हो गया, अन्न-पानी नसीब नहीं हुआ है। आज भी इतना दिन ऊपर चढ़ आया है मेरे खुद के प्राण कण्ठ में आ रहे हैं। चलो चलो ! देखें गाँव तो पास ही है। यह तो बहुत बड़ा शहर दिख रहा है। कुछ अच्छी भीख मिले तो सबका पेट भरे। हाय ! बेचारे बच्चे तो कैसे बिलख रहे हैं।''

''भाई ! सब ना चलो, तो एक दो लोग ही चलो। कोई निकलो तो सही ! लो मैं साथ चलता हूँ।''

''हाँ, हाँ धरसेन ! तू आगे बढ़ तभी कोई आगे बढ़ेगा, ये लोग तो बातों में ही घंटों निकाल देंगे। देख तो सही ! तेरे पिता जी की क्या स्थिति हो रही है? नहीं तो चल मैं भी साथ चलती हूँ।''

''नहीं नहीं माँ! तुम तो आज बहुत थकी हो.......। तुम बैठ जावो......। हाँ, देखो ! इस झाड़ के नीचे ठंडी-ठंडी हवा चल रही है, थोड़ा सा आराम कर लो।''

''अरे बेटा! पेट में तो आग जल रही है, ऊपर से ठण्डी हवा क्या करेगी?''

छहों लड़के जल्दी-जल्दी शहर की तरफ चलते हैं। अन्दर घुस कर एक दुकान के पास खड़े हो जाते हैं-

''भाई साहब ! हमें कुछ पैसे दे दो।''

वह दुकान मालिक सेठ इन्हें ऊपर से नीचे तक देखता है और आश्चर्य से चकित होकर कहता है-

''अरे ! भाई ! तुम कौन हो? कहाँ से आये हो?...

''भइया ! दो चार पैसे के लिए हम लोगों का इतिहास क्या पूछना?' दुकान मालिक इनका ऐसा उत्तर सुन तथा दूसरी तरफ से आने वाले अपने-अपने ग्राहकों को देखकर जल्दी से कुछ पैसे उन्हें देता है और कहता है अच्छा, अच्छा ! बढ़ो आगे......। धनदत्त कहता है -

''भाई धरसेन! यह लो, तुम पहले कुछ खाने का सामान लेकर चलो जिससे बच्चों को तसल्ली हो। हम लोग आगे बढ़कर कुछ और प्राप्त कर अपने साथी के पेट भरने का पूरा सामान लेकर आ जावेंगे।''

''ठीक!''

धरसेन कुछ रोटियाँ खरीद कर जल्दी से वापस बगीचे में पहुँचता है। इधर पाँचों भाई धीरे-धीरे आगे बढ़कर अन्य कुछ माँगकर उनका सामान खरीदकर वापस बगीचे में आ जाते हैं। सभी लोग स्नानादि करके कुछ न कुछ खाकर पानी पीकर कलेजे को शांत करते हैं। हेमश्री अपने पतिदेव के पैर दबाने लगती है। सभी लोग पास में बैठ जाते हैं।

चर्चायें शुरू हो जाती हैं -

''पिताजी! कल दिन में अपन सभी लोग शहर में ही चलेंगे। वहीं कहीं गुजारा करेंगे। यहाँ बगीचे में कब तक पड़े रहेंगे? देखा ना, ठंडी, गर्मी, भूख-प्यास सहन करते-करते सब बच्चे तो बीमार हो गये हैं। हम लोगों से भी अब जंगल की धूप-छाँव बर्दाश्त नहीं होती है। वैसे शहर अच्छा दिखता है, लोग भले हैं आज कई दिन बाद तो पेट में पूरा अन्न पहुँचा है।''

''पुत्रों! जैसा तुम कहो वैसा करेंगे। क्या करें बुद्धि नहीं काम करती है, भीख माँगते-माँगते भी कितने दिन निकल गये हैं अब अपने दिन कब पलटा खायेंगे?. .. कौन जाने?''

कड़कड़ाती ठण्डी की रात ! सभी बेचारे रातभर बैठे-बैठे सिकुड़े-सिकुड़े निकाल रहे हैं। न तन पर पूरे वस्त्र हैं और न ओढ़ने-बिछाने को रजाई, गद्दे या कम्बल। बच्चे तो माँ की गोद में चिपटे हुए सी-सी करके दाँत कड़कड़ा रहे हैं।

प्रभात होने पर कुछ ऊपर सूर्य आ जाने के बाद सभी लोग एक साथ शहर में प्रवेश करते हैं। चलते हुए मार्ग में रुक–रुककर पथिकों से और दुकानों से कुछ पैसों की याचना करते हैं। आखिर तो पेट भरना ही पड़ता है। यह पेट अगर न होवे तो फिर किसी को कुछ दुख ही न रहे। धीरे–धीरे वे सर्राफों के बाजार में पहुँच गये। शहर के एक प्रमुख जौहरी ने दूर से इन्हें देखा वह तो कुछ देर तक देखता ही रहा पुनः सन्मुख आकर बोलता है –

''महाशय! आप लोग कोई उच्चकुलीन दिख रहे हो, मालूम पड़ता है कि किसी आकस्मिक संकट के आने से मारे–मारे फिर रहे हो ! अरे भाई ! तुम लोग भीख क्यों माँगते हो? कुछ मेहनत मजदूरी करके पेट भरो।''

''भाई! हम लोग अपरिचित हैं इसलिए हमें नौकरी पर कोई रखना नहीं चाहता है। क्या करें?''

''यहाँ पर राजा के जमाई साहब बड़ा सा मंदिर बनवा रहे हैं, उसमें हजारों मजदूर काम कर रहे हैं। तुम लोग वहाँ पहुँच जाओ, वे कुमार बहुत ही दयालु हैं तुम्हें अवश्य नौकरी पर लगा देंगे।''

''भाई साहब ! हमें कोई नहीं जानते हैं नहीं रखेंगे। यदि आप दया करके हम लोगों को नौकरी दिलवा दें तो... आपकी बड़ी मेहरबानी होगी।''

सभी लोग दीनमुख करके गिड़गिड़ाने लगते हैं। जौहरी जी दया से आर्द्र होकर उन्हें साथ लेकर निर्माण किए जाने वाले जिनमंदिर की ओर चल पड़ते हैं। आगे–आगे जौहरी साहब चल रहे हैं व पीछे–पीछे सभी परदेशी भिखारी चल रहे हैं। बेचारे मन ही मन अपने भाग्य को कोसते हुए और कृत कर्मों की निंदा करते हुए कदम से कदम बढ़ाते चले जा रहे हैं। वहाँ पहुँचकर जौहरी जी ड्योढ़ीवान से कहते हैं–''मुझे मालिक से मिलना है।''

द्वारपाल अन्दर जाकर – 'महाराज! शहर के सुखपाल जी जौहरी आपकी सेवा में पधारे हुए हैं। उनके साथ कुछ मजदूर भी हैं। वे आज्ञा चाहते हैं?'

''उन्हें सादर अन्दर ले आओ।''

सभी लोग अन्दर प्रवेश करते हैं। राजदरबार जैसा ठाठ दिख रहा है। कुमार बुद्धिसेन मध्य में सिंहासन पर आरूढ़ हैं। राजसी वस्त्राभरणों से अलंकृत हैं। कानों में लटकते हुए कुण्डल और गले में पड़े हुए रत्नहार की किरणों से चेहरा इतना अधिक चमक रहा है और चारों तरफ इतनी किरणें फैल रही हैं कि मानों सभारूपी आकाश मण्डल में तेजस्वी भास्कर ही उदित हो रहा है। चारों तरफ रत्नों की चकाचौंध से सभा में रंग–बिरंगा प्रकाश जगमगा रहा है। आजू–बाजू मंत्री और सभासद लोग बैठे हुए हैं। मनोरंजन चल रहा है। जौहरी सुखपाल कुमार का अभिवादन करते हैं और कुमार के द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर बैठ जाते हैं –

''कहिये सेठ जी ! आज आपने किस हेतु से मेरा स्थान पवित्र किया है?''

''श्रीमान् जी! ये कुछ परदेशी लोग आये हुए हैं। बेचारे बड़े दुःखी हैं। आप इन्हें अपने यहाँ निर्माण कार्य के लिए नौकरी पर रख लीजिए।''

सभी बेचारे हाथ जोड़े खड़े हैं। बुद्धिसेन उन सबको अपलक दृष्टि से देख रहे हैं...। ओहो!...ये मेरे माता-पिता और भाई-भावज!! अरे रे! रे! ये लोग इस दुरावस्था को कैसे प्राप्त हो गये?... आखिर क्या हुआ? ...हाय! इस चंचला लक्ष्मी को धिक्कार हो! इतनी जल्दी छप्पन करोड़ की सम्पत्ति कहाँ चली गई? ये तो मुझे पहचान भी नहीं रहे हैं।''

''ठीक है सेठ जी! आप निश्चिन्त होइये। इन सबका काम हो जायेगा।'

''अच्छा तो मैं चलता हूँ।''

जौहरी सुखपाल वहाँ से निकल जाते हैं। वे सभी परदेशी खड़े हैं, कुमार कहते हैं -

''तुम सभी लोग बैठो ! अभी दो घंटे में हम तुम्हें काम पर लगा देंगे।''

तत्क्षण वहाँ से उठकर कुमार अपने महल में पहुंचते हैं और मनोवती से कहते हैं-

''प्रिये मनोवती ! अभी एक महान् आश्चर्य की घटना सुनाने के लिए मैं आया हूँ।''

''सुनाइये, सुनाइये!''

उत्सुकता से पास में बैठ जाती है।

''मेरे माता-पिता, भाई और भावज सभी लोग मेरे यहाँ मजदूरी करने आये हैं।''

आश्चर्य चकित हो मनोवती बोलती है -

''ऐं!! आप क्या कह रहे हैं? वे लोग कहाँ हैं? आपने उन्हें 'वे ही लोग हैं' ऐसा कैसे जाना?

''ओहो ! क्या मैं इतनी जल्दी अपने कुटुम्बियों को भूल जाऊँगा? क्या मैं उन्हें पहचान नहीं सकता? अभी कितने दिन हुए हैं शायद एक वर्ष भी तो नहीं हुआ है।''

''स्वामिन्! मुझे विश्वास नहीं है।... हो भी सकता है। दैव का क्या भरोसा? यह क्षण में राजा और क्षण में रंक बना देता है।... फिर भी इतनी अपरिमित सम्पत्ति कहाँ चली गई?''

''आप उसकी चिन्ता छोड़िये। मैं आपसे कुछ विचार-विमर्श करने आया हूँ। उस पर गौर कीजिए।''

''कहिए!''

''इन दुष्टों ने मुझे अकारण ही घर से निकाला है और अब दर-दर के भिखारी बने घूम रहे हैं। फिलहाल तो हमारे यहाँ नौकरी करने आये हैं अब तो हमारा मौका है जो चाहे सो कर सकता हूँ। प्रिये

! यदि तुम कहो तो मैं इनकी ऐसी दुर्दशा करूँ कि ये भी कुछ समझें। कहो तो इनकी खाल उतरवा दूँ, या कहो तो इन पर इतना भार धराऊँ कि जितना पशुओं पर भी न लादा जा सके। और कहो तो इन्हें..

''बीच में बात काटकर –

''हाय! आप क्या बोल रहे हैं? आपके मुख से ये कैसे शब्द निकल रहे हैं? आपको क्या हो गया है? जिन्होंने आपको जन्म दिया ऐसे माता-पिता के प्रति ऐसे शब्द कहते हुए आपको लज्जा नहीं आयी? धिक्कार है आपके जीवन को ! जिनसे आप पैदा हुए हैं, उनके प्रति आपके इतने कड़े शब्द कथमपि उचित नहीं हैं।''

''तो आप क्या चाहती हैं?''

''अब आप तत्क्षण ही कुटुम्ब का मिलाप करो। अपना परिचय देकर उन्हें सुख सम्पत्ति से सुखी करो। स्वामिन्! आप कितना भी उनका उपकार करेंगे तो भी आप माता-पिता के ऋण से कभी भी उऋण नहीं हो सकते। इसलिए अपकार के बदले उपकार ही कीजिए। वास्तव में विचार करके देखा जाये तो यह प्रसंग अत्यन्त बोध दे रहा है। पहली बात तो यह है कि उन्होंने आपका बुरा नहीं किया। आपके और हमारे कर्मों के उदय से ही वैसी समस्या आई। वे तो घर से निकालने में निमित्तमात्र ही हो सकते हैं। पूर्णरूपेण अपने अशुभ कर्मों के उदय से ही अपने को दुःख उठाना पड़ा है। दूसरी बात, अगर वे लोग आपको घर से नहीं निकालते तो आज आप राजजमाई कैसे बनते?..... जरा सोचो तो सही ! तीसरी बात यह है कि जो लक्ष्मी इतनी चंचल है, जिसने क्षणेक में अपने कुटुम्बियों को भिखारी बना दिया है उस लक्ष्मी पर आप भी क्यों इतरा रहे हैं?

प्रियतम! यह लक्ष्मी सभी के साथ ऐसा ही व्यवहार करती है, किसी को भी नहीं देखती है, अपने को पाकर गर्विष्ठ होने वालों के प्रति यह ऐसा ही घृणित व्यवहार करती है उन्हें नियम से धोखा देती है। अतः अब आप वस्तुस्थिति समझकर और लक्ष्मी का अभिमान छोड़कर अपने लोगों को गले से लगाइये।'

कुमार कुछ क्षण चुप रहते हैं पुनः बोलते हैं –

''प्रिये ! एक बार तो मैं इन लोगों से मजदूरी अवश्य कराऊँगा। फिर जो तुम कहोगी, सो ही करूँगा। मैं एक बार अपने मन की अवश्य निकालूँगा पुनः परिचय कराऊँगा।''

''आपका यह सोचना बिल्कुल भी उचित नहीं है।''

''कुछ दिन मजदूरी करके ये लोग अपनी करनी का फल तो पा लें और मैं भी अपने मन की दाह बुझा लूँ।''

''आपका कथन बिल्कुल अनुचित है। अरे! उन्होंने फल तो पा ही लिया है। आप क्या उन्हें फल

दिखायेंगे? वे स्वयं फल भोगते-भोगते ही तो यहाँ तक आये हैं। अब आप जल्दी से उन्हें सुखी कीजिए।''

''नहीं, कुछ दिन इन्हें मजदूरी कराके ही मुझे संतोष होगा।' 'ओह! अभी भी आप नहीं चेत रहे हैं जबकि प्रत्यक्ष में लक्ष्मी के गर्व का दुष्परिणाम आँखों देख रहे हैं। आप...... राज ठसक में डूब रहे हैं इसीलिए आपकी आँखें नहीं खुल रही हैं। जिनके पास छप्पन करोड़ दीनारें थीं, आज चन्द दिनों में ही वे भीख माँगते फिर रहे हैं। यह ज्वलन्त उदाहरण भी आपको सचेत सावधान नहीं कर रहा है। मुझे तो आपका यह हठ किसी प्रकार से भी उचित नहीं प्रतीत हो रहा है और न ही रुचिकर ही लग रहा है।''

कुछ क्षण को वातावरण शान्त रहता है पुनरपि कुमार कहते हैं -''प्रिये! यद्यपि आपकी बातें सर्वश्रेष्ठ हैं। फिर भी मेरे मन में जो कषाय है, उसको शांत करना है। एक बार इन्हें मजदूरी पर लगा दूँ फिर कुछ दिन बाद परिचय देकर के इन्हें सर्वसम्पन्न कर दूँगा।''

''जैसी आपकी इच्छा...... फिर भी स्वामिन्! मैं आपसे एक प्रार्थना करती हूँ वह आपको माननी ही होगी।''

''बोलिये!''

''आप भाई और भावजों से भले ही मजदूरी कराइये किन्तु जिन्होंने आपको जन्म दिया है, उन वृद्ध माता और पिता से मजदूरी न कराइए उन्हें बैठे ही नौकरी दे दीजिए। यह मेरी करबद्ध प्रार्थना है।''

''ठीक है आपकी यह आज्ञा शिरोधार्य है।''

बुद्धिसेन कुमार महल से निकलकर सीधे अपने दरबार में पहुँचते हैं जहाँ कि वे परदेशी प्रतीक्षा कर रहे हैं। प्रबंधक को बुलाकर कहते हैं -

''देखो ! इन लोगों को अपने यहाँ काम में नियुक्त कर लो। ये जो वृद्ध और वृद्धा हैं इनसे भार ढोने का काम नहीं हो सकेगा अतः इन्हें तो बैठे ही वेतन दीजिए और इन छह पुरुषों को और छह महिलाओं को प्रातः दिन उगते ही काम में लगा दीजिए तथा सूर्यास्त तक खूब काम लीजिए। इन्हें एक क्षण भी बैठने नहीं देना और इनके सिर पर खूब ही भार रखना। समझ गये ना!''

''हाँ हाँ! समझ गया मालिक, समझ गया।''

प्रबंधक महोदय कुमार की आज्ञानुसार उसी दिन से उन्हें मजदूरी पर लगा देते हैं और शाम तक कसकर काम लेते हैं और वृद्ध तथा वृद्धा दोनों को एक तरफ बैठे रहने का हुकुम दे देते हैं।

मनोवती शाम को प्रबंधक को बुलाती है और परदेशियों के बारे में सारी स्थिति स्पष्ट पूछती है -

''रानी साहिबा ! जैसा हमें महाराज साहब ने आदेश दिया है, मैं अक्षरशः उसका पालन करूँगा आप चिन्ता न करें।''

''कहिये तो सही, क्या आदेश दिया है?''

''हाँ, उन्होंने कहा है कि इन लोगों से बहुत काम लेना। ये लोग सुबह से शाम तक किंचित् भी बैठने न पावें सो मैंने आज ही आधे दिन उनसे खूब मेहनत कराई है बल्कि आप समझो कि मैंने उनसे दिन भर का पूरा काम ले लिया है।''

''अच्छा! और वे जो वृद्ध दम्पत्ति हैं उनसे?''

''उनके बारे में तो सरकार ने बैठे ही वेतन देने का हुकुम किया है।''

''ठीक! देखिये धनपालजी! ये उच्चकुलीन मालूम होते हैं परिस्थिति से लाचार हो मजदूरी करने आये हैं इन्होंने आज तक ऐसा काम कभी नहीं किया है, ऐसा लगता है। अतः इनसे बहुत हल्का नाममात्र का काम लो तथा विश्रांति करने का बहुत कुछ समय भी बीच-बीच में देते रहो।......ये तो अभी राज ठसक में कुछ भी नहीं समझ रहे हैं।... किन्तु ... उच्चवंशीय लोगों की स्थिति समझना अपना कर्तव्य है।''

धनपाल ने समझा था कि ये महारानी जी और भी कड़ा आदेश देंगी किन्तु उनके मुख से ऐसी बात को सुनकर वह ताज्जुब करने लगता है।...... वास्तव में वह महिला है या साक्षात् दया का ही अवतार है।

''जो आज्ञा स्वामिनी जी!''

धनपाल जी अगले दिन से उन लोगों से बहुत ही हल्का बोझा उठवाते हैं और बीच-बीच में कह देते हैं कि तुम लोग बैठो, आराम करो, अभी काम नहीं है, बहुत लोग काम करने वाले हैं।

मंदिर में परकोटे, मुख्यद्वार, लघुद्वार, बाहर की दीवालें, अन्दर के बहुभाग तैयार हो चुके हैं। अन्दर की दीवालों पर स्वर्ण से, पन्ना, माणिक्य, मरकत आदि से नाना प्रकार के चित्रों का काम शुरू हो गया है। कहीं पर श्री जिनेन्द्रदेव के पंचकल्याणकों का प्रदर्शन इतना भावपूर्ण है कि दर्शक के नेत्र हटाये नहीं हटते हैं। कहीं पर भगवान् ऋषभदेव के दशभवों का विस्तार दिखाया जा रहा है और कहीं पर चक्रवर्तियों का वैभव, उनका चक्ररत्न अपनी प्रभा के समूह से बहुत दूर तक प्रकाश फैला रहा है। कुमार बुद्धिसेन मनोवती के समक्ष निर्माण के संबंध में और चित्रों के संबंध में विचार-विमर्श कर रहे हैं।

''यदि आप कहें तो एक बड़े हाल में श्री जिनेन्द्रदेव के समवसरण का सुन्दर भव्य चित्र बनवा दूँ और उसमें अनेक प्रकार के नग जड़वाकर बहुत आकर्षक करवा दूँ।''

''अवश्यमेव बनवाइये। उसमें मानस्तंभ, सरोवर, खाई, परकोटे, धूलीसाल कोट, कल्पवृक्ष भूमि, प्रासाद भूमि आदि दृश्य बहुत ही बढ़िया होने चाहिए और गन्धकुटी में माणिक्य रत्न से कमलासन बनवाइये।''

''कल से यह काम भी चालू करा दूँगा। मजदूर, चित्रकार, मिस्त्री आदि काम करने वाले लोग दिन पर दिन दूर-दूर से आते ही जा रहे हैं। वहाँ पहुँचकर जब मैं कार्य की प्रगति देखता हूँ तो बड़ा आनन्द आता है।''

मनोवती कुछ गंभीर हो जाती है और कुछ क्षण चुप रहती है। सोचती है कि देखो! अपने कुटुम्ब के लोग मजदूरी में लग रहे हैं जबकि हजारों आदमी काम में जुटे हुए हैं। यह अनर्थ कैसे रोका जाये ? सच है... कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है, इनका भी क्या दोष है? उन लोगों का भाग्य अभी तीव्र रूप से फल दे रहा है...।

''क्यों, आप क्या सोचने लगीं?''

''स्वामिन्! अब आप अपने कुटुम्बियों को अवकाश देकर परिचय स्थापित कीजिए।''

बुद्धिसेन हँस पड़ते हैं -

''प्रिये! तुम्हें इसकी इतनी चिंता क्यों है?... अच्छा ! कुछ दिन और निकल जाने दो फिर जैसा तुम कहोगी, वैसा ही होगा।''

''अच्छा! तो आप अपनी माँ को हमारे यहाँ भेज दीजिए। मैं हमेशा अकेली रहती हूँ एक वृद्धा महिला यहाँ रहनी भी तो चाहिए...।''

कुछ घर का काम धंधा करेंगी, मुझे थोड़ी सुविधा मिलेगी........। ''ठीक, अभी मैं जाता हूँ, भेज दूँगा।''

कुछ क्षण बाद ही वृद्ध हेमश्री महल में आ जाती है। बेचारी अन्य दासियों के साथ कोई भी काम करना चाहती है किन्तु मनोवती उसे रोक देती है। वह घबराकर बोलती है -

''सरकार ने मुझे यहाँ महल में आपके पास काम-काज टहल सेवा करने के लिए भेजा है।''

''हाँ, हाँ ! मुझे भी मालूम है अम्माजी ! बैठो, अभी तो तुम आराम करो, बहुत सी दासियाँ हैं, अपना-अपना काम कर रही हैं। अभी तो तुम्हारे लायक कोई काम नहीं दिख रहा है जो होगा सो मैं बताऊँगी।''

मनोवती बहुत ही प्रेम से उनसे बोलती है और हर काम से उसे रोक देती है। बड़े प्रेम से उत्तम भोजन कराती है फिर पूछती है -

''अम्माजी, तुम्हारे घर में कौन-कौन हैं?''

हेमश्री सकुचाती हुई धीरे-धीरे बोलती है- ''मेरे पतिदेव हैं, छह लड़के और उनकी बहुएं हैं तथा बहुओं के बच्चे बच्चियाँ हैं।''

''सब कहाँ पर हैं?''

''यहीं पर नूतन मंदिर के पास मालिक ने एक झोंपड़ी बता दी है, हम लोग वहीं पर रहते हैं। बेटे-बहू दिन भर मजदूरी करते हैं ना...।''

''अच्छा-अच्छा ! तो तुम यहाँ आ गई, अब वहाँ खाना कौन बनायेगा?''

''बहुएं अपने आप.........''

''वे तो सब मजदूरी में लगे हैं ना।''

''हाँ।''

''तो ऐसा करो, लो यह भोजन तुम ले जावो और सबको जिमाकर आ जावो। हाँ, देखो! किसी को मालूम नहीं पड़ना चाहिए, हाँ........।''

हेमश्री कुछ क्षण के लिए स्तब्ध हो जाती है फिर मनोवती के द्वारा स्वयं हाथ से दिये गये अनेक सरस पकवान, खीर, पूरी, मावा, मलाई आदि से सहित भोजन को डब्बों में भरकर ले जाती है। कुटिया में पतिदेव के समक्ष पहुँचकर सब सामान रखती है। इतने में सभी लड़के और बहुयें भी आ जाती हैं क्योंकि प्रबंधक महोदय इन्हें सबसे पहले वेतन देकर निपटा कर भेज देते हैं। सेठ हेमदत्त इतना सब भोजन पकवान देखकर पूछते हैं -

''तू यह सब कहाँ से ले आयी?''

''आज मुझे राजजमाई ने अपने महल में रानी के पास टहल के लिए भेजा था, वहीं पर मैं दिन भर थी। मैं आपसे क्या कहूँ? उसने मुझसे रत्ती भर काम नहीं कराया। बस भोजन करा दिया और बिठा दिया, उसी ने यह सब भोजन अपने हाथ से दिया है। वह साक्षात् लक्ष्मी है लक्ष्मी !''

हेमदत्त कुछ क्षण तक भावों की तरंगों में डूबने उतराने लगते हैं। कोई एक दिन ऐसा था जो कि अभी स्मृतिपथ से दूर नहीं हुआ है ओह !!... क्या वे दिन भूले जा सकते हैं? अभी कितने दिन हुए? शायद एक वर्ष भी तो नहीं हुआ। लेकिन... लेकिन...संकट में एक दिन भी वर्ष जैसा निकलता है, लगता है कि कितने युग निकल गये हमें इसी दुरावस्था में...।

सेठ की आँखों से बरसात शुरू हो जाती है। वे सोचते ही चले जा रहे हैं देखो ना... हमारे घर में क्या कमी थी? हर दिन उत्तम उत्तम भोजन! बिना खीर के क्या कभी नौकरों को भी खिलाया गया था? क्या कोई भिखारी दरवाजे से बिना पेट भर भोजन खाये गया था? फिर भी कौन से ऐसे कर्म का उदय आ गया है कि जिससे हम लोगों की यह दुर्दशा हो रही है। ओह!... क्या पता इसी जन्म का पाप हो, क्या पता किसी बहुत पुराने कर्म का विपाक हो, क्या मालूम?.

एक समय वह था कि जब छोटी बहू के लिए गजमोतियों से भरा रत्नों का कोठार खोल दिया था, उस बात को अभी बहुत दिन तो नहीं हुए और एक समय यह आया कि हेमश्री ने, बहुओं ने भी लकड़ी

के बोझ सिर पर रखकर गाँव में बेचे हैं व हम लोगों ने भी दिन भर जंगल में लकड़ियाँ बीन-बीन कर बोझ बनाये माथे पर रखकर बेचे हैं और... और फिर भी तो पेट नहीं भर सके। ऐसे दुर्दिन कैसे आ गये?

क्या बुद्धिसेन ही मेरे घर में पुण्यवान् था? क्या उसकी बहू ही लक्ष्मी थी?... अन्यथा यदि ऐसा न माना जाये तो उनको घर से निकालते ही ऐसा क्यों हो जाता? चन्द दिनों में सारी छप्पन करोड़ दीनारें कहाँ गईं?... अरे! महिलाओं के गहने जेवर भी तो गिरवी रख दिए गए थे? जब उतने से भी दैव को सन्तुष्टि नहीं हुई तो हवेलियों को गिरवी रख दिया गया। इतने पर भी दुर्दैव ने विराम नहीं लिया तो जंगलों में जाकर लकड़ियाँ ला-लाकर बेच-बेचकर उदरपूर्ति करना चाही।... आह! जब इस काम से भी हम लोग पेट नहीं भर सके तो शहर छोड़कर भीख मांगते खाते यहाँ तक आ पहुँचे।

यहाँ भाग्य ने कुछ रहम किया है कि जिससे राजजमाई के मंदिर निर्माण कार्य में मजदूरी तो मिल गई, अभी तक तो कोई भी कहीं भी हम लोगों को नौकरी देना ही नहीं चाहता था...। अब बेचारी हेमश्री जिसने कभी पच्चीसों दासियों से टहल कराई थी, राजसुख भोगा था, मखमल के गद्दे पर ही लेटती थी।... कभी जिसको श्रृंगार कराने के लिए, वस्त्रालंकार कराने के लिए धायें रहती थीं... हाय, हाय! आज वह राजघराने में टहल करने के लिए जाय? सच है भाग्य की बड़ी विडम्बना है।

पिताजी विचार सागर में मग्न हैं। धनदत्त, सोमदत्त आदि लड़के और धनश्री, सोमश्री आदि बहुएं कुछ ही क्षण में भोजन के बारे में सारी स्थिति समझ लेती हैं और तनिक विश्रांति लेकर अपने-अपने बच्चों को संभाल कर वहीं पर आ जाती हैं। हेमश्री और धनदत्त, हेमदत्त की आँखों से गिरते हुए अविरल अश्रुओं को देखकर अधीर हो उठते हैं-

''इस समय आप क्यों रो रहे हैं?''

आँसू पोंछते हुए -

''कोई खास बात नहीं है।''

''तो भी अकस्मात् आपको रोना क्यों आया?''

''बेटा धनदत्त ! सामने रखे हुए इतने भोजन सामान को देखकर सहसा अपने पुराने दिनों की स्मृति ताजी हो उठी...'' सभी लोग कुछ एक क्षण, पिछले दिनों को याद कर दुःख से आहत हो उठते हैं। पुनः हेमश्री कहती है-

''अब आप भी कुछ क्षण के लिए अपना उपयोग बदलिए, मुख धोइये और भोजन कीजिए। कृतकर्म जब उदय में आता है, तब उसका फल तो भोगना ही पड़ता है। जितनी शान्ति से उसे भोगा जाता है उतना ही वह आगे के लिए कर्मों का बंध कम करता है। फिर आप तो स्वयं समझदार हैं। अब चिन्ता छोड़िए.......।''

''हाँ, हाँ, माँ ठीक कह रही है पिताजी ! अब आप शान्ति से भोजन कीजिए। सदा दिन एक से नहीं रहते हैं। कभी न कभी दिन सुधरेंगे, सुख के बाद दुःख के दिन आये हैं और कभी सुख के दिन भी आ सकते हैं।''

हेमश्री पतिदेव का मुख धुलाकर उन्हें भोजन परोसती है। तब तक धरसेन केले के बड़े-बड़े पत्ते तोड़कर लाकर सभी के आगे पत्तल रख देता है। माँ सभी को एक साथ भोजन करा रही है। छोटे-छोटे बच्चे भी आज बहुत दिन बाद गुझिया-लड्डू पाकर खुश हो रहे हैं और नाच-नाचकर खा रहे हैं। हेमश्री शाम को वापस महल में मनोवती के पास पहुँच जाती है। मनोवती प्रतिदिन उत्तम उत्तम भोजन बना-बनाकर हेमश्री के हाथ से सबके लिए भेज देती है और किसी को भी पता नहीं चलने देती है।

एक दिन सहज ही मनोवती कहती है -

''अम्मा जी! आवो, जरा मेरे केश तो देखो और चोटी कर दो।' 'बहूरानी ! आप करोड़पति की बहू और मैं एक दरिद्रा।...... दीनरंक हुए हम लोग दर-दर फिर रहे हैं, आपके यहाँ आकर अपना पेट भर रहे हैं।... मेरा तो आपके पास आने का मुख नहीं पड़ता है।''

इतनी बात सुनते ही मनोवती के नेत्र सजल हो गये। इस संसार में यह लक्ष्मी अतिशय चंचल है। अहो! इसका क्या विश्वास करना? देखो ना..... यह प्रत्यक्ष में मेरी सासू है और मैं इसकी पुत्रवधू हूँ किन्तु हाय !...... इनकी सम्पत्ति नष्ट हो गई इसलिए यह मेरे निकट आने में सकुचा रही हैं। धिक्कार हो! इस धन को धिक्कार हो !...... पुनः दिलासा देते हुए कहती है -

''कोई बात नहीं, चिन्ता मत करो, आवो...... आवो।'' कुछ क्षण के लिए हेमश्री सकुचाई खड़ी रहती है जैसे कि मानो उसके पैर ही नहीं आगे बढ़ना चाहते हैं।

''आ जाओ, अम्मा जी ! क्यों संकोच करती हो? आ जाओ।''

हेमश्री पास आकर अपने कपड़े संभालकर इस तरह बैठती है कि जिससे बहूरानी को अपने कपड़ों का स्पर्श न हो जावे। पुनः काँपते हुए हाथों से उनकी चोटी की रेशमी डोरी खोलती है और रेशम जैसे मुलायम केशों को खोलने लगती है। कुछ क्षण में ही उसकी आँखों से अश्रु की झड़ी लग जाती है और हेमश्री अपने अविरल अश्रुओं को अपने अंचल में ही समेटती चली जा रही है। कुछ देर में उसे सिसकी आने लगी और वह अपने को नहीं संभाल सकी, फफक कर रो पड़ी......।

''ऐ!! यह क्या?........ अम्मा जी! तुम क्यों रोने लगीं....... बोलो तो सही।''

बेचारी हेमश्री कुछ दूर सरक कर अपने आंचल से अपना मुँह ढँककर फूट-फूटकर रोने लगी मानों उसके धैर्य का बांध ही टूट गया हो। मनोवती ने जैसे-तैसे करके उसे सांत्वना दी और रोने का कारण कहने को कहा -

''रानी साहिबा! मैं...... यदि पहले की अपनी बातें कहूँ तो आज उन पर कोई विश्वास नहीं करेगा। किसी को भी मेरा पहले का जीवन सच नहीं लगेगा।

''नहीं, नहीं ऐसी बात नहीं है, तुम कहो तो सही! तुम कुछ भी चिन्ता मत करो और सभी बातें ज्यों की त्यों कहो।''

तब हेमश्री सामने एक तरफ बैठकर हाथ जोड़कर कहती हैं –''महारानी जी! हम लोग ऐसे रंक नहीं थे। बल्लभपुर शहर में हमारे पति बहुत बड़े विख्यात जौहरी थे। मेरे घर में छप्पन करोड़ दीनारें होने से छप्पन ध्वजाएं फहराती हुई हमारे पतिदेव का यश विस्तार रही थीं। हमारे सात पुत्र थे जिसमें ये सबसे बड़ा धनदत्त है जो कि साथ में है और सबसे छोटा पुत्र बुद्धिसेन था उसका ब्याह होकर ..... हाय !...... अभी एक वर्ष भी नहीं हुआ होगा.....।''

फिर वह सिसक–सिसक कर रो पड़ती है, बोल नहीं पाती है किन्तु मनोवती उस समय बहुत ही कारुण्य मुद्रा से श्रवण कर रही है–

''बोलो, बोलो! अम्मा जी! न घबराओ, सभी पर सब तरह के दिन आ सकते हैं, देखो ना! भगवान् रामचन्द्र को राजगद्दी होने वाली थी किन्तु वन की शरण लेनी पड़ी। ...... इसलिए धैर्य रखो और पूरी बात कहो!''

बेचारी जैसे–तैसे हृदय थामकर सिसकते हुए ही बोलती है–'बहूजी ! मैं क्या बताऊँ? उसकी शादी हस्तिनापुर में हो गई। बहूत बड़े घराने की बहू मेरे घर में आ गई। मैं क्या बताऊँ....... वह तो साक्षात् लक्ष्मी ही थी।..... उसने ऐसी प्रतिज्ञा ली हुई थी कि जब मैं गजमोती भगवान् के सामने चढ़ाऊँगी, तभी भोजन करूँगी। मेरे पतिदेव ने कोठार खोल दिया, मोतियों के ढेर के ढेर लगे हुए थे। उसने गजमोती चढ़ाये और पुनः खाना खाया। हाय रे!

फिर बेचारी रो पड़ती है।

''अम्माजी ! तुम इतना न घबराओ......''

''कुछ पूर्व के पाप कर्म का तीव्र उदय आ गया.....तब घर से हमारे प्यारे पुत्र को निकाल दिया......गया। वह हस्तिनापुर चला गया, वहाँ से उसकी पत्नी भी उसके साथ हो ली, अब तक हम लोगों को पता नहीं चला कि वे दोनों कहाँ हैं?''

फिर माथे पर हाथ रखकर बिलख–बिलख कर रोती है –

''हाय बेटा! तुम कहाँ चले गए? रानी जी! मैं सच्ची कहती हूँ तुमसे, जिस दिन से वे बेटे और बहू घर से गये हैं बस उसी दिन से मेरी लक्ष्मी कहाँ चली गयी? कुछ पता नहीं. ... कुछ ही दिन में सारी सम्पत्ति समाप्त हो गई। हाय! हाय! हम रंक बने मारे–मारे फिर रहे हैं। आपके केश खोलते ही आपके

शिर में यह एक चिह्न जो मैंने देखा मेरी बहू के शिर में भी ऐसा ही चिह्न था। अतः इसे देखते ही मेरा जी भर आया......।''

मनोवती ने सारी बात सुन ली यद्यपि हृदय द्रवित हो उठा था फिर भी उसने मन की बात मन में ही छिपा कर बनावटी क्रोध दिखाते हुए कहा- ''अब क्या हमें तू अपनी बहू बना रही है?......अरी चमेली! इधर आ।''

दासी काम छोड़कर दौड़कर आती है -

''हाँ जी, आ गई! क्या आज्ञा है महारानी जी?''

''तू इस वृद्धा को महल से बाहर कर दे!''

''जैसी आपकी आज्ञा!''

चमेली हेमश्री का हाथ पकड़ कर जल्दी-जल्दी उसे महल से बाहर निकाल देती है और आकर बोलती है -

''निकाल दिया, महारानी जी! निकाल दिया।''

हेमश्री महल के बाहर खड़ी-खड़ी सोच रही है कि यह क्या हो गया? अब क्या होगा? मैं अपने पतिदेव को या पुत्रों को कैसे मुँह दिखाऊँ? जाकर उनसे क्या कहूँ? कुछ क्षण रोकर कलेजा शांत करके स्खलित पग रखते हुए जैसे-तैसे अपनी झोपड़ी में पहुँचती है। हेमदत्त को कुछ आहट होने से पूछते हैं- कौन है? तब वह अन्दर पहुँचकर फूट-फूटकर रोने लगती है।

''आखिर हुआ क्या? बोलो तो सही। केवल रोने मात्र से मैं क्या समझ सकूँगा?''

जैसे-तैसे आँसू पोंछते हुए और सिसकते हुए बोलती है -

''मालकिन ने मुझे महल से निकाल दिया।''

''क्यों?''

पति के बहुत कुछ धैर्य बँधाने के बाद वह धीरे-धीरे सारा किस्सा सुना देती है।

''अफसोस! तूने गजब कर दिया।''

हेमदत्त क्रोध में आपे से बाहर हो जाते हैं इसी बीच में एक-एक करके छहों लड़के और बहुएँ भी आ जाती हैं और उन्हें भी सारा हाल सुना दिया जाता है। अब क्या देखना?... एक-एक में एक से बढ़कर क्रोध भभक उठता है। सभी एक-एक करके हेमश्री को फटकारना शुरू कर देते हैं इतना ही नहीं...।

''हाय ! तूने यह क्या कर डाला? कौन तो बहू और कहाँ के पुत्र? और कहाँ की तू पहिचान कराने लगी?''

''हाय! हम लोग दर-दर की ठोकरें खाते-खाते यहाँ आये, जरा सी बैठने की जगह मिली, पेट को सहारा मिला और तूने सब वापस गँवा दिया।''

''जा, जा! चली जा इस झोपड़ी से, जल्दी निकल जा। अब हम लोग भी इस झोपड़ी में तुझे रहने नहीं देंगे।''

धनदत्त उठकर उसे धक्का देकर निकालने की कोशिश करता है कि वह शोक में पागल हो जमीन पर धड़ाम से गिर पड़ती है। कोई पुत्र पत्थर उठाकर उसे मारने दौड़ता है तो कोई कंकड़ फेंकता है तो कोई लकड़ियों से पीटने लगता है। कोई धक्का देता है तो कोई बहू लात से मारने दौड़ती है। हेमदत्त अब चुपचाप पत्नी पर होने वाले असह्य अत्याचार को देख रहे हैं और कुछ सोच-सोच फूट-फूटकर रो रहे हैं। हेमश्री पुत्रों के और पुत्र-वधुओं के द्वारा मार खाते हुए उनकी गालियाँ सुनते हुए बहुत ही घबरा उठती है और जोर-जोर से चिल्लाने लगती है -

''हाय! मैं मरी, मैं मरी! हाय, हाय! मेरा कोई रक्षक नहीं है। बचाओ-बचाओ ! भगवान मेरी रक्षा करो। मैंने क्या पाप किए हैं? जो कि एक दुःख से नहीं छूटी और दूसरा छाती पर आ पड़ा। अब मैं कहाँ जाऊँ? क्या करूँ? अरे रे ! निपूतों ! तुम सब मिलकर मुझे क्यों मार रहे हो?..... अकेला मेरा भाग्य ही खोटा है क्या?.

अरे प्यारा बेटा बुद्धिसेन ! तू कहाँ है? तेरे जाने के बाद ही तो मेरी मिट्टी पलीत हुई है। मैं न घर की रही न दर की।

इतना सुनते ही लड़कों का क्रोध और भी अधिक भभक उठा। वे सभी आपे से बाहर हो गये और जोर-जोर से बकने लगे - ''जा, जा, तू उसी बुद्धिसेन को ढूंढ़ ! अब यहाँ हम लोगों के पास रहने की जरूरत नहीं है। बस जब देखो, जब बुद्धिसेन लाडला बेटा और मनोवती। इसके सिवाय और तुझे कुछ दिखता है? और जभी तो वहाँ जाकर भी गम नहीं खाई। रानी साहिबा के सिर में भी तुझे बहू की खोपड़ी ही दिखाई देने लगी और तभी तो सारा अनर्थ करके आ गई।''

''अरे दुष्टों ! तुम सबने मिलकर ही तो उसको निकाला है और उसी पाप का फल भोग रहे हो। फिर भी उसके नाम से तुम लोगों को आग लगती है? तुम सब बड़े कर्महीन हो और बुद्धिहीन हो। तुम्हारी बुद्धि पर पत्थर पड़ गये हैं तभी तो माँ को पत्थर से मार रहे हो।''

क्रोध के आवेश में आकर हेमश्री आगबबूला हो उठती है। इतने में ही सोमदत्त, विनयदत्त आगे बढ़कर जबरदस्ती उसे घसीट-घसीट कर दरवाजे तक पहुँचा देते हैं और बहुयें आगे बढ़कर बड़बड़ाती हुई दरवाजे की साँकल लगा लेती हैं।

''हाय! मैं कहाँ जाऊँ? कपूतों ! तुमको नव-नव महीने उदर में रखा है। तुम मेरी यह दशा कर रहे हो? मैं मर जाऊँगी। पतिदेव! तुमने तो स्वप्न में भी कभी एक शब्द तिरस्कार का नहीं कहा था और अब तुमको भी क्या हो गया है? खोलो-खोलो, दरवाजा खोलो।''

बेचारी हेमश्री फड़फड़ाती हुई बेहोश हो जाती है और कुछ देर बाद होश में आती है तब देखती है कि मैं घसीट कर अपनी झोंपड़ी के दरवाजे से दूर पर कर दी गई हूँ। वह कुछ एक क्षण विचार कर उठकर धीरे-धीरे वन की ओर जाने की राह पकड़ती है और बार-बार मार्ग में गिर पड़ती है, तब मार्ग में एक झाड़ के नीचे बैठकर अकेली जोर-जोर से करुण क्रंदन करते हुए विलाप करती है -

''अरे दुर्दैव! तुझे और भी जितना दुःख देना है एक साथ ही दे ले। खूब दुःख दे ले। अरे निष्ठुर विधाता! तुझे दया तो कैसे आएगी? क्योंकि मैंने ही तो पूर्व जन्म में ना, ना पता नहीं इसी जन्म में कुछ पाप संचित किया है, उसका फल तो मुझे ही भोगना पड़ेगा। हे भगवन्! तुमको भी मेरे ऊपर करुणा नहीं आती है। प्रभो ! तुम जो जगत् में करुणासागर के नाम से प्रसिद्ध हो। हे तीनलोक के नाथ जिनेन्द्रदेव! अब आप मेरे ऊपर दयादृष्टि करो। अब मैं इतने अधिक दुःखों को सहने में समर्थ नहीं हूँ।

हाय! मेरा प्यारा बेटा बुद्धिसेन! तू इस जन्म में मुझे मिलेगा या नहीं? एक बार स्वप्न में ही मुझे दर्शन दे दे। अपनी माँ की ऐसी दुर्दशा को तू एक बार तो देख ले। तू कहाँ है? किस देश में है? तू किस स्थिति में है? अरे तू सुखी है कि तू भी दुःखी है? अपनी स्थिति को तो बता दे?

मेरी बहूरानी मनोवती! तुम भी कैसी हो? तुम्हारी प्रतिज्ञा कैसे पल रही है? तुमने तुम्हारे पीहर के सुख को ठोकर मार दिया, तुम्हें गजमोती कहीं मिली होगी या नहीं? बताओ तो सही। तुम्हारे अपमान से ही...... तुम्हारा घर में आना रोक देने से ही तो हम सबों ने यहाँ तक दुर्दिन देखे हैं।

कुछ देर तक ठण्डी साँस लेकर बैठ जाती है। फिर-फिर छोटे बेटे और बहू को याद कर रोने लगी। आँखें लाल-लाल हो गई हैं और ऊपर से खूब ही सूज गई हैं। मुख की सूरत अत्यन्त विरूप हो रही है। सारी धोती आँसुओं से भीग चुकी है। पेट खाली है और अन्न का ठिकाना भी नहीं रहा है। सोच रही है-अब पुनः मुझे भीख माँगकर ही तो पेट भरना पड़ेगा।

''अरे विधाता! अब तू मुझे उठा ले, अब मैं अधिक दुःख नहीं देख सकूँगी।.....बेटे तो बहुओं की वजह से भी कठोर अति कठोर हो सकते हैं लेकिन पतिदेव को इतना क्रोध कैसे आ गया? उनके हृदय में भी मेरे प्रति करुणा भाव क्यों नहीं रहा?...... ओह! मैं बहुत बड़ी भूल कर रही हूँ। मेरे पाप कर्मों के उदय से ही तो सब निष्ठुर हो रहे हैं। दैव निष्ठुर हैं, पतिदेव निष्ठुर हैं, छह-छह बेटे हैं वे भी निष्ठुर हैं और सभी बहुएं निष्ठुर हैं। और तो क्या?...... जिसने इतनी सहानुभूति, इतनी करुणा दिखलाई थी वह दयावन्ती देवी राजजमाई की राजपत्नी भी तो निष्ठुर हो गयीं। अब केवल मात्र भगवान तेरा ही एक सहारा है। अब इस पर्याय में मेरा कोई नहीं है। जब तक धन था, हजारों नौकर काम करते थे, जगह-जगह व्यापार चलते थे। तब मैं भी क्या किसी रानी-महारानी से कम सुखी थी? मुझे क्या कुछ कमी थी?...... खैर, अब तो जो दिन आये हैं, उनसे ही तो निपटना है।

प्रभो! दयानिधे ! करुणा करो, मुझे दया की भीख देवो। मैं कब तक इस पापी पेट के पीछे दर-

दर भीख माँगती फिरूँ? हाय!...... पतिदेव और सात-सात पुत्रों के जीवित रहते हुए भी मैं भीख माँगूँ? अरी लक्ष्मी? तू वैश्या से भी अधिक अविश्वसनीय है। आज किसी की, कल किसी की। तुझे धिक्कार हो! धिक्कार हो!..... अरे दुर्दैव ! तुझे भी धिक्कार हो ! इस मेरे हीन-दीन जीवन को भी धिक्कार हो !.....

बेचारी हेमश्री इधर अकेली बैठी-बैठी अपने इस जीवन से ऊब उठती है और फिर सहसा सोचने लगती है कि इस दुःखी जीवन से मर जाना ही अच्छा है। फिर-फिर अकस्मातब ही बुद्धिसेन के मुख को देखने के लिए उत्कंठित हो उठती है और उनका मन पंछी तड़पने लगता है -'बेटा तू कहाँ है? एक बार मुझे किंचितब सान्त्वना दे दे। इस जीवन में मुझे फिर अब तेरा सलोना मुख देखने को मिलेगा या नहीं? बोल तू बोल ! जहाँ कहीं भी हो, एक बार बोल दे ! नहीं तो मैं इस जीवन को, इस निंद्य पराधीन स्त्री पर्याय को समाप्त कर दूँ। कहीं कुएं-बावड़ी में पड़कर या गले में फाँसी लगाकर मर जाऊँ। एक बार-एक बार तो इस संकट से छुटकारा पा लूँ। अफसोस ! मैं क्या कह रही हूँ? क्या मरने से दुःख छूट जायेंगे? अरे ! जो बाँधे हैं कर्म मैंने, उनका फल तो आज क्या, कल या परसों या किसी जन्म में भोगना ही पड़ेगा।

हे त्रिभुवन के स्वामी! आप ही इन दुष्कर्मों से छुटकारा दिला सकते हैं, अन्य कोई नहीं। अब मेरी रक्षा करो, रक्षा करो प्रभो ! मुझे सद्बुद्धि दो।

इधर हेमश्री को निकाल देने के बाद हेमदत्त सोच रहे हैं कि हाय! मैंने यह क्या किया? मैं इन आँखों से उसका इतना अपमान कैसे देखता रहा? मुझे आज क्या हो गया?....

''अरे कपूतों ! तुमने अपनी माँ को इतना क्यों मारा? उसे झोपड़ी से बाहर क्यों निकाल दिया? हाय रे दुर्दैव ! तू यह सब क्या कर रहा है? क्या मेरा जीवन अब यही दृश्य देखते-देखते निकलेगा। मैं तो मर जाऊँगा !...... ओह !! यह क्या हो गया? वह बेचारी कहाँ जायेगी? कहाँ रहेगी? क्या खाएगी और क्या पियेगी?''

''यह दुष्ट बुड्ढा भी अब चैन नहीं लेने देगा! उठो! आप लोग अब इसे भी निकाल बाहर करो। मेरे से अब इसका रोना, बिलखना और चिल्लाना नहीं सहन हो रहा है।''

''अरी बहू! तू क्या बक रही है? तुझे बहुत ही साहस हो गया है जो तू आज सास-ससुर के अनादर पर ही तुल गई है। सासू को तो निकाल दिया और अब मुझे भी निकालना चाहती है। लो, तुम लोग सुख से रहो, मैं भी जाता हूँ। अरे! जब इतने दिन दर-दर पर भीख माँगते फिरे हैं तो कुछ दिन और माँग लेंगे।''

सेठ जी उठकर जाने को होते हैं कि छठा पुत्र धरसेन उठकर दौड़कर हाथ पकड़ लेता है और चिपट कर जोर-जोर से रोने लगता है। हेमदत्त कुछ देर बाद बेटे के आँसू पोंछकर अपना मन मसोस कर बैठ

जाते हैं परन्तु हेमश्री की याद में बार-बार बेचैन हो उठते हैं। फिर....... कुछ क्षण बाद बुद्धिसेन पुत्र को याद करके जोरों से विलाप करने लगते हैं -

''अरे बेटा बुद्धिसेन ! जब से मैंने तेरे को घर से निकाला है तभी से तो ये दुर्दिन आये हैं। उस समय मेरी बुद्धि कैसे भ्रष्ट हो गई? मुझे क्या हो गया था?.....ओह!..... सच है-विनाशकाले विपरीत बुद्धिः.... बहू मनोवती ! तू कैसी धर्मात्मा थी, तेरी प्रतिज्ञा की निन्दा का ही फल तो हम सभी भोग रहे हैं। अब एक बार इस जीवन में तुम दोनों मुझे मिल जावो ! बस ! मैं इसी आशा में अपने प्राण टिकाये हुए हूँ अन्यथा अब मैं जीवित नहीं रह सकता था......।

''पिताजी ! अब आप चुप रहो, बिल्कुल चुप हो जावो। दो-तीन घण्टों से लगातार आपस में कुहराम मचा हुआ है। अब चुपचाप बैठे रहो.......।''

सेठ हेमदत्त बिल्कुल चुप हो जाते हैं लेकिन चुपचाप बिना खाए-पिए अपनी फटी चादर में मुँह छिपाकर लेट जाते हैं। वे लाख कोशिश करते हैं कि अश्रु बंद हो जावें किन्तु आँखों से आँसुओं की धारा चालू ही है।

पुत्र धनदत्त आदि भी जब शांत होते हैं, तब अपने द्वारा किये गये माता के अपमान को स्मरण कर रो पड़ते हैं। सभी पश्चात्ताप करने लगते हैं कि हाय! हमने यह क्या कर डाला? यह सब दुर्दैव का ही विचित्र खेल है, ऐसा कहकर संतोष की साँस लेकर सोमश्री आदि द्वारा बनाये गये कुछ रूखे-सूखे भोजन को करके बैठ जाते हैं।

मनोवती अपने महल में कुछ चिंतित सी बैठी हुई है। दासियाँ अपने काम में लगी हुई हैं। कुछ देर बाद मनोवती पूछती है -

''चमेली ! ओ चमेली !''

''जी हाँ, आई!''

''अरी क्यों री ! आज अभी तक चंपा नहीं आई?''

''आती ही होगी!''

इसी बीच में चंपा आकर महारानी जी को नमस्कार करके बैठ जाती है और कुछ कहना चाहती है किन्तु रुक जाती है-

''बोल ना ! क्या हुआ?''

''महारानी जी ! वहाँ तो महान् उत्पात हो गया।''

''ऐं! उत्पात ! क्यों उस बुढ़िया ने वहाँ जाकर क्या कहा?''

''मुझे यह तो कुछ मालूम नहीं किन्तु सभी परदेशियों ने मिलकर उस बुढ़िया को बहुत मारा और धक्के-मुक्के दे देकर उसे गिरा दिया।

फिर बेचारी को खींच घसीटकर झोंपड़ी से बाहर कर दिया।

''अच्छा!..... और फिर वह कहाँ गई?'' ''पता नहीं, वह तो कहीं जंगल की तरफ चली गई है।''

''हाय! दुर्दैव ! तू बड़ा ही निर्दयी है।...... अच्छा, चम्पा ! तू जल्दी से जा और स्वामी को यहाँ जल्दी से जल्दी आने की सूचना कर दे।'

''जो आज्ञा!''

कुछ देर बाद कुमार बुद्धिसेन पधारते हैं। मनोवती विनय से उठकर पतिदेव का स्वागत करती है, उनके उचित आसन पर विराजने के बाद आप स्वयं पास में ही बैठ जाती है।

''कहिए! क्या आज्ञा है?''

मनोवती हाथ जोड़कर निवेदन करती है– ''स्वामिन्! आपके बड़े भाई पिता के समान हैं। वे सिर पर भार ढो रहे हैं और आप अपनी आँखों से देख रहे हो। बस, अब बस होवे, अब आप शीघ्र ही उन सबको बुलवा लो।''

मुस्कराकर – ''प्रिये ! मैं इन लोगों से खूब ही मजदूरी करवाऊँगा। इन लोगों ने मेरे से बहुत ही गर्व किया है। मैं जब तक अपने मन की पूरी नहीं निकाल लूँगा, तब तक परिचय नहीं कराऊँगा।''

''यदि आप अब मेरी नहीं मानोगे, तो देखो मैं क्या करूँगी?''

कुछ क्रोध में आ जाती है। तब बुद्धिसेन हँस पड़ते हैं और पूछते हैं– ''क्या करोगी? बताओ!''

''आपको हँसी आ रही है और मुझे गुस्सा आ रहा है। अफसोस है कि आप राजलक्ष्मी के गर्व में अपने कर्तव्य को बिल्कुल भूल रहे हो।

आपके जीवन को धिक्कार है! आप अपने भाईयों से मजदूरी करा रहे हो और अभी तक आपकी हविश पूरी नहीं हुई है।.... आपको शर्म आनी चाहिए।..... मैं सच कहती हूँ कि अब मुझसे यह सब देखा नहीं जाता है। अब आप बैठे रहिए, मैं उन सभी को अभी–अभी यहाँ पर बुलवाए लेती हूँ और उन्हें उत्तम वस्त्राभूषण पहनाकर कुछ धन सम्पत्ति सौंपती हूँ।

क्या सब आपकी ही चलेगी, मेरी कुछ भी नहीं चलेगी?...... मैं खूब ही आपकी बुराई करूँगी। महाराज यशोधर के पास मैं स्वयं जाकर सारी स्थिति कहूँगी कि आपके जमाई अपने भाई–भावजों से मजदूरी करवा रहे हैं। आपको जो जंचे सो कीजिए और मुझे भी जो जँच रहा है..... उचित प्रतीत हो रहा है सो मैं करूँगी, अब मैं भी आपकी एक नहीं सुनूँगी।

बुद्धिसेन मनोवती का गुस्सा देखकर और उसकी इस तरह की धमकी सुनकर सिहर उठते हैं। मन में सोचते हैं कि अब इसको पूर्णतया रोष उत्पन्न हो चुका है। अब यदि मैं इसकी नहीं मानूँगा तो निश्चित

ही यह कुछ न कुछ उपाय अवश्य करेगी और राजा तक मेरी बात पहुँचाकर मेरी भर्त्सना करवायेगी। कुछ क्षण तक माथा नीचे करके सोचते रह जाते हैं।

मनोवती पुनः बोल उठती है – ''अब मैं इस घटना को देख सकने के लिए एक क्षण भी समर्थ नहीं हूँ। या तो आप उन्हें बुलवाइये या मैं बुलवाऊँ?''

''प्रिय बल्लभे ? आप इतनी अधिक नाराज न होइए ! मैं....... आपकी आज्ञा के अनुरूप ही कार्य करूँगा।''

''तो जल्दी कीजिए, अभी-अभी सबको बुलवाइये!''

''प्रिये! अभी दिन में यह काम ठीक नहीं रहेगा। थोड़ा अंधेरा पड़ते ही किंकरों को भेजकर सबको बुलवाये लेता हूँ। अब आप जरा सी भी चिन्ता न करें।''

दिन अस्त होते ही मालिक की आज्ञा से कर्मचारी वहाँ झोपड़ी में पहुँचता है। जहाँ पर कई घण्टों से मारपीट का और रोने-धोने का अत्यन्त कलहकांड होकर अभी-अभी ऊपर से किंचित् शांत वातावरण हुआ ही था कि कर्मचारी पहुँचता है। उसे देखकर सबके होश उड़ जाते हैं।

''हाँ, तुम लोगों को स्वामी ने बुलाया है, जल्दी चलो। सभी लोग बहुत ही जल्दी चलो।''

हेमदत्त की जरा सी आँखें झपकी ही थीं कि कर्मचारी की आवाज सुनकर चौंक उठते हैं।

''कौन है?''

''मैं राजा का चपरासी हूँ।''

''क्या आदेश है?''

''बस, चलिए, तुम सभी को महाराज ने अभी-अभी बुलाया है।''

हाय!...... अब और यह क्या बला आ गई? अरे ! हेमश्री न जाने क्या कह आई है कि जो हम सबको ही बुलाया गया है। पता नहीं अब क्या होगा?

सभी बेचारे जहाँ के तहाँ कीलित जैसे हो जाते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि किसी के भी शरीर में प्राण नहीं हैं। सभी निश्चेष्ट हो गये हैं इतने में कर्मचारी पुनः बोलता है-

''हाँ भाई ! क्या बात है? तुम लोग देरी क्यों कर रहे हो?''

सेठ हेमदत्त उठकर जैसे-तैसे साहस बटोर कर पूछते हैं – ''भाई क्या बात है? हम सभी को एक ही साथ मालिक ने क्यों बुलाया है? क्या आप.....बता सकेंगे?''

''मुझे क्या मालूम? मुझे तो बस इतना ही आदेश मिला है कि नम्बर 1017 वाली झोपड़ी के सभी मजदूरों को मेरे महल में जल्दी ही ले आवो।!''

''अरे बेटा धरसेन ! ओ धरसेन ! जा बाहर देख तो सही, तेरी माँ कहाँ है?''

''अब उसे और भी आपत्ति में क्यों डालो पिताजी ! पता नहीं कि उसने वहाँ क्या-क्या कहा है कि जिससे हम सबको बुलवाया गया है और पता नहीं कि अब वहाँ क्या-क्या दंड भुगतना पड़ेगा, अभी तक भीख माँगकर या मजदूरी करके पेट तो भर रहे थे और क्या पता अब जेलों में सड़ना पड़े?''

धरसेन बीच में ही बाहर निकल जाता है और आगे बढ़कर कुछ दूर जाता है कि सामने के झाड़ के नीचे से करुण क्रंदन की आवाज आ रही है। उसी आवाज के सहारे उस झाड़ के नीचे पहुँच जाता है। देखता है माँ खूब छाती कूट-कूटकर रो रही है। वह उससे चिपट जाता है और वह भी जोर-जोर से रोने लगता है। माँ को अंधेरी रात में बेटे का सहारा मिलते ही वह कुछ शाँत होती है। तब धरसेन सिसकियाँ भरते हुए कर्मचारी के आदेश को सुना देता है। सुनते ही माता अत्यर्थ रूप से काँपने लगती है। फिर बोलती है -

''बेटा! मैंने जो कुछ किया है, उसका फल मुझे ही भोगना उचित है। सभी को क्यों? चलो, चलो, कुछ भी होगा तो मैं ही अकेली निपटूंगी। बीच में सभी को दंड का भागीदार नहीं बनाऊँगी चलो, बेटा !......मैं चल रही हूँ।

'माँ! तुम्हें चलने की शक्ति कहाँ है? तुम मेरी पीठ पर बैठो, मैं तुम्हें ले चलूँगा।''

''नहीं, बेटा! मैं चलूँगी, पैदल चलूँगी, तू चिंता मत कर।''

धरसेन का हाथ पकड़कर हेमश्री उठती है और चल पड़ती है। अंधेरे में कई जगह ठोकर और टक्कर लगती है। 'बेटा! अभी न जाने कितने दिन अपने भाग्य में ठोकर खाना लिखा है। कौन जाने?'

''माँ! तुम ही यदि इतनी अधीर होवोगी तो हम लोगों का क्या होगा?''

''क्या करूँ बेटा! अब धैर्य नहीं रहा, अब तो बार-बार यही भाव आता है कि अपघात करके मर जाऊँ किन्तु बस एक बुद्धिसेन का मोह मुझे रोक रहा है।''

धीरे-धीरे बातें करते दोनों माँ और बेटे अपनी झोंपड़ी के सामने पहुँचते हैं, तब तक सब लोग साहस करके उठ खड़े हो जाते हैं। माता को सामने देखते ही लड़के भड़क उठते हैं -

''अरी माँ ! तू वहाँ क्या कह आई है? चल, अब सबके गले में फाँसी लगवायेगी..... देख -''

सेठ हेमदत्त बीच में बात काट देते हैं - ''बस बस, अब हल्ला-गुल्ला बंद करो, चुपचाप रास्ते में चलो। बहुत हो लिया...... जो होना होगा सो होगा? अब ज्यादा बकवास मत करो। हाँ, मेरी मानो तो सब लोग णमोकार मंत्र का जाप करते चलो।''

सब लोग चुपचाप मन में, महामंत्र का स्मरण करते हुए चले जा रहे हैं।

सिपाही के साथ-साथ सब लोग महल के अन्दर घुसते हैं तत्काल ही फाटक बंद कर दिया जाता

है। अब तो सबके सब एकदम सन्न हो जाते हैं और निश्चित कर लेते हैं कि हम लोगों पर भारी संकट आ गया है। राजमहल के समान उस महल में भी चारों तरफ सुन्दर-सुन्दर स्थल दर्शनीय हैं परन्तु वे बेचारे आकस्मिक संकट की भावी आशंका से थर-थर, थर-थर कांपते हुए एक से एक दरवाजे पार करते चले जा रहे हैं।

सभी लोग अन्दर के माणिक चौक में पहुँचते हैं जहाँ पर राजा बुद्धिसेन अपनी रानी मनोवती के साथ रत्नजटित उच्च आसन पर सुखासन से बैठे हुए हैं। मालूम होता है कि साक्षात् इन्द्र ही अपनी इन्द्राणी के साथ अमरपुरी की सुधर्मा सभा में विराजमान हैं। उनको देखते ही ये लोग वज्र से आहत हुए के सदृश एक कोने में ही खड़े रह गये, आगे नहीं बढ़ पाए।

सामने सबको देखकर बुद्धिसेन तत्क्षण ही आसन से उठ खड़े हुए और जल्दी-जल्दी आगे बढ़कर हाथ जोड़कर 'हे पूज्य पिता!.... कहते हुए और नमस्कार करते हुए सेठ हेमदत्त के चरणों में पड़ गए और मनोवती भी हाथ जोड़कर नमस्कार करती हुई उन्हीं के साथ खड़ी हुई हेमश्री के चरणों में पड़ गई।

''अरे अरे, यह क्या? मैं रंक मजदूर.....और आप राजा......ऐसा बोलते हुए और घबराते हुए हेमदत्त जल्दी-जल्दी काँपते हुए हाथों से उन्हें उठाने लगा -

''पिताजी ! मैं वही आपका पुत्र हूँ कि जिसे आपने घर से निकाल दिया था।''

सेठ जी एकदम आश्चर्यचकित हो स्तब्ध रह जाते हैं और उसे गले से लगा लेते हैं। उनका एकदम जी भर जाता है और वे बड़ी जोरों से रो पड़ते हैं। बुद्धिसेन सिसकी भरने लगते हैं। उस समय ऐसा मालूम पड़ता है कि इतने दिनों से सेठ हेमदत्त ने जो भी दुःख भोगा है, वे सब एकदम आँसू के बहाने से अब सारे के सारे बाहर निकलकर कहीं को प्रयाण कर रहे हैं अथवा पुत्र और पुत्र-वधू के वियोग से जो पश्चात्ताप, संताप और संक्लेश को किया है, वह सब हृदय के बाँध को तोड़कर बाहर एक साथ आता चला जा रहा है। कुछेक क्षण तक पिताजी पुत्र को अपनी छाती से चिपकाये हुए हैं और छोड़ नहीं रहे हैं उन्हें ऐसा लगता है कि कहीं फिर यह मुझसे विमुक्त न हो जाये।....... हेमदत्त अपनी भुजाओं से अलग करते हुए उसके मस्तक पर हाथ फेरते हैं और उसकी आँखों के अश्रुओं को पोंछते हुए बोलते हैं -

''बेटा ! मैंने तुझे निकालकर बहुत ही दुःख दिया है और जिसके फलस्वरूप हम सभी ने भी असंख्य दुःख झेले हैं...।''

कुमार बुद्धिसेन माता के चरणों का स्पर्श करते हैं और हेमश्री भी पुत्र को अपने दिल से लगाकर अपने आँसुओं से ही मानों उसका अभिषेक कर रही हैं। अनन्तर क्रम-क्रम से अपने भाईयों के चरण स्पर्श करते हुए कुमार बुद्धिसेन सबसे गले मिलते हैं तथा क्रम-क्रम से भावजों को भी प्रणाम करते हैं। मनोवती भी ससुर हेमदत्त के चरणों का स्पर्श करके सासू को नमस्कार करके क्रम-क्रम से सभी जेठ और जेठानियों के चरण-स्पर्श करती है। सभी मनोवती को गले लगाकर खूब रोती हैं।

ऐसा लगता है कि जो इन लोगों ने 'जिनदर्शन प्रतिज्ञा' की निंदा करके पापपुंज संचित किया था, वही सब पापसमूह अब बुद्धिसेन और मनोवती के स्पर्श से अश्रुओं के बहाने निकलकर भागा जा रहा है चूँकि अब उसको यहाँ किसी के पास ठहरने की हिम्मत नहीं रही है।

अनन्तर सब लोग अपने-अपने अश्रुओं को रोककर एकटक -अपलक कुमार के मुख को ताकते हैं, उसको पहिचानने की कोशिश करते हैं, तब कहीं बड़ी मुश्किल से कुछ तिल, व्यंजन आदि चिन्हों से उसको पहिचान पाते हैं कि सचमुच में यह वही तो हमारा प्यारा पुत्र है और बंधुवर्ग भी समझ लेते हैं कि यह वही पुण्यशाली लक्ष्मी का स्वामी मेरा प्यारा छोटा भाई है कि जिसको हम सभी ने तो गोद में खिलाया था।

बुद्धिसेन सबको साथ लेकर चौक में बिछे हुए मखमल के गद्दे पर बैठ जाते हैं और पिता से उनके दुःखों की कहानी पूछते हैं -

''पूज्य पिता! आपको अपना देश बल्लभपुर छोड़े कितने दिन हुए हैं? आप यहाँ इस दशा में कैसे?''

''बेटा! मेरा किसी जन्म का कुछ पुण्य तेरे पास ले आया, नहीं तो हम लोगों ने तुझे निकालकर जो पाप कमाया था, शायद उसका फल जीवन भर भी भोगने से नहीं छूटता किन्तु...... न जाने किस जन्म के पुण्य ने मेरा साथ दिया है।''

हेमश्री मनोवती को बार-बार अपनी छाती से चिपका-चिपका कर कहती है -

''बेटी मनोवती! तेरे वियोग से हमने न जाने क्या-क्या संकट झेले हैं?''

बुद्धिसेन बहुत ही आश्चर्य से पूछते हैं -

''पिताजी! इतने करोड़ों की सम्पत्ति का अकस्मात् क्या हुआ? क्या राजा ने लुटवा लिया या चोर डाकू लूट ले गये या अग्नि लग गयी? आखिर आप लोग ऐसे सम्पत्तिहीन-दीन कैसे हो गये?''

''क्या पता, बेटा! तुम्हें निकाल देने के बाद अकस्मात् सारी सम्पत्ति कहाँ चली गई कुछ पता नहीं चला?.....क्या कहूँ बेटा!''

फिर अश्रु आ जाते हैं -

''पिताजी ! अब आप अश्रु बिल्कुल न लाइये। क्या पता किस समय किसके कैसे दिन आ जाते हैं? कर्मों की गति बड़ी विचित्र है। अब आप पूर्ण शान्त होइये।''

''प्यारे बेटा ! छह महीने भी नहीं हुए थे कि जब घर में खाने को दाना नहीं रहा। सारा कोठार जो कि रत्नों से, हीरों से, गजमोतियों से भरा हुआ था, वह सब खाली का खाली भाँय-भाँय कर रहा था। तब हमने तुम्हारी माता हेमश्री के गहने गिरवी रखे, फिर सभी बहुओं के गहने भी गिरवी रख दिये। जब

फिर भी पेट के लाले पड़ गये, तब दुकानों को गिरवी रखना शुरू किया। जब सब दुकानें हाथ से निकल गई तब हवेलियों को भी बेचना शुरू किया। बल्लभपुर के एक भाग की सारी ही हवेलियाँ तो हमारी थीं...... किन्तु हाय! जब सब हवेलियाँ बिक गई मात्र जिसमें रहते थे वो ही बची तो उसे भी गिरवी रख दिया। ओह! बेटा इतने से भी दुर्दैव को शान्ति नहीं मिली तो जंगल में गये और घास-फूस की झोंपड़ी बनाकर रहने लगे...''

दिन भर लकड़ी काटते, इधर-उधर से बीनते और गठ्ठर बनाकर सिर पर रखकर शहर में बेचने जाते। इतना सुनते ही बुद्धिसेन रो पड़े -

''हाय पिताजी ! यह क्या करना पड़ा..... अरे दुष्ट दैव ! तूने यह क्या किया......?''

''अरे बेटा ! दैव ने इतने पर भी संतोष नहीं किया। हम लोग पेट नहीं भर पाये, तब बल्लभपुर छोडकर बाहर निकले। अब हम लोगों से लकड़ी बीनना और बेचना भी नहीं हो पाया। इधर-उधर भटकते रहे कि कोई कुछ नौकरी पर लगा ले तो कहीं पड़े रहें किन्तु किसी ने भी नौकरी नहीं देना चाहा. ..हाय! बेटा! क्या कहूँ? कोई हँसते, कोई अपरिचित समझ कर बोलते कि ''अरे! ये कोई चोर लुटेरे फिर रहे हैं इन्हें अपने गाँव में नहीं रुकने देना।......''

''फिर आप यहाँ कैसे आये?''

''फिर बेटा! हम लोग दर-दर भीख माँगने लगे।'' मनोवती इतना सुनते ही बिलखने लगी -

''हाय! पिताजी! आप लोग....... इतने उत्तम कुलीन जौहरी और भीख माँगना पड़ा।''

''हाँ बेटी! इन्हीं हाथों को पसारकर एक-एक पैसा, दो-दो पैसा झेला है और उनसे भोजन लेकर पेट भरना चाहा। कहीं पर भिक्षा में जो भी रूखी-सूखी रोटियाँ मिलीं, उन्हें सबने मिलकर खाया लेकिन पेट नहीं भर पाये फिर बेटा ! घूमते-घूमते भटकते-भटकते हम लोग यहाँ रतनपुर के बगीचे में आये। वहाँ से शहर में आकर जब भीख माँग रहे थे तो 'सुखपाल जौहरी' जिनके यहाँ अपनी दुकान से बहुत बार हीरे, मोती, पन्ने भेजे जा चुके हैं, जो कि अपने ग्राहकों में विशेष एक ग्राहक थे। उन्होंने हम लोगों को देखा और कहा कि भाई! तुम लोग उत्तम कुल के दिखते हो, मालूम पड़ता है कि किसी आकस्मिक आपत्ति से परेशान हुए हो। भाई! तुम लोग भीख क्यों मांगते हो? किसी के यहाँ नौकरी या मजदूरी करके उदर भरो तो अच्छा रहेगा। मैंने कहा कि हम अपरिचित लोगों को कोई भी नौकरी देने को तैयार नहीं होते हैं। उसने समझाया और कहा कि यहाँ राजा के जमाई हैं जो कि बहुत से गाँवों के मालिक भी हैं। वे यहीं रतनपुर में बहुत विशाल जिनमंदिर का निर्माण करा रहे हैं, तुम वहाँ चले जाओ। तुम्हें वहाँ मजदूरी अवश्य मिलेगी। मैंने कहा कि हम लोगों को यदि आप वहाँ मजदूरी दिला देंगे तो आपका बड़ा अहसान होगा। वे बेचारे हमारे साथ हो लिए और हमें ले जाकर आपके पास पहुँचाकर आपसे निवेदन

किया किंतु बेटा! अभी एक वर्ष भी तुझे छोड़कर नहीं हुआ है और हम में से किसी ने भी तुझे नहीं पहचाना.....। और तू भी तो हम लोगों को इस दुरवस्था में नहीं पहचान पाया.....।''

बुद्धिसेन इतना सुनते ही एक बार मनोवती की ओर देखते हैं, पुनः लज्जा से माथा झुका लेते हैं और उनकी आँखों से अश्रु बहने लगते हैं। फिर रूंधे हुए कंठ से बोलते हैं –

''पूज्य पिता ! क्षमा कीजिए मैंने बहुत बड़ा अपराध किया है, मैं अधम हूँ, पापी हूँ....''

''ऐ बेटा! तुम यह क्या कह रहे हो? तुमने भला क्या अपराध किया? अपराधी तो हम लोग हैं कि जिन्होंने तुझ जैसे रत्न को बिना अपराध के घर से निकाल दिया।''

''नहीं पिताजी ! हमने बहुत बड़ा अपराध किया है।''

''पिताजी! मैंने तत्क्षण ही आपको, माँ को, सब भाईयों को और भावजों को पहिचान लिया था और इसलिए मैं वहाँ से उठकर महल में आया। आपकी पुत्र-वधू मनोवती से यह बात कह सुनाई कि सभी लोग हमारे यहाँ मजदूरी करने आये हैं। इन्होंने बहुत कुछ समझाया कि अब आप परिचय कराके उन्हें सुखी करो, परन्तु मुझे बहुत ही गुस्सा चढ़ा हुआ था, मैंने इनकी नहीं मानी और कहा कि मैं इनसे अपना बदला अवश्य चुकाऊँगा। इन लोगों ने गर्व में आकर मुझे निकाल दिया है। अब मैं एक बार मजदूरी कराकर अनन्तर भेद खोलूँगा। तब भी मनोवती जी ने यह आग्रह किया कि आप माता-पिता से बोझा नहीं उठवाना, मैंने इतनी बात इनकी मान ली।

अनन्तर आज मध्यान्ह में मनोवती जी ने अतीव हठ पकड़ लिया कि आज परिचय कराना ही है अन्यथा मैं सबको बुलाकर परिचय स्थापित किये देती हूँ। तब मैंने अभी आप लोगों को बुलाया है अन्यथा कुछ दिन और भी मजदूरी करवाता।'

''किन्तु बेटा ! इसमें तेरा क्या अपराध है? यह तो हम लोगों ने ही अपने किये का फल पाया है।''

बुद्धिसेन पश्चात्ताप से पीड़ित होकर बार-बार अपनी निन्दा करता है और भाई-भावजों से भी क्षमायाचना करता है –

''हे भाई! आप लोग मेरे पूज्य पितातुल्य हैं फिर भी क्रोध में आकर मैंने आप लोगों से मजदूरी कराई है सो अब आप सब मुझे क्षमा कर दें। बड़े लोगों का स्वभाव क्षमा का ही होता है और छोटे लोग बालकवत् अपराध किया करते हैं। भाभी जी! आप लोग मेरी माता के तुल्य हैं फिर भी मैंने आपके सिर पर बोझ रखवाया है सो क्षमा करें।''

सब आश्चर्य से सोच रहे हैं कि ओहो! हम लोगों ने इनके साथ तो सही में बिना कारण अन्याय किया है। अपराधी तो हम लोग हैं और उल्टे इनकी विवेकशीलता, उदारता तो देखो ! जो कि ये उल्टे हम लोगों से क्षमायाचना कर रहे हैं। सभी लोग स्तब्ध रह जाते हैं पुनः धनदत्त कहता है –

''भाई ! सच में देखा जाये तो अपराधी हम लोग ही हैं, आप नहीं हैं।''

संघात्र बीच में हेमदत्त सही स्थिति को स्पष्ट करते हुए बोलते हैं –

''बेटा! यह तो तुझे मालूम ही है कि मनोवती ने घर में आकर अपनी प्रतिज्ञा पालने हेतु तीन उपवास कर लिये थे। अनन्तर तुम्हारे साले मनोजकुमार ने आकर भेद खोला, तब मैंने अपना कोठार खोल दिया, जिसमें इतने गजमोती थे कि जीवन भर मनोवती उनके पुंज जिनदेव के समक्ष चढ़ाती रहती तो भी वे समाप्त नहीं होते।''

दीर्घ निःश्वास लेकर – किन्तु होनहार बलवान् होती है। मनोवती ने एक बार ही गजमोती मंदिर में चढ़ाया था और अपने पीहर चली गई। इधर राजा मरुदत्त ने सभी जौहरियों को एक साथ सभा में बुलवाया और गजमोती की मांग की। हम लोगों में पहले यह निर्णय हो चुका था कि सभी जौहरी राजदरबार में एक ही उत्तर देवेंगे अतः उस समय सभी जौहरियों ने गजमोतियों के बारे में ना कर दिया और सबके साथ मैंने भी ना कर दिया।

हाय बेटा! मेरे ना कर देने से बड़ा अनर्थ हो गया। राजा ने आवेश में आकर कहा कि यदि आज या कल क्या, वर्षों बाद भी किसी के यहाँ गजमोती दिख गई तो उसे प्राणदंड दिया जायेगा और उनकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली जायेगी।..... घर आकर मैं बहुत ही चिंतित हुआ। अपने इन धनदत्त आदि छहों बेटों को बुलाकर विचार–विमर्श किया। अन्त में निर्णय यह रहा कि बुद्धिसेन को ही घर से निकाल दिया जाये तभी अपने धन की और प्राणों की रक्षा है। अन्यथा मनोवती आयेगी, गजमोती चढ़ायेगी पुनः राजा के कोप का भाजन हम लोगों को बनना ही पड़ेगा।

श्री ओह! बस निर्बुद्धिक होकर हम लोगों ने तुझे घर से निकल जाने का आदेश दे दिया। बेटा! तेरी माँ को तो तेरे निकल जाने के बाद ही पता चला है। बाद में यह तो बहुत दुःखी हुई है। खैर ! जैसा हम लोगों ने किया....और तो क्या मनोवती की प्रतिज्ञा की भी हम लोगों ने निंदा की, उसकी भी निंदा की, कि यह कैसी तो प्रतिज्ञा और कैसी तो बहू? इत्यादि शब्दों में अवहेलना की, मन में कैसे दुर्भाव किये। बस, उसी का फल तो इतने दिनों से भोग रहे हैं..... अतः हम सभी लोग अपराधी हैं। बेटा! तुम उदार हृदय होकर अब हम सबको क्षमा कर दो।

सभी भाई–भावज भी एक स्वर से क्षमा माँगते हैं–''भाई! हम लोगों का अपराध क्षमा कर दो।''

कुमार बुद्धिसेन नीचा माथा कर लेते हैं और सकुचाते हुए कहते हैं– ''पूज्य तात्! आपका क्या दोष है? हमने तो पूर्व में कुछ अशुभ कर्म संचित किये होंगे, उन्हीं का फल ऐसा मिला है। इसमें आप लोग तो बस निमित्तमात्र हैं। अब आप अपने इस संताप को छोड़ दीजिए और शांतचित्त होइये।''

कुछ क्षण बाद बिल्कुल शांत वातावरण होने पर पुनः हेमदत्त कहते हैं –

''बेटा बुद्धिसेन ! घर से निकलने के बाद तुम्हें कैसे–कैसे प्रसंग आये? कहो तो सही!''

तब कुमार बुद्धिसेन ने भी न अति संक्षेप और न अति विस्तार से सुनाना शुरू किया –

''पिताजी! मैं हस्तिनापुर पहुँचकर केवल देश निर्वासन का समाचार सुनाकर विदेश गमन हेतु स्वीकृति चाहता था किन्तु मनोवती ने बहुत हठ पकड़कर मेरा साथ किया। यहीं रतनपुर के बगीचे में हम तीन दिन. बाद आ पहुँचे। इन्होंने एक नग दिया, जिसे गिरवी रखकर मैं बराबर तीन दिन तक भोजन का सामान लाता रहा। ये भोजन बनाती रहीं और मुझे जिमाती रहीं तथा आप स्वयं उपवास करती गईं। मैंने इन्हें अतीव कमजोर देखकर यही अनुमान लगाया कि मेरे निर्वासन के दुःख से और मुझसे अभी कोई व्यापार नहीं जम रहा है इसी चिंता से ये कमजोर होती जा रही हैं किन्तु आठवें दिन मैं तो रतनपुर शहर में व्यापार हेतु ही घूम रहा था, वहाँ बगीचे में इनकी प्रतिज्ञा की दृढ़ता से, इनके पुण्य प्रभाव से देवों ने आकर धरती में ही दिव्यविशाल मंदिर का निर्माण कर दिया और वहाँ रत्नों की जिनप्रतिमाएँ विराजमान कर दीं। इनके पैर के नीचे की शिला सरकी और इन्होंने उसे उठाकर नीचे जाकर स्नान आदि करके श्री जिनेन्द्रदेव का दर्शन पूजन किया। वहीं पर रखे हुए गजमोतियों के पुंज को लेकर प्रभु के चरण निकट चढ़ाकर अपना जीवन कृतार्थ किया।

''पिताजी! इन्होंने तो ऐसे दिव्य मंदिर का दर्शन मुझे भी नहीं कराया। स्वयं ही दर्शन करके कृतकृत्य हो गई।''

पिता जी हँस पड़ते हैं और हर्ष में विभोर होकर सभी लोग एक साथ बोल पड़ते हैं –

धन्य हो मनोवती! तुम धन्य हो! ओहो!.... तुमने अपनी प्रतिज्ञा से देवों के आसन कंपा दिये.......। तुम महा पुण्यशालिनी हो। सचमुच में तुम्हारे पुण्य की महिमा अपार है! हाँ, यही कारण है कि तुम्हारी प्रतिज्ञा की निंदा से हम लोग क्या से क्या हो गये! अरे! किन–किन परिस्थितियों का सामना नहीं किया?

जय हो जय हो! जैनधर्म की जय हो! श्री जिनेन्द्रदेव की जय हो। प्रभो! आपके प्रसाद से ही सब सुख और सुमंगल होते हैं!...

''अनन्तर क्या हुआ बेटा ?''

''अनन्तर इन्होंने आठवें दिन भोजन किया और फिर भी मुझे कुछ नहीं बताया। इसके बाद इन्हें मन्दिर जी से आते समय दो मोती मिले थे सो एक मोती मुझे देकर कहा कि इसे राजा को भेंट करो। मैंने वैसा ही किया, तब राजा ने मेरा परिचय पूछकर और जौहरी पुत्र जानकर एक हवेली में ठहरा दिया।''

''अच्छा ! तो तत्काल ही तुम सुखी हो गये!''

''हाँ पिता जी!''

बुद्धिसेन 'नर–मादा' मोती का पूरा किस्सा सुना देते हैं, जिसको सुनकर सभी लोग आश्चर्यचकित

हो जाते हैं। इसके बाद राजा के द्वारा गुणवती के विवाह से लेकर जिनमंदिर निर्माण के कार्य की प्रेरणास्त्रोत ये मनोवती ही है, यहाँ तक का इतिहास सुना देते हैं। सभी प्रसन्नचित्त होकर मनोवती की और उसके गजमोती चढ़ाने की प्रतिज्ञा की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। सभी लोग प्रत्यक्ष में तत्क्षण ही प्रतिज्ञा के महान उत्तम फल को और उसकी अवहेलना से हुए अतीव हीन निकृष्ट फल को देखकर बराबर धर्म की प्रशंसा करते हुए अपने दुष्कृत्यों की निंदा करते हैं।

कुमार बुद्धिसेन पिता के पैर दबाते हुए बार-बार उनके शरीर में, गले में प्रकट रूप से दिखती हुई हड्डियों को, नसों को देख-देखकर विह्वल हो उठते हैं।

''ओह पिताजी! आप कितने कमजोर हो गये हैं। सारा बदन का रंग काला पड़ गया है। ''

हेमदत्त हँस पड़ते हैं -

''बेटा! अब सब वापस ठीक हो जायेगा।''

अर्धरात्रि का समय हो रहा है। मनोवती जेठानी के बच्चों को प्यार करके वहीं सुला रही है। तब बुद्धिसेन कुछ सोचकर सहसा बोल उठते हैं -

''प्रिये! भंडारी से कहकर भंडार खुलवाओ और वस्त्रों से, अलंकारों से सबको सुसज्जित करो।''

मनोवती तथैव व्यवस्था में लग जाती है। बुद्धिसेन कहते हैं-''पिताजी! अब आप लोग वस्त्र परिवर्तित करके रथों में बैठकर इस शहर से पाँच-सात मील दूर बल्लभपुर के मार्ग में चले जाइये और वहीं पर ठहरिये। जब राजा को पता चलेगा कि अपने समधी सकुटुम्ब आ रहे हैं, तब वे आपके स्वागत के लिए आयेंगे और आपका महोत्सव के साथ इस शहर में प्रवेश कराया जावेगा।''

पिता ने कुछ सोचकर बेटे की बात मान ली और बुद्धिसेन ने स्वयं अपने हाथों से पिताजी के वस्त्र बदले, भाइयों को वस्त्र बदलाये। उन्हें सुन्दर-सुन्दर रत्नों के, हीरों के अलंकार पहिनाये और सभी के गले में गजमोतियों के सुन्दर-सुन्दर हार पहिनाये। मनोवती ने सासूजी को बढ़िया साड़ी पहनाई और जेवर पहिनाये, सभी जेठानी की साड़ियाँ बदलाई और सभी को बढ़िया-बढ़िया जेवर पहिनाये।

कुछ विश्वस्त लोगों के साथ जल्दी से जल्दी उन्हें रथ में, पालकियों में बिठाकर बाहर भेज दिया और उनके साथ में तमाम द्रव्य, हाथी, घोड़े, वाहन, परिकर, कर्मचारी आदि भी भेज दिये। वे लोग वहाँ से जाकर सात मील पहले एक बगीचे में ठहर गये।

मध्याह्न में राजा के पास कुमार ने सूचना भेज दी कि मेरे पिताजी सपरिवार पधारे हुए हैं। यहाँ से सात मील दूरी पर हैं। कल सुबह रत्नपुर के बगीचे में आ जावेंगे। राजा को समाचार मिलते ही उनके हर्ष का पार नहीं रहा, यशोधर महाराज ने सारे शहर में घोषणा कर दी कि हमारे समधी जी पधारे हुए हैं। सारे शहर के नर-नारियों को हमारे साथ कल प्रातः उनके स्वागत हेतु चलना है। सारा शहर झंडियों

से, तोरणद्वारों से, चन्दन के छिड़काव से, फूलों की मालाओं से और आम्र, अशोक तथा कदली के पत्तों से बहुत ही सुन्दर सजाया गया है।

महाराज यशोधर प्रातःकाल अपने परिवार के साथ तथा बुद्धिसेन जमाई, उनकी भार्या मनोवती और गुणवती के साथ, अमात्य मंत्री, सेनापति, राजश्रेष्ठी, जौहरी आदि नागरिक जनों के साथ-साथ बड़े ही लवाजमे सहित निकलते हैं। कितने ही तरह के मंगल बाजे बज रहे हैं। सौभाग्यवती महिलाएं मंगलगीत गा रही हैं। सभी लोग चलकर शहर के बाहर बगीचे में पहुँचते हैं।

राजा यशोधर और बुद्धिसेन कुमार अपनी-अपनी रानियों के साथ अपने-अपने रथ से उतर पड़ते हैं। बगीचे में आगे बढ़कर समधी से मिलते हैं। उस समय बाजों की गंभीर ध्वनि से आकाश मंडल गुंजायमान हो उठता है। सब एक-दूसरे के गले लगकर शरीर की कुशल क्षेम पूछकर माता हेमश्री से मिलकर यथोचित अभिवादन कर उनसे शहर में पधारने की प्रार्थना करते हैं। वे लोग भी प्रसन्नपूर्ण मुखमुद्रा से सभी का यथोचित सत्कार करके सबके साथ वहाँ से प्रस्थान कर देते हैं। शहर में महलों की अटारियों पर उनके प्रवेश को देखने हेतु लाखों नर-नारी खड़े हुए हैं। सड़कें खचाखच भरी हुई हैं। कर्मचारीगण बड़ी मुश्किल से भीड़ को हटा पाते हैं जब वहाँ से इन लोगों के रथ आगे बढ़ पाते हैं। जनता आपस में उनका परिचय दे रही है। देखो ना, ये रथ पर बुद्धिसेन के साथ बैठे हुए महानुभाव उनके पिताजी मालूम पड़ रहे हैं। ये अन्य रथों पर अपनी-अपनी भार्यायों के साथ उनके भाई हैं। ये देखो! सामने रथ पर मनोवती और गुणवती के बीच में जो बैठी हुई हैं, वे ही तो बुद्धिसेन महाराज की माता हैं।

...... कुछ घण्टों के बाद सब लोग राजमहल तक आ जाते हैं। महाराज आज दिन सबको राजमहल में ही ठहराते हैं। सब लोगों को भोजन पान कराते हैं। सारे गाँव के लोगों को जिमाते हैं।

..... दूसरे दिन सभी परिवार को कुमार बुद्धिसेन अपने महल में ले जाते हैं और उनका यथोचित आदर सत्कार करके भोजन कराते हैं और सभी भाइयों के लिए अलग-अलग बड़ी-बड़ी हवेलियाँ खुलवा देते हैं।

..... सभी परिवार के लोग सब तरफ से सुखी हैं। शाम को कुमार अपने महल में जब बैठते हैं तब सभी परिवार के लोग एकत्रित हो जाते हैं। मनोरंजन के साथ-साथ मंदिर निर्माण की गतिविधियों पर विचार-विमर्श चलता रहता है। कुमार स्वयं अपने हाथों से प्रतिदिन पिताश्री के चरण दबाते हैं और मनोवती सासूजी की सेवा करती रहती हैं।

सेठ हेमदत्त कभी-कभी पिछले दिनों की याद कर सिहर उठते हैं। हेमश्री भी सोचती हैं कि देखो! कर्मों की लीला कितनी विचित्र है ! एक दिन यह बहूरानी महारानी और मैं उसकी नौकरानी थी। इसके बुलाने पर भी इसके पास जाने को सकुचाती थी और आज यह उदारमना देवी मेरी सेवा टहल कर रही है।

सभी लोग प्रत्यक्ष में पाप के फल से दुःख उठा चुके हैं अतः अब धर्म की निन्दा से, धर्मात्मा की निंदा से परिपूर्णतया निवृत्त हो चुके हैं। अब तो खूब ही रुचि से जिनेन्द्रदेव की पूजा में तत्पर हो रहे हैं। हमेशा धर्मचर्चा के सिवाय अब अन्य कुछ बातें किसी को भी नहीं सुहाती हैं। मनोवती को सब लोग साक्षात् धर्म की मूर्ति समझ रहे हैं। धर्मध्यानपूर्वक सभी का समय सुख शांति से व्यतीत हो रहा है।

कुछ दिन बाद कुमार बुद्धिसेन मंदिर का विस्तृत वर्णन करते हुए पुनः मनोवती से पूछते हैं –

''आपने जो देवों द्वारा रचित दिव्य जिनमंदिर का दर्शन किया है, उसमें की कोई और भी सुन्दर आकृति (डिजाइन) बताओ जो कि वहाँ पर किंचित् रूप में बनवाई जा सके।''

''मैंने जो कुछ भी बढ़िया आकार देखा था, वह सब बता दिया है और प्रायः वह किसी न किसी अंश में बन चुका है। यद्यपि उसमें विशेषताएं तो बहुत सी थीं किन्तु अब मुझे स्मरण में पूरी तौर से नहीं आ रही हैं।''

''तो अब अपना निर्माण कार्य पूरा हो लिया है। अब तो वह जिनमंदिर देखते ही बनता है और जब इसमें जिनेन्द्रदेव की प्रतिमाएँ विराजमान हो जावेंगी फिर क्या पूछना!''

''स्वामिन्! अब बहुत शीघ्र ही प्रतिष्ठा विधि करवाकर जिनेन्द्रदेव की रत्नमयी प्रतिमाएं विराजमान करवाइये। अब किंचित् भी देर न कीजिए।''

''तो ठीक है प्रिये ! मैं अभी महाराज के पास पहुँचकर प्रतिष्ठा का निर्णय लिये लेता हूँ।''

कुमार बुद्धिसेन सभा में पहुँचकर महाराज यशोधर को प्रणाम कर यथोचित आसन पर बैठ जाते हैं। परस्पर में कुशल क्षेम होने के बाद मंदिर निर्माण की चर्चा चलती है। आगे उसी विषय में बुद्धिसेन कहते हैं –

''महाराजाधिराज! मंदिर का कार्य सुचारुतया सम्पन्न हो चुका है। आप एक बार चलकर अवश्य ही निरीक्षण कीजिए।''

''बहुत अच्छा ! अवश्य चलूँगा।''

''महाराज ! अब पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा कराने की भी आज्ञा दीजिए।''

महाराज प्रसन्नता व्यक्त करते हुए –

''बहुत अच्छी बात है, कुँवर साहब! बहुत ही विशेषरूप में प्रतिष्ठा होनी चाहिए। अच्छा! मंत्री महोदय! ज्योतिषीजी महाराज को बुलवाइये।''

''जो आज्ञा महाराज!''

''हाँ, कुँवर जी ! देखिये, जो भी सहायता आप हमसे चाहें, हम सब कुछ करने को तैयार हैं......।''

इसी चर्चा के बीच में ज्योतिषीजी आ जाते हैं और यथोचित अभिवादन कर बैठ जाते हैं।

''हाँ, पंडितजी ! श्री जिनेन्द्रदेव की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का बहुत ही उत्तम मुहूर्त निकालिये।''

पंडित जी मुहूर्त देखकर राजा को बतला देते हैं। राजा भण्डारी से पंडित के लिए यथोचित भेंट मँगवाकर उन्हें दे देते हैं। राजा पुनः कहते हैं

''आप अब कुंकुम पत्रिका लिखवाइये और सभी देशों में, शहरों-, नगरों में तथा सभी ग्रामों में भिजवाइये।

माहात्म्य तो उन्हीं का ही है अतः न्याय से उन्हीं को प्रमुख इन्द्राणी का अधिकार देना होगा।''

''जय हो, महाराज यशोधर का यश विश्वव्यापी बने।''

सब लोग बड़े आदर से महाराज के गुणों की प्रशंसा करते हुए वहाँ से निकल कर सीधे बुद्धिसेन के दरबार में पहुँचते हैं और राजा का आदेश सुना देते हैं। बुद्धिसेन भी यथोचित न्याय को पाकर हर्षातिरेक से रोमांचित हो उठते हैं अपनी प्रिया मनोवती को सारा समाचार सुनाकर पुनः गुणवती जी के महल में पहुँच कर उसे भी प्रिय हित मधुर वचनों से समझा-बुझाकर इन्द्राणी बनने के लिए तैयार करते हैं -

''देखो प्रिये! यह मनोवती मेरे साथ न आती तो मैं आज न जाने कहाँ होता! मैं तुम्हें भला कैसे पा सकता था? इसलिए महाराज का न्याय यथोचित ही है। अब तुम किसी प्रकार का मन में विषाद मत करो और प्रसन्नमना होकर मनोवती की सहचारिणी बनो।''

प्रातःकाल से अनेकों तरह के मंगल बाजे बज रहे हैं। प्रतिष्ठा विधि का कार्यक्रम प्रारंभ हो चुका है। धनदत्त, सोमदत्त आदि छहों भाई भी ईशान, सनत्कुमार आदि इन्द्र बने हुए हैं। कुल सभी मिलकर सौ इन्द्र अपनी-अपनी इन्द्राणियों के साथ आकर विधान मंडप में उपस्थित हो चुके हैं। ऐसा लग रहा है कि मानों साक्षात् सौधर्म इन्द्र ही अपने चतुर्निकाय के सभी इन्द्रों और परिवार देवों के साथ उपस्थित हैं। पिता हेमदत्त और माता हेमश्री खुशी से फूल रहे हैं। उन्हें बुद्धिसेन के विवाह में जो आनन्द आया था, आज उससे करोड़ों गुणा अथवा यों कहिए असंख्य गुणा आनन्द आ रहा है।

सेठानी हेमश्री बार-बार मनोवती की प्रतिज्ञा की प्रशंसा कर रही है। सेठ हेमदत्त भी प्रतिज्ञा के प्रत्यक्ष फल को देख-देखकर धर्म के प्रति अपना संवेग भाव वृद्धिंगत कर रहे हैं। विधिवत् पाँचों कल्याणकों द्वारा रत्नों के जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा हो रही है। मूलनायक भगवान् ऋषभदेव का सर्वश्रेष्ठ धर्म वृद्धिंगत हो रहा है।

बुद्धिसेन कुमार के आदेश से उनके खजांची लोगों से द्रव्य लेकर, भोजन विभाग के व्यवस्थापक लोग बहुत ही सुन्दर भोजन की व्यवस्था बनाये हुए हैं। सभी यात्री लोग वहीं भोजनशाला में भोजन करते हैं। शहर के सभी स्त्री-पुरुष भी वहीं भोजनशाला में जीमते हैं। आगन्तुक दर्शकगण जो इतर-अजैन

लोग हैं, उनके लिए पृथक् भोजनशालाएं खुली हुई हैं। गरीबों के लिए तथा अंधे, लंगड़े आदि के लिए अलग भोजनालय खुले हुए हैं। वहाँ पर दिन के बारह घंटे सदावर्त[1] चल रहा है।

प्रतिष्ठा मण्डप की शोभा का वर्णन अपार है। बावन गज के चौक (चबूतरे) पर रत्नों के चूर्ण और मोतियों से मंडल पूरा गया है। सर्वत्र रत्न, हीरे, मोती, माणिक, मरकत, पन्ना, स्फटिक, वैडूर्य आदि मणियों की शोभा ही दिखाई देती है। श्री ऋषभदेव की विशाल मूर्ति उत्तम पुखराज मणि से निर्मित अतीव सुन्दर समचतुरस्र संस्थान आदि उत्तम लक्षणों से विशेष है। भामंडल आदि आठ प्रातिहार्य और आठ प्रकार के मंगल द्रव्यों से वेदिका विशेष रूप से सुसज्जित हो रही है।

सभी इन्द्रगण नाना प्रकार के रेशमी आदि दिव्य शुभ्र धोती और दुपट्टे को धारण किये हुए हैं। नाना प्रकार के अलंकार और यज्ञोपवीत से विभूषित हैं और मस्तक पर सुन्दर मुकुट बांधे हुए हैं। इन्द्राणियाँ भी दिव्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर मस्तक में मुकुट लगाए हुए अपने पति के हर एक कार्य में सहयोगिनी हो रही हैं। इस प्रकार से सात दिन तक प्रतिष्ठा विधि चलती है। अन्तिम आठवें दिन रथयात्रा का महामहोत्सव मनाया जाता है। श्री जिनबिंब को रथ में विराजमान करके सारे शहर में श्रीविहार कराया जाता है। उस समय हजारों हाथी, घोड़े, रथ, पालकी आदि उस उत्सव में आगे-आगे चल रहे हैं। महाराज यशोधर स्वयं नंगे पैर श्रीविहार के साथ-साथ चल रहे हैं। अनंतर इन्द्राणी मनोवती के साथ सौधर्मेन्द्र बुद्धिसेन की गाँठ जोड़कर सूत फेरने की विधि उत्सव के साथ सम्पन्न की जाती है। उस समय बाजों की ध्वनि से सारा शहर और आकाश मण्डल मुखरित हो उठता है। इस तरह आनंद मंगलपूर्वक बिना किसी विघ्न-बाधा के आठ दिन में विधि-विधान का कार्य संपूर्ण किया जाता है।

1. सभी के लिए हर समय भोजन आदि दान देते रहना सदावर्त कहलाता है।

नवमें दिन सभी देश-विदेश के यात्रियों का यथोचित सम्मान करते हुए बुद्धिसेन महाराज सबको विदाई दे रहे हैं किन्तु बल्लभपुर और हस्तिनापुर के सभी यात्रियों को उन्होंने और एक दिन के लिए अतीव आग्रह करके रोक लिया है। उस दिन उन सबका विशेष आदर सम्मान करके दसवें दिन उन लोगों की भी विदाई कर दी।

सर्वत्र शहर में और अपने-अपने देश को वापस जाने वाले यात्रियों के समूह में बस एक ही चर्चा चल रही है।

''ओहो! देखो तो सही, मनोवती देवी यह हस्तिनापुर के जौहरी सेठ महारथ जी की सुपुत्री हैं। इनने मुनिराज के पास यह प्रतिज्ञा ली थी कि ''मैं जिनेन्द्रदेव के बिम्ब के समक्ष गजमोतियों को चढ़ाकर ही भोजन करूँगी।'' प्रारंभ में ससुराल में आते ही तीन उपवास कर डाले पुनः गजमोती चढ़ाकर चौथे दिन भोजन किया।. अनंतर पति के देशनिर्वासन के बाद उनके साथ नंगे पैर पैदल चलकर इस रतनपुर बगीचे में आई। देवों द्वारा निर्मित किये गये जिनमंदिर में गजमोती चढ़ाकर आठवें दिन भोजन किया था। इसी

प्रतिज्ञा के प्रभाव से ही उसने अपने पतिदेव को और अपने को आज इतने ऊँचे उन्नति के शिखर पर चढ़ाया है।''

''देखो ना! कितना विशाल जिनमंदिर बना है। कितने रत्नों का प्रकाश उसमें जगमगा रहा है। एक सौ आठ बड़े-बड़े शिखर हैं और उन्हीं में छोटे-छोटे शिखर हैं। कुल मिलाकर एक हजार आठ शिखर बने हुए हैं और सभी पर सुवर्णों के, मणियों के कलश चढ़ाये गये हैं। यहाँ भाई! राजा यशोधर ने इन्हें अपनी पुत्री ब्याह दी है और इन्हें अपने विशाल राज्य का चौथाई भाग दे दिया है। इसलिए ये अब सेठ पुत्र नहीं रहे हैं ये राजजमाई हैं।''

''नहीं नहीं! ये तो अब स्वयं राजा ही हैं। बहुत से गाँवों के स्वामी हैं। इनके वैभव का क्या कहना? सच है ! इन्होंने अपनी चंचला लक्ष्मी का सदुपयोग कर लिया है। जिनबिम्ब प्रतिष्ठा से और जिनमंदिर निर्माण से बढ़कर तीनों लोकों में कोई भी महान पुण्य कार्य न था, न है और न होगा। अरे भाई ! यदि तीन लोकों के सारे पुण्य को इकट्ठा करके तराजू के एक पलड़े में रखो और एक जिनमंदिर बनवाकर प्रतिष्ठा कराके उसमें जिनबिंब विराजमान करने के पुण्य को एक पलड़े में रखो तो इस जिनमंदिर के पुण्य का पलड़ा ही भारी हो जावेगा।''

इस तरह नाना प्रकार से उभय दम्पत्ति की तथा मनोवती की प्रतिज्ञा की और प्रतिष्ठा संबंधी विशेषता की चर्चायें करते हुए तमाम लोग भी महान् पुण्य का अर्जन करते चले जा रहे हैं।

(12)

बल्लभपुर नरेश महाराज मरुदत्त अपने सिंहासन पर आरूढ़ हैं। मंत्रीगण उनके निकट में बैठे हुए हैं और जैसी की वापस आए हुए प्रजा जनों के मुख से रतनपुर में हुई प्रतिष्ठा की चर्चा सुनी है, वही सुना रहे हैं -

''महाराज! उस प्रतिष्ठा की अपनी विशेषता यह रही कि राजजमाई ने सभी लाखों यात्रियों को विदाई के समय एक-एक रत्नहार भेंट में दिए हैं और वस्त्र भी दिये हैं। करोड़ों याचकों को मुँह माँगा दान दिया गया है। आठ दिन तक तो इतने लोगों ने भोजन किया है-कहते हैं कि शायद उनकी संख्या चक्रवर्ती के कटक के लोगों की संख्या से कम नहीं होगी।

''हाँ महाराज ! इस समय तो यह प्रतिष्ठा अपने आप में एक अद्भुत ही हुई है।''

द्वारपाल आकर नमस्कार करके निवेदन करता है-

''महाराजाधिराज की जय हो। महाराज ! अपने नगर के जौहरी लोग पधारे हुए हैं।''

''हाँ, अन्दर आने दो।''

सभी लोग आकर यथोचित भेंट रखकर विनय करके बैठ जाते हैं- ''कहिए! जौहरी जी कहिए! आप लोग रतनपुर से सकुशल तो आ रहे हैं? कहिए प्रतिष्ठा संबंधी कोई विशेष वार्ता कहिए!''

''महाराज! हम लोग विशेष वार्ता सुनाने ही आये हैं।''

लोग कुछ सकुचाते हैं –

''कहिए ना!''

''महाराज! लगभग एक वर्ष हुए होंगे, आपने एक दिन सभा में सभी जौहरियों को बुलाया था......।''

''हाँ, हाँ! गजमोतियों की मांग की थी मैंने......''

''हाँ महाराज! उसी दिन जौहरी हेमदत्त ने भी गजमोती के बावत ना कर दिया था।''

''फिर क्या हुआ?''

''फिर महाराज! वे घर पहुँचे और चिंतित हो गये। चूँकि उनकी छोटी बहू जो कि हस्तिनापुर से आई थी, उसकी जिन मंदिर में गजमोती चढ़ाने की प्रतिज्ञा थी और सेठ जी के घर न जाने कितने गजमोती कोठार में भरे पड़े थे। बहू आयेगी, गजमोती चढ़ायेगी तो क्या होगा?......इसी डर से सेठ जी ने अपने छोटे पुत्र को घर से निकाल दिया।''

आश्चर्य और खेद के साथ –

''अरे ! यह क्या हुआ? फिर वह कहाँ है?''

''महाराज ! वह हस्तिनापुर से अपनी भार्या मनोवती को लेकर रतनपुर चला गया। वहाँ पर बगीचे में मनोवती को गजमोती चढ़ाये बिना सात उपवास हो गये.....। अनन्तर देवों ने दर्शन कराकर उसकी प्रतिज्ञा निभाई और उसी समय 'नर–मादा' ऐसे दो मोती देवों ने ही उसे दिये। जिनके फलस्वरूप वह बुद्धिसेन राजा का जमाई हुआ।''

आश्चर्य से –

''अच्छा!''

''हाँ महाराज! यह प्रतिष्ठा उसी ने तो कराई है। सारे कार्य में प्रेरणा एकमात्र उस मनोवती महिलारत्न की ही है।''

''यह बात सत्य है या किंवदन्ती मात्र है?''

''नहीं महाराज! बिल्कुल सत्य है। मैंने स्वयं देखा कि प्रतिष्ठा के आठ दिन बाद सब यात्री तो चले गये परन्तु कुमार ने बल्लभपुर के सभी यात्रियों को तथा हस्तिनापुर के यात्रियों को आग्रहपूर्वक रोक लिया और उनका विशेष सत्कार किया।''

अन्य जौहरीगण भी स्वतः देखी सुनी बातों को सुनाने लगते हैं –

''महाराज! मैंने स्वयं देखा, हस्तिनापुर के सेठ महाराज जी अपनी पुत्री मनोवती के माथे पर हाथ फेरते हुए कह रहे थे कि बेटी मनोवती! तू बिना कुछ कहे सारे जेवर आभूषण उतारकर वहीं पलंग पर डाल कर चली आई थी। तब हम लोगों के शोक का पारावार नहीं था और अब तेरी इस उन्नति को, तेरी प्रतिज्ञा के इस माहात्म्य को देखकर मेरी खुशी का भी पार नहीं है।''

''महाराज ! स्वयं अपने नगर के सेठ हेमदत्त सपरिवार वहीं पर रहते हैं।''

''अरे! वे यहाँ से कब चले गये?''

''राजन्! अपने पुत्र को निकालने के बाद वे चन्द दिनों में अपने आप ही सम्पत्ति और श्री से विहीन हो गये।''

''अपराध क्षमा हो! मैंने तो सुना है कि उन्होंने दुकानों और मकानों को तथा औरतों के जेवरों को भी कुछ बेच खाया, कुछ गिरवी रखकर उससे पेट भरा।''

''अरे! मैंने तो यहाँ तक सुना है कि उन्होंने कुछ दिन यहीं पर जंगल से सपरिवार सिर पर लकड़ियों के गट्ठर लाकर बेचे हैं।''

''हाय, हाय ! यह सब बातें मुझे क्यों नहीं बताई गई?''

''और तो क्या महाराज! वे देश छोड़कर भीख माँगते-माँगते रतनपुर पहुँचे और वहाँ पर कुछ दिनों तक इसी मंदिर के निर्माण कार्य में मजदूरी भी की है।..... अनंतर जब कुमार बुद्धिसेन को मालूम हुआ, तब उसने इनका परिचय कराकर राजा के द्वारा इनका सम्मान कराया है।''

''ओह! मंत्री! मेरे निमित्त से मेरे शहर के इतने पुण्यशाली संपत्तिशाली जौहरी को ऐसे-ऐसे संकटों का सामना करना पड़ा। धिक्कार हो मुझे! जो कि मेरे कठोर अनुशासन के निमित्त से ऐसा नररत्न बुद्धिसेन रतनपुर में कीर्ति पताका फहरा रहा है। मंत्रिन्! अब उन सबको अपने शहर में वापस लाओ।'

''महाराज! वे बुद्धिसेन वहाँ पर यशोधर महाराज के बहुत कुछ राज्यभाग के अधिकारी हैं। अब वे वहाँ पर राज्य कर रहे हैं। वे यहाँ वापस कैसे आयेंगे?''

''नहीं मंत्रिन्! तुम स्वयं वहाँ जाओ और कुमार बुद्धिसेन से समझाकर कहो कि महाराजा मरुदत्त सब प्रकार से क्षमा याचना करा रहे हैं और वे अब तुम्हारे वियोग से बहुत दुःखी हैं...। वे तुम्हारे वहाँ चले बिना अब अपने प्राणों को भी धारण करने में असमर्थ हैं।''

महाराजा मरुदत्त पश्चात्ताप से आहत हो बुद्धिसेन से मिलने के लिए विह्वल हो उठते हैं –

''मंत्रिन्! अब इस कार्य में एक क्षण की भी देरी करना उचित नहीं है।''

''जो आज्ञा महाराज! मैं स्वयं अभी-अभी प्रस्थान की तैयारी कर रहा हूँ। मैं लेकर ही आऊँगा, आप निश्चिंत होइये।''

मंत्री महोदय कुछ परिकर अपने साथ लेकर रतनपुर पहुँचते हैं। कुमार बुद्धिसेन बल्लभपुर के मंत्री महोदय का यथोचित सम्मान करते हैं।

''कुमार! अब आप अपनी जन्मभूमि बल्लभपुर शहर को पवित्र कीजिए। महाराज आपको विशेष याद कर रहे हैं।''

बुद्धिसेन किंचित् मुस्कराकर बोलते हैं

''मंत्री महोदय ! अब बल्लभपुर में हमारे पैर रखने की आवश्यकता ही क्या है?''

''राजन्! यद्यपि आप यहाँ पर राज्य का भार सँभाल रहे हैं फिर भी आपके महाराजा साहब आद्योपांत आपकी सारी घटना सुनकर बहुत ही खिन्न हो रहे हैं। वे इस समय आपके वियोग से बहुत ही दुःखी हैं। यदि आप नहीं चलेंगे तो वे निश्चित ही चारों प्रकार के भोजन का त्याग कर देंगे। इसी आदेश के साथ उन्होंने मुझे आपकी सेवा में भेजा है।''

बुद्धिसेन कुछ विचार में पड़ जाते हैं –

''कुमार! अब आप किंचित् भी देरी न कीजिए। महाराज अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं।''

''मंत्री महोदय! मेरा चलना तो असंभव सा ही लगता है चूंकि महाराज यशोधर भी मुझे नहीं छोड़ेंगे।..... अतः आप महाराजश्री से हाथ जोड़कर मेरा नम्र निवेदन कीजिए कि वे समय पाकर एक बार आपसे मिलने अवश्य आवेंगे किन्तु वहाँ रहने की बात तो......।''

''बुद्धिसेन कुमार! आप महान् बुद्धिमान हैं। आपको इस विषय पर गहराई से सोचना होगा। महाराज साहब ये निर्णय कर चुके हैं कि वे मेरे अकेले वापस पहुँचते ही अन्न-जल का त्याग कर देंगे। इसमें आप बिल्कुल भी शंका न करें।''

बुद्धिसेन कुमार मंत्री को आश्वासन देकर सीधे अपने महल पहुँचते हैं और प्रिया मनोवती के सामने सारी स्थिति रख देते हैं। मनोवती कहती है –

''स्वामिन्! अब आपको बल्लभपुर चलना ही उचित है।''

''प्रिये! मैं तो किसी भी हालत में जाने को तैयार नहीं हूँ।' हाँ! यदि माता-पिता आदि परिवार के लोग जाते हैं तो मैं रोकूँगा नहीं।''

''प्रियतम ! मैं एक बात और कहूँ।''

''कहिए।''

''यहाँ पर आपको रहना कथमपि श्रेयस्कर नहीं है। देखिये ! यहाँ पर सभी लोग आपको राजजमाई के नाम से ही जानते हैं। आपके पिता का नाम यहाँ नहीं चल सकता है अतः आपको अपने ही देश में चलकर अपने पिता का नाम चलाना चाहिए। ससुराल के कुल में अपनी प्रसिद्धि पाने वाले.... क्या उत्तम पुरुष माने जाते हैं?''

बुद्धिसेन कुमार सोचने लगते हैं कि बिल्कुल सच बात है। हस्तिनापुर में इसके द्वारा रोकने के आग्रह में मैंने यही हेतु उपस्थित किया था और ससुराल में रहकर अपने पिता के नाम को डुबोना उचित नहीं समझा था और अब..... यहाँ पर भी तो वही बात है अतः अब बल्लभपुर जाना ही उचित है।

''ठीक है, प्रियतमे! आपने उचित सलाह दी है। अब मैं पिताजी से मिलकर सारी स्थिति का दिग्दर्शन कराके राजा से आज्ञा लेने जाऊँगा।''

बुद्धिसेन पिता आदि को मंत्री के आने का समाचार सुनाकर उनसे मिलान करा देते हैं पुनः आप दरबार में पहुँचकर महाराज की विनय करके बैठ जाते हैं-

''महाराज! हमारे बल्लभपुर से मंत्री महोदय हमें लिवाने के लिए आये हैं, सो आप अब हमें अपने देश जाने की आज्ञा दीजिए।''

''कुमार! आपने आज ऐसी बात कही सो अब कभी नहीं कहना, क्या हम आपके बिना रह सकते हैं?''

''महाराज! मंत्री ने ऐसा कहा कि मेरे न पहुँचने से महाराजा मरुदत्त अन्न-जल का त्याग कर देंगे..... अब हम लाचार हैं आप ही..... जैसा आदेश करेंगे, वैसा होगा।''

''ओह! यह क्या?''

महाराज यशोधर कुछ देर सोचकर अंत में यह समझ लेते हैं कि अब इन्हें भेजना ही पड़ेगा? सच है...... ऐसे पुण्यात्मा नररत्न को भला कौन छोड़ सकता है? यह उसी बल्लभपुर का ही तो रत्न है। बाद में दीर्घ निःश्वास लेकर बोलते हैं-

''कुमार! जब राजा का ऐसा कठोर प्रण है, तब तो हमें आपको भेजना ही पड़ेगा।''

उसी क्षण वहाँ पर मंत्री महोदय आकर स्वयं राजा से सारी बातों का निवेदन करके उन सभी के प्रस्थान हेतु उत्तम मुहूर्त निश्चित करते हैं। महाराज यशोधर अपनी गुणवती कन्या को यथायोग्य शिक्षा देते हैं और कहते हैं-

''बेटी! तुम मनोवती को अपनी बड़ी बहन समझो। वह बुद्धि में, वय में, धर्मकार्य में और पद में तुमसे बड़ी है और पतिदेव को सर्वस्व समझो। सास, ससुर, जेठानी की सेवा करो। प्रत्यक्ष में मनोवती द्वारा प्राप्त किये गये धर्म के फल को देखकर धर्म में सदैव मन लगावो।''

अनन्तर महाराज यशोधर ने कुमार को बहुत सा द्रव्य, बहुत से हाथी, घोड़ा आदि सेना देकर विदाई समारोह किया। आप स्वयं अपने मंत्रीगण तथा नागरिक जनों के साथ सपरिवार कुमार को कुछ दूर पहुँचाने गये। गाजे-बाजे की ध्वनि से एक बार फिर शहर में महामहोत्सव दिखने लगा। सभी ने कुमार के गमन में अपने को दुःखी मानते हुए भरे हुए हृदय से विदाई दी और पुनः कभी वापस आने के लिए बार-बार प्रार्थना की।

कुमार बुद्धिसेन अपने पिता–माता, भाई–भावज और उभय भार्याओं के साथ तथा बहुत बड़ी सेना के साथ प्रस्थान करके रतनपुर के उसी बगीचे मैं आकर ठहर गये कि जहाँ पहले ठहरे थे। रात्रि विश्राम करके प्रातः नित्य–क्रिया से निवृत्त होकर शहर के लोगों से यथोचित वार्तालाप करके प्रेम से उन्हें विदा करके बल्लभपुर शहर का मार्ग पकड़ा और रास्ते में जगह–जगह पड़ाव डालते हुए बल्लभपुर के निकट बगीचे में पहुँच गये।

बल्लभपुर नरेश ने जैसे ही सुना, मंत्री महोदय साथ में बुद्धिसेन को बड़ी धूमधाम से लेकर आ रहे हैं, तो शहर में घोषणा कर दी कि हमारे साथ स्वागत के लिए सारे नागरिक स्त्री–पुरुष एकत्रित हो जावें। दूसरे दिन प्रातःकाल महाराज स्वयं सभी लोगों के साथ बगीचे में पहुँचते हैं और हाथी से उतरकर पैदल चलकर कुमार बुद्धिसेन के सामने आते हैं।

बुद्धिसेन भी राजा को सन्मुख आते हुए देखकर जल्दी से उठ खड़े होकर आगे बढ़कर राजा को प्रणाम करते हैं। राजा भी उन्हें तत्क्षण ही हृदय से लगा लेते हैं पुनः हेमदत्त सेठ से मिलते ही उनके नेत्र सजल हो जाते हैं –

''सेठ हेमदत्त! मेरे निमित्त से तुमने कितने संकटों का सामना किया है। हाय! कैसे–कैसे दुःख झेलकर तुमने अपने पुत्र को वापस पाया है। अब मेरे अपराध को क्षमा कर दो। कुमार बुद्धिसेन! मेरे निमित्त से ही तो तुम्हें देश निर्वासन का कठोर दुःख भोगना पड़ा। अब तुम भी मेरे अपराध को क्षमा करो।''

''महाराज! आपका इसमें क्या दोष है? मेरे ही संचित कर्मों का फल मैंने भोगा है।''

सेठ हेमदत्त बोलते हैं –

''महाराज! मैंने उस समय असत्य भाषण करके एक अपराध किया फिर निरपराधी पुत्र को निकाल कर दूसरा अपराध किया। अनंतर तृतीय अपराध में बहू की प्रतिज्ञा की निंदा करके जो पाप कमाया, वह सब एक साथ उदय में आ गया।..... अस्तु अब हम सब इस बहू की प्रतिज्ञा के प्रसाद से ही पुनः इतने ऊँचे उन्नति शैल पर चढ़कर आपसे पहले जैसी स्थिति तो..... क्या? उससे अधिक उत्तम स्थिति में मिल रहे हैं।'

राजा मरुदत्त मनोवती को देखकर उसे पुत्रीवत् हृदय से लगाकर माथे पर हाथ फेरकर कहते हैं–

''बेटी! तू धन्य है! तेरा जीवन धन्य है! और तेरी धर्म की श्रद्धा धन्य है! तूने साक्षात् धर्म का चमत्कार, धर्म का अचिन्त्य प्रभाव प्रत्यक्ष में ही सबको दिखा दिया है।''

इस तरह सबसे मिलकर महाराज सबको बड़े उत्सव के साथ बल्लभपुर में प्रवेश कराते हैं। पहले अपने राजभवन में ले जाकर विशेष सत्कार कर भोजन आदि कराते हैं। वस्त्रालंकार भेंट करते हैं। अनंतर राजा मरुदत्त चौथाई राज्य प्रमाण देश कुमार को भेंट रूप में देकर राजा बना देते हैं। सेठ हेमदत्त की

गिरवी रखी हुई हवेली को मंत्री ने पहले से ही खाली कराकर उसे खूब सजाकर सुन्दर बनाई थी। दूसरे दिन कुमार बुद्धिसेन सपरिवार पहले जिनमंदिर में जाकर जिनदर्शन- पूजन आदि करके पुनः राजा की आज्ञा से अपने महल में प्रवेश करते हैं। आगे-आगे सेठ हेमदत्त हैं, पीछे से सेठानी हेमश्री अपने सभी सातों पुत्र और आठों बहुओं को तथा अनेकों पौत्र सभी पौत्रियों को साथ लिये हुए प्रवेश करती हैं। घर में सर्वत्र मंगलमय वातावरण है। जिधर देखो, उधर रत्नों की जगमगाहट, मोतियों की मालाएं और सुन्दर-सुन्दर तोरण बंधे हुए हैं। सर्वत्र राजमहल की शोभा छिटक रही है।

बहू मनोवती के घर में पैर रखते ही जो महल के बगीचे सूखे थे, हरे-भरे हो गये हैं। सूखे सरोवरों में ऊपर तक पानी लहरें ले रहा है, कमल खिल रहे हैं और हंस मिथुन क्रीड़ा कर रहे हैं। शहर के नर-नारी चारों तरफ से आ रहे हैं। सबसे मिलकर सभी लोग अपार हर्ष का अनुभव कर रहे है। सेठ हेमदत्त का मन-मयूर खुशी से नाच रहा है और सेठानी हेमश्री अपने भाग्य की सराहना कर रही हैं। धनदत्त आदि सभी पुत्र, धनश्री आदि सभी पुत्र-वधुएं कुमार बुद्धिसेन और मनोवती के धर्म की श्रद्धा को, उसके फल को देखते हुए हर्ष विभोर हो रहे हैं।

स्थानीय नर-नारी आपस में चर्चा कर रहे हैं -

''भाई! देखो तो सही, इस मनोवती ने पूर्व जन्म में कितना पुण्य किया होगा! जो कि एक वर्ष में ही इतना वैभव, इतना सुयश प्राप्त कर लिया।''

''नहीं बंधु! आपको मालूम नहीं है इसने इस जन्म में ही अपनी दर्शन प्रतिज्ञा के बल से इतना वैभव और सुयश पाया है और फिर जिनमंदिर का निर्माण कराके अनंत पुण्य संचित करके अपने संसार की परम्परा को भी समाप्त ही कर दिया..... समझो।''

''मित्र! अभी-अभी रतनपुर में महा महोत्सव में क्या आपने महामुनि का उपदेश नहीं सुना था? वे बता रहे थे कि इसने ब्याह के - बाद एक पक्ष के अन्दर ही प्रतिज्ञा के बल से देवों द्वारा उपकार और महान सुख सम्पत्ति प्राप्त कर ली..... और बंधु ! इनके ससुर आदिकों ने धर्म की निंदा से छह महीने के अंदर ही असंख्य दुःख झेले हैं।''

''हाँ भाई! उस उपदेश को सुनकर तो मैं समझता हूँ कि सभी यात्रियों ने ही जिनदर्शन और जिनधर्मसंबंधी कुछ न कुछ नियम अवश्य ही ले लिया है। मैंने भी तो नियम लिया है कि प्रतिदिन श्री जी के चरण सानिध्य में श्रीफल चढ़ाकर ही भोजन करूँगा।''

''बहन! वहाँ रतनपुर में तो सभी ने धर्मरत्न को ही लूट लिया है।''

''बहन? तुमने क्या नियम लिया है?''

''मैं तो प्रतिदिन मुनि को आहार दान देकर ही भोजन करूँगी और तुमने?...''

''मैंने तो प्रतिदिन उत्तम-उत्तम अंगूर, आम्र, अनार आदि फलों से पूजा करने का नियम लिया है।''

''बहन! बहुतों ने बेला, पारिजात आदि पुष्प चढ़ाने का, बहुतों ने कमल आदि पुष्पों को चढ़ाने का, बहुतों ने सुवर्ण पुष्पों के समर्पण करने का एवं बहुतों ने प्रतिदिन लवंग, इलायची आदि चढ़ाने का, बहुतों ने अपने पुण्य वैभव के अनुसार रत्न चढ़ाने का नियम किया है तथा बहुतों ने गजमोती चढ़ाने का ही नियम लिया है।''

''क्या बताऊँ बहन ! किसी ने वहाँ अणुव्रत लिए, किसी ने रात्रि भोजन त्याग व्रत, किसी ने पुष्पांजलि, मुक्तावली आदि व्रत ग्रहण किये हैं। सच है, बिना नियम के यह मनुष्य जीवन व्यर्थ ही है इसलिए कुछ न कुछ नियम अवश्य लेना ही चाहिए।''

कुमार बुद्धिसेन वहाँ से आकर अपनी प्राणवल्लभा मनोवती को सारा समाचार सुना देते हैं पुनः सायंकाल में पिताजी के समक्ष अपने सभी परिवार को बिठाकर सारी खुशखबरी बता देते हैं। सभी लोग आनन्द विभोर हो जाते हैं।

दूसरे दिन प्रातःकाल से पंचकल्याणक प्रतिष्ठा की तैयारियाँ शुरू हो जाती हैं। सर्वत्र उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम के सभी छोटे-बड़े ग्रामों और शहरों में कुंकुम पत्रिकाएं भेजी जाती हैं। चतुर्विध संघों को प्रार्थना करके उनका पदार्पण कराते हैं तथा बड़े-बड़े प्रतिष्ठाचार्य पंडित लोगों को आमंत्रित करते हैं। बड़े-बड़े महल, मकान खाली कर-करके खुले कर दिये गये हैं और शहर के बाहर बगीचों में तमाम तंबू डेरे लगाये गये हैं। जगह-जगह बड़े-बड़े पांडाल बनाये गये हैं। सारा शहर ध्वजा-पताकाओं से, तोरणों से, वंदनवारों से और बड़े-बड़े तोरणद्वारों से सजाया गया है।

राजा यशोधर ने सर्वत्र शहर में घोषणा कर दी है कि कोई भी यात्री किसी से कुछ माँगे तो अविलम्ब दिया जाये और उसकी कीमत कागज में लिखकर हमारे खजांची के पास भेज दी जाये। सभी का कुल खर्चा हमारी कोठी से होवेगा। यदि कदाचित् किसी यात्री से कोई अपराध बन जावे तो वह माफ कर दिया जावे। राजा ने कुमार बुद्धिसेन के पास भी व्यवस्था के लिए अपनी बहुत कुछ सेना भेज दी।

बुद्धिसेन कुमार ने भी अपने बड़े-बड़े कोठार और भंडार खोल दिये हैं और खजांची को आज्ञा दे दी है कि खुले हाथों और खुले मन से खर्चा करो। किसी को किंचित् भी तकलीफ नहीं होने पावे। लाखों यात्री देश-देश से आ रहे हैं, कोई अपने-अपने रिश्तेदारों के यहाँ, कोई शहर की हवेलियों में, मकानों में और कोई-कोई यात्री बगीचों में बने हुए तंबू डेरों में ठहर रहे हैं बहुत से व्यवस्थापक चारों तरफ नियुक्त किये गये हैं। शहर की गली-गली में डगर-डगर में धूम-धाम मच रही है।

बुद्धिसेन की छोटी पत्नी गुणवती गर्व में फूल रही है। मेरे प्रति मेरे पतिदेव का अधिक प्रेम है। अतः मैं ही प्रमुख इन्द्राणी बनूँगी। शहर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को जब इस बात का पता चलता है तो वे लोग एकांत में बैठकर विचार-विमर्श करके महाराज यशोधर के दरबार में पहुँचते हैं। महाराज उन पंचजनों का यथोचित सत्कार करके प्रश्न करते हैं -

‘कहिए श्रीमन्महोदय! आप लोगों का आगमन इस समय कैसे हुआ? मेरे लिए कोई खास आज्ञा हो तो फरमाएँ।’

‘महाराजाधिराज! आप जैसे धर्मात्मा और धर्म का सही मूल्यांकन करने वाले ऐसे राजा को पाकर हम धन्य हैं।..... महाराज! आज आने का खास कारण यह है कि इस पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के सौधर्म इन्द्र कौन बनेंगे?

‘सौधर्म इन्द्र के अधिकारी तो बुद्धिसेन कुमार हैं ही, इसके लिए हमारा निर्णय क्या लेना?‘

‘फिर महाराज ! उनकी शची इंद्राणी का स्थान किन्हें मिलना चाहिए?‘

‘विद्वज्जनों ! उनकी जो मनोवती धर्मपत्नी हैं वे ही शची इन्द्राणी बनेंगी।‘

‘महाराज ! गुणवती जी राजपुत्री हैं उनको.....‘

‘नहीं, नहीं ! इस विषय में राजपुत्री से क्या संबंध? पहली बात तो मनोवती बड़ी रानी है, फिर दूसरी बात यह है कि यह सारा अचिन्त्य माहात्म्य तो उन्हीं का ही है अतः न्याय से उन्हीं को प्रमुख इन्द्राणी का अधिकार देना होगा।’’

‘‘जय हो, महाराज यशोधर का यश विश्वव्यापी बने।’’

सब लोग बड़े आदर से महाराज के गुणों की प्रशंसा करते हुए वहाँ से निकल कर सीधे बुद्धिसेन के दरबार में पहुँचते हैं और राजा का आदेश सुना देते हैं। बुद्धिसेन भी यथोचित न्याय को पाकर हर्षातिरेक से रोमांचित हो उठते हैं अपनी प्रिया मनोवती को सारा समाचार सुनाकर पुनः गुणवती जी के महल में पहुँच कर उसे भी प्रिय हित मधुर वचनों से समझा-बुझाकर इन्द्राणी बनने के लिए तैयार करते हैं -

‘‘देखो प्रिये! यह मनोवती मेरे साथ न आती तो मैं आज न जाने कहाँ होता! मैं तुम्हें भला कैसे पा सकता था? इसलिए महाराज का न्याय यथोचित ही है। अब तुम किसी प्रकार का मन में विषाद मत करो और प्रसन्नमना होकर मनोवती की सहचारिणी बनो।’’

प्रातःकाल से अनेकों तरह के मंगल बाजे बज रहे हैं। प्रतिष्ठा विधि का कार्यक्रम प्रारंभ हो चुका है। धनदत्त, सोमदत्त आदि छहों भाई भी ईशान, सनत्कुमार आदि इन्द्र बने हुए हैं। कुल सभी मिलकर सौ इन्द्र अपनी-अपनी इन्द्राणियों के साथ आकर विधान मंडप में उपस्थित हो चुके हैं। ऐसा लग रहा है कि मानों साक्षात् सौधर्म इन्द्र ही अपने चतुर्निकाय के सभी इन्द्रों और परिवार देवों के साथ उपस्थित हैं। पिता हेमदत्त और माता हेमश्री खुशी से फूल रहे हैं। उन्हें बुद्धिसेन के विवाह में जो आनन्द आया था, आज उससे करोड़ों गुणा अथवा यों कहिए असंख्य गुणा आनन्द आ रहा है।

सेठानी हेमश्री बार-बार मनोवती की प्रतिज्ञा की प्रशंसा कर रही है। सेठ हेमदत्त भी प्रतिज्ञा के

प्रत्यक्ष फल को देख-देखकर धर्म के प्रति अपना संवेग भाव वृद्धिंगत कर रहे हैं। विधिवत् पाँचों कल्याणकों द्वारा रत्नों के जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा हो रही है। मूलनायक भगवान् ऋषभदेव का सर्वश्रेष्ठ धर्म वृद्धिंगत हो रहा है।

बुद्धिसेन कुमार के आदेश से उनके खजांची लोगों से द्रव्य लेकर, भोजन विभाग के व्यवस्थापक लोग बहुत ही सुन्दर भोजन की व्यवस्था बनाये हुए हैं। सभी यात्री लोग वहीं भोजनशाला में भोजन करते हैं। शहर के सभी स्त्री-पुरुष भी वहीं भोजनशाला में जीमते हैं। आगन्तुक दर्शकगण जो इतर-अजैन लोग हैं, उनके लिए पृथक् भोजनशालाएं खुली हुई हैं। गरीबों के लिए तथा अंधे, लंगड़े आदि के लिए अलग भोजनालय खुले हुए हैं। वहाँ पर दिन के बारह घंटे सदावर्त' चल रहा है।

प्रतिष्ठा मण्डप की शोभा का वर्णन अपार है। बावन गज के चौक (चबूतरे) पर रत्नों के चूर्ण और मोतियों से मंडल पूरा गया है। सर्वत्र रत्न, हीरे, मोती, माणिक, मरकत, पन्ना, स्फटिक, वैडूर्य आदि मणियों की शोभा ही दिखाई देती है। श्री ऋषभदेव की विशाल मूर्ति उत्तम पुखराज मणि से निर्मित अतीव सुन्दर समचतुरस्त्र संस्थान आदि उत्तम लक्षणों से विशेष है। भामंडल आदि आठ प्रातिहार्य और आठ प्रकार के मंगल द्रव्यों से वेदिका विशेष रूप से सुसज्जित हो रही है।

सभी इन्द्रगण नाना प्रकार के रेशमी आदि दिव्य शुभ्र धोती और दुपट्टे को धारण किये हुए हैं। नाना प्रकार के अलंकार और यज्ञोपवीत से विभूषित हैं और मस्तक पर सुन्दर मुकुट बांधे हुए हैं। इन्द्राणियाँ भी दिव्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर मस्तक में मुकुट लगाए हुए अपने पति के हर एक कार्य में सहयोगिनी हो रही हैं। इस प्रकार से सात दिन तक प्रतिष्ठा विधि चलती है। अन्तिम आठवें दिन रथयात्रा का महामहोत्सव मनाया जाता है। श्री जिनबिंब को रथ में विराजमान करके सारे शहर में श्रीविहार कराया जाता है। उस समय हजारों हाथी, घोड़े, रथ, पालकी आदि उस उत्सव में आगे-आगे चल रहे हैं। महाराज यशोधर स्वयं नंगे पैर श्रीविहार के साथ-साथ चल रहे हैं। अनंतर इन्द्राणी मनोवती के साथ सौधर्मेन्द्र बुद्धिसेन की गाँठ जोड़कर सूत फेरने की विधि उत्सव के साथ सम्पन्न की जाती है। उस समय बाजों की ध्वनि से सारा शहर और आकाश मण्डल मुखरित हो उठता है। इस तरह आनंद मंगलपूर्वक बिना किसी विघ्न-बाधा के आठ दिन में विधि-विधान का कार्य संपूर्ण किया जाता है।

नवमें दिन सभी देश-विदेश के यात्रियों का यथोचित सम्मान करते हुए बुद्धिसेन महाराज सबको विदाई दे रहे हैं किन्तु बल्लभपुर और हस्तिनापुर के सभी यात्रियों को उन्होंने और एक दिन के लिए अतीव आग्रह करके रोक लिया है। उस दिन उन सबका विशेष आदर सम्मान करके दसवें दिन उन लोगों की भी विदाई कर दी।

सर्वत्र शहर में और अपने-अपने देश को वापस जाने वाले यात्रियों के समूह में बस एक ही चर्चा चल रही है।

''ओहो! देखो तो सही, मनोवती देवी यह हस्तिनापुर के जौहरी सेठ महारथ जी की सुपुत्री हैं। इनने मुनिराज के पास यह प्रतिज्ञा ली थी कि ''मैं जिनेन्द्रदेव के बिम्ब के समक्ष गजमोतियों को चढ़ाकर ही भोजन करूँगी।'' प्रारंभ में ससुराल में आते ही तीन उपवास कर डाले पुनः गजमोती चढ़ाकर चौथे दिन भोजन किया।. अनंतर पति के देशनिर्वासन के बाद उनके साथ नंगे पैर पैदल चलकर इस रतनपुर बगीचे में आई। देवों द्वारा निर्मित किये गये जिनमंदिर में गजमोती चढ़ाकर आठवें दिन भोजन किया था। इसी प्रतिज्ञा के प्रभाव से ही उसने अपने पतिदेव को और अपने को आज इतने ऊँचे उन्नति के शिखर पर चढ़ाया है।''

''देखो ना! कितना विशाल जिनमंदिर बना है। कितने रत्नों का प्रकाश उसमें जगमगा रहा है। एक सौ आठ बड़े-बड़े शिखर हैं और उन्हीं में छोटे-छोटे शिखर हैं। कुल मिलाकर एक हजार आठ शिखर बने हुए हैं और सभी पर सुवर्णों के, मणियों के कलश चढ़ाये गये हैं। यहाँ भाई! राजा यशोधर ने इन्हें अपनी पुत्री ब्याह दी है और इन्हें अपने विशाल राज्य का चौथाई भाग दे दिया है। इसलिए ये अब सेठ पुत्र नहीं रहे हैं ये राजजमाई हैं।''

''नहीं नहीं! ये तो अब स्वयं राजा ही हैं। बहुत से गाँवों के स्वामी हैं। इनके वैभव का क्या कहना? सच है ! इन्होंने अपनी चंचला लक्ष्मी का सदुपयोग कर लिया है। जिनबिम्ब प्रतिष्ठा से और जिनमंदिर निर्माण से बढ़कर तीनों लोकों में कोई भी महान पुण्य कार्य न था, न है और न होगा। अरे भाई ! यदि तीन लोकों के सारे पुण्य को इकट्ठा करके तराजू के एक पलड़े में रखो और एक जिनमंदिर बनवाकर प्रतिष्ठा कराके उसमें जिनबिंब विराजमान करने के पुण्य को एक पलड़े में रखो तो इस जिनमंदिर के पुण्य का पलड़ा ही भारी हो जावेगा।''

इस तरह नाना प्रकार से उभय दम्पत्ति की तथा मनोवती की प्रतिज्ञा की और प्रतिष्ठा संबंधी विशेषता की चर्चायें करते हुए तमाम लोग भी महान् पुण्य का अर्जन करते चले जा रहे हैं।

बल्लभपुर नरेश महाराज मरुदत्त अपने सिंहासन पर आरूढ़ हैं। मंत्रीगण उनके निकट में बैठे हुए हैं और जैसी की वापस आए हुए प्रजा जनों के मुख से रतनपुर में हुई प्रतिष्ठा की चर्चा सुनी है, वही सुना रहे हैं -

''महाराज! उस प्रतिष्ठा की अपनी विशेषता यह रही कि राजजमाई ने सभी लाखों यात्रियों को विदाई के समय एक-एक रत्नहार भेंट में दिए हैं और वस्त्र भी दिये हैं। करोड़ों याचकों को मुँह माँगा दान दिया गया है। आठ दिन तक तो इतने लोगों ने भोजन किया है-कहते हैं कि शायद उनकी संख्या चक्रवर्ती के कटक के लोगों की संख्या से कम नहीं होगी।

''हाँ महाराज ! इस समय तो यह प्रतिष्ठा अपने आप में एक अद्भुत ही हुई है।''

1. सभी के लिए हर समय भोजन आदि दान देते रहना सदावर्त कहलाता है।

द्वारपाल आकर नमस्कार करके निवेदन करता है–

''महाराजाधिराज की जय हो। महाराज ! अपने नगर के जौहरी लोग पधारे हुए हैं।''

''हाँ, अन्दर आने दो।''

सभी लोग आकर यथोचित भेंट रखकर विनय करके बैठ जाते हैं– ''कहिए! जौहरी जी कहिए! आप लोग रतनपुर से सकुशल तो आ रहे हैं? कहिए प्रतिष्ठा संबंधी कोई विशेष वार्ता कहिए!''

''महाराज! हम लोग विशेष वार्ता सुनाने ही आये हैं।''

लोग कुछ सकुचाते हैं –

''कहिए ना!''

''महाराज! लगभग एक वर्ष हुए होंगे, आपने एक दिन सभा में सभी जौहरियों को बुलाया था......।''

''हाँ, हाँ! गजमोतियों की मांग की थी मैंने......''

''हाँ महाराज! उसी दिन जौहरी हेमदत्त ने भी गजमोती के बावत ना कर दिया था।''

''फिर क्या हुआ?''

''फिर महाराज! वे घर पहुँचे और चिंतित हो गये। चूँकि उनकी छोटी बहू जो कि हस्तिनापुर से आई थी, उसकी जिन मंदिर में गजमोती चढ़ाने की प्रतिज्ञा थी और सेठ जी के घर न जाने कितने गजमोती कोठार में भरे पड़े थे। बहू आयेगी, गजमोती चढ़ायेगी तो क्या होगा?......इसी डर से सेठ जी ने अपने छोटे पुत्र को घर से निकाल दिया।''

आश्चर्य और खेद के साथ –

''अरे ! यह क्या हुआ? फिर वह कहाँ है?''

''महाराज ! वह हस्तिनापुर से अपनी भार्या मनोवती को लेकर रतनपुर चला गया। वहाँ पर बगीचे में मनोवती को गजमोती चढ़ाये बिना सात उपवास हो गये.....। अनन्तर देवों ने दर्शन कराकर उसकी प्रतिज्ञा निभाई और उसी समय 'नर–मादा' ऐसे दो मोती देवों ने ही उसे दिये। जिनके फलस्वरूप वह बुद्धिसेन राजा का जमाई हुआ।''

आश्चर्य से –

''अच्छा!''

''हाँ महाराज! यह प्रतिष्ठा उसी ने तो कराई है। सारे कार्य में प्रेरणा एकमात्र उस मनोवती महिलारत्न की ही है।''

''यह बात सत्य है या किंवदन्ती मात्र है?''

''नहीं महाराज! बिल्कुल सत्य है। मैंने स्वयं देखा कि प्रतिष्ठा के आठ दिन बाद सब यात्री तो चले गये परन्तु कुमार ने बल्लभपुर के सभी यात्रियों को तथा हस्तिनापुर के यात्रियों को आग्रहपूर्वक रोक लिया और उनका विशेष सत्कार किया।''

अन्य जौहरीगण भी स्वतः देखी सुनी बातों को सुनाने लगते हैं –

''महाराज! मैंने स्वयं देखा, हस्तिनापुर के सेठ महाराज जी अपनी पुत्री मनोवती के माथे पर हाथ फेरते हुए कह रहे थे कि बेटी मनोवती! तू बिना कुछ कहे सारे जेवर आभूषण उतारकर वहीं पलंग पर डाल कर चली आई थी। तब हम लोगों के शोक का पारावार नहीं था और अब तेरी इस उन्नति को, तेरी प्रतिज्ञा के इस माहात्म्य को देखकर मेरी खुशी का भी पार नहीं है।''

''महाराज ! स्वयं अपने नगर के सेठ हेमदत्त सपरिवार वहीं पर रहते हैं।''

''अरे! वे यहाँ से कब चले गये?''

''राजन्! अपने पुत्र को निकालने के बाद वे चन्द दिनों में अपने आप ही सम्पत्ति और श्री से विहीन हो गये।''

''अपराध क्षमा हो! मैंने तो सुना है कि उन्होंने दुकानों और मकानों को तथा औरतों के जेवरों को भी कुछ बेच खाया, कुछ गिरवी रखकर उससे पेट भरा।''

''अरे! मैंने तो यहाँ तक सुना है कि उन्होंने कुछ दिन यहीं पर जंगल से सपरिवार सिर पर लकड़ियों के गट्ठर लाकर बेचे हैं।''

''हाय, हाय ! यह सब बातें मुझे क्यों नहीं बताई गई?''

''और तो क्या महाराज! वे देश छोड़कर भीख माँगते-माँगते रतनपुर पहुँचे और वहाँ पर कुछ दिनों तक इसी मंदिर के निर्माण कार्य में मजदूरी भी की है।..... अनंतर जब कुमार बुद्धिसेन को मालूम हुआ, तब उसने इनका परिचय कराकर राजा के द्वारा इनका सम्मान कराया है।''

''ओह! मंत्री! मेरे निमित्त से मेरे शहर के इतने पुण्यशाली संपत्तिशाली जौहरी को ऐसे-ऐसे संकटों का सामना करना पड़ा। धिक्कार हो मुझे! जो कि मेरे कठोर अनुशासन के निमित्त से ऐसा नररत्न बुद्धिसेन रतनपुर में कीर्ति पताका फहरा रहा है। मंत्रिन्! अब उन सबको अपने शहर में वापस लाओ।'

''महाराज! वे बुद्धिसेन वहाँ पर यशोधर महाराज के बहुत कुछ राज्यभाग के अधिकारी हैं। अब वे वहाँ पर राज्य कर रहे हैं। वे यहाँ वापस कैसे आयेंगे?''

''नहीं मंत्रिन्! तुम स्वयं वहाँ जाओ और कुमार बुद्धिसेन से समझाकर कहो कि महाराजा मरुदत्त सब प्रकार से क्षमा याचना करा रहे हैं और वे अब तुम्हारे वियोग से बहुत दुःखी हैं...। वे तुम्हारे वहाँ चले बिना अब अपने प्राणों को भी धारण करने में असमर्थ हैं।''

महाराजा मरुदत्त पश्चात्ताप से आहत हो बुद्धिसेन से मिलने के लिए विह्वल हो उठते हैं –

''मंत्रिन्! अब इस कार्य में एक क्षण की भी देरी करना उचित नहीं है।''

''जो आज्ञा महाराज! मैं स्वयं अभी–अभी प्रस्थान की तैयारी कर रहा हूँ। मैं लेकर ही आऊँगा, आप निश्चिंत होइये।''

मंत्री महोदय कुछ परिकर अपने साथ लेकर रतनपुर पहुँचते हैं। कुमार बुद्धिसेन बल्लभपुर के मंत्री महोदय का यथोचित सम्मान करते हैं।

''कुमार! अब आप अपनी जन्मभूमि बल्लभपुर शहर को पवित्र कीजिए। महाराज आपको विशेष याद कर रहे हैं।''

बुद्धिसेन किंचित् मुस्कराकर बोलते हैं

''मंत्री महोदय ! अब बल्लभपुर में हमारे पैर रखने की आवश्यकता ही क्या है?''

''राजन्! यद्यपि आप यहाँ पर राज्य का भार सँभाल रहे हैं फिर भी आपके महाराजा साहब आद्योपांत आपकी सारी घटना सुनकर बहुत ही खिन्न हो रहे हैं। वे इस समय आपके वियोग से बहुत ही दुःखी हैं। यदि आप नहीं चलेंगे तो वे निश्चित ही चारों प्रकार के भोजन का त्याग कर देंगे। इसी आदेश के साथ उन्होंने मुझे आपकी सेवा में भेजा है।''

बुद्धिसेन कुछ विचार में पड़ जाते हैं –

''कुमार! अब आप किंचित् भी देरी न कीजिए। महाराज अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं।''

''मंत्री महोदय! मेरा चलना तो असंभव सा ही लगता है चूंकि महाराज यशोधर भी मुझे नहीं छोड़ेंगे।..... अतः आप महाराजश्री से हाथ जोड़कर मेरा नम्र निवेदन कीजिए कि वे समय पाकर एक बार आपसे मिलने अवश्य आवेंगे किन्तु वहाँ रहने की बात तो......।''

''बुद्धिसेन कुमार! आप महान् बुद्धिमान हैं। आपको इस विषय पर गहराई से सोचना होगा। महाराज साहब ये निर्णय कर चुके हैं कि वे मेरे अकेले वापस पहुँचते ही अन्न–जल का त्याग कर देंगे। इसमें आप बिल्कुल भी शंका न करें।''

बुद्धिसेन कुमार मंत्री को आश्वासन देकर सीधे अपने महल पहुँचते हैं और प्रिया मनोवती के सामने सारी स्थिति रख देते हैं। मनोवती कहती है –

''स्वामिन्! अब आपको बल्लभपुर चलना ही उचित है।''

''प्रिये! मैं तो किसी भी हालत में जाने को तैयार नहीं हूँ।' हाँ! यदि माता–पिता आदि परिवार के लोग जाते हैं तो मैं रोकूँगा नहीं।''

''प्रियतम ! मैं एक बात और कहूँ।''

''कहिए।''

''यहाँ पर आपको रहना कथमपि श्रेयस्कर नहीं है। देखिये ! यहाँ पर सभी लोग आपको राजजमाई के नाम से ही जानते हैं। आपके पिता का नाम यहाँ नहीं चल सकता है अतः आपको अपने ही देश में चलकर अपने पिता का नाम चलाना चाहिए। ससुराल के कुल में अपनी प्रसिद्धि पाने वाले.... क्या उत्तम पुरुष माने जाते हैं?''

बुद्धिसेन कुमार सोचने लगते हैं कि बिल्कुल सच बात है। हस्तिनापुर में इसके द्वारा रोकने के आग्रह में मैंने यही हेतु उपस्थित किया था और ससुराल में रहकर अपने पिता के नाम को डुबोना उचित नहीं समझा था और अब..... यहाँ पर भी तो वही बात है अतः अब बल्लभपुर जाना ही उचित है।

''ठीक है, प्रियतमे! आपने उचित सलाह दी है। अब मैं पिताजी से मिलकर सारी स्थिति का दिग्दर्शन कराके राजा से आज्ञा लेने जाऊँगा।''

बुद्धिसेन पिता आदि को मंत्री के आने का समाचार सुनाकर उनसे मिलान करा देते हैं पुनः आप दरबार में पहुँचकर महाराज की विनय करके बैठ जाते हैं-

''महाराज! हमारे बल्लभपुर से मंत्री महोदय हमें लिवाने के लिए आये हैं, सो आप अब हमें अपने देश जाने की आज्ञा दीजिए।''

''कुमार! आपने आज ऐसी बात कही सो अब कभी नहीं कहना, क्या हम आपके बिना रह सकते हैं?''

''महाराज! मंत्री ने ऐसा कहा कि मेरे न पहुँचने से महाराजा मरुदत्त अन्न-जल का त्याग कर देंगे..... अब हम लाचार हैं आप ही..... जैसा आदेश करेंगे, वैसा होगा।''

''ओह! यह क्या?''

महाराज यशोधर कुछ देर सोचकर अंत में यह समझ लेते हैं कि अब इन्हें भेजना ही पड़ेगा? सच है...... ऐसे पुण्यात्मा नररत्न को भला कौन छोड़ सकता है? यह उसी बल्लभपुर का ही तो रत्न है। बाद में दीर्घ निःश्वास लेकर बोलते हैं-

''कुमार! जब राजा का ऐसा कठोर प्रण है, तब तो हमें आपको भेजना ही पड़ेगा।''

उसी क्षण वहाँ पर मंत्री महोदय आकर स्वयं राजा से सारी बातों का निवेदन करके उन सभी के प्रस्थान हेतु उत्तम मुहूर्त निश्चित करते हैं। महाराज यशोधर अपनी गुणवती कन्या को यथायोग्य शिक्षा देते हैं और कहते हैं-

''बेटी! तुम मनोवती को अपनी बड़ी बहन समझो। वह बुद्धि में, वय में, धर्मकार्य में और पद में तुमसे बड़ी है और पतिदेव को सर्वस्व समझो। सास, ससुर, जेठानी की सेवा करो। प्रत्यक्ष में मनोवती द्वारा प्राप्त किये गये धर्म के फल को देखकर धर्म में सदैव मन लगावो।''

अनन्तर महाराज यशोधर ने कुमार को बहुत सा द्रव्य, बहुत से हाथी, घोड़ा आदि सेना देकर विदाई समारोह किया। आप स्वयं अपने मंत्रीगण तथा नागरिक जनों के साथ सपरिवार कुमार को कुछ दूर पहुँचाने गये। गाजे-बाजे की ध्वनि से एक बार फिर शहर में महामहोत्सव दिखने लगा। सभी ने कुमार के गमन में अपने को दुःखी मानते हुए भरे हुए हृदय से विदाई दी और पुनः कभी वापस आने के लिए बार-बार प्रार्थना की।

कुमार बुद्धिसेन अपने पिता-माता, भाई-भावज और उभय भार्याओं के साथ तथा बहुत बड़ी सेना के साथ प्रस्थान करके रतनपुर के उसी बगीचे मैं आकर ठहर गये कि जहाँ पहले ठहरे थे। रात्रि विश्राम करके प्रातः नित्य-क्रिया से निवृत्त होकर शहर के लोगों से यथोचित वार्तालाप करके प्रेम से उन्हें विदा करके बल्लभपुर शहर का मार्ग पकड़ा और रास्ते में जगह-जगह पड़ाव डालते हुए बल्लभपुर के निकट बगीचे में पहुँच गये।

बल्लभपुर नरेश ने जैसे ही सुना, मंत्री महोदय साथ में बुद्धिसेन को बड़ी धूमधाम से लेकर आ रहे हैं, तो शहर में घोषणा कर दी कि हमारे साथ स्वागत के लिए सारे नागरिक स्त्री-पुरुष एकत्रित हो जावें। दूसरे दिन प्रातःकाल महाराज स्वयं सभी लोगों के साथ बगीचे में पहुँचते हैं और हाथी से उतरकर पैदल चलकर कुमार बुद्धिसेन के सामने आते हैं।

बुद्धिसेन भी राजा को सन्मुख आते हुए देखकर जल्दी से उठ खड़े होकर आगे बढ़कर राजा को प्रणाम करते हैं। राजा भी उन्हें तत्क्षण ही हृदय से लगा लेते हैं पुनः हेमदत्त सेठ से मिलते ही उनके नेत्र सजल हो जाते हैं -

''सेठ हेमदत्त! मेरे निमित्त से तुमने कितने संकटों का सामना किया है। हाय! कैसे-कैसे दुःख झेलकर तुमने अपने पुत्र को वापस पाया है। अब मेरे अपराध को क्षमा कर दो। कुमार बुद्धिसेन! मेरे निमित्त से ही तो तुम्हें देश निर्वासन का कठोर दुःख भोगना पड़ा। अब तुम भी मेरे अपराध को क्षमा करो।''

''महाराज! आपका इसमें क्या दोष है? मेरे ही संचित कर्मों का फल मैंने भोगा है।''

सेठ हेमदत्त बोलते हैं -

''महाराज! मैंने उस समय असत्य भाषण करके एक अपराध किया फिर निरपराधी पुत्र को निकाल कर दूसरा अपराध किया। अनंतर तृतीय अपराध में बहू की प्रतिज्ञा की निंदा करके जो पाप कमाया, वह सब एक साथ उदय में आ गया।..... अस्तु अब हम सब इस बहू की प्रतिज्ञा के प्रसाद से ही पुनः इतने ऊँचे उन्नति शैल पर चढ़कर आपसे पहले जैसी स्थिति तो..... क्या? उससे अधिक उत्तम स्थिति में मिल रहे हैं।'

राजा मरुदत्त मनोवती को देखकर उसे पुत्रीवत् हृदय से लगाकर माथे पर हाथ फेरकर कहते हैं-

''बेटी! तू धन्य है! तेरा जीवन धन्य है! और तेरी धर्म की श्रद्धा धन्य है! तूने साक्षात् धर्म का चमत्कार, धर्म का अचिन्त्य प्रभाव प्रत्यक्ष में ही सबको दिखा दिया है।''

इस तरह सबसे मिलकर महाराज सबको बड़े उत्सव के साथ बल्लभपुर में प्रवेश कराते हैं। पहले अपने राजभवन में ले जाकर विशेष सत्कार कर भोजन आदि कराते हैं। वस्त्रालंकार भेंट करते हैं। अनंतर राजा मरुदत्त चौथाई राज्य प्रमाण देश कुमार को भेंट रूप में देकर राजा बना देते हैं। सेठ हेमदत्त की गिरवी रखी हुई हवेली को मंत्री ने पहले से ही खाली कराकर उसे खूब सजाकर सुन्दर बनाई थी। दूसरे दिन कुमार बुद्धिसेन सपरिवार पहले जिनमंदिर में जाकर जिनदर्शन- पूजन आदि करके पुनः राजा की आज्ञा से अपने महल में प्रवेश करते हैं। आगे-आगे सेठ हेमदत्त हैं, पीछे से सेठानी हेमश्री अपने सभी सातों पुत्र और आठों बहुओं को तथा अनेकों पौत्र सभी पौत्रियों को साथ लिये हुए प्रवेश करती हैं। घर में सर्वत्र मंगलमय वातावरण है। जिधर देखो, उधर रत्नों की जगमगाहट, मोतियों की मालाएं और सुन्दर-सुन्दर तोरण बंधे हुए हैं। सर्वत्र राजमहल की शोभा छिटक रही है।

बहू मनोवती के घर में पैर रखते ही जो महल के बगीचे सूखे थे, हरे-भरे हो गये हैं। सूखे सरोवरों में ऊपर तक पानी लहरें ले रहा है, कमल खिल रहे हैं और हंस मिथुन क्रीड़ा कर रहे हैं। शहर के नर-नारी चारों तरफ से आ रहे हैं। सबसे मिलकर सभी लोग अपार हर्ष का अनुभव कर रहे है। सेठ हेमदत्त का मन-मयूर खुशी से नाच रहा है और सेठानी हेमश्री अपने भाग्य की सराहना कर रही हैं। धनदत्त आदि सभी पुत्र, धनश्री आदि सभी पुत्र-वधुएं कुमार बुद्धिसेन और मनोवती के धर्म की श्रद्धा को, उसके फल को देखते हुए हर्ष विभोर हो रहे हैं।

''और फिर जब प्रत्यक्ष में प्रतिज्ञा का फल अतिशय रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है, तब तो दृढ़ श्रद्धानपूर्वक जिनदर्शन की प्रतिज्ञा लेकर अपना संसार स्वल्प कर लेना ही चाहिए।''

''हाँ हाँ, बहन ! यह जिनदर्शन ही तो एक दिन अपनी आत्मा का दर्शन कराकर अपने अन्दर ही परमानन्दमय परमात्मा को प्रकट कराने वाला है......।''

*****

सती मृगांकलेखा

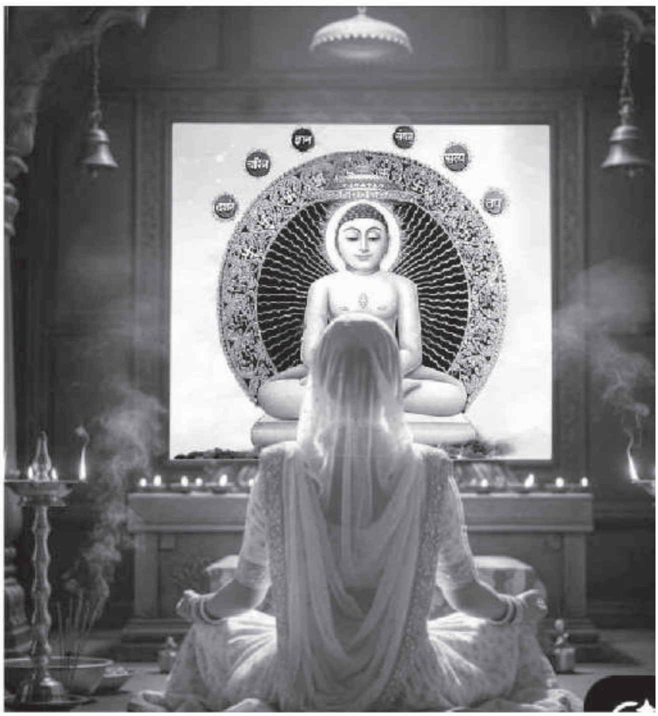

सती मृगांकलेखा

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के अवन्ति नामक देश में उज्जयिनी नगरी है वहाँ अवनिसेन नामक राजा था जो अपने वैभव से इन्द्र और प्रताप से सूर्य को भी जीतता था। वह जिनधर्म की प्रभावना रूपी गुणों में प्रवीण था। उनकी मृगनयनी जयावती नाम की पत्नी थी। उसी नगरी में विशाल बुद्धिवाला मतिसागर (सागरदत्त) नामक मन्त्री था। जिसका दैदीप्यमान ललाट वाला सागरचन्द्र नाम का पुत्र था।

वही पर धनसागर नामक श्रेष्ठ वणिक रहता था। जो देव-शास्त्र-गुरु के प्रति हमेशा समर्पित रहता था। चतुर्विध संघ की विनय करता था उसकी रम्भा नामक प्रिया थी। उन दोनों गुण-समूह से युक्त मृगांकलेखा नामक पुत्री थी। जिसके सौन्दर्य और देह-दीप्ति के समक्ष तो लक्ष्मी भी लज्जित होती थी तथा उसकी तुलना में बुद्धि और कीर्ति भी सुशोभित नहीं होती थी उस बाला ने सम्पूर्ण कला और विज्ञान की शिक्षा ग्रहण की। वह परिमित जिनधर्म के रंग में रंग गई।

अनन्तर वह कन्या गहन जंगल में अपने पिता द्वारा निर्मित जिनमन्दिर में जहाँ रत्नमय प्रतिमाएँ विराजमान थीं, विविध प्रकार की पूजन सामग्री ग्रहण कर समान वयवाली सखियों सहित आई।

जिस प्रकार जपा पुष्प में उसका रंग सर्वत्र व्याप्त रहता है उसी प्रकार जिसके चित्त सहित आठों अंग में जिनधर्म का मनोहारी रंग व्याप्त था, ऐसी उस कन्या ने सर्वांग से जिनचन्द्र को नमस्कार किया।

अथानन्तर जिनेन्द्रार्चन करके वह कन्या वही पर प्रतिमायोग से स्थित होकर मन-वचन-काय को एकाग्र कर करांगुलियों पर पंच परमेष्ठी का ध्यान करने लगी। ऐसी तप्त स्वर्ण की कान्ति के समान शरीर वाली वह कन्या सागरचन्द्र द्वारा देखी गई। वह मन में सोचता है यह देव प्रतिमा धन्य है।

उस कन्या को सागरचन्द्र ने जैसे ही भावपूर्वक उत्तमाङ्ग से प्रणाम किया वैसे ही उसका मित्र ताल देकर हँसने लगा। मित्र कहता है – यह 'देव प्रतिमा' नहीं है, यह तो धनसार श्रेष्ठी की पुत्री है। यह यौवन सम्पन्न है, इसका कण्ठ कोयल के समान है तथा यह मृगांकलेखा के नाम से प्रसिद्ध है। मित्र के वचन सुनकर सागरचन्द्र कहता है – हे मित्र! मुझे दर्शन के सम्बन्ध में कोई आशंका नहीं है। मैं तो यक्ष-यक्षिणी दोनों को नमस्कार करता हूँ क्योंकि मैं एक ही स्थान पर स्थित देवों के विषय में परीक्षा नहीं करता।

यदि यह कन्या के रूप में उत्पन्न नहीं है तो मुझ सागरचन्द्र द्वारा अत्यन्त पूज्य है क्योंकि इस अमृत तरंगिणी को जिसने नहीं देखा उस पुरुष का संसार में सब कुछ व्यर्थ है और यदि यह कमनीया कन्या है और फिर यह मेरी पत्नी नहीं होती है तो मेरा जन्म निष्फल है' ऐसा विचार करते-करते वह मतिहीन हो

उसी क्षण शीघ्र ही मूर्च्छित हो धरती पर गिर पड़ा। मित्र ने जल बिन्दुओं का सिंचन किया और पंखा से हवा कर सागरचन्द्र को चेतना युक्त किया।

मित्र के द्वारा वह सागरचन्द्र पल भर में अपने आवास पर ले जाया गया, उसका सारा शरीर काम-दाह से जलने लगा, मुख सूख गया, चेतना चंचल हो गई एवं उसका मन भोजन-पान की रुचि से रहित हो गया।

'तुझे कौन सी मानसिक पीड़ा है अथवा तुझे कौन सी शारीरिक पीड़ा है जिससे तेरी देह जल रही है। हे पुत्र! मुझसे कह।' ऐसा पिता के द्वारा पूछे जाने पर उसने कुछ भी नहीं कहा।

पश्चात् मित्र के मुख से पुत्र के समाचार जानकर श्रेष्ठी ने अपने पुत्र को संस्थापित किया। हे पुत्र! विषाद रूपी पिशाच को छोड़ो वह तरुणी तेरी ही होगी।

इसी बीच एक सत्यवादी, निमित्त ज्ञानी मन्त्री सागरदत्त के घर आया। चिन्तातुर है चित्त जिसका ऐसे उस सागरदत्त ने निमित्त ज्ञानी से कहा, विस्तार को छोड़कर संक्षेप में शीघ्र ही कहिये कि क्या यह मृगांकलेखा एवं सागरचन्द्र का पाणिग्रहण रूप कार्य उचित है अथवा नहीं। उस विशिष्ट ज्ञानी ने विचार कर स्पष्ट रूप से कहा, हे मित्र! उद्यम करने से कार्य की सिद्धि होती है अथवा निमित्त से? सागरदत्त ने सारे वृत्तान्त को पुनः कहा, पश्चात् विप्र ने उसे एक भव्य मन्त्र दिया।

जिनशासन एवं जिनधर्म का युक्तिपूर्वक विचार करो, इसी दया धर्म के द्वारा ही श्रेष्ठी की पुत्री प्राप्त होगी। पुत्री की प्राप्ति का यही उपाय निरन्तर मन में धारण कीजिये एवं चारों प्रकार के आहार का त्याग कीजिये। इसके पश्चात् सागरचन्द्र बोला - विप्र ने जो कुछ कहा है वह निश्चित रूपेण किया जाना चाहिये। यदि मृगांकलेखा मुझे प्राप्त होती है तो ही अब यह जीव इस शरीर में स्थित रह सकता है, अन्यथा अन्य लोगों की तरह मैं भी शीघ्र ही मृत्यु के निकट पहुँच जाऊँगा, यह मेरा नितान्त अचूक वचन है।

पुत्र के कथन को सुन शीघ्र ही उसके पिता जिनमन्दिर गये और बिना किसी रुकावट के उन्होंने जिनेन्द्र प्रभु को प्रणाम किया। तत्पश्चात् ऋषिवर्य के पाद-पद्मों में नमस्कार कर उनके समीप बैठ गया और कपट भाव से प्रीतिपूर्वक निवेदन करने लगा। हे स्वामिन्! यह संसार असार है, जब तक जन्म-मरण एवं जरा का विच्छेद न हो तब तक हे धर्मदातार! भव समुद्र में डूबते हम सबको आप ही हस्तावलम्बन स्वरूप हो, इस प्रकार गद्गद् वाणी में कहकर सागरदत्त ने उसी समय श्रावक के व्रत ग्रहण कर लिये।

अभिषेक, पूजन, वन्दन और उत्सव से संयुक्त होकर वे सागरदत्त पर्व के दिनों में श्रद्धापूर्वक प्रोषध करने लगे। अहर्निश मन्दिर में ठहरकर धर्म कथा कहने लगे तथा उनका धनसार श्रेष्ठी के साथ स्नेह हो गया। दोनों सहधर्मियों के परस्पर बढ़ते हुये स्नेह एवं वात्सल्य से दोनों श्रेष्ठियों के हृदय में सम्यग्दर्शन प्रकट हो गया।

एक दिन वह सागरदत्त आश्वासित हो उपवास करके सुन्दरी मृगांकलेखा एवं उसके पिता धनसार श्रेष्ठी के जिनालय में रात्रि विश्राम हेतु ठहर गया।

प्रभात हुआ और सूर्य पूर्ण दीप्ति के साथ उदित हुआ तो आश्वासित होकर सेठ धनसार जिन वन्दना के निमित्त जिनालय आया। उन्होंने भी वहाँ कायोत्सर्ग धारण किया तथा प्रशस्त मन से अनेक स्तुतियों द्वारा जिनेन्द्र प्रभु की पूजन की।

गुरु की वन्दना करके दोनों ने परस्पर हर्षित होकर धर्म कथा श्रवण की। तत्पश्चात् श्रेष्ठी धनसार मन्त्री सागरदत्त से आदर-सम्मान पूर्वक अपने घर पर भोजन करने की प्रार्थना करने लगा।

सेठ ने उत्तम षट्रस-युक्त कच्चा भोजन तैयार कराया एवं क्षुधा निवारण के लिये सुन्दर पात्रों में परोसा। मन में अवसर का विचार कर मन्त्री ने धनसार श्रेष्ठी से विनयपूर्वक कहा - यदि आप मुझ पर इस जन्म का स्नेह दिखलाते हो तो मेरे पुत्र को अपना पुत्र बनाकर ले आइये अर्थात् अपनी पुत्री का मेरे पुत्र के साथ पाणिग्रहण कीजिये अन्यथा ऐसा नहीं करने पर मेरा मन टूट जायेगा।

मन्त्री की बात सुनकर धनसार बोला - आपने मुझे साधर्मी मानकर ऐसा कहा है तो आपका कहा हुआ क्यों नहीं किया जायेगा? कहिये अत्यन्त गुणवन्त के लिये क्या नहीं दिया जाता अर्थात् सब कुछ दिया जाता है। इस प्रकार धनसार श्रेष्ठी ने अतिशीघ्र शुभ मुहूर्त में सागरदत्त के पुत्र को अपनी पुत्री देना स्वीकार कर लिया।

निमित्तज्ञानी के वचनों के अनुसार शुभ लग्न देखी गई। दोनों गृहों में विवाह की सामग्रियाँ तैयार होने लगीं। उभय-गृहों में मनोज्ञ उत्साह छा गया एवं भम्भा (वाद्य विशेष), भेरी के उच्च स्वर गूँजने लगे। नित्य ही सुन्दर गीत गाये जाने लगे और सुन्दर मनोहर नृत्य होने लगे। भिखारियों एवं भृत्यों को समान मात्रा में द्रव्य दिया जाने लगा। परिणय विधि पर सब ओर उत्कृष्ट प्रमोद भाव बढ़ गया किन्तु दुर्जन पुरुषों के मनरूपी कमलों में शोक उत्पन्न हो गया। लग्न की निकटता के दिन सागरचन्द्र तन्द्रा रहित अपने मित्र सहित बैठा था। उसने मित्र से कहा - धनमित्र! अपना चित्त देकर सुनो, मेरा शरीर चेतनाहीन हो रहा है और पृथ्वी घूम रही है।

मेरी चेतना वहीं स्थित है जहाँ चन्द्रलेखा है, जब वह इस घर में आयेगी तभी मैं उसे देख सकूँगा। जबसे वह बाला जिनमन्दिर में मेरे द्वारा अच्छी तरह से देखी गई और तुम मुझ पर ताल देकर हँसे थे तब से मेरा मन उसी में बस रहा है। मैं मानता हूँ मेरे जीवन का फल नियम से वहीं पर है। धनमित्र बोला-क्या मैं आपके वचनों का उल्लंघन करता हूँ, आप तो स्नेह-निधान हैं।

वे दोनों उसी समय अन्धेरी रात्रि में ही हाथ में तलवार लेकर चल पड़े। वे दोनों मित्र छद्मपूर्वक वहाँ गये जहाँ उद्यान में 'सिद्ध हो गया है अर्थ अर्थात् धन' जिनको ऐसे सिद्धार्थ अर्थात् 'धनसार' की पुत्री मृगांकलेखा अपनी चित्रलेखा और पत्रलेखा दोनों सखियों के साथ बैठी थीं। वे दोनों पुरुष अन्धकार में एक ओर खड़े हो गये। अपने नयनों से मृगांकलेखा को देखकर उसे ऐसा सन्तोष हुआ जैसे चिर संचित पूर्व पुण्य का सारा फल प्राप्त हो गया हो।

इसी बीच चित्रलेखा कहती है-हे सखी! तू धन्य है और यह शुभ बेला भी धन्य है। यह लग्न, मुहूर्त और नक्षत्र भी धन्य है, जो तुझे मकरध्वज जैसा पति मिलेगा। जो सुन्दर है, श्रेष्ठ (देहगत-तिल, लहसुन, श्रीवत्स, पद्मादि) सामुद्रिक लक्षणों वाला, मनोहर गुणों के समूह से संयुक्त, विज्ञान-सम्पन्न, व्यवहार कुशल एवं विशाल भाल वाला है। जो समभाव और व्रत में अनुरक्त है, धन और दया का दातार है, ऐसे चन्द्रमा के समान उन सागरचन्द्र का मैं क्या वर्णन करूँ।

चित्रलेखा की बात सुनकर वह पत्रलेखा बोली - हे सखी चित्रलेखा! तू तो भोली-भाली है। वर के सारभूत गुण तुझे ज्ञात नहीं है। सागरचन्द्र के साथ समागम को क्यों कहती हो।

तीर्थंकरों की प्रभुता, कृष्ण और बलराम का स्नेह और प्रवासी राम जैसा श्रेष्ठ पुत्र जैसे जगत्प्रसिद्ध है वैसे ही सौत का दु:ख जगत्प्रसिद्ध है।

कुमार सागरचन्द्र अधिकारी (मन्त्री पुत्र) है। राजा की आज्ञा से नित्य ही विदेश में भ्रमण करता है, जिससे रात्रि में पति सम्बन्धी सुखी का दीर्घ/लम्बा विच्छेद होता है। हे सखी! श्वान के समान सेवक को धिक्कार हो, धिक्कार हो। दूसरी बात, अधिकारी अनेक स्त्रियों से विवाह करता है। जिसमें दुर्भाग्यशालिनी अनेक होती हैं, सौभाग्यशालिनी तो कोई एक ही होती है। व्यापारी 'वर' सुन्दर और सुजान होते हैं, उनके गमन और ठहरने से वनिता वियोग नहीं होता। यद्यपि परस्पर विवाह की अनेक रुचियाँ होती हैं इसलिये वे प्रणयिनी तो अनेक बना लेते हैं तथापि किसी एक को ही अपनी प्रिय पत्नी बनाते हैं।

व्यापारी पुत्र अनंगसेन को देखो, वह कामधेनु के समान तो भिखारियों का पोषण करता है और उसके श्रेष्ठ भवन में राजहंस के समान सुन्दरी सदैव स्त्री रति सम्बन्धी दु:ख का विनाश करती है। जब पत्रलेखा ने ऐसा कहा तब पुन: चित्रलेखा बोली - उसकी आयु तो केवल बीस वर्ष की है। पत्रलेखा बोली - पहले तूने जिस वर का वर्णन किया क्या वह रात्रि में भी सूर्य के समान तेजवन्त है? क्यों झूठ बोलती हो क्या तुच्छ आयु वाला गुणवन्त प्रशंसनीय नहीं होता।

(सागरचन्द्र की ओर आक्षेप करती हुई) वह कहती है - हे मुग्धा! क्या वह एक अकेला ही श्रेष्ठ अमृत पीता है, जिससे उसका शरीर निर्मल एवं अजर-अमर है। अरे अधिक विष संचय करने से क्या कार्य सिद्ध होता है? घृत के स्वाद की पूर्ति तेल नहीं करता। एक बार सुन्दर-स्वादिष्ट क्षीरान्न खाना श्रेष्ठ है किन्तु नित्य ही कौदों का भोजन करने से क्या गौरव?

अथानन्तर ऐसा सुनकर भी मृगांकलेखा ने लज्जावश उसका निवारण नहीं किया। सागरचन्द्र ने दोनों का वार्तालाप सुना और पापयुक्त हो म्यान से तलवार निकालकर दौड़ पड़ा। तभी धनमित्र द्रुत गति से सागरचन्द्र से सम्मुख आया और पूरी शक्ति से उसका हाथ पकड़कर एकान्त में ले जाकर अत्यन्त मधुर वाणी में उसे सम्बोधित करने लगा।

हे मित्र! सखियों-सखियों के बीच में जो कुछ कहा गया वह सत्य नहीं है, उस पर मुख विषाद मत कीजिये। वह मृगांकलेखा लज्जावती सती है। वह निरपराध है उसे क्यों त्यागते हो।

इन चित्रलेखा और पत्रलेखा दोनों ने जो कुछ भी कहा है वह हँसकर कहा है। क्या हँसी-हँसी में कही गई बातों पर विश्वास करते हो। अरे! शत्रु के घात के लिये भी मत कहो।

कहा भी है भोजन करते हुये का, नमस्कार करते हुये का, पलायन करते हुये का, शयन करते हुये का, बालक-बालिका का, ऋषिजनों का एवं ध्यान में युक्त प्राणियों का वध करने में महान् पाप होता है। इसलिये योद्धा पुरुष आयुध ग्रहण कर इनका घात नहीं करते हैं। इस प्रकार कहकर मित्र उसे घर ले आया।

उसका मन विवाह से विरक्त हो गया लेकिन परिजनों के भय से एवं मित्र के द्वारा रोके जाने पर सागरचन्द्र ने पाणिग्रहण तो किया पर उसमें वह रागयुक्त नहीं हुआ। विवाहोपरान्त भव्य भोज किया गया तथा दान-सम्मान से सभी का गर्व गल गया। सज्जन-वृन्द परस्पर मिलकर अत्यन्त हर्ष से संपूरित हो अपने-अपने घर लौट गये। नववधू के अवलोकन/मुख दर्शन से आनन्दित होकर सारे परिजन नृत्य करने लगे और उनकी तन्द्रा भंग हो गई।

मृगांकलेखा के दिखलाई पड़ने पर वह सागरचन्द्र दु:ख मनाता है, उसकी देह तपने लगी। प्रिय के सम्भाषण, वचनालाप-रूप-प्रवृत्ति का परित्याग कर देने पर वह प्रिय विरह की पीड़ा से संश्लिष्ट हो गई। मृगांकलेखा अपने अपराधों का स्मरण करती है, हा नाथ! मेरा कोई भी अपराध नहीं है तथा उसके दोनों नेत्र ऐसे झरने लगे मानों जल प्रवाह ही झर रहा हो। इस प्रकार बहुत विकल्प करते हुये उसके दिन और रात्रियाँ बीतने लगीं।

अरति, अरुचि और ईर्ष्यादि अन्तरंग परिवार न्यूनाधिक होते हुये नि:श्वास छोड़कर क्षीण होने लगे तथा हृदय में लगा हुआ काम का वाण उसके वशीभूत हो गया। विरह से दग्ध उस मुग्धा के हाथों से चन्दन का रस सूखने लगा। इस प्रकार उस भोली नारी के जिस किसी तरह इक्कीस वर्ष बीत गये।

इधर पाणिग्रहण के पश्चात् रूप का सारभूत कुमार सागरचन्द्र परिजनों से कहता है - यह नारी मेरे मन को अच्छी नहीं लगती, इसके शरीर में सारे गुण नियम से दोष स्वरूप हैं। इस स्त्री को देखकर मेरे नेत्र जलने लगते हैं, अत: इस अनार्या को इसके पिता के घर भेज दो। कुमार के वचन सुनकर पितृवर्ग परस्पर मन्त्रणा कर पुत्र से कहता है - हे पुत्र! अतिक्रोध भला नहीं होता। बिना अपराध के दण्ड देना उचित नहीं।

कुमार बोला - जो कोई भी व्यक्ति इस पुत्रवधू को घर में रखेगा वह मेरा शत्रु होगा; और जो इस स्त्री के सम्बन्ध में मुझसे कुछ कहेगा वह शीघ्र ही मेरा मुख नहीं देख सकेगा।

पुत्र के वचनों को सुनकर माता-पिता रुदन करने लगे। जो कुछ विधाता की कर्मविधि है उसे कौन टाल सकता है?

हे पुत्र! सम्पत्ति-विपत्ति, वियोग-रोग-भोग, भवितव्यता-उदय, हर्ष-विषाद और शोक सदैव एक से नहीं रहते, पक्ष में इनके समक्ष किसी की नहीं चलती।

उस पुत्रवधू ने जब अपने पति के इन दुष्ट वचनों को सुना तो उसने गद्गद् वाणी में अपनी सासू से

पूछा–हे अम्बे! अब आप ही करने योग्य कार्य को कहिये; क्योंकि आपके अतिरिक्त मेरा अन्य कोई दूसरा हितकारी नहीं है। तदनन्तर प्रिय की माता यानी सासू कहती है – तेरे रहते हुये मेरा पुत्र घर में नहीं ठहरेगा; इसलिये शीघ्र ही तू अपने पिता के घर चली जा। हे पापराशे! मुझे अपना मुख मत दिखला। सासू के वचनों को कर्णगत कर वह लज्जावन्त सती आदेश ग्रहण कर अपने पिता के घर चली गई।

सुखाभिलाषा के पाशरूपी बन्धन का निवारण कर उसने अपने मन में परमर्षि के वचनों को धारण कर लिया। यह नितान्त सत्य है, संसार में सारे प्राणी कर्माधीन होकर नाचते हैं। सच है स्वप्न में प्राप्त हुई सम्पदा पर कौन गर्व करता है? विद्याबल, उद्यम, सुन्दर रूप, सुन्दर गुणवती स्त्री अथवा कामदेव के समान सुन्दर पुरुष ये सब दैव के प्रतिकूल होने पर जीव को क्लेश और दु:ख ही उत्पन्न करते हैं। यह जीव अशुभ लेश्याओं से दु:खी होकर पीड़ित होता है। निश्चित ही कोई भी प्राणी कर्मोदय से छूट नहीं सकता, चाहे वह सबल हो या निर्बल है। चाहे वह सामान्य नर हो या अमर।

वह सती विचार करती है – धन, गुण, विज्ञान तथा प्रयोजनभूत शक्ति विशेष ये सभी वस्तुएँ शुभ कर्मोदय के अभाव में निश्चित ही निस्सार हैं। न तो मेरे द्वारा सारभूत संयम धर्म स्वीकार किया गया और न ही मैंने ग्रार्हस्थिक धर्म सम्बन्धी कमनीय भोगों को भोगा। निश्चय ही पुण्य के बिना प्राणी सदा निराश रहते हैं तथा स्वकीय मनवांछित आशाओं को भी प्राप्त नहीं कर पाते हैं। लगता है पूर्व जन्म में सावधानीपूर्वक ग्रहण किये गये व्रत पापोदय में निश्चित ही मेरे द्वारा छोड़ दिये गये होंगे अथवा मैंने कभी किसी दम्पत्ति का वियोग किया होगा अथवा मैंने किसी मुनि की निन्दा की होगी, जिससे सम्प्रति में ऐसा दानान्तराय का उदय हुआ है।

इस प्रकार दीर्घ नि:श्वास छोड़ती हुई वह गद्‌गद्‌ वाणी में विलाप करती हुई अपने पिता के घर जाने लगी। हाय! शुभाशुभ कर्म, यह तेरा ही दोष है जो यह संसार इतना असुन्दर एवं हर्ष–रोष भरित है। इस प्रकार विलाप करती हुई आकुल–व्याकुल होकर पूछती–पूछती अपने माता–पिता के घर पहुँच गई। हे पुत्री! कारण और कार्य को अर्थात् 'यहाँ क्यों और किसलिये आई हो', युक्तिपूर्वक स्पष्ट कहो। हे पुण्यमूर्ते! किसने तेरा तिरस्कार किया है, इस प्रकार जब वह बाला विशेष आग्रहपूर्वक माता–पिता द्वारा पूछी गई, तब कुमारी नितान्त सत्य बातों को इस प्रकार कहने लगी।

स्वामी ने मुझे बिना किसी दोष के परित्यक्त कर दिया है। हे तात! मैं अपने छोड़े जाने का और अन्य कोई भी कारण नहीं जानती हूँ। पुत्री के वचनों को श्रवण कर माता–पिता का हृदय दु:ख पूरित हो गया। वे कहने लगे – हे पुत्री! धर्म को ग्रहण करो और उसी में निमग्न हो जाओ। जिनाभिषेक, जिनार्चना, जिनपूजन विधान करो एवं अपनी शक्त्यानुसार व्रत और पात्रों को दान दो। हे गुणवन्ते! तुम तीनों संध्याओं में सामायिक करो जिससे तेरे अशुभ कर्म टूट जायेंगे।

पुत्री अपने पिता की इस शिक्षा को मन में स्वीकार करती है एवं तन से व्रतों को भी धारण कर लेती है। इस तरह जिनेन्द्र की भक्ति करते हुए उसके सात माह बीत गये।

किसी दिन मृगांकलेखा के महल के निकट की कोई स्त्री आकर उससे कहती है – कुलवती स्त्रियों का पिता के घर में रहना श्रेष्ठ नहीं है। श्वसुर गृह में दासी बनकर रहना श्रेष्ठ है क्योंकि इससे पति का पराभव होता है एवं जग में हँसी भी होती है।

तदनन्तर पड़ोसिन की बात सुनकर मृगांकलेखा अपने मन में ऐसी बुद्धि से विचार करती है कि 'सुखी–दु:खी होकर निज पति गृह में निवास करूँगी' और ऐसा ही उस महिला से कहकर अपने मन में दृढ़ता धारण कर मृगांकलेखा अपनी सखी के साथ अपने घर चली गई।

इधर पतिगृह में उससे कोई भी स्नेह नहीं करता है। सच है, नाथ के प्रतिकूल हो जाने पर सुख नहीं होता। पति की माता (सासू) कहती है – हे निर्लज्ज! क्या तू मुझे किसी का विनाश दिखलायेगी? सासू के आदेश से चन्द्रकान्ति सदृश चन्द्रलेखा को दासी ने हाथ पकड़कर घर से बाहर निकाल दिया। विनिश्चय सत्य है, 'पाप –पुण्य की पोटली को जिसने सिर पर धारण किया है ऐसा कौन है जो कर्म पराभव से छूटा हो?'

मृगांकलेखा को कठोर लाठी से पीटती हुई पद्मा सासू हँसते हुये कहती है –जा–जा! अपने पति को अपना रोना/दुखड़ा सुना। वह सयानी किसी का भी स्मरण नहीं करती हुई अपने मन में कर्म–विपाक नामक तृतीय धर्म ध्यान का चिन्तन करने लगी। जीवन से हताश वह परिजनों के समक्ष विनीत वचनों से अत्यन्त दीनतापूर्वक कहती है–मैं पूर्व पापोदय से पापी हूँ; फिर भी कोई उस पर दया भाव नहीं करता है।

उसी समय सेठ सागरदत्त वहाँ आ पहुँचे, पुत्रवधू को (ऐसा दुखित) देखकर लज्जित हो गये। महल के भीतर जाकर अपनी सुन्दरी निज पत्नी से सारा वृत्तान्त पूछा तथा अत्यन्त कठोर वचनों से परिजनों की घृणापूर्वक भर्त्सना करते हुये बोले – जहाँ हमेशा कुल परम्परा से गृहिणियाँ एवं पुत्रवधुएँ रहती आई हैं; वहीं भवन के भीतर कुलवधू मृगांकलेखा को स्थान दो।

वह पद्मा सेठानी अपने स्वामी से बोली – आपका पुत्र इसे यहाँ स्थान नहीं देना चाहता है यह गुणवती आदर के बिना यहाँ आई है, इस कारण बाला द्वार पर बैठी है। पत्नी के वचनों को सुनकर सुविज्ञ सागरदत्त अपनी ज्ञानवती पुत्रवधू के निकट आये और अतीव विनीत एवं मधुर वाणी में कहने लगे – हे भद्रे! तुम्हारी पराभव किसने किया है?

हे तात! कौन सा कारण कहूँ जिससे मैं परित्यक्त एवं निराश्रित की गई हूँ, अब मैं पिता के घर नहीं रहूँगी। आप ही दासी के समान समझकर रख लीजियेगा।

हे तात! मुझे आदेश दीजिये, ताकि मैं संयम ही है सारभूत जिसमें; ऐसी जिन दीक्षा को ग्रहण करूँ। जीवन को संन्यास से सफल करूँ अन्यथा मैं अनशन करके मर जाऊँगी।

वे दयानिधि श्रेष्ठी कहते हैं – हे पुत्री! धर्म ध्यान करती हुई अपने घर पर ही रहो; अन्य स्थानों एवं मन्दिरों को छोड़कर एक ही स्थान पर समर्पित होकर साम्य–भाव करो। सकल दासियाँ आपकी आज्ञा स्वीकार करेंगी तथा उत्तमोत्तम भोजन और वस्त्राभूषणों से आपके आवास को भर देंगी।

'व्रत दूषित न हो' इस भय से ज्ञान युक्त हो, वह विशेष संकल्प शक्तिपूर्वक प्रतिदिन शास्त्रोक्त विधि से जिनभक्ति जिनपूजन करने लगी। इस तरह उस संयम शीला, कला-विज्ञा, विनीता-सती के शुभ ध्यान सहित सात वर्ष बीत गये।

अथानान्तर लाडदेश में जहाँ की सीमाएँ अत्यन्त विषम थी तथा जहाँ की शत्रुंजय नगरी ऐसी लगती थी; मानों दूसरा स्वर्ग ही हो, वहाँ का भीम नाम का राजा था। अपने इस शत्रु राजा पर अवन्तिसेन आक्रमण के लिये वैसे चल पड़ा; जैसे पक्षीराज गरुड़ चिड़ियों पर झपट्टा मारता है, सो इस कार्य के लिए नृपति भृत्य वर्ग का आह्वान करता है। प्रजापालक राजा अवन्तिसेन सागरचन्द्र से कहता है - युद्ध की सामग्री एकत्रित कर मेरे साथ चलो, क्योंकि तुम साम, दाम, दण्ड और भेद रूप चारों नीतियों के अनेक भेदों को भली-भाँति जानते हो? ऐसा कहकर राजा ने युद्ध के निमित्त सजा हुआ बीड़ा उसे दे दिया। बीड़ा लेकर सागरचन्द्र अपने घर आया और पिता को सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

सागरचन्द्र ने शीघ्र ही कटक/सैन्य सामग्री सजवाई और इस पवित्र कार्य के लिये अपने मित्र को बुलवा लिया। इस समाचार से कुमार के माता-पिता व्याकुल हो गये, उन्होंने दस दिनों तक विपुल मात्रा में भृत्यों को प्रसाद वितरित किया। वृषभ, मेढ़ा, ऊँट, गज, अश्व, शस्त्र, रथ तथा युद्ध प्रस्थान की सारी वस्तुएँ संजोयी जाने लगीं। कुमार ने शुभ मुहूर्त में जब युद्ध के लिये प्रस्थान किया तब माता-पिता के चरण-कमलों में अपना मस्तक नवाया है अर्थात् उन्हें प्रणाम करता है। गमन के समय सुन्दर मंगलाचार किये जाने लगे और सागरचन्द्र के भाल पर दूर्वा और अक्षतों से चन्द्राकार तिलक लगाया गया।

इसी बीच अत्यन्त हर्ष से भरी हुई होने के कारण रोमांचित हो गई है देह जिसकी ऐसी वह मृगांकलेखा मन-ही-मन विचार करती है, 'आज युद्ध प्रस्थान के समय निश्चित ही अल्प समय के लिये ही सही मुझे स्वामी के दर्शन एवं उनसे सम्भाषण का अवसर प्राप्त होगा।' ऐसा मन में ठानकर उसने सारा शृंगार कर दैदीप्यमान भव्य मंगल कलश ले लिया।

हर्ष रूप सम्पदा से भरा हुआ जिसका हृदय काँप रहा था तथा दाहिना अंग फड़क रहा था ऐसी पूर्ण चन्द्रमुखी मृगांकलेखा सती जैसे ही पति की ओर जाने लगी वैसे ही उसे तड़ाक से छींक हो गई।

वह गजगामिनी वहीं उसी समय विचारने लगी, 'मेरे भाग्य में प्रिय का संगम नहीं है और यदि अभी मैं अपने प्रिय के सम्मुख नहीं जाती हूँ; तो पुनः प्राण-वल्लभ का दर्शन कैसे होगा?'

भूपति के आदेश से मेरे स्वामी आज ही शिविर की ओर चले जायेंगे, पश्चात् पराङ्मुख प्राणेश्वर को नहीं देख पाऊँगी।

पूर्वजन्म में किये गये दुष्कृत्यों की महिमा से यद्यपि नाथ पराङ्मुख हैं तथापि स्वप्न में भी मेरे लिए तो 'ये' ही प्रिय हैं, इसलिये यात्रा के समय बिना बोले ही स्वामी का दर्शन कर लूँगी; क्योंकि देशान्तर चले जाने पर कौन जानता है क्या होगा?

अपने चित्त में ऐसा विचार कर चित्रलेखा सखी को साथ लेकर वह सखी सहित सागरचन्द्र को प्राप्त हुई अर्थात् उनके निकट पहुँची।

नित्य ही काजल के परित्याग से जिसके नेत्र उज्ज्वल थे। ताम्बूलादि का सेवन नहीं करने से जिसके दन्त स्वच्छ/विशुद्ध एवं श्रेष्ठ थे। हरिचन्दन के लेप से जिसके वस्त्र मलिन हो रहे थे। जिसके कर-कंगनों से मणि टूट-टूकर निकल गये थे तथा जो मात्र मोतियों के आभूषण धारण किये थी ऐसी वह मृगांकलेखा उस समय ऐसी प्रतीत हो रही थी मानों महासमुद्र से तत्काल रम्भा ही उतर आई हो अथवा तप से क्षीण हुई गौरी हो अथवा प्रलयकाल में प्रक्षीण हुई गंगा हो।

चित्र के समान निश्चल चित्त वाली उस चन्द्रलेखा ने अपने शरीर को खम्भे के सहारे टिका रखा था, जिससे वह ऐसी लगती जैसे यकायक उसने रत्नमय पुत्तलिका (शाल भंजिका) की शोभा को धारण कर लिया हो।

जिसके हरे-हरे पत्र सूख गये हैं ऐसी शमी-लता के समान वह बाला जिस किसी प्रकार शीघ्र ही अपने स्वामी के समीप पहुँची तथा जो अन्य किसी कार्य के लिये तैयार था ऐसे सागरचन्द्र के द्वारा वह देखी गई। स्वकीय परिजनों के साथ सम्भाषणादि क्रियाओं में संलग्न सागरचन्द्र ने उसे देखा तो मुँह स्तंभित/(बन्दकर) गर्व युक्त निर्वेद (विरक्त) सा हो सहसा मौन हो गया।

अपने प्रिय के चरण-कमलों में गिरकर उस मुग्धा ने कहा - हे सुभग! किस कारण बिलखती हुई अपनी भार्या की उपेक्षा कर रहे हो।

हे नाथ! सैकड़ों जन्मों द्वारा संचित दुष्कृत्यों से मारी गई मुझ अभागिनी के प्रति आपके मन में अवश्य ही कोई 'दोष' निवास कर रहा है जिसके कारण हे भर्ता! तुम अनुरक्त होते हुये भी मुझे छोड़ रहे हो।

अनेक वर्ष और अनेक माह बीत जाने पर भी मेरे संकल्पित दोष की आपके द्वारा परीक्षा नहीं की गई। हाँ! मेरे पाप के परिणाम को तो देखो। एक स्थान पर निवास करती हुई आपकी गुणावली को श्रवण कर मैं श्वांस धारण करती थी, फिर भी मैं 'तुम्हें दिखलाई न दूँ', ऐसा आपने किसलिये कहा था। अब इस युद्ध यात्रा के समय मैं आपसे विशेष बात कहना चाहती हूँ, 'मुझ पापिनी को अकेला मत छोड़िये'।

इसे दासी बनाकर कुशलक्षेम पूर्वक जाइये। आपका सारा मार्ग शिवंकर हो! कल्याणमय हो! आप अतिशीघ्र लौट आइये तथा पुनरपि मेरे दृष्टि पथ में आइये अर्थात् मुझे अपना दर्शन दीजिये। इस प्रकार प्रार्थना करती हुई उस सती का निरादर करता हुआ कुमार माता-पिता को प्रणाम करके मित्र सहित कटक की दूसरी ओर प्रकट होता हुआ चल पड़ा।

प्रिय के वियोग से वह अतीव दुःखी हो अपार विलाप करने लगी। मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ी एवं अनेक प्रकार से संतापित हो उठी। वह कुलवती लाजवन्ती अबला; हे प्रिये! हे प्रिय! शब्द करती हुई इस प्रकार कहने लगी - 'मेरे प्राण-वल्लभ बोले बिना ही चले गये, अब मेरे ये प्राण किसलिये ठहरे हैं?' 'मैं

बिना किसी अपराध के छोड़ी गई हूँ' इस अपमान से तो तलवार के घात से मर जाना श्रेष्ठ है। मुझे स्वामी ने नयन भरकर भी नहीं देखा, अब मुझे कोई आशा नहीं है। मैं तो मंगल कलश सजाकर प्रिय के दर्शनार्थ गई थी, परन्तु जब प्राणेश्वर ने ही स्नेह छोड़ दिया तब जीवन से क्या प्रयोजन?।

मेरे तो मोह जाल में ही दिन निकल गये, न तो मैंने व्रत धारण किये और न ही गार्हस्थिक सुख प्राप्त किया। मेरी दशा तो वैसी ही हुई जैसे जंगल में मालती के फूल नितान्त निष्फल हैं। एक-एक इन्द्रिय का स्नेह भूलकर भी कोई न करे (पक्ष में एकांगी स्नेह नहीं करना चाहिये) देखो जल मूर्खा यानी जल से स्नेह करने वाली मीन मानती नहीं है और जल में ही मरकर अपना तन खो देती है। एक अंग अर्थात् चक्षु-इन्द्रिय से स्नेह करने वाला मूढ़ पतंगा नहीं जानता कि मैं दीपक को सुहाता नहीं फिर अपना शरीर जला देता है। कुलवधू चिता में प्राण देकर सती हो जाती है; परन्तु अपने शील को नहीं छोड़ती, शील की रक्षा करती है, उसे सम्भालती है। रूप की राशि स्वरूप वे सुन्दर और श्रेष्ठ नारियाँ अग्नि में वैसे ही जल जाती हैं जैसे अन्धा दीपक से जल जाता है।

जैसे अन्धे व्यक्ति को दीपक का कोई महत्त्व नहीं है, दीपक के सामने रहते हुये भी वह जल जाता है वैसे ही रूप की राशि स्वरूप श्रेष्ठ नारियों के समक्ष रूप का कोई महत्त्व नहीं है, वे कुलवधुएँ सतियाँ चिता में चित्त/प्राण देकर भी अपने शील को सम्भाल/बचा लेती हैं।

मृगांकलेखा पति के पीछे दौड़ती है, उसका सारा अंग काँपता है। इसी बीच पूर्वोक्त निमित्तज्ञानी चन्द्रसूरि आकर कहते हैं - हे पुत्री! नहीं जानती हो, यह तथ्य अपने मन में निश्चित करो कि 'सुख और दु:ख' कर्मोदय से ही होते हैं।

इन्द्र, नरेन्द्र, चन्द्र, विद्याधर, चक्रवर्ती, जिनेन्द्र, विष्णु/नारायण एवं हलधर अर्थात् बलभद्र सभी कर्मफल को भोगते हैं। सत्य है यह 'कर्म' ही इस धरती पर सर्वश्रेष्ठ/बलवान है।

चन्द्रलेखा मन में विचार करती है, इस संसार में मनवांछित सुख नहीं मिलता। ये सारे सांसारिक वैषयिक सुख अत्यन्त निस्सार है। कौन आसन्न भव्य इस संसार में रमण करेगा। धन, यौवन, जीवन सब सांध्य राग की भाँति क्षणभंगुर हैं। पति, पुत्र, कलत्र सब स्वप्नवत् अस्थिर हैं। अपनी आत्मा के अतिरिक्त कोई दूसरा अपना नहीं है, जो पौद्‌गलिक पदार्थों में प्रीति करता है वह बहिरात्मा है। मैं संन्यासपूर्वक मरण करूँगी और ऐसा सोचकर वह संन्यास हेतु चल पड़ी। मृगांकलेखा की ऐसी बात सुनकर निमित्तज्ञानी रोकते हैं। हे पुत्री! इस तरह की गई अनशन विधि जीव को दु:खी एवं पीड़ित करती है क्योंकि दुर्ध्यान की शक्ति दुर्गति का ही कारण होती है।

चन्द्रसूरि नैमित्तिक के विवेकपूर्ण कथन को श्रवणकर वह सती जहाँ जिनप्रतिमा विराजमान थी उन्हीं के समक्ष जाकर अच्छी तरह से बैठ गई। उसने श्रावक के एक देश व्रत रूप अनशन को ग्रहण कर लिया एवं मन में ऐसा संकल्प कर लिया जब मेरा पति मेरा हाथ पकड़कर सबके समक्ष मुझे पारणा करायेगा तब

ही भोजन करूँगी अन्यथा मेरा आजन्म अनशन है अर्थात् चारों प्रकार के आहार खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय का त्याग है। उसकी ऐसी प्रतिज्ञा जान सकल भव्यजन उसके इस भव्य कार्य में सहयोग देते हैं।

वह बाला पंचगुरु वाचक परमाक्षर (नमस्कार) मन्त्र का जप करती है तथा आदिनाथ जिनेन्द्र के गुण-समूह का स्मरण करती हुई अत्यन्त हर्ष भाव से वह कोकिल कण्ठी मधुर भाषिणी अपनी मधुर वाणी से जयमाला गाती है। जिनेन्द्र भगवान् का नाम पाप और क्लेशों को नष्ट करता है। भावों को शुद्ध करता है, जिससे शुद्ध लेश्या होती है और शुद्ध/शुभ लेश्या से जीव शुभ गति में पहुँचता है। मोह में अन्धी मैंने धर्म ध्यान को नहीं जाना, सच है कौशिक शिशु (उल्लू का बालक) उदित होते सूर्य को नहीं जानता। जिनेन्द्र भक्ति से मनुष्य राज-ऋद्धियों को प्राप्त करता है और भावों को शुद्ध कर पंचम सिद्ध गति को पाता है।

इस प्रकार चिन्तन करती हुई मृगांकलेखा ने आदिनाथ प्रभु की शासन देवी चक्रेश्वरी को मन में स्थापित किया। उसका आसन काँप उठा, उसने अवधिज्ञान का स्मरण किया और जाना, यह 'शशिलेखा सती' संयम और शील से पवित्र होते हुये भी दुःखी है। यह नारी पति-वियोग से दुःखी है और इसका पति स्कन्धावार (छावनी) में अवस्थित है। वह चक्रेश्वरी जहाँ सागरचन्द्र ठहरा था वहाँ आई एवं वहीं स्कन्धावार में निष्प्रमाद हो ठहर गई। छावनी के समीप अर्धरात्रि में आक्रन्दन करती हुई वह 'सूरी' चतुर सागरचन्द्र द्वारा सुनी गई, दर्द भरे उच्च स्वर में हा! हा! कार पूर्वक रुदन करती हुई वह ऐसी जानी जाती थी मानों वास्तव में ही अत्यन्त दुःखी हो। पलक झपकते ही सागरचन्द्र मित्र सहित हाथ में तलवार ले जैसे ही चलने लगा, ठीक उसी समय उसका दाहिना अंग और दाहिना नेत्र फकड़ने लगा। मन-ही-मन सोचता है 'क्या बात है?' क्या आज वियोगी वल्लभा का मिलाप होगा? और इसी बात को मित्र से कह दिया। मित्र बोला - निमित्तज्ञान कहता है 'आपके भाग्य में प्रत्यक्ष सुख है'।

वहाँ (जहाँ देवी आक्रन्दन कर रही थी) आकर सागरचन्द्र कहता है - हे अम्ब! सुनो; आप किसलिये आक्रन्दन कर रही हो। अपने दुःख के कारण को कहो, जिससे मन के संकल्पों/दुःख कारणों का उन्मूलन हो सके।

वह स्त्री कहती है, मैं नवयौवन सम्पन्ना श्रेष्ठ विद्याधारी हूँ, मैं रूप की राशि देव कन्या के समान हूँ और गोमुख नामक विद्याधर मेरा पति है।

मेरा स्वामी पाणिग्रहण कर हृदय की प्रीति को तोड़कर राजा के कटक में चला गया। नाथ का दर्शन, स्पर्शन एवं सम्भाषण प्राप्त नहीं होने से मैं दुःखी हूँ, इसीलिये रोती हुई यहाँ आई हूँ और उसी पापी के द्वारा मैं निरपराध ही छोड़ दी गई हूँ। मेरा नाथ दूर-देशान्तर चला गया है। हे तात! सुनिये, मेरे असाध्य दुःख का यही वृत्तान्त है।

हा! पुरुष; हृदय, शरीर, मुख, हाथ और पैर इन पाँचों से सुन्दर होते हुये भी निष्ठुर एवं ठगिया होते हैं। हाय विधाता ने पुरुषों को तो श्रेष्ठ और सयाना बनाया है तथा नारी को अबला एवं अज्ञानी। सारे चतुर

पुरुष स्त्रियों को मुग्धा/भोली-भाली कहते हैं, जबकि निर्दय और निष्ठुर होते हुये ये सारे पुरुष भव्य कहलाते हैं। उषःकालीन बाल सूर्य दूर से ही वन्दनीय होता है, क्योंकि जब वह आकाश क्षितिज पर उदित होता है तब प्रारम्भ में अत्यन्तारुण लाल सुन्दर लगता है किन्तु कुछ समय पश्चात् उसका प्रताप उग्र-उग्र होते-होते महाप्रचण्ड हो जाता है जिससे वह दर्शनीय नहीं होता अर्थात् उसकी ओर देखना असम्भव हो जाता है। उसी प्रकार पुरुष प्रारम्भ में तो अतीव-अनुराग युक्त सुन्दर लगते हैं, पश्चात् वे ही पुरुष सयाने हो जाने से प्रचण्ड प्रभाकर की तरह अदर्शनीय हो जाते है।

अस्त्र-शस्त्रों से प्रहार करते समय ये पुरुष 'काल' स्वरूप होते हैं, क्योंकि सुन्दर स्वरूपवानों के प्राणों का भी हरण कर लेते हैं। समस्त वीर-पुरुष सदा पाप कर्म में वीर होते हैं तथा धैर्यशील विश्वासकारी प्राणियों को दुर्गति में ले जाती है। पक्ष में वीर पुरुष अधिकारी होते हैं। अपने अधिकार बल से धैर्यशील विश्वासकारी की दुर्गति/दुर्दशा करते हैं इन अधर्मियों के विषय में अधिक कहने से क्या? इतना सुनते ही कुमार बोला-सावधान! सुनिये, सभी स्त्री-पुरुष एक समान नहीं होते?

हे भद्र! क्या पत्थर और मणि को एक जैसा कहोगी? क्या 'खलि' और कस्तूरी इन शब्दों के भिन्न-भिन्न गुण नहीं हैं? क्या बगुला और हंस, काक और कोयल एक समान, एक वर्ण, एक संज्ञा के होते हुये मधुर-मधुर ध्वनि किये जाने पर पृथक्-पृथक् नहीं जाने जाते? क्या सोना और धतूरा एक ही 'कंचन' शब्द से नहीं कहे जाते; परन्तु क्या वे एक जैसे हो जाते हैं? क्या उनके पोषण और प्राण हरण जैसे गुणों को नहीं जानती? कंचन प्राणों का पोषण करता है और धतूरा प्राणों को हर लेता है। सभी स्त्री-पुरुषों को एक जैसा क्यों कहती हो? क्योंकि करसाधन/हस्तरेखा अर्थात् सामुद्रिक लक्षणों के द्वारा राजा और रंक की पहचान होती है।

तदनन्तर वह चतुर देवी कहती है-हे मूर्ख, निर्गुणी, अज्ञानी, क्यों बकवास करते हो? ओ अविवेकी! अवगुणी!! झट्ठे!!! अपने भले-बुरे को क्यों नहीं जानते? अपनी निरपराध पत्नी को छोड़कर क्या आज सुबुद्धि ग्रहण कर ली है अथवा सुमतिशाह हो गये हो। हे प्रवीण! आपको ऐसी खोटी बुद्धि रूप क्रिया शोभा नहीं देती, सती नारी का पराभव पाप में डुबो देता है। तुम्हारी प्रिया मरण का उपाय सोच रही है, वहाँ उसने संन्यास क्रिया स्थापित कर ली है।

कुमार सागरचन्द्र बोला – हे मात! क्या तुम मेरी पत्नी की सम्पूर्ण बातों को जानती हो अथवा झूठ बोल रही हो? उसने अपना चक्रेश्वरी देवी का रूप प्रकट किया और अपने स्त्री रूप बनाने का कारण बतलाते हुये कहा – हे कुमार! तुम अभी अपने घर जाओ तथा मधुर वचनों द्वारा अपनी प्रिया को सन्तोष कराओ। कुमार बोला – आज तो अन्धेरी रात्रि है। मैं कल प्रभात में प्रस्थान करूँगा।

चक्रेश्वरी देवी ने गुण-समूह से युक्त/अलंकृत आकाश गमन की गुटिका कुमार को दी। कुमार चक्रेश्वरी की वन्दना करके, अपनी निन्दा करते हुये त्वरा गति से वहाँ से चल दिया और आकर मित्रवर से सारा वृत्तान्त कह दिया।

चक्रेश्वरी शीघ्र ही अपने स्थान पर चली गई। इधर वणिक पुत्र सागरचन्द्र उन्मत्त सा हो गया, मृगांकलेखा के मोह से घिर गया। 'हाय! मैंने अच्छा नहीं किया' कहते हुये मूर्च्छा खाकर धरती पर गिर पड़ा।

वह निर्दोष सती इतने दिनों तक आपके द्वारा परित्यक्त होकर भी अभी तक मृत्यु को प्राप्त नहीं हुई। मैं मानता हूँ यह तुम्हारे पुण्य का ही माहात्म्य है।

आपके द्वारा परित्यक्त वही सती निश्चित अपने प्राणों को त्याग देती किन्तु वह बेचारी तब तक नहीं मरती जब तक वह तुम्हारी आशा से जुड़ी है।

सागरचन्द्र क्षण मात्र में मित्र सहित मृगांकलेखा के महल को प्राप्त हुआ। उसका धवल महल शारदीय चन्द्रवत् शुभ्र एवं मनोहर था।

मृगांकलेखा का हृदयगत संताप सौ गुना वृद्धिंगत होता हुआ गरम-गरम अश्रु रूपी जल से भरे हुये नि:श्वास रूपी मेघों से छलकता हुआ जल-प्रवाह ऐसा लग रहा था मानों उत्तम जाति के मुक्ताफलों से खचित दीवाल का समूह ही टूट-टूट कर गिर रहा हो।

मृगांकलेखा ने निर्दयतापूर्वक मणिमय कर कंगनों के समूह को तोड़कर अपने हाथों से बाहर निकाल दिया था तथा तड़-तड़कर फूटता हुआ उसके हारों का गुच्छ विरह को नया परिहास दे रहा था अर्थात् उसके विरह की मानों हँसी उड़ा रहा था।

उसका चंचल शरीर ऐसा काँप रहा था जैसे छिन्न-कटी हुई छिपकली-गृहगोधा की पूँछ हो अर्थात् हरिचन्दन जैसे सुगन्धित सरस लेप के लगाये जाने पर जिसकी देह छम-छम छमक रही थी।

जैसे तप्त तवे पर या गरम पात्र पर जल बिन्दु पड़ने से वह छम-छम आवाज करती हुई तत्क्षण सूख जाती है, उसी प्रकार मृगांकलेखा की देह पति जन्य वियोग से ऐसी तप गई थी कि उस पर सरस चन्दन के लेप करने से छम-छम की आवाज आती थी और सरस पंक अतिशीघ्र सूखकर वृद्ध वृक्ष की छाल की तरह फट जाता था।

स्वल्प जल में स्थित मछली की तरह वह विह्वल होकर तड़पती हुई विलाप कर रही थी। संचित किये हुये सूखे पत्रों से संस्तर बनाती हुई चित्रलेखा सखी के द्वारा बार-बार आश्वासित की जाती हुई वह मृगांकलेखा सागरचन्द्र के द्वारा अपने भवन में देखी गई।

तदनन्तर कुमार सागरचन्द्र की आज्ञा से धनमित्र ने भवन के अन्दर प्रवेश किया। उसे देखकर चित्रलेखा भय-वश कम्पित देहवाली हो गई अर्थात् भय से उसका सारा शरीर काँपने लगा।

वह भागती है, काँपती है एवं भयभीत होकर कहती है - रे विड् पुरुष! तू भीतर कैसे आया? शीघ्र ही पीछे लौट जा। एक क्षण भी मत ठहर, क्या नहीं जानता यहाँ शशिलेखा रहती हैं?

यह सागरचन्द्र का श्रेष्ठ भवन है, असतियों का निकेतन नहीं। आर्य कुमार का मिलाप नट, भट और विड् पुरुषों का कटि मर्दन कर उन्हें विश्राम कराता है अर्थात् उनकी ऐसी कमर तोड़ देते हैं कि ये कापुरुष विश्राम करते ही नजर आते हैं।

धनमित्र कहता है – हे मृगनयनी! हे दक्षा चित्रलेखा! तू नहीं जानती कि अनिन्द्य सुन्दर सागरचन्द्र यहाँ आकर ठहरे हुये हैं, क्योंकि सुरवाला ने जाकर सती की अनशन विधि को कुमार से कहा है। धनमित्र ने जो कुछ कहा था, वह सब चित्रलेखा ने अतिशीघ्र जाकर मृगांकलेखा को कह सुनाया। वह बोली – हे सखी! मेरा स्वामी यहाँ नहीं है फिर धनमित्र किसलिये साथ है अर्थात् यहाँ किसलिये आये हैं। मेरे प्रभु को अज्ञानी कहकर उनका परिहास कर रही हो। अरे! पाणिग्रहण करने वाला स्वामी तो बड़ा सयाना है।

तदनन्तर हर्ष और तन्द्रा से जिसकी आँखों से अश्रुओं का प्रवाह बह पड़ा ऐसे सागरचन्द्र ने उसके कक्ष में प्रवेश किया। उसका अश्रु–प्रवाह ऐसा लग रहा था मानों अमृत की धारा रूपी धन की बिन्दुओं की वृष्टि हो रही हो अथवा अपने प्रिय के मनरूपी समुद्र में पूर्ण चन्द्रमा ही प्रकट हुआ हो। उस प्रिया ने जैसे ही प्रिय को देखा उन्हें उत्तमांग से प्रणाम किया एवं प्रिय ने मृगांकलेखा को अपने अंर्ग में भर लिया और ऊपर उठाकर कहने लगा – आज की रात्रि धन्य है, जो मैंने अपनी पतिव्रता पत्नी को जीवित देखा।

हाय! मेरे कारण तेरा तन क्षीण हो गया। हे सुन्दरी! मुझ पापी को क्षमा कीजिये। चक्रेश्वरी के मुख से सारा वृत्तान्त सुनकर मैं अत्यन्त शंकित होता हुआ यहाँ आया हूँ। मृगांकलेखा कहती है–हे प्रिये! आपका कोई दोष नहीं है। यह तो चिरकालीन शुभाशुभ कर्मों का भण्डार है, जिससे जीव अपने आप ही सुख–दुःख भोगता है। हे स्वामिन्! कर्म के उदय में विकल्प क्या करना।

जैसे अपने पड़े के प्रति अति स्नेह के कारण महिषी के स्तनों में अधिक मात्रा में दुग्ध उत्पन्न हो जाता है किन्तु पामर दुष्ट कृषक लोग पाडे को दुग्धपान नहीं करने देते, क्योंकि पड़े का दूध पीना उनके विरुद्ध कार्य है अर्थात् पड़े के दूध पी लेने पर पामरों को पर्याप्त मात्रा में दूध नहीं मिलता।

पड़े और भैंस में जैसे परस्पर अधिक स्नेह होता है और वात्सल्यवशात् दुग्ध भी अधिक मात्रा में आने लगता है। इसी प्रकार पति और पत्नी में परस्पर प्रेम होता है जो क्रमश: परिस्थिति विशेष में बढ़ने लगता है किन्तु जैसे पामरजन पड़े को दूध नहीं पीने देते क्योंकि वह उनके विरुद्ध कार्य है, वैसे ही परस्पर बढ़ते प्रेम के बीच में पामरों की तरह अन्तराय कर्म का उदय उनमें प्रीति नहीं होने देता; क्योंकि भोगों की प्राप्ति भोगान्तराय कर्म के विरुद्ध है, अर्थात् वह जीव को सुख नहीं भोगने देता।

शुभ कर्म का उदय होने पर अनवरत शुभ पदार्थों का ही समागम होता है। अशुभ वस्तुओं का नहीं; जैसे कि बहुत सारी गाड़रों के समूह को देखकर भी बालक उनमें से केवल अपनी ही माँ का दूध पीता है अन्य का नहीं।

पृथ्वी पर जो नर–नारी निपुण होते हैं उन्हीं पर आपत्तियाँ तथा बाधाएँ आती हैं। ठीक ही तो है – राहु नभ मण्डल में तारागण को छोड़कर चन्द्रमा को ही पीड़ित करता है, उसे ही ग्रसता है।

निशा की समापन बेला पर कुमार अत्यन्त मधुर वचनों से कहने लगा – हे दृढ़ बाले! तू यहीं रहना, अब मैं देशान्तर को जाता हूँ।

थर थर काँपती हुई वह मृगांकलेखा बोली – हे नाथ! आपके इस वृत्तान्त (आपका आगमन और मेरे साथ समागम) को लोग नहीं जानते हैं। रति सम्बन्धी आपकी रुचि और आशा पूर्ण हुई और मेरा मासिक धर्म भी पूर्ण हुआ है अत: कहीं कुछ हो गया तो मेरे वचनों को कौन सुनेगा?

सास–बहु का वैर तो चिरकाल से प्रसिद्ध है। सभी लोग मेरी ही निन्दा करेंगे और हे प्रिये! आपके जाने के बाद पद्मा माता मुझे घर से निष्कासित कर देगीं।

हाय! कान्त!! आप प्रकट होकर जाइये। अन्य स्त्रियों से हँसते हुये कहिये – सती मृगांकलेखा से प्रिया जैसा स्नेह फूट पड़ा है अर्थात् स्नेह हो गया है। 'वह गर्भवती है' ऐसा मुझे स्वप्न में दिखलाई दिया है। कुमार बोला – मैं यहाँ गुप्त रूप से आया हूँ। मेरे प्रकट होने पर राजा कुपित हो जायेगा। 'यह मेरी नामांकित रत्नजड़ित मुद्रा है, इसे सभी जानते हैं' इसे रखिये ऐसा कहकर कुमार ने वह मुद्रा सती को सौंप दी। इधर कुमार सती को आश्वस्त कर चले गये, उधर मृगांकलेखा का मुख पीला पड़ने लगा। गर्भ चिन्ह प्रकट होने लगे।

उसका प्रमाद और उसकी लालसाएँ बढ़ने लगी। उदर पर पड़ने वाली त्रिवलियाँ भंग होने लगीं। भोजन अरुचिकर हो गया और उसके शिरोगभाग में पीड़ा होने लगी। उसके स्तनों के अग्र भाग/चुचुक दुर्जनों के दुर्भाग्य की तरह काले पड़ गये। उसका शरीर उज्ज्वल हो गया; मानों अखण्ड सुयश ही फैल गया हो। सात माह बीत जाने पर उसने स्वप्न में देखा, जैसे मेरे मुख में बाल–भानु प्रवेश कर रहा हो। दूसरे स्वप्न में उसने देखा मैं देव विमान में चढ़ गई हूँ और शीघ्र ही मेरा पतन हो गया है अर्थात् मैं नीचे गिर गई हूँ। निद्रा भंग होते ही वह हर्ष–विषाद से भर गई। जिनेन्द्र भगवान् का नाम स्मरण कर उसने दान दिया एवं मन–ही–मन में कर्म के फल का स्मरण करने लगी।

'सुर विमान में चढ़ना और गिरना' ये दोनों ही क्रमश: सुख और दु:ख के निमित्त कारण दिखलाई दे रहे हैं; सोचते ही उसका हृदय कमल काँपने लगा एवं चित्त चंचल हो गया। हा विधाता! मैं तेरे कार्य को नहीं जानती (तू क्या–क्या करेगा)। अब इस संसार में मेरा जन्म होता है तो पुरुष का ही जन्म हो, स्त्री का नहीं और वह सती दुष्कर्म निवारक, पापान्तक, पंच परमेष्ठी वाचक उत्तम मन्त्र को मन में स्थापित कर उसी का स्मरण करने लगी।

निश्चित ही कर्म का फल, कर्म बन्धानुसार उदय में आता है; क्योंकि चिर–संचित पूर्व जन्मों के पापों का संहरण नहीं होता।

कोई उत्तम कल्पवासी देव का जीव अपनी आयु पूर्ण कर वहाँ से चयकर शशिलेखा (मगांकलेखा) के उदर में अवतरित हुआ। दासी ने पुत्रवधू को सगर्भा देखा तो उसकी काया थर-थर काँपने लगी और शीघ्र ही उसी क्षण जाकर पद्मा सेठानी को कहने लगी।

मैं आपसे एक गुप्त बात कह रही हूँ। आपकी पुत्रवधू भारी बोझ वाली अर्थात् गर्भवती है। सुनते ही तत्क्षण उसने वहाँ जाकर देखा और देखते ही अतिशय रूपेण जल उठी। उसकी क्रोधाग्नि ऐसी भड़क उठी मानों किसी ने अग्नि में घृत डाल दिया हो। अत्यन्त दु:खित हो वह वहीं स्थित होकर दुर्वचन कहने लगी- हे कुल को कलंकित करने वाली निर्लज्ज! तूने मेरा मुख काला कर दिया, गोत्र का नाश कर दिया।

वह गुणगौरी सती मृगांकलेखा कहती है - हे अम्ब! आर्द्र देह वाले (मृगांकलेखा के प्रति कोमल भाव वाले) आपके पुत्र प्रच्छन्न रूप से मित्र सहित रात्रि में यहाँ आये थे और चिन्ह स्वरूप अपनी मुद्रा देकर गये थे। हे मात! मोतियों से जड़ित यह उनका कर कंगन देखो; जो वे मुझे देकर गये हैं। किंकर को भेजकर कुमार से पूछ लीजिये, अन्यथा पाने पर मैं पापिनी कुट्टनी स्त्री कहलाऊँगी और आप जो दण्ड देगी मुझे मंजूर होगा। यदि आप उचित समझें तो मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर देना।

सासू हँसी और पापयुक्त हो बोली - ओ पुंश्चलि! तू बहुत बहाने/उपाय जानती है, मेरा पुत्र तो तेरा नाम भी नहीं सुनता, सुनते ही शीघ्र छोड़ देगा। ओ धृष्टा! तू मुझसे छल-पर-छल क्यों कर रही है। यह तो बता तूने यह मुद्रा किस देश से बनवाई है। अरी! जिसने जाते हुये भी तेरा मुख नहीं देखा सो वह रात्रि में आकर तुझसे रति सम्बन्धी स्नेह करेगा?

जिस आवास को सहस्र किरणों वाला सूर्य भी नहीं जानता है और जिसका देव गुरु बृहस्पति भी मन से विचार नहीं कर सकते उस आवास में तू अचानक स्वैरिणी/व्यभिचारिणी कैसे हो गई? ओ स्वैरिणी! दोष पूर्ण वृत्तान्त को मत ढक, स्पष्ट कह।

हे दुष्टा! जा-जा यहाँ मत ठहर, जहाँ तेरी इच्छा हो वहाँ चली जा। हे मेरे पुत्र की कुलटा स्त्री! तू रक्त को दूषित करने वाली क्यों हुई।

इस प्रकार दुर्वचन कहती हुई पद्मा के द्वारा उसे परिवार से निष्कासित करने के लिये बार-बार कहा गया तथा मृगांकलेखा की अवहेलना करते हुये सखी चित्रलेखा सहित गृह से निकाल दिया।

पद्मा सेठानी ने रम्भा और धनसार श्रेष्ठी (मृगांकलेखा के माता-पिता) के निकट दासी भेजकर बीती हुई कथा कहलवा दी एवं इसे 'परीक्षा करके ही घर में रखना' यह सन्देश भी दे दिया।

सागरचन्द्र ने शंकित होकर इसका परित्याग कर दिया है; क्योंकि इसने पाप कर्म का आदर करके कुल को कलंकित किया है। इस नगरी में यदि यह रहती है तो अन्य स्त्रियाँ भी इसी भाँति अकृत्य करेगी, ऐसा जानकर इसे किसी जंगल में छोड़ दीजिये। जिससे दोनों कुलों की लाज बनी रहे।

श्रेष्ठ सती स्वर्ण के समान होती है जैसे सोने के कसे, घिसे और तपाये जाने पर वह अधिक दीप्ति देता है, लोग उसे सुरक्षित रखते हैं। ऐसी ही स्थिति सतियों की होती है किन्तु असतियाँ पीतल की आढ़क/आढ़की (अनाज नापने का पाँच सेर का एक पात्र विशेष) के समान होती हैं जिन्हें नीच पुरुष भी जहाँ तहाँ प्राप्त कर लेते हैं।

अपने प्रिय की माता/सासू के वचन श्रवण कर पुत्रवधू मृगांकलेखा समता को धारण कर वहाँ से वैसे ही निकल गई जैसे चन्द्रमा की ज्योत्सना निकल रही हो। वह शीघ्र ही अपने पिता के सदन को प्राप्त हुई। वहाँ भी माता-पिता ने उसे निर्ममत्व भाव से छोड़ दिया। पाप की राशि स्वरूप सासू ने जो कुछ कहा उस सारी घटना को चित्त में स्मरण कर रही थी कि उसी बीच धनसार का श्रेष्ठ बुद्धिवाला पुत्र, मृगांकलेखा का भ्राता वहाँ पहुँचा। जिसका धनञ्जय नाम था, जो धर्म की मूर्ति थी। वह अपने पिता के समक्ष इस प्रकार श्रेष्ठ वचन कहने लगा।

पति का न स्नेह होने से सासू ने इसका तिरस्कार कर दिया और पुत्री को अपने पिता के घर में भी स्थान नहीं है? यह सागरचन्द्र की ही पत्नी है ऐसा जब तक आपका संशय दूर नहीं हो जाता तब तक पुत्री को अपने घर पर रखिये। दासी के वचनों को सत्य मत मानिये। हे भद्र! दुखिया को और अधिक दुःखी मत कीजिये। पद्मा सासू के वचनों पर मोहित मत होइये। (भ्राता की सांत्वना पाकर मृगांकलेखा कहने लगी) हे तात! मेरी सासू के समान क्षुद्र/तुच्छ मत होइये। मेरे पति के हाथ की मुद्रा को देखिये।

किंकर को भेजकर पत्र मँगवा लीजिये। जिससे आपका संशय शीघ्र ही दूर हो जाए। हाय! सासू ने घर से निकाल दिया और पिता के घर भी स्थान नहीं है। अब मैं हृदय को फोड़कर निश्चित ही मर जाऊँगी। करुणासागर! हे दया निधान! मेरे वचनों पर विश्वास कीजिये। इतना कहकर उसने मौन धारण कर लिया। इसी बीच कोतवाल वहाँ आ पहुँचा।

मैं 'पद्मा' के द्वारा भेजा गया यहाँ आया हूँ। आपकी पुत्री पाप कर्म को नहीं जानती। हे श्रेष्ठी! मैं न वह करूँगा, न वह कहूँगा, जिससे आप कुपित हों। चाहे मुझे नरक भूमि में क्यों ना जाना पड़े। यह मृगांकलेखा आपके द्वारा रखने योग्य नहीं है। इसे तत्काल ही वन में छोड़ दीजिये जिससे लोग न हँसे। सेठ धनसार इस निस्सार वार्त्ता को सुनकर क्रोध से भर गया, उसकी कान्ति फीकी पड़ गई, वे उदास हो गये, अपने पुत्र के श्रेष्ठ वचनों को भी नहीं सुना और पद्मा की दासी ने जो कुछ कहा। उस पर अच्छी तरह विश्वास कर लिया। पुत्री को खोटे भिक्षुओं और भिखारियों की भाँति निकालकर शीघ्र ही कपाटों को ढक लिया अर्थात् बन्द कर दिया।

पद्मा के आदेशानुसार झरते हुये नेत्रों तथा भरे हुये हृदय से कोतवाल चल पड़ा। शशिलेखा के साथ उसके उपकारार्थ चित्रलेखा ने भी वन की ओर गमन कर दिया।

लज्जा ही स्त्री का गुण है ऐसा विचार करती हुई वह उत्तम सुन्दरी अश्रु छोड़ती हुई वहाँ से चली गई। उसने सुख-दुःख की हेतु भूत घटनाओं को कानों से श्रवण कर मन में साम्य भाव को धारण कर लिया।

कोतवाल कहता है – हे सती! सुनिये; विकल्प और तन्द्रा को छोड़िये और आप उस मार्ग को पकड़कर चली जाइये जहाँ सागरचन्द्र स्थित हैं। वह सती नगर और गृह का स्नेह छोड़कर वन मार्ग की ओर चल पड़ी और रूदन करती हुई वृक्ष, लताओं और पक्षियों से पूछती जाती हैं।

हे विधाता! तेरे द्वारा रचित इस दु:ख संविधान से मैं हताश हूँ। तूने मुझे जन्म भर के लिये जीत लिया। मुझ पापिनी का ऐसा ही पाप कर्म का उदय है जो समुद्ररूपी पति की लहर होकर भी अतृप्त हूँ।

उस नारी के इस प्रकार रुदन करने पर जलचर जीव रोने लगे, नभमण्डल में नभचारी रोने लगे। भीमाटवी में उस दुखिया के दु:ख से सिंहादि क्रूर प्राणी भी रोने लगे एवं जंगल का सारा पृथ्वी मण्डल काँपने लगा।

अपने बहुत सारे बैलों पर विपुल धन लादकर कोई चित्रगुप्त नामक सार्थवाह वहाँ आ पहुँचा। उस सार्थवाह की पत्नी ने मृगांकलेखा को कुलदेवी के समान समझा और उस दुखिया के दु:ख से द्रवित होकर सार्थवाह ने उससे कहा – हे भद्रे! करुणा जनक उच्च स्वर में विलाप क्यों कर रही हो? कहो ना तुम किसकी पुत्री और किसकी पुत्रवधू हो? हे विशाल नेत्रे! तेरा पति कौन है? तुम्हारा आवास कहाँ है और कहाँ जा रही हो? इस जंगल में सिंह, हाथी, जंगली सूअर एवं तस्करों का समूह भरा पड़ा है तथा भय से त्रसित भागता हुआ मृगों का समुदाय भरा हुआ है।

सार्थवाह के वचन सुनकर चित्रलेखा ने कहा – लिखी हुई कर्म रेखा को कौन मिटा सकता है? हे मेरे भ्राता! मैं वहीं जा रही हूँ जहाँ अवन्तिसेन भूपाल की छावनी है। सार्थवाह बोला – पुत्री! भय मत करो और मेरे परिजनों में अपने चित्त को लगाओ। हम लोगों का गमन भी कटक की ओर ही हो रहा है। यदि भाग्य में लिखा होगा तो निश्चित ही लाभ होगा। सार्थवाह के वचनों को सुनकर चित्रलेखा ने सती शशिलेखा को कहा – आर्तध्यान छोड़कर मन को धर्मध्यान में स्थापित करो।

वह सती मृगांकलेखा चित्रगुप्त के परिजनों में मन लगाती हुई मार्ग में दिन व्यतीत करने लगी। सार्थवाहाधिपति की पत्नी ने उसकी बड़ी भक्ति की और बड़े ही ममत्व भाव से सती को अपनी पुत्री के समान मानने लगी। इधर सती शुद्ध भाव से अपना समय बिता रही थी, उधर इसी बीच एक दूसरी ही घटना घटित हो गई। एक दिन चित्रलेखा अन्धेरे में समीप के ही सघन वन में ईंधन और जल लेने हेतु गई थी कि वहीं पर दूर से ही भिल्लराज द्वारा देखी गई। जो उसे अतिशीघ्र ही पकड़कर निर्विघ्न रूप से अपने घर ले गया।

सर्वत्र अच्छी तरह खोज लेने पर चित्रलेखा किसी तरह प्राप्त नहीं हुई जैसे कि दिन में ध्रुवतारा दिखलाई नहीं देता। जब मृगांकलेखा ने अपनी सखी चित्रलेखा को अपने स्थान पर नहीं पाया तो उसे पुन: एक नया दु:ख उत्पन्न हो गया। मृगांकलेखा रोने लगी – हा चित्रलेखा! मैंने तुझे कभी अपने शरीर से भिन्न नहीं माना। हा! मुझ पापिनी को अकेला छोड़कर चली गई। कष्ट भी किसी को किंचित् मात्र भी अपनी

इच्छानुसार नहीं मिलते। हाय! सारे ही परिजन-पुरजन मुझसे पराङ्मुख हो गये। हा! महादुखिया तुझे ही विशेष रूपेण स्मरण करती हूँ।

हाय! अब मैं अपनी गुप्त मन्त्रणा अपने हृदय की बात किससे प्रकट करूँगी। हा! मैं नहीं जानती थी कि स्वामी मुझसे रूठ जायेंगे। हाय रे कर्म! तूने मुझे मेरी माता से भी अलग कर दिया। माता के अतिरिक्त शिशु को किसकी छाया किसकी शरण है? इस प्रकार विलाप करती हुई उसे सार्थवाहाधिपति ने ढाढ़स बँधाया - पुत्री! जो होनहार है वह होकर ही रहती है।

नारायण, बलभद्र, चक्रवर्ती, चन्द्र, सूर्य, देव, राजा, पण्डित-प्रवर, गणधर, ऋषीश्वर एवं तत्त्वज्ञानी सभी कर्मोदय से निश्चित ही इस पृथ्वी पर नाचते हैं।

(सार्थवाह मृगांकलेखा को समझाता है) हे पुत्री! अनेक जन्मों में संचित कर्म भोगे बिना क्षीण नहीं होते हैं। चतुर्गति रूप सुख-दु:ख तो पुण्य पाप के फल हैं। ये सब पंचम गति/सिद्ध गति बिना नहीं छूटते।

लाभ और हानि का महत्त्व तो बड़े लोगों को ही होता है, न्यून या क्षुद्र, दीन-हीनों के साथ नहीं? क्योंकि महिमा यानी उदय और उपराग अर्थात् ग्रहण, सूर्य और चन्द्र का ही होता है, ताराओं का नहीं।

इस प्रकार आश्वस्त की गई सती के सात दिन बीत गये। इस बीच वह सार्थ काफिला लाड देश के वन प्रदेश में आ पहुँचा। उस वन में उन्हें तस्करों का समूह मिला। अन्धेरी रात्रि में उन दोनों का (अर्थ समूह एवं तस्कर समूह) भयानक युद्ध हुआ। लुटेरे सार्थ प्रमुख चित्रगुप्त को मारकर शीघ्र ही जंगली आश्रय स्थलों को प्राप्त कर इधर-उधर बिखर गये। भय से काँपती वह सती अकेली ही अन्धकार युक्त रात्रि में वट वृक्ष की ओट में छिप गई। वह भ्रमिता चार दिन एवं चार रात्रि तक गहन, दुर्गम विपत्ती में जिनेन्द्र प्रभु के गुणों का आधार लेकर भटकती रही।

वह अटवी इतनी दुर्ग्राह्य थी कि वृक्षों की सघनता एवं हस्तियों से विदारित वृक्षों की छिन्न-भिन्न शाखाओं के कारण जहाँ नभमणि सूर्य भी दिखलाई नहीं देता था। जहाँ शार्दूलों द्वारा गन्धहस्ती जाति के हाथियों के मारे जाने से पृथ्वीमण्डल गज मुक्ताओं से भरा पड़ा था। जहाँ हाथियों को निगलते हुये अजगर दिखाई दे रहे थे। उस कान्तार प्रदेश में लम्बी-लम्बी आकृति वाले जंगली भैंसे घूम रहे थे। जहाँ डरावनी दाढ़ों वाले शूकर घुरघुरा रहे थे तथा उपवनों में कृष्ण वर्ण के उत्तम मृग तृण चरते हुये स्थित थे। जहाँ समीपवर्ती उद्यान का विस्तार था, वहीं रात्रि में वह नारी ठहर गई।

सिंह गर्जना से वह बाला क्षण भर को भयभीत हो उठी और इसी बीच उसने पुत्र को जन्म दिया। जिस अन्धकार पूर्ण स्थान पर वह स्थित थी वह स्थान प्रकाश से ऐसा भर गया मानों उदयाचल पर बालसूर्य ही उदित हुआ हो अथवा जैसे कुलरूपी नभमण्डल में चन्द्रमा उदित हुआ हो। पुत्र के जन्म पर वह बाला सुखी-दु:खी होती हुई आनन्दित हुई।

उत्साहपूर्वक अपने शिशु को गोद में उठाकर वह बेचारी मुग्धा रोने लगी। हे वत्स! तू तो निर्दोष है किन्तु इस जन्म में तू मुझ अभागिनी की कुक्षि में आया है।

हे पुत्र! यदि तेरे पिता आज यहाँ होते तो निश्चित ही नगर परिजनों के साथ, देव, मनुष्य, विद्याधर तथा सज्जनों के मन को हरण करने वाला उत्सव करते। इत्यादि वचनों द्वारा अतिशय करुण हृदय से विलाप करती हुई जहाँ वह मृगांकलेखा स्थित थी, वहीं पर सहसा वनदेवी प्रकट हुई और सती को इस प्रकार आश्वासित करने लगी।

हे सुन्दरी! सूने जंगल में मत रो। रोने से कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। पूर्वकृत दुष्कृत्य तो निश्चित रूपेण सभी भय जीवों के साथ लगे होते हैं। वनदेवी कहती है – हे बाले! मेरे वचन सुन, तेरा प्रिय वल्लभ दानशाला में मिलेगा। हे निपुणा! हे मृगनयनी! कायर मत हो। तू अपने भर्तार सहित पुत्र की विशाल लक्ष्मी को भोगेगी। इस प्रकार कहकर वह देवी अपने निवास पर चली गई और उधर सागरचन्द्र की पत्नी आशान्वित हो गई। माता मृगांकलेखा ने शिशु को कण्ठ से लगा लिया, पश्चात् उत्तम वस्त्र में उस गुणवन्त बालक को आच्छादित/वेष्टित कर जहाँ मन्दिर के कोण में छाया थी; वहाँ रख दिया। उसने निकट ही एक पद्म सरोवर देखा और त्वरा गति से शरीर प्रक्षालनार्थ वहाँ पहुँच गई।

तदनन्तर क्षणैक पश्चात् माँस गन्ध के लोभी एवं भूखे श्वान के द्वारा वह बालक जाना गया। कुत्ते ने बालक को मुख में दबा लिया। उस शिशु का सिर कुत्ते के दन्तरूपी यन्त्र के बीच पड़ गया। उस ग्रामशार्दूल के द्वारा वह पोटली फाड़ने के लिये सुमनसपुर के निकट ले जाई गई। वहाँ पर वैश्रवण नामक वणिकाधिपति अपनी धनवती नामक भार्या के साथ निवास करता था।

वह श्रेष्ठ विचक्षण ज्ञानी, कलाविज्ञ, सुजान श्रेष्ठी क्रीड़ा कर समय बिता रहा था। जिसकी करोड़ों श्वेत ध्वजाओं का अन्त नहीं था ऐसा वह वैश्रवण किंकरों सहित नगर के बाहर सुखपूर्वक रम रहा था। श्वान ने उस वस्त्र की पोटली को फाड़ने के लिये पृथ्वी पर रखा और शीघ्र ही दाँतों से पोटली को खोलने लगा। बालक रोने लगा उसका आक्रन्दन सुनकर सेठ वैश्रवण ने कुत्ते को ललकारा और ले जाते हुये एक शिशु को देखा। शिशु को किसी प्रकार की वेदना नहीं हुई। सच है शुभ कर्मोदय से किसे सुख नहीं होता।

वह सम्यग्दृष्टि सेठ बालक को लेकर अपने घर आया और गृह के भीतर जहाँ सेठानी सो रही थी वहाँ पुत्र को ले आया।

श्रेष्ठिवर्य बोले–हे चन्द्रवदनी! सुनिये इस सुन्दर शिशु को लीजिये। संसार में धर्म से ही ऐसा उत्तम जन्म मिलता है अत: इस पुत्र का अति सुन्दर जन्मोत्सव कीजिये।

उस प्राप्त नवीन कुमार को उसके रखने योग्य स्थान अर्थात् प्रसूति गृह में स्थापित करके वैश्रवण वणिक ने जन–मन को आश्चर्य उत्पन्न करने वाली जन्मोत्सव सम्बन्धी बधाइयाँ करवायी।

बारह दिन बीत जाने पर वैश्रवण और धनवती ने विधिपूर्वक नामकरण की सर्व क्रियाएँ कीं और इन दोनों ने अति मनोहर 'सुरेन्द्रदत्त' नामकरण किया।

उस बालक के प्रभाव से वह वैश्रवण उसी दिन से वास्तविक वैश्रवण अर्थात् कुबेर के समान धनपति हो गया और धनवती भी सचमुच में 'धन्यवती' अर्थात् स्थिर योनि वाली गर्भवती हो गई।

कर्म की विडम्बना तो देखो। जिस जननी ने बालक को जन्म दिया वह दुर्ग्राह्य-अटवी में रो रही है और जिस शिशु ने जन्म लिया उसके प्रसूति गृह में युवतियों द्वारा जन्मोत्सव सम्बन्धी गीत/सोहर गाये जा रहे हैं।

कालक्रम से उस धनवती ने नरदेव तथा धनद नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। वे दोनों क्रमश: कामदेव के क्रीड़ा पर्वत स्वरूप सुन्दर तरुणावस्था को प्राप्त हुये।

सुरेन्द्रनाथ तो ऐसा लगता था मानों कामदेव ही हो। उसके पिता वैश्रवण ने आनन्दपूर्वक मृगनयनी, चतुरा, गजगामिनी, कंचन-वदनी, बत्तीस कन्याओं के साथ उसका विवाह किया। वह श्रेष्ठ कुमार सारभूत देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति करता हुआ विषय सम्बन्धी सुखों को भोगने लगा। विज्ञान, कला और कौशल में प्रवीण वह सुरेन्द्रदत्त अपने वैभव के द्वारा दीन-हीन अनाथों का पोषण करने लगा।

इधर उसकी माता मृगांकलेखा अपने तन को प्रक्षालित कर वहाँ आई जहाँ बालक को छोड़ गई थी। जब वहाँ अपने सुकुमार बालक को न देखा और न ही पाया है तो उसका हृदय आश्चर्य से घबरा गया है। चारों दिशाओं में जहाँ 'धव' के वृक्ष थे ऐसी वन भूमि में वह दौड़ती रही परन्तु उसे कहीं भी बालक दिखलाई नहीं दिया; तब वह मृगनयनी क्षण भर में मूर्च्छित/चैतन्यहीन हो गिर पड़ी और दूसरे ही क्षण वन पवन के द्वारा स्वयं चैतन्य हो गई। इस स्थिति में वह ऐसी लगती थी मानों वज्र से आहत युवती सजल नेत्रों से निहार रही हो। हा देव! मैं ऐसे निविड़, दुर्ग्राह्य वन में पड़ी हूँ जहाँ न मुझे कोई देखता है, न कोई मुझे जानता है।

वह क्षण में मूर्च्छित हो जाती है, क्षण में चेतना युक्त हो जाती है और क्षण में सखी चित्रलेखा को पुकारने लगती है। विलाप करती हुई वह बार-बार धरती पर गिर पड़ती है। आक्रन्दन करती हुई अपनी स्त्री पर्याय की निन्दा करती है। अत्यन्त उच्च स्वर में दहाड़ मारती हुई वह नारी अश्रुरूपी जल-प्रवाह से अपना वक्षस्थल धोती है। उसके नेत्रों से झरता हुआ जल-प्रवाह ऐसा लगता है मानों शरद ऋतु के मेघ झर रहे हों। हा! ऐसे दम्पत्ति सम्बन्धी रति नेह को धिक्कार हो, धिक्कार हो। हे पुत्र! तेरा शरीर मत्स्य, पद्म, श्रीवत्स आदि प्रमुख और विशाल लक्षणों से सुन्दर है। हा! तेरी चम्पक वर्णी सुवर्ण देह ऊर्ध्व रेखाओं और व्यंजनों से विभूषित है। हाय वत्स! तू किस नक्षत्र में उत्पन्न हुआ था। तुझे देखकर मेरे प्रिय विरह जन्य दु:ख नष्ट हो गये।

प्रिय की माता अर्थात् सासू ने मेरा अपमान किया, घर से निकाल दिया। पक्ष में पिता और माता ने मेरा अपमान किया अर्थात् घर में नहीं रखा। मैंने सखी का वियोग सहा। हाय विधाता! मैंने ऐसा क्या निदान किया था जिसने तूने पति-पुत्र के सम्बन्ध को भी निवार दिया अर्थात् दोनों से मुझे पृथक् कर दिया।

रे हृदय! मैं तुझे अञ्जलि बाँधकर प्रणाम करती हूँ, तू ऐसा है जैसे खौलते हुये जल में फेंकी गई लवण डली तड़-तड़कर फूट जाती है।

इस प्रकार उच्च स्वर में विलाप करती हुई उस सती के आक्रन्दन को गोप पत्नी ललिता नामक ग्वालिनी ने सुना। वह करुणावती सुजान स्त्री सती को अपने घर ले गई। उसने धनसार की दुहिता को धैर्य बँधाया और वह विनीत रमणी सती से नैसर्गिक प्रेम करने लगी। हे पुत्री! कोई सदा सुखी नहीं रहता। संसार में सूर्य और चन्द्र की अवस्थाएँ घटती रहती हैं। जिस प्रकार यौवन के साथ बुढ़ापा और जन्म के साथ मरण सुनिश्चित है उसी तरह सुखी जन नियम से दु:खी होते हैं।

ऐसा सिद्धान्त है 'संयोग और वियोग दोनों एक साथ रहते हैं।' ऐसा कौन सा गृहस्थ है जिसे आपत्तियाँ ग्रहण न करती हों। दम्पत्ति का संयोग वियोग को तथा लक्ष्मी का आस्पददारिद्य शक्ति को उत्पन्न करता है, इसलिये मन में विकल्प नहीं करना चाहिये क्योंकि लक्ष्मी तो स्वप्न में दिखाई देती है अर्थात् स्वप्नवत् अस्थिर है। उस पर क्या दर्प करना। जैसे ऐश्वर्यवान्, दरिद्री, राजा और रंक यदि ये कुत्सित शील वाले हैं तो इनका आदर पतिव्रता के लिये कलंक की बात है उसी प्रकार चपल लक्ष्मी का आदर बुद्धिमानों को अशोभनीय बात है। कर्माधीन सज्जनजन भी संसार में सदैव नट की तरह नाचते रहते हैं। कर्मोदय से किस जीव का मान मलिन नहीं होता?

मन-ही-मन चन्द्रलेखा विचार करती है, क्या इस बेचारी की यह अपनी ही बुद्धि है। अपने दु:ख को छोड़कर वह सती कहती है-हे भद्रे! सुनो, आपकी बुद्धि तो उपमातीत है पर आपके वचन पीड़ा युक्त क्यों है? वह स्त्री कहती है-मुझे गोप वधू जानिये! भद्दलपुर नगरी मेरा निवास स्थान है। वहाँ पर बसन्त नामक एक चतुर सेठ है जो षट्दर्शन का उत्तराधिकारी होने से नित्य ही दान देता है। उत्तम शील वाला वह श्रेष्ठी मेरा धर्म भ्राता है, उसकी मधुरी नाम की भार्या है। जिसकी गमन लीला गज के समान है अर्थात् वह गजगामिनी है।

उसके भवन में एक साधु आया। मुझे भी उनके दर्शन का धर्म लाभ हुआ। हे पुत्री! उसके दया धर्म युक्त मनोहर वचनों को श्रवण कर मैंने पाप कर्म छोड़ दिया। गोप वधू के इस वृत्तान्त को सुनकर मृगांकलेखा को सन्तोष हुआ। उसने गोप वधू के दयाभाव को जान लिया और वह प्रच्छन्न वेश में उस गोप वधू ललिता के घर पर ठहर गई यह कहते हुये कि मैं सदैव विदेशों में भ्रमण करने वाली बनजारिन हूँ। मृगांकलेखा सुखी होकर धर्म ध्यानपूर्वक वहाँ निवास कर रही थी, इसी बीच वह बसन्त सेठ वहाँ पर आया।

बसन्त वणिक सदा की भाँति अपनी धर्म बहिन के घर गोकुल निरीक्षण के लिये आया। वहाँ पर रूप की राशि मृगांकलेखा को देखते ही उसका मन पापयुक्त हो गया अर्थात् वह मृगांकलेखा पर मोहित हो गया।

मृगांकलेखा को देखकर सेठ ने अपना शिर धुन लिया, ''ओह इसका शरीर सुन्दर है, कटि प्रदेश क्षीण है। इसने अपनी मनहर शोभा से देवों को भी जीत लिया है यह अद्भुत रूप वाली नारी राजरानी के समान है''।

वणिक श्रेष्ठ ललिता गोपिका से कहता है – स्वर्ण देह वाली यह स्त्री कौन है? गोपी कहती है – यह बनजारिणी है और मेरी धर्मपुत्री है।

सेठ बोला – तुझे कोई डर नहीं है जो इस सुन्दरी को घर में रखे है? राजा इस नूतन स्त्री के विषय में सुनेगा तो इसे अपने राजभवन में ले जायेगा।

परस्त्री में आसक्त चित्त क्या-क्या मायाचार नहीं करता? वह सती निष्कलंक शीलवती है जो परपुरुष का नाम भी नहीं सुनती। आश्चर्यान्वित हो श्रेष्ठी मन में विचार करने लगा – नित्य ही मेरे गृह मन्दिर रहती हुये यह बाला अवश्य ही क्रम-क्रम से मेरे अधीन हो जायेगी इसमें कोई सन्देह नहीं है।

अथानन्तर ललिता बसन्त से कहती है – असती के लिये तो अनन्त आवास स्थान होते हैं। यह तो महासती है, परम विदुषी है, इसे अपने घर में आवास देकर क्या करोगे। जो अज्ञानी पुरुष इन सतियों का मर्म/रहस्य नहीं जानते वे ही इनकी अपेक्षा रखते हैं। बसन्त सेठ कहता है – मेरे घर को चन्द्र, नभमणि सूर्य तथा ज्योत्सना का पूर कोई भी नहीं जानता। जैसे यह नारी आपके घर में सुखपूर्वक अवस्थित है, उसी तरह मैं भी इसे अपने घर में रखूँगा।

वणिक के वचन सुनकर ग्वालिन ने सौभाग्य को करने वाली मृगांकलेखा को उसे सौंप दिया। वह गोप वधू स्वयं सुन्दरी सहित सेठ के आवास पर आई तथा मृगांकलेखा को उसके एकान्त भवन में इस प्रकार गुप्त रीति से रखा, जिससे सेठ की पत्नी भी उसे न जान सकी। सेठ मृगांकलेखा से बोला – हे भव्ये! तुझे बाहर निकलने की कोई आवश्यकता नहीं है, अपने करने योग्य सारे दैनिक कार्य इसी स्थान पर करना। वणिक के महल में पुण्य की राशि उस सुन्दर नारी को रहते हुये पाँच, सात, दस अर्थात् बाईस दिन बीत गये।

एक दिन अर्द्धरात्रि में पाप युक्त हो वह सेठ महल के शिखर पर अचानक ही चढ़ आया और जैसे ही उसने अपने प्रिय समूह को देखा वह भय से काँप गया, उसकी हृदय गति, श्वांस और बोल रुक गये। शिखर में छिद्र कर नीचे उतरते हुये उसने अपना मस्तक फोड़कर प्राण त्याग दिये। धमाका यानी धम-धम की आवाज सुनकर सेठानी वहाँ आई और देखते ही उसने शीघ्र ही जानलिया कि सेठ प्राण रहित हो गया।

रूप की राशि उस निर्दोष सती को देखकर सेठानी भयभीत हो गई। वह सोचने लगी – राजा निश्चित ही दण्ड देगा अथवा शिरच्छेद करेगा, न जाने क्या गति होगी?

रात्रि मैं विश्राम के समय पापी सेठ पाप के फलस्वरूप यम के मुख को प्राप्त हुआ। पापी जीव सहसा ही अनर्थ समूह को प्राप्त करते हैं इसमें आश्चर्य ही क्या है?

शरद्चन्द्रवत् निर्मल और निष्कलंक कीर्ति ने मृगांकलेखा को सर्वत्र विस्तरित कर दिया। सच है शील से क्या-क्या सिद्ध नहीं होता?

सेठानी ने अर्द्धरात्रि में ही सुन्दरी को अपने भवन से निकालकर गहन जंगल में छुड़वा दिया। वह मन में साहस धारण कर जिनेन्द्र प्रभु का स्मरण करती हुई अकेली ही चल पड़ी।

बसन्त सेठ की पत्नी रोने लगी और अर्द्धरात्रि में ही अतिशीघ्र संकोचपूर्वक संकटकालीन आवाज द्वारा अर्थात् धाड़ मारकर परिजनों को पुकारने लगी। ''हे नाथ! हे नाथ!! हाय स्वामी मुझे अनाथ करके आप कहाँ चले गये'' इत्यादि वचनों द्वारा आक्रन्दन करती है। पति के मर जाने पर वह रोती है, विसूरती है परन्तु उसकी मर्मान्तक पीड़ा को कोई नहीं जानता है, अथवा उसके पति की मृत्यु के रहस्य को किसी ने नहीं जाना। सभी सज्जन पुरुषों ने मिलकर सेठ का अन्तिम संस्कार कर उसके शरीर को जलांजलि दी और शोक का परिहार कर अपने-अपने कार्यों में लग गये; सच है संसार में कौन मनुष्य नष्ट नहीं होता।

इधर गोकुल की ओर जाती हुई मृगांकलेखा मार्ग भूल गई। एक दृढ़ कवच वाले वट वृक्ष के नीचे बैठ गई और उसने वहीं स्थित रहकर शेष अन्धेरी रात्रि बिता दी। अपने कर्मों का स्वरूप निरूपण करने के लिये अर्थात् अपना दुःख प्रकट करने के लिये उसके पास कोई नहीं था। जब वह पुनः चलने लगी, तब वहाँ उसका कोई साथी नहीं था। वह मतिरेख नामक तपस्वी के मठ के निकट आई और वहीं आश्रम में एक क्षण के लिये विश्राम हेतु ठहर गई। करुण रस युत स्वर में उस तपस्वी ने कहा - हे पुत्री! तेरे साथ कोई नहीं है?

वह भामिनी कहने लगी - हे तात! मेरी बात सुनो, मैं कर्म से विडम्बित हूँ। जिस दिशा की ओर मार्ग गया है वही मेरा नगर/ग्राम है। जहाँ ग्वालों का धाम है मैं उसी दिशा में जा रही हूँ। मैं गोप वधू हूँ, वन में मार्ग भूल गई हूँ। मैंने सारी रात्रि सघन तरुवरों के नीचे व्यतीत की है। हे सुन्दरी! यह सामने जो दिखलाई पड़ रहा है, वह मन्दिरपुर नगर है जो ऐसा लगता है मानों शरद् ऋतु का मेघ हो। तपस्वी के ऐसे वचन आकर्ण्य कर उस जाती हुई सती ने प्रतोली में प्रवेश किया।

''उस ग्राम स्वामी के किंकर पुरुष जो हाथों में तलवार लिये थे'' के द्वारा वह सुन्दरी पकड़ ली गई। दुसाध्य बन्दीजनों के मध्य घिरी हुई वह सुन्दरी पाप के क्षेत्र स्वरूप चण्डी मन्दिर में ले जाई गई।

वहाँ पर पहले से ही अनुपम रूपवाली नव नारियाँ तथा कामदेव के समान दस सुभट उपस्थित थे। वे सब मृगांकलेखा को देखकर कम्पित देह वाले हो गये अर्थात् काँप गये; अब जीवन कैसे बचेगा? कहकर आक्रन्दन करने लगे।

चन्द्रलेखा ने सारी घटना सुनी। एक स्त्री कहने लगी - सुन्दर नामक राजा की पत्नी पुत्र जन्म पर पाँच युगल अर्थात् दस पुरुष एवं दस स्त्रियों की बलि देना चाहती है।

अपना मरण जानकर सब रो रहे हैं; क्योंकि अभी तक हम लोग उन्नीस थे, तेरे आने से पूरे बीस हो गये हैं अतः तत्काल ही सबकी बलि दी जायेगी। मैं अपनी बुद्धि बल रूपी उपाय के द्वारा सकल प्राणियों को छुड़वाती हूँ। आप सभी मौनपूर्वक धैर्य धारण कीजिये। श्री अरिहन्त भगवान् ही सहायक हैं। शशिलेखा के ऐसे वचनों को सुनकर समस्त नर-नारी आनन्दित हुये। वे आत्म धर्म का विचार करते हुये भित्ति चित्र की भाँति स्थित हो गये।

तदनन्तर वे सभी वध के समय चण्डी भवन में ले जाये गये। सुन्दर राजा बोला – जीवन के अतिरिक्त दिये जाने वाले वरदान को ग्रहण करो। दसों पुरुष और दसों नारियाँ देवी के सम्मुख वध के लिये बैठाये गये। उन्हें जीवनदान को छोड़कर कुल धर्म की शिक्षा दी जाने लगी।

कहा भी है –

कम्पित शरीर वाले जीवों को एवं निपतित जीवों में से एक जीव को छोड़कर शेष जीवों की बलि देनी चाहिये; यही कुल धर्म, कुल शास्त्र का सिद्धान्त है।

जो अपने जीवन के लिये अम्मा देवी के लिये अपना राज्य भी छोड़ देता है, उसका घात करने में पाप कहाँ? वह तो अन्य दानों के द्वारा दूर हो जाता है।

सुमेरु पर्वत के बराबर स्वर्ण का दान करने से अथवा अन्य धन–धान्य की करोड़ों ढेरियाँ/राशियाँ दान देने पर भी इन दानों के द्वारा एक जीव के वध से होने वाला पाप नहीं छूटता।

इस प्रकार विचार करते हुये राजा के द्वारा कहे गये पुनरुक्त वचनों के प्रति भीत मन वाले बन्दीजनों ने कुछ भी नहीं कहा।

राजा के इस प्रकार विचार करते हुये बार–बार कहे जाने पर उन बन्दीजनों ने कुछ भी नहीं कहा और मौन व्रत धारण कर मृगांकलेखा के सामने खड़े हो गये।

भयभीत बन्दीजनों ने राजा के उपर्युक्त विरोधी वचनों को ''एक ओर तो राजा कह रहा है कि कम्पित देह, निपतित में से एक को छोड़कर अन्य जीवों की बलि देना चाहिये यही कुल धर्म और कुल समय है; दूसरी ओर सुमेरु पर्वत बराबर स्वर्णादिक दान से एक जीव के वध से होने वाला पाप नहीं छूट सकता'', सुनकर सभी निरुत्तर रहे कि इस जड़मति राजा को कौन और कैसे समझाये?

मृगांकलेखा नृपति से उनके द्वारा दिया गया वरदान माँगती है – हे अवनिपति! कृपा कीजिये। इन बन्दीजनों को छोड़ दीजिये। इससे लोक में आपकी कीर्ति विस्तरित होगी तथा सत्पुरुषों का यही एक श्रेष्ठ दान है।

राजा के द्वारा स्वीकृत मृगांकलेखा कहती है – माता के इस बलि कार्य हेतु चण्डीदेवी के समक्ष पहले मुझ अकेली को मारिये।

राजा बोला – इसमें क्या विशेषता है। पहले मरो या बाद में? वह बोली – मैं पहले मारी जाऊँगी तो अपनी आँखों से इन प्राणियों को मरते हुये नहीं देखूँगी।

हे नरेश! आँखों से देखा जाने वाला पाप कानों से सुने जाने वाले पाप की अपेक्षा अधिक होता है। यदि इन जीवों के वध होने से पूर्व मैं मारी जाऊँगी तो लोक में यह कार्य श्रेष्ठ होगा।

जहाँ जीवों का वध हो रहा है वहाँ मैं ठहरने में भी असमर्थ हूँ, तब राजा के द्वारा दिये जाने वाले श्रेष्ठ

द्रव्य अथवा वर से क्या प्रयोजन? जो स्थावर एकेन्द्रिय जीवों पर अनुकम्पा करता है सो क्या वह त्रस जीवों का वध देख सकता है? कदापि नहीं।

तब सुन्दर मति एवं सुन्दर नाम वाला भूपाल बोला – हे देवी! जब तेरी ऐसी दया युक्त बुद्धि है तो तू जा। तू मेरे द्वारा मुक्त की जाती है।

वह कहने लगी – भो पृथ्वीपति! मुझ अकेली के वध से आपका कार्य सफल हो जायेगा; क्योंकि इन सब में उत्तम लक्षणों और व्यंजनों (सामुद्रिक लक्षणों) से चर्चित कोई भी नहीं है।

क्षितीश्वर पुन: कहता है – तेरे समान उत्तम लक्षण एवं उत्तम बुद्धि वाला इस पृथ्वीमण्डल पर दूसरा कोई नहीं है इसलिये हे कमल लोचने ! तू मेरे द्वारा मुक्त की जाती है, तू जा।

वह मृगांकलेखा कहने लगी – हे भ्रात! हे नाथ! मैं अकेली कहाँ जीवित रहूँगी? पीछे मारी जाऊँगी। आप इन सबको मुक्त कर दीजिये। मैं आपको प्रणाम करती हूँ।

मुझ एक अकेले के वध कर देने पर इन सब बन्दीजनों को छोड़ देना सर्वोत्तम होगा। हे नरेश! यदि मेरे इस तन के द्वारा इतना सा भी उपकार नहीं होता है तो इसे प्राप्त करने से क्या लाभ?

शशिलेखा के वचनों को कर्णगत कर राजा अपना शिर धुन लेता है और मन में निराकरण का उपाय सोचता है। अहो! यह नारी तो उपकार की कोई सार स्वरूप मूर्ति है। इस संसार में अज्ञानी जन ही स्त्रियों को मुग्धा कहते हैं। पर–प्राणियों का वध हो रहा है? इस कारण यह अनुकम्पा की साक्षात् मूर्ति मरण हेतु अपना शरीर अर्पित कर रही है और मुझ जैसा अज्ञानी, मूढ़, जीवों का वध कर रहा है? मैं इस नारी के स्नेह को पाकर पाप से छूट जाऊँगा? ऐसा सोचकर महीपति मौन धारण कर चुपचाप वहीं बैठ गया तब बलि कर्म में नियुक्त मंत्री कहने लगा।

स्त्री के वध मात्र से कार्य की सिद्धि नहीं होती। बलि पूजा के लिये प्रथम, चतुर्थ एवं अष्टम युगल का वध किया जायेगा; क्योंकि पूजा के अपमान होने पर वंश की वृद्धि नहीं होती। राजा बोला – हे मन्त्रीश्वर! मेरी बात सुनो। ये सभी मेरे तात एवं सहोदर तुल्य हैं, अत: कोई ऐसा कार्य कीजिये अथवा मन्त्र सिद्ध कीजिये, जिससे मेरे वचनों की भी रक्षा हो अर्थात् मृगांकलेखा को अभय रूप दिया गया वचन भी खण्डित न हो अन्यथा मेरे यश की हानि होगी।

तदनन्तर सुविज्ञ गुणगौरी (सती) मृगांकलेखा बोली – हे देवानुप्रिय नरेश! ध्यानपूर्वक मेरी बात सुनिये – अन्धे को नृत्य का, बधिर को मंगल गीत का, ऊसर भूमि को उत्तम श्रेष्ठ शालि ब्रीह्यों का तथा नपुंसक को प्रिया के कटाक्षों का क्या मूल्य? लवण और घृत रहित विविध भक्ष्य पदार्थों से क्या लाभ? क्योंकि इनसे कोई कार्य सिद्ध नहीं होता। इसी प्रकार अज्ञान तप से क्या लाभ? क्या अज्ञान तप से कर्म नाश होता है? नहीं, इससे निर्जरा कम, कर्म बन्धन अधिक होता है। ज्ञान रहित मनुष्य शरीर की गठरी मात्र है जैसे कि मनुष्य की पुष्टि दुग्ध और शर्करा के द्वारा ही नहीं होती है। विषधर के डसने से विष ही निर्मित होता

है और विषाक्रान्त व्यक्ति रुचिपूर्वक निम्ब का चर्वण करता हुआ उसे मीठा कहता है उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष धर्म को ही सारभूत मानता है तथा तन, धन, जीवन को असार अर्थात् तुच्छ मानता है। यह जीव शरण रहित है। इन्द्र भी काल कवलित हो जाता है अर्थात् चन्द्र भी राहु द्वारा ग्रस लिया जाता है। सिंह के चरणों में पड़े मृग-शिशु की क्या उसके माता-पिता रक्षा कर सकते हैं?

यदि देवता, मन्त्र-तन्त्र, क्षेत्रपाल भी रक्षा कर सकते हो तो मरते हुये उनके आत्मीय जन निश्चित ही अक्षय हो जाते।

ग्रह, भूत-पिशाच, योगिनी (यक्षिणी) और यक्ष की पूजा करता हुआ यह मूढ़ मनुष्य आयु क्षय हो जाने पर निश्चित ही मरण को प्राप्त होता है। चाहे वह चक्रवर्ती हो, नारायण, रुद्र, इन्द्र व अहमिन्द्र भी क्यों न हो।

यदि सुरेन्द्र भी स्वर्ग से च्युत होते हुये अपने आपको रक्षित करने में समर्थ होता; तो सर्वोत्तम भोगों से संयुक्त स्वर्ग को क्यों छोड़ता?

सती का निश्चय अर्थात् तर्कपूर्ण तथ्य सुनकर राजा ने उसकी प्रशंसा करके सभी बन्दीजनों को पलायमान करती हुई सेना विशेष की तरह छोड़ दिया।

जो बन्दीजनों के द्वारा सुप्रतिष्ठित थी तथा स्वीकृत कुल देवता की तरह जिसकी स्तुति की गई थी ऐसी उस मृगांकलेखा की वाणी से तृप्त हुये सभी बन्दीजन अपने नगर की ओर चले गये।

सुन्दर नामक राजा सती का साधर्मी अर्थात् जिनधर्मी हो गया। उसका तन दया धर्म से अभिमण्डित हो गया। उसने अपनी भार्या, मन्त्री एवं परिजनों सहित हिंसा कर्म छोड़ दिया।

वह चन्द्रलेखा नगर की ओर गमन करती हुई चली जा रही थी। उसने अति दीर्घकाय वाले सिंह को देखा। जिसकी कराल-जबाड़, नुकीलें नख जिसके मुख की विकराल विडम्बना प्रकट कर रहे थे। जिसकी जिह्वा लपलपा रही थी, जो अत्यन्त भूखा एवं क्रूर था। जिसके नेत्र गुंजाफल के समूह के समान लालिमा युक्त थे। जो अपनी पूँछ पसार कर गर्जना करता हुआ गजों के कुम्भ विदीर्ण करने के लिये यम के समान था। जिसे देखकर उस मृगाक्षी की देह काँप गई।

वह बाला प्रचण्ड स्वर में बोली - हे गजयूथों के यम स्वरूप केशरी! यदि मैंने अपने प्रिय पति सागरचन्द्र के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष की मन के द्वारा अभिलाषा भी की हो तो तुम अपनी शक्ति से मेरे शरीर को कवलित कर लीजिये अन्यथा यहाँ से शीघ्र ही भाग जाइये। इतना कहते ही उस बाला के वचन अचानक ही सफल हो गये। वह केशरी बाला के अनुकूल होकर उसी के सामने से चला गया। अपने मार्ग में गमन करती हुई उस नारी को हजारों पर्वत, सरिताएँ, सरोवर तथा जंगल मिले।

रात्रि-दिन द्रुत गति से गमन करती हुई उसने बाधाओं से रहित एक वट वृक्ष के तल को प्राप्त किया अर्थात् वहाँ पहुँची। रात्रि के समापन में जब एक प्रहर क्षीण होने को शेष रह गया था, तब रात्रि के अन्तिम

प्रहर में विकराल दाँतों वाली एक राक्षसी को देखा। अन्धकार के समान जिसकी कृष्ण देह थी ऐसी वह राक्षसी कालरूपी रात्रि के समान मृगांकलेखा को निगलने के लिये फैलती जा रही थी।

इसी बीच सती अपने मन में विघ्न-विनाशक, पाप-प्रहारक, पंच परमगुरु मन्त्र/णमोकार मन्त्र, चारों मंगल, चारों उत्तम और शरणों (चत्तारि मंगल, चत्तारि उत्तम, चत्तारि सरणं) का स्मरण करने लगी।

निष्कलंक शील की शोभा रूप वह मृगांकलेखा कहने लगी - यदि इस जन्म में मेरा सागरचन्द्र ही एक भर्ता है, जो मेरी इस महाविजय का कल्प वृक्ष है। शील की महिमा चिन्तामणि रत्न और कामधेनु के समान है तो मेरी इस शील की महामहिमा से यह राक्षसी अचानक ही निहताशा हो जाए अर्थात् इसकी मुझे नष्ट करने की इच्छा समाप्त हो जाय।

जिसमें कर्म के मर्म नष्ट हो जाते हैं ऐसा जैन धर्म जयशील हो। इसी की विस्फुरणा अर्थात् प्रकटीकरण रूप प्रभाव से वह पापिष्ठा, धृष्टा, राक्षसी सहसा ही आशा रहित हो गई।

महाभयानक कालकूट जहर की लहर के समान वह राक्षसी निरन्तर शोभायमान उस अमृत लहरी रूप मृगांकलेखा के सुन्दर वचनों के द्वारा उपशान्त हो गई।

शील ही है परिवार जिसका ऐसी वह शीलवती उसी वट वृक्ष के नीचे ठहर गई। पश्चात् प्रभात समय अपने शरीर के खेद की परवाह नहीं करती हुई नगर में चली गई।

जो सुख के दिन बीत गये वे नित्य स्थिर नहीं रहे। तब कर्म वश पड़ी हुई अवस्था से हे चित्त तुम दुःखी क्यों होते हो।

खेद और तन्द्रा त्यागकर वह सती पुरुषार्थ कर अति क्षिप्र गति से गमन करती हुई सिद्धार्थ नामक नगर आ पहुँची।

नगर के निकट ही जल से भरा हुआ एक सरोवर था। मृगांकलेखा ने उसके जल को पिया और खेद-खिन्न होने के कारण धैर्य धारण कर वहीं मठ के भीतर सो गई।

सायंकाल वह वहीं ठहर गई, रात्रि बीती। किसी तरह प्रभात हुआ और प्रातःकाल ही कामसेना नामक वेश्या उसी मार्ग पर आई। अनेक दासियों का परिकर जिसके साथ था, जो स्वर्ण के उत्तम-आभूषण एवं चीन पट्ट के सूक्ष्म वस्त्र पहने हुये थी। उसने अपनी आँखों से उस ओर देखा जहाँ सती शयन कर रही थी। अपनी दासियों से उस गणिका ने कहा - पूर्णचन्द्र के समान अद्भुत रूप की सारभूत क्या यह अप्सरा है, विद्याधरी है या कोई सामान्य नारी है? यह देव कन्या है, खेचरी अथवा नाग कन्या है? इसकी कनकवर्णी देह तप्त स्वर्ण के समान अत्यन्त उज्ज्वल है।

यह कोई राजकन्या है। इसके नख मणि के समान दैदीप्यमान हैं तथा उत्तम वस्त्राभूषणों से शोभा युक्त है। इस बाला की भुजाएँ सुन्दर कमल-नाल के समान है। नहीं जानती हूँ कि यह किसकी पत्नी है? यह सुन्दरी सुकुमार है, मृगनयनी है, निपुणा है। अरे इसके चरण-कमलों में तो लक्ष्मी निवास करती है, यह

नारी रत्न रूप का अत्यन्त सारभूत तत्त्व है अर्थात् रूप का निचोड़ है। यह भामिनी अन्धकार को विनष्ट करने के लिये तेजस्वी नक्षत्र के समान है, यदि यह सुन्दरी हमारे साथ चलती है तो समझिये निश्चित ही चिन्तामणि नग मेरे हाथ लग जाता है।

इसी बीच मृगांकलेखा जाग्रत होकर बैठ गई, उसने वहाँ एक रोते हुये रूप को देखा। मृगांकलेखा को अपनी ओर देखते हुये पाकर वह वेश्या शीघ्र ही उसके कण्ठ से लिपट गई और कहने लगी – हे पुत्री! क्या तू मुझे नहीं जानती है', मैं तेरे विवाह के समय असाध्य अर्थात् मरणासन्न थी। हे बाले! मैं विवाह के समय तेरे पिता के घर गई थी, लगातार रुदन करता हुआ तेरा मुख लज्जा युक्त था। उस समय तेरा–मेरा समागम बहुत ही अल्प दिनों के लिये हुआ था, ऐसा कहती हुई वह वेश्या मृगांकलेखा को अपने घर ले गई।

तू बहुत दिनों बाद दिखी है इसलिये मुझे तुझ पर अत्याधिक स्नेह उत्पन्न हो रहा है। मेरे भवन में तेरे समान उम्र वाली समूची दासियाँ हैं। तुम जैसा जानो वैसा उत्साहपूर्वक मौज करो। यदि सुखपूर्वक समय बीतता है तो ही जन्म लेने का लाभ है। वेश्या ने उसे उत्तम वस्त्राभूषण भेंट किये और कहा – तुम मेरे वचनानुसार कार्य करो; चाहे मेरे वचन उचित हों या अनुचित।

यह संसार धर्म के मर्म को नहीं जानता। अरे! मनुष्य जन्म की सफलता तो वेश्या व्यापार में ही है। सुख के लिये ही अर्थदण्ड दिया जाता है, मन और इन्द्रिय नियमन भी सुख का ही कारण है, सुख के लिये राजदण्ड भरा जाता है, इसलिये इन्द्रिय सुख ही संसारी सुखाभिलाषियों को हर्ष उत्पन्न करता है। वेश्याएँ इस सुख द्वारा रत्नकोष प्राप्त करती हैं। उत्तम वस्त्र, दिव्यालंकार, रति–विलास, मनवांछित पदार्थ रूपीजीवी अर्थात् वेश्याओं के अतिरिक्त किसी को भी प्राप्त नहीं होते हैं।

वेश्या के पाप युक्त वचनों को श्रवण कर सती ने अपने निर्दोष कर–कमलों से उसे बैठाया और कहा– यदि तूने मुझसे पुन: इस प्रकार पाप वचन कहे तो मेरे मरण की स्थिति शीघ्र ही निर्मित हो जायेगी, अत: मैं मर जाऊँगी।

शील के साथ मर जाना श्रेष्ठ है, क्योंकि जीवन का फल सदा निष्कलंक रहने से प्राप्त होता है। कुल परम्परा से चले आये शील रूपी पर्वत को छोड़कर क्या कुलीन कुलवन्तियाँ वेश्यावृत्ति की ओर निहारती है।

क्रोधित होकर वेश्या कहने लगी – हे हतभाग्ये! तू मेरी दासी है। मेरे वेश्यालय में तो गाडरों का अम्बार है (भेड़िया धसान चाल अर्थात् बिना परिणाम विचारे अनुकरण करने वालों का ढेर है) वहाँ तेरा यह उज्ज्वल वेष क्या स्थिर रहेगा? कदापि नहीं।

जो वेश्या मन्दिर में पहुँच जाती है क्या वे कुलीन होती है? 'मैं तुझे बहुत सारा धन देकर लाई हूँ' यह बात सभी लोग जानते हैं।

तू मेरे वचनों को प्रामाणिक मान, तू मेरी विख्यात दासी है। मेरे इस वेश्यालय में सुख भोग, फिर मैं तुझे कुजात अर्थात् वेश्या बना दूँगी।

उस शील-शैला ने वेश्या की बात नहीं मानी और रुदन करने लगी। उसकी आवाज सुनकर सारे पड़ोसी आ गये। वह बेचारी अकेली एक थी और अनेक बुद्धिमानों के द्वारा वह कुलवती पूछी जाने लगी अर्थात् पड़ोसी जन उसके कुल और जाति के सम्बन्ध में पूछने लगे।

सभी लोगों की बातों को सुनकर वह कहती है, कैसी अनहोनी घटना घट रही है? अग्नि में से जल झर रहा है। कुलवती से कुल, जाति आदि पूछी जा रही है। हा! कर्मवश क्या-क्या नहीं होता? और वह पुन: रोने लगी।

जिसे पति का भय नहीं, जिसे कुटुम्बियों की लाज नहीं, जिनके समक्ष वचन उलझन में पड़ जाते हैं उन्हें कौन समझा सकता है?

इसी बीच एक वेश्या आई, सती को देखकर उसका मन करुणा से भर गया,हाय! हाय! यह तो ज्ञानशीला कुलवती सती है। दूसरी बोली - यह तो भोली, अज्ञानी है। यह वेश्या कर्म से युक्त नहीं होगी (कामसेना वेश्या की ओर संकेत करके) इसे तो इसने मायाचार एवं छल-बल से प्राप्त किया है अर्थात् इधर लाई है। हे निर्लज्ज दुष्टे! तुझे राजा का भय नहीं? पैसा लेकर इस श्रेष्ठ नारी को मुझे दे दो। इसे मैं शीघ्र ही इसके घर पहुँचा दूँगी, अन्यथा निश्चित ही यह नारी मृत्यु को भेंट हो जायेगी।

उक्त स्त्री के वचन सुनकर क्रोधित हो कामसेना कहने लगी - यह शाकिनी की बच्ची दूसरी कला चाहती है। अरे धूर्तों का शरीर धूर्तता से ही क्यों न बनेगा। अरे! मुझे राजा का भय दिखलाती है। अरी! ओ राजा के पास जा और कह कि मैं रूप की राशि कुलीन स्त्री को अपने घर लाई हूँ। कामसेना के वचनों को आकर्ण्य कर अन्य लोग सती के प्रति मन में विकल्प करने लगे। पापी पाप के कारण शीघ्र ही नष्ट हो जाता है तथा धर्मात्मा धर्म में निर्विघ्न तिष्ठता है।

इधर मृगांकलेखा सती जहाँ थी वहीं उस वेश्या ने उसे सांकल और मंजीरों से जकड़ दिया। उसी दिन चोर सोती हुई वेश्या को मारकर उसका धन-वैभव चुराकर ले गये और सती की सांकल क्षण भर में अपने आप टूट गई। जब कामसेना वेश्या की माता ने यह जाना तो निर्दोष सती के चरणों में गिरकर रुदन करने लगी तथा दीन शब्दों में कहने लगी - हे भद्रे! मेरा अपराध क्षमा कीजिये। शशिलेखा ने मौन ग्रहण कर लिया अत: वह वेश्या की माता प्रच्छन्न वेश में राजभवन में पहुँच गई।

वह नृपति से कहने लगी - हे नरपति! मेरे गृह में रूप की निधि स्वरूप एक रूपस्वी नारी है, जो आपके स्नेह योग्य है। कनकध्वज ने उसे रूपसी जानकर शीघ्र ही एक चतुर प्रतिहारी को भेजा, उस कुलधर्मा पतिव्रता के समीप जाकर प्रतिहारी ने राजा के कथन को कह सुनाया - और कहा - हे अम्ब! आप राजा के आवास पर चलिये। प्रतिहारी के वचन कर्णगत होते ही मृगांकलेखा ने कहा - हे वप्प! मुझे राजपिता ने किसलिये बुलवाया है।

नृप तो नीति-निपुण है, न्यायासीन होकर परस्त्री में आसक्त क्यों हो रहे हैं? यदि मुझे दुराग्रह पूर्वक ले जाया गया या मेरे साथ स्नेह बुद्धि की गई तो मैं यम नगर प्रयाण कर जाऊँगी।

मैं तो भिक्षार्थ भ्रमण करने वाली परदेशिनी हूँ, मैं रूपोपजीविनी नहीं हूँ। धन प्राप्ति की इच्छा से ही आश्रित होकर असती/वेश्या, दासी और नटी/नर्तकी राजमन्दिर जाती है।

सती के निर्णीत वचनों को श्रवण कर प्रतिहारी राजा के पास गया और उसने वहाँ मंत्री सहित बैठे हुये राजा को देखा। प्रतिहारी ने राजा से गुप्त वार्त्ता को कहा। राजा, मन्त्री से मन्त्रणा करते हुये बोले - हे मन्त्री! उस स्त्री को शिविका में आरोहण करके ले आइये, जिससे कोई भी प्राणी किसी प्रकार का विकल्प/चर्चा न करे। नृप के वचनानुसार मन्त्री वहाँ गया जहाँ वेश्यालय में मृगांकलेखा अवस्थित थी। मन्त्री मृगांकलेखा से कहता है - हे पुत्री! राजा का आदेश है, शीघ्र चलो, शिविका में बैठकर निर्बाध गमन करो।

नरनाथ की कृपा से अयश की हानि होती है। पृथ्वीपति को सकल स्त्रियों का पिता जानो। हमारा वसुधापति तो सम्यक् धर्म का धारक है, उन्हें देखकर तो शत्रुओं का बढ़ा हुआ दर्प गल जाता है। सद्भाव से युक्त मन्त्री की वाणी को सुनकर सती ने निर्भय होकर शिविका में आरोहण किया। मन-ही-मन विचार करती है 'शीघ्रता में कोई कार्य अच्छा नहीं होता।' प्रिय के बिना इस प्राप्त रूप पर वज्र पड़े। राजा के सम्मुख कोई उपाय नहीं होता, अपनी बुद्धि के अनुसार विचार करने पर ही कार्य होता है।

अब मैं ऐसा कोई उपाय करती हूँ जिससे मेरा शील रत्न स्थिर रह सके। निश्चित ही बुद्धि-अनुवर्तन रूप उपाय से असाध्य कार्य सिद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार विचार करती आती हुई वह महिला/उन्मत्त, भूताविष्ट स्त्री जैसी बनी गई और सुन्दर-सुन्दर वचन बोलने लगी। कीचड़ को देखते ही मुख पर लपेट लिया। शरीर पर पड़े वस्त्रों को फाड़कर यह स्थान मेरे लिये श्रेष्ठ नहीं है इत्यादि मिथ्यालाप करने लगी। अपने ऊपर धूल डाल ली, पत्थर मारकर अपना कपाट/सिर फोड़ लिया एवं दीर्घ उच्छवास लेने लगी। वह गाती हुई क्षण में हँसती है, क्षण में बोलती है।

जिसका रूप विकराल हो गया था, जिसकी भृकुटि डरावनी हो गई थी ऐसी वह व्यग्र बाला किसी तरह राजमन्दिर तक लाई गई। मन्त्री ने राजा से सारा वृत्तान्त कहा। भव्य लोग हाय! हाय!! शब्द उच्चरित करने लगे।

जो भी मन्त्रवादी आते उन्हें देखते ही वह हाथ में लाठी लेकर शीघ्र ही उनके शिर पर मार देती। रोती है/चिल्लाती है/नाचती है। झट धरती पर गिर पड़ती है, रुचिपूर्वक गाने लगती है। भयभीत हो जाती है, हँसती है।

पृथ्वीपति मन्त्री से कहते हैं - समस्त श्रेष्ठ मन्त्रवादियों का आह्वान कर इस स्त्री को स्वस्थ किया जाय तथा मन्त्रवादियों को प्रचुर मात्रा में धन दिया जाय।

पटहघोष अर्थात् मुनादी सुनकर सारे गुनिया, बहुत से मन्त्र-तन्त्रवादी उस सिद्धार्थ नगर में आये किन्तु किसी का कोई भी तन्त्र स्फुरित अर्थात् सफल नहीं हुआ।

इस अवसर पर राजा कहते हैं - जो भी इस भगिनी के शरीर की व्याधि को दूर कर देगा, वह जीवन के सार को प्राप्त करेगा। उसे राज्य का अर्थ कोष दे दिया जायेगा।

नृपति द्वारा उपदिष्ट वचनों से एक सुप्रसिद्ध मन्त्रवादी कनकबाहु ने अपनी अशेष शक्ति से अपने नगर को सुरक्षित अर्थात् कीलित कर दिया तथा एकान्त में कुमारी के शरीर में ज्वालामालिनी देवी को अवतरित करके उसने मृगांकलेखा के शरीर सम्बन्धी दोषों को पूछा।

कन्या के मुख से देवी कहती है - हे वत्स! एक अपनी शील रक्षा को छोड़कर इसमें अन्य कोई भी दोष नहीं है अर्थात् यह मनस्विनी केवल अपने शील की सुरक्षा चाहती है इसलिए शील सुरक्षार्थ उसने ऐसा रूप धारण किया है। इसमें कोई अन्य बाधा नहीं है।

स्त्रियों की शोभा को जिसने प्राप्त कर लिया है ऐसी मृगांकलेखा नाम से प्रसिद्ध यह सागरचन्द्र की प्रिया है, दैव वश यह इस अवस्था को प्राप्त हुई है। अपने शील रक्षण हेतु यह स्त्री पागल बन गई है। इसे आपके द्वारा अपने राजमन्दिर में लेकर रखी जाना चाहिये तथा कुलदेवी की तरह देखी जाना चाहिये।

आदेश के अनुसार प्रतिबोधित राजा ने देवी को विदा करके शीघ्र ही मृगांकलेखा को बुलाया, जो ऐसी ज्ञात होती थी मानों प्रत्यक्ष लक्ष्मी हो।

देवों कृत प्रातिहार्य यानी चमत्कार विशेष ने पद-पद पर शील के माहात्म्य को प्रकट किया।

नित्य ही लोगों द्वारा अर्चित की जाती हुई वह आर्या वहीं अवस्थित हो गई अर्थात् राजमन्दिर में ठहर गई। वह चित्त में विचार करती है कि पति दूसरी जगह है, मैं दूसरी जगह हूँ, सखी भी अन्यत्र है। कर्म का फल तो निश्चित ही सहना पड़ता है।

तदनन्तर मूल और उत्तर गुणों के निलय, परमावधि ज्ञान के धारक, संसार-समुद्र के तारक एक परम तपोधन मुनि वन में पधारे। भूपति ने नगरवासियों के साथ वन में जाकर मुनीश्वर की चरण वन्दना की। वह धीमान, रमणी-रस-अनुरंजित नृपति मुनिवर के समक्ष आत्म निन्दा करने लगा।

स्वामिन्! यह संसार असार है, इससे मुक्ति पाने के लिए धर्मोपदेश दीजिए। वे ऋषिवर्य बोले - हे नरेश! सागार धर्म में सम्यग्दर्शन का विशेष महत्त्व है आप उसे सुनिये-सम्यक्त्व की संगति से जीव स्वर्ग को प्राप्त करता है तथा मिथ्यात्व को मानने से नरक जाता है। सम्यग्दर्शन अणुव्रत एवं महाव्रत रूपी महावृक्ष का मूल है जिसे प्राप्त कर जीव अग्र भाग पर स्थित होता है। सम्यग्दर्शन रूप प्रथम कार्य के लिये प्राणी सतत प्रयत्नशील रहता है जो उस सम्यग्दर्शन को छोड़ देता है वह लोक में श्रेष्ठ नहीं कहलाता।

जैसे वृक्ष का मूल उसकी जड़ होती है, जड़ के जरिये ही वृक्ष में स्कंध, टहनियाँ, शाखा-प्रशाखाएँ निकलती हैं और वृक्ष वृद्धिगत होता हुआ उच्चता को प्राप्त होता है, उसी प्रकार धर्म की जड़ सम्यग्दर्शन है। इसी के सहारे जीव के अन्य व्रत, गुण भी वृद्धि को प्राप्त होते हुये स्वयं के साथ जीव को भी उच्चता के शिखर पर पहुँचा देते हैं तथा महाव्रतों और अणुव्रतों का उपदेश दिया तथा कुपात्रों से बचकर सुपात्रों को दान देना चाहिए वही दया के अधिकारी तथा सात तत्त्व, नव पदार्थ, छ द्रव्य का उपदेश देते हुए। श्रावक व मुनि धर्म के बारे में बताया। सभी प्राणियों पर दया करना धर्म, दान करना धर्म है, दान श्रेष्ठ उच्च व सुपात्रों को देना चाहिए। दान देना श्रावक का कर्तव्य है।

हे नृपेश! सकल प्राणियों को दया और दान का जो कथन किया गया है उसे निश्चय ही विवेक का स्थान जानना चाहिये। श्रावक धर्म करुणा का निधान है और जो जीव इससे (दया) युक्त होता है उसका करुणा अचल स्थान होता है। इस प्रकार मुनि और श्रावक की क्रियाओं अर्थात् आचरण को सुनकर राजा निर्मल चित्त वाला हो गया। क्षितीश्वर पुन: कहता है - हे स्वामिन्! इस मृगांकलेखा को पुत्र और पति के वियोग से दु:खी-संत्रस्त जानिये। हे स्वामिन्! हे गुणनिधीश! हे ऋषीश! कहिये इनका समागम कैसे होगा?

सिद्धार्थपुर की दानशाला में पुत्र और पति का समागम होगा, ऋषि की ऐसी उद्घोषणा सुनकर उसके तनरुह अर्थात् निकल आये और उरोजों से दुग्ध झरने लगा।

राजा कनकध्वज, मृगांकलेखा, सर्व पुरजन व नगर के अन्य निपुण लोग ऋषीश्वर का धर्मोपदेश सुन अपने-अपने नगर की ओर लौट आये।

दानशाला का निर्माण कराकर राजा हाथों को मस्तक से लगाकर सती से कहता है - हे पुत्री! तुम दानशाला में ठहरो, अत्यल्प समय में वहीं पर आपके पति मिलेंगे। तदनन्तर निर्मल आचार वाला पंच परमेष्ठी का भक्त विमलपति नामक सेठ विनय युक्त वचनों से राजा से कहता है - इस दृढ़शीलता सती नारी रत्न को मेरे घर में एक स्थान पर रख दीजिये। मेरी पत्नी निशदिन इसके समीप रहेगी।

सेठ के वचन सुनकर मृगांकलेखा उस साधर्मी के गृह पर स्थायी रूप से रहने के लिये तैयार हो गई। मृगांकलेखा अपनी दानशाला में सम्मान और उत्सव सहित आहार दान देती हुई पथिक जनों की नाना प्रकार से सेवा करती थी। सभी लोग उसकी प्रशंसा करते थे। जिस स्थान पर वह सती सुखपूर्वक निवास करती थी, वही अपने प्रिय पुत्र का समाचार सुनती है।

वणिकाधिपति वैश्रवण के महल में कुमार का स्नेहपूर्वक पालन हो रहा है। कुमार कामदेव की भाँति सबका मनोरंजन करता है। वह पुत्र गृहस्थ भार को वहन करने में समर्थ, दानशील तथा दीन-दुखियों का पोषण करता हुआ सुयश में क्रीड़ा करता है। वह चतुर बालक कुलरूपी आकाश का चन्द्रमा है। व्यापार सम्बन्धी अनेक क्रियाओं को बड़े सुन्दर ढंग से जानता है अर्थात् उस विज्ञ की सर्व व्यापारिक क्रियाएँ बहुत

ही मनोहर हैं। पिता के व्यापार करने में वह व्यवहार कुशल है। सारे व्यापार का भार उसने अपने ऊपर ले रखा है। सुरेन्द्रदत्त है नाम जिसका ऐसा वह कुमार धन कुबेर श्रेष्ठियों की गणना में प्रकट हुआ है अर्थात् गिना जाने लगा है। उसका राजमन्दिर में श्रेष्ठ पुरुषों की भाँति आदर है। वह लक्ष्मी का संग्रह करने में प्रवीण एवं दक्ष है। सच है जिसके यहाँ नित्य ही असंख्य धन का लाभ होता है ऐसे लक्ष्मीवन्त, मृदु स्वभावी, निरभिमानी को कौन नहीं जानेगा।

एक दिन वणिक श्रेष्ठी वैश्रवण के महल में एक राजपुरोहित आया। उसने श्रेष्ठी के सम्मुख नृपति के वचनों को कह सुनाया– हे श्रेष्ठिन्! आपका पुत्र राजकीय गुणों से अलंकृत है।

राजा उसे अपनी पौर्णमासी के चन्द्र समान चन्द्रमुखी, मृगनयनी पुत्री देना चाहते हैं। वह उत्तम वाला अत्यन्त ललित और सुन्दर है, वह ऐसी लगती है मानों दूसरी लक्ष्मी ही हो।

पुरोहित के वचनों को सुनकर वैश्रवण वणिक कहता है – मणियों का समूह स्वर्ण में जड़कर ही शोभा पाता है। हम वणिक श्रेष्ठ तो निरहंकारी हैं। कहिये राजा की प्रसन्नता किसके मन को अच्छी नहीं लगती। राजा अपनी पुत्री देना चाहते हैं? क्या गज शिशु और ऊँट की जोड़ी बनती है? कहाँ प्रचण्ड प्रतापवान् सूर्य का तेज और कहाँ खद्योत? कहाँ गाडरों के रोम समूह से बना मोटा कम्बल और कहाँ सूक्ष्म चीनपट्ट? क्या दोनों की समानता हो सकती है? जैसे ही वणिक श्रेष्ठी ने ऐसे दीन वचन कहे, त्यों ही निर्मल दृष्टि वाला पुरोहित कहने लगा।

हे वणिक कुल के तिलक स्वरूप प्रधान पुरुष! आपके पुत्र के सामने तो देव भी शोभा को प्राप्त नहीं होता अर्थात् वह भी आपके पुत्र की सुन्दरता के सामने लज्जित है। अरे! कामदेव जैसा रूपवान् भी उसकी बराबरी नहीं कर सकता। क्या कीचड़ कमल की उत्पत्ति का कारण नहीं है? क्या कनक और पाषाण एक साथ नहीं होते अर्थात् स्वर्ण पाषाण में स्वर्ण और पत्थर एक साथ नहीं रहते? अथवा क्या स्त्री रूपी रत्न पुरुष रूपी स्वर्ण की इच्छा नहीं करता? राजा आपके पुत्र के गुणों पर अनुरक्त है। उनकी मान्यता है, यह पुत्र रूप में मानों इन्द्र ही है। संसार में उसके समान रूपवान अन्य कोई नहीं है इसलिए राजा विनयपूर्वक उसे अपनी सुता देना चाहते हैं।

वणिक श्रेष्ठी ने पुरोहित की इस मन्त्रणा को स्वीकार कर लिया। इधर पुरोहित आनन्दित हो शीघ्र चला गया उधर सेठ की पत्नी ने यह समाचार सुन लिया कि राजा अपनी पुत्री सुरेन्द्रदत्त को देना चाहता है वह ईर्ष्या से भर गई। धनवती सेठानी आक्रन्दन करती हुई अपने कर्मों की निन्दा करती है किन्तु इस गुप्त मर्म (ईर्ष्या भाव) को किसी से कह भी नहीं सकती थी। हाय विधाता तूने भी क्या कर्म रचा? अरे मेरी छाती पर वज्र क्यों नहीं पटक दिया। दूसरी स्त्री का जाया बेटा मेरे घर का प्रधान है और अब राजा उसे अपनी राजकन्या देना चाहता है। उसके आगे मेरे पुत्र नितान्त हीन और तुच्छ हैं। वे तो दीन–हीन किंकर की भाँति उसके चरणों में बैठे रहते हैं।

सेठानी अपने मन में ठान लेती है यह मेरे उदर से उत्पन्न पुत्र नहीं है। कुछ उपाय करके इसे मार डालती हूँ; उसने विष मिश्रित मोदक दासी को देकर कहा – ये बड़े और छोटे मोदक क्रमश: बड़े और छोटे पुत्रों को दे देना अर्थात् बड़े पुत्र सुरेन्द्रदत्त को बड़ा मोदक और लघु पुत्र नरदेव और धनदेव को ये छोटे–छोटे मोदक दे आ।

तत्पश्चात् कोई सार्थवाह प्रमुख नमक, मिर्च, मसाला, गुड़ादि वस्तुओं (खरीदने) के निमित्त वहाँ आया जहाँ सुरेन्द्रदत्त धन प्राप्ति की इच्छा से अपनी दुकान में दोनों भाइयों सहित बैठा था।

सेठानी ने दासी को वहीं भेजा। वह द्रुत गति से वहाँ पहुँची जहाँ तीनों भ्राता बैठे थे। वह कहती है– आप लोग भोजन के लिये घर चलिये, आपकी माता स्नेह से बुला रही है। ज्येष्ठ कुमार सुरेन्द्रदत्त कहता है – मुझे बाध्य मत कीजिये, बहुत सारा किराना (नमक, मसाला आदि) आया हुआ है। मेरा जाना असम्भव है। तब उस दासी ने तीनों लड्डू सौंप दिये, दो छोटे और एक अशुभ चिन्ह वाला बड़ा। बड़े भाई का उस दिन एक भुक्ति व्रत था, सो उसने उत्तम मोदक खाने से अपने चित्त को हटा दिया अर्थात् मोदक खाना त्याग दिया।

लघु भ्राता कहते हैं – हम तो जल्दी से ये सारे लड्डू खा लेते हैं, पश्चात् निर्विघ्न होकर घर जायेंगे। इतना कहते ही उन दोनों ने तीनों मोदक शीघ्र ही खा लिये, हलाहल विष ने उन्हें घेर लिया और वे दोनों वहीं मर गये। नीति है जो दूसरों को कुआँ खोदता है, सो खुद ही उसमें गिरता है। स्वयं उसकी हानि पहले ही तैयार रहती है। यह तो लोक में स्पष्ट रूपेण प्रसिद्ध है कि जो दूसरों को जलाता है उसी के साथ वह स्वयं ही जल जाता है। सेठ ने अचानक उठे हाहाकार को सुना। वे आँखों को सुखाकर अर्थात् पोंछकर मन–ही–मन विचारने लगे 'यह मोदक और धर्म संचय का ही प्रताप है' और सारे प्रपञ्च को समझ गये। खेद खिन्न हो उन्होंने मौन धारण कर लिया।

पुत्रों की कान्तिमान् देह विष से संक्रान्त हो नील/हरित वर्णी हो गई अर्थात् उनका शरीर हलाहल के कारण नीला पड़ गया। सेठ हृदय में विचारने, मेरे घर में पत्नी ही दुष्ट है; अत: वह आक्रन्दन करते हुये कुमार सुरेन्द्रदत्त को हाथ पकड़कर एकान्त स्थान में ले गया और बोला – हे पुत्र! धाड़ मारकर मत रो। निश्चित ही कर्म गति को कौन टाल सकता है? जो इन्द्र, धरणेन्द्र या नरेन्द्र हैं वे सभी काल ग्रसित होने पर गलित गर्व यानी निरभिमानी हो जाते हैं।

पश्चात् कुटुम्बीजनों को समझा–बुझाकर मृतकों की अन्त्येष्टि क्रिया करके स्वयं सार्थवाहिक के कार्य में लग गया। वह विज्ञ वणिक अपने चित्त में विचार करता है, 'प्रवीण पुरुष धर्म के द्वारा ही विजय प्राप्त करते हैं'। यदि मैं अपनी भार्या से कुछ कहता हूँ तो या तो वह स्वयं मर जायगी अथवा पुत्र सुरेन्द्रदत्त को सहन नहीं करती हुई उसे विष देकर मार देगी। स्त्रियों की दो गतियाँ होती हैं यदि वे प्रसन्न/अनुरक्त रहती हैं तो ही श्रेष्ठ है और यदि वे विरक्त अर्थात् रुष्ट हो जाती हैं तो उभय कुलों के लिये प्रलय अथवा

मारि स्वरूप हो जाती हैं। ये रुदनशील भामनियाँ स्वयं रुदन करती हैं तथा दूसरों को भी रूलाती हैं। यश और कीर्ति का विनाश करती हैं। पुरुषों को अयश में क्रीड़ा कराती हैं अर्थात् अपयश में पटक देती हैं। इनके साथ रति-संभोग नरकावास का कारण है तथा इनकी प्रतिकूलता नर-पुंगवों को शोभित-अशान्त कर देती है।

वैश्रवण मन में विचारता है कि यह सुरेन्द्रदत्त श्रेष्ठ पुरुषों में भी श्रेष्ठ है। 'जिस प्रकार यह ना मारा जाये', वैसा वृत्तान्त शीघ्र ही मैं इससे कहता हूँ।

सेठ कहता है - हे नन्दन! सुनो, मैं तुम्हारा पूर्व वृत्तान्त प्रकाशित करता हूँ। ना तो मैं तेरा पिता हूँ, न तू मेरा पुत्र है। मैं यह सत्य कह रहा हूँ।

हे पुत्र! तू देख रहा है, भयंकर हलाहाल की लहरों ने दोनों पुत्रों को पकड़ लिया, जिससे वे दोनों कुमार प्राण रहित हो गये। धनवती माता ही इन पुत्रों की शाकिनी (प्राण करण करने वाली) हे पुत्र! ऐसी स्थिति में तेरी कुशलता कहाँ है? इस प्रकार सारे वृत्तान्त को कहकर श्रेष्ठी ने सुरेन्द्रदत्त की असली दौलत उसके पिता की मुद्रा सौंप कर कहा - ये माता-पिता ही तुम्हारे विधाता हैं। अब इन्हीं के उत्तम स्थान/नगर का आलम्बन लो।

हे वत्स! मेरी शिक्षा को मन में धारण करो और जाकर अपने माता-पिता से मिलो। अपने देश की ओर गमन करो, जिससे तुम्हारे सारे क्लेश नष्ट हो जायेंगे।

कुमार कहता है - मैं तुम्हारे चरण-कमल की पराग का नित्य ही मधुकर रहा हूँ। हे तात! अपने चित्त को निर्मल कीजिये और मुझ अनाथ को अपनी शरण में रख लीजिये।

सेठ कहता है - हे भ्रात! मेरे सम्यक् वचनों को प्रामाणिक मानिये। अत्यन्त आदर एवं आग्रहपूर्वक सेठ के कहने पर सुरेन्द्रदत्त ने गमन हेतु अपना मन तैयार किया।

अपने पिता की नामांकित मुद्रा निरख कर कुमार का मन प्रमुदित हो उठा। विपुल मात्रा में किराना का भार भर तथा सेठ के बहुत से सेवकों सहित, परिजनों से घिरा हुआ शोभा सहित सुरेन्द्र कुमार वहाँ से चल दिया।

मन में अपनी कर्म गति अर्थात् कर्म वैचित्र्य का विचार करते हुये उसने माता-पिता (धनवती और वैश्रवण) का मोह छोड़ दिया।

अपने असली माता-पिता (मृगांकलेखा-सागरचन्द्र) के समाचार श्रवण कर कुमार सुरेन्द्रदत्त ऐसा हर्षित हुआ मानों रतिकान्त/मकरध्वज ही प्रसन्न हो उठा हो। वह हृदय में धारण कर लेता है कि मतिमान अनिन्द्य सुन्दर सागरचन्द्र ही मेरे पिता हैं।

वह कुमार सुरेन्द्रदत्त उत्तम जाति के खच्चर, वृषभ, अश्व, रथ एवं ऊँटों पर व्यापार सम्बन्धी नमक, गुड़, तेल, घृतादि किराने की वस्तुओं को भरकर पुर-पट्टनों को निहारता हुआ पिता सागरचन्द्र का नाम

लेता हुआ दिशा के प्रांत भाग तक चलता जाता है। अनेक रंग के वस्त्रों से बनी हुई पट कुटी यानी तम्बू जो कि अनेक श्वेत ध्वजाओं से समंलकृत/सुशोभित थी, में ही सघन वन में निशंक होकर रात्रि में ठहर जाता है और निष्कपट भाव से श्रेष्ठ वणिक की तरह अपना सार्थवाह कियाणक नमक, मिर्च, मसाला आदि का व्यापार करने लगता है। उसकी पटकुटी में भंभा, भेरी इत्यादि वाद्य विशेषों की मधुर ध्वनियाँ होती हैं तथा किंकर जन गम्भीर यानी उत्तम नृत्य करते हैं।

वह निष्पाप कुमार यत्र-तत्र घूमता हुआ अपने पिता का रूप निहारता है अर्थात् पिता को खोजता है। वह गुणवन्त कुमार आनन्दित हो ऐसे गमन करता है मानों दैदीप्यमान ललाट वाला राजपुत्र ही हो। ताम्रलिप्त है नाम जिसका ऐसी नगरी में, जहाँ पवित्र ऋषभदेव का चैत्यालय था, उसी जगह पर कुमार समस्त सुजान पुरुषों के साथ ठहर गया। वह वणिक सुत सुरेन्द्र दत्त निरभिमान भाव से जिनेन्द्र देव की वन्दना करता है। 'ऋषभजिन' का अभिषेक, अर्चना करके सुरेन्द्रदत्त चारों प्रकार का आहार त्याग कर कायोत्सर्ग से स्थित हो गया।

जब सकल परिजन वृन्द सुन्दर शय्याओं पर शयन कर रहे थे; तब अर्द्ध निशा में सुरेन्द्रदत्त अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु इन पञ्च गुरुओं का ध्यान कर रहा था। साथ ही मन में अपने माता-पिता के आवास स्थान का स्मरण करता हुआ तिष्ठा था, तभी चक्रेश्वरी देवी आकर उससे कहती है - मैं सकल वृत्तान्त कहकर तेरी मनोकामना पूर्ण करती हूँ। वह कुमार कहता है -कहो, मेरे माता-पिता किस स्थान के रहने वाले हैं और कहाँ हैं। अमरदेवी चक्रेश्वरी कहती है - हे विज्ञ! तुम दक्षिण दिशा की ओर प्रयाण करो।

सिद्धार्थपुर नामक श्रेष्ठ नगर में कनकध्वज नामक राजा रहता है। वहीं आपकी माता हैं तथा उन्हीं के 'मृगांकलेखा' नाम की दानशाला है। वहीं पर आपके पिताश्री आयेंगे। अतिशीघ्र मध्याह्न बेला में उनसे मिलाप होगा किन्तु अभी एक माह की अवधि शेष जानिये।

हे वत्स! शोक छोड़ो और उसी स्थान पर चले जाओ, शीघ्र ही माता-पिता मिलेंगे। ऐसा संक्षेप में कहकर वह देवी चली गई अर्थात् अन्तर्धान हो गई। तत्पश्चात् सुरेन्द्रदत्त ने आनन्दित मन से श्री ऋषभदेव को नमस्कार किया और अनेक मित्रों सहित सिद्धार्थपुर नगर की ओर अभिमुख हो चल पड़ा।

अपने माता-पिता की दर्शन की अभिलाषा से श्रेष्ठ कुमार सुरेन्द्रदत्त सिद्धार्थपुर की ओर चल पड़ा। अब मैं (भगवती दास) यहाँ पर सहसा प्रकट हुये प्रिय सागरचन्द्र और प्रिया मृगांकलेखा के समागम सम्बन्धी वृत्तान्त को प्रसंगान्तर से कहता हूँ।

वहाँ लाट देश में राजा अवनिसेन ने विग्रह-निग्रह के द्वारा समस्त सुभटों को अधीनस्थ करके जीत लिया तथा शीघ्र ही शत्रुंजय के नरेश को वश में करके सोलह वर्ष तक निर्विघ्न रूप से ठहरा रहा। अपने स्वामी अवनिसेन के आदेश से सागरदत्त भी शत्रुंजय में अश्व, गज, रथ एवं पदाति सेना के साथ ठहर

गया। कुछ समय पश्चात् पुन: शत्रुंजय का नृपेन्द्र अवनिसेन अवन्ति का नगराधिपति के विरुद्ध हो गया। अपने पति शत्रुंजय नरेश के अवसान के समय अपने प्रिय के प्रेम के वशीभूत हो क्षीण हो गया है अंग जिसका ऐसी उसकी यौवन सम्पन्न तरुण स्त्री को अवन्तिका नरेश ने देखा।

आशा के वशीभूत हो वह लोलुपी उसका मार्ग निहारने लगा अर्थात् उसे अपने अधीन करने का उपाय सोचने लगा। पुन: अवनिसेन मन में विचार करता है – 'यह दुखिया चिन्तामणि कामधेनु है। इसे अतिशीघ्र धन देकर वैभव सम्पन्न करना चाहिये। जिससे मैं भी अपने गृह स्थान को प्राप्त करूँ, जाकर सबसे मिलूँ। अवन्तिसेन नृपति ने जो सोचा वही कहा और वही किया। सारे किंकर उसके शरणागत हो गये। बन्धन में बँधे हुये के समान सारे किंकर पिंजरे में वैसे ही मुक्त हो गये जैसे धनुष से छूटे हुये बाण हों।

सागरचन्द्र मन में अपनी प्रिया मृगांकलेखा का स्मरण कर उसी के स्नेह से संतप्त होता हुआ कटक से चल पड़ा तथा त्वरान्वित हो पर्वतों को लाँघकर पार हो गया है। जब वह पर्वत के निकट पृथक् छावनी में ठहरा, तब नभमणि अस्त होकर पश्चिम दिशा की ओर चली गई अर्थात् सूर्यास्त हो गया। क्षण में अंधकार राग ऐसे फैलने लगा जैसे कृपण का स्नेह दान करने के लिये ठहर गया हो। तदनन्तर शीघ्र ही सर्व ओर अन्धकार समूह ऐसे विस्तीर्ण हो गया मानों खल का अपयश धरती की ओर दौड़ रहा हो।

चन्द्रोदय हुआ, अर्द्धरात्रि बीत जाने पर सागरचन्द्र तन्द्रा रहित हो जाग्रत हो गया। इसी बीच कोई पुरुष पुकारता है, विलाप करता है, गिरता है। हाय! यह पिशाच मुझे मार रहा है। हा! क्या कोई समर्थ सुभट जाग रहा है जो वज्र शस्त्र इस पंजर/योगी को शरणागत करे। यह योगी मुझ निरपराधी को भयानक कपाली विद्या साध कर मार रहा है। सागरचन्द्र उसके वचनों को सुन कर हाथ में तलवार ले द्रुत गति से दौड़ पड़े और पर्वत के ऊपर उन्होंने असुरक्षित बन्धन बद्ध, कण्ठगत प्राणों वाले एक सुभट को देखा।

उसी समय कापालिक ने उक्त सुभट से कहा – मैंने तुझे उपवासपूर्वक प्राप्त किया है। निश्चित ही तू इस समय मृत्यु की दाढ़ में पड़ा है, अत: मन में अपने स्वामी को धारण कर।

कापालिक ने कृपाण निकालकर ज्यों ही उस पुरुष को मारने लगा, त्यों ही कुमार सागरचन्द्र ने उसे ललकारा – रे! रे! ठहर!! ठहर!! मुझे पाकर कौन पुरुष इसे मारने में समर्थ हो सकता है?

कुमार की वाणी को सुनकर कापालिक का चित्त भयभीत हो गया। वह सोचने लगा – यह कोई कला-प्रवीण देव है, क्योंकि मनुष्य की तो ऐसी चेष्टा हो नहीं सकती? कौन है वह दक्ष पुरुष जो मुझे नष्ट कर सके? ऐसा आशंकित होता हुआ वह क्षण भर वहीं ठहर गया। कुमार सागरचन्द्र उसकी भर्त्सना करता हुआ कहता है – रे! रे! दीन निर्दय! पापी! तू क्यों इस दीन पुरुष को मारता है? तू खोटी बुद्धि वाला कुपात्र दया धर्म से रहित, अविवेकी, मूर्ख, और कषायानुरक्त है। क्या तू यह भी नहीं जानता कि 'मनुष्य वध के समान महान् पाप नहीं होता?' यदि तुझमें शक्ति है तो रणभूमि का स्मरण कर।

कुमार के ऐसे (वीर एवं शान्त रस प्रधान) वचन सुनकर कापालिक शीघ्र ही उस गृहीत पुरुष को

छोड़कर 'मरूँगा या मारूँगा' ऐसे वचन बोलता हुआ पूरी शक्ति से कुमार की तरफ दौड़ पड़ा। कापालिक खड्ग लेकर कुमार के सामने आया और कुमार पर शीघ्र ही प्रहार करने लगा। वह कापालिक कुमार रूपी गरुड़राज को छलपूर्वक मारने की चेष्टा करने लगा। क्या नाग गरुड़राज पर पहले झपटता है? क्या पत्थर अचलमेरु को ध्वस्त कर सकता है? क्या तृणों का बड़ा सारा ढेर अग्नि को त्रस्त कर सकता है? क्या कायर शूरवीर को नष्ट करने में समर्थ हो सकता है? कदापि नहीं। उस शूरवीर कुमार ने चमचमाती हुई तलवार अपने हाथ में ली और निमिष मात्र में कापालिक की जँघा पर भरपूर प्रहार कर दिया और इस कुबुद्धि दम्भी कापालिक को व्योमस्थली पर पटक दिया।

आक्रन्दन करता हुआ वह अनेक प्रकार के वचन बोलने लगा – हे वीर पुरुष तेरे समान कौन है, जो इस पवित्र स्थल पर रहने वाले मुझ जैसे पुरुष के छलपूर्वक तलवार से मेरे अंग विदीर्ण कर सके। कुमार बोला – मेरे सारे साथी यहाँ नहीं हैं अन्यथा मेरा एक-एक सुभट ही अनेक लोगों के लिये भारी था। तुम इस पुरुष को यहाँ किस कारण से मारने के लिये लाये हो? अरे! सभी प्राणियों को अपने प्राण ही धन हैं, क्या तुम यह भी नहीं जानते हो।

मुझसे वह सारा गुप्त वृत्तान्त कहो जिसके कारण तेरी ऐसी कुबुद्धि उपजी है। वह कापालिक सारे वृत्तान्त को कहता है – हे तात! देखिये यह देव (विद्या) मेरे द्वारा छह मास में सिद्ध किया गया है। मैं इसी देव के निमित्त बलि हेतु इस सुभट को यहाँ लाया हूँ। छलपूर्वक हम दोनों ने (कपाली विद्यादेव और मैं कापालिक) इसे बन्धन बद्ध कर रखा है। हम लोग अतिशीघ्र ही इसे मारने के लिये लाये थे। मैं इसका वध कर ही रहा था कि क्षण भर में विद्या में विघ्न हो गया। इस लोक में आप ही श्रेष्ठ उपकारी हो। आपके समान कोई दूसरा सज्जन पुरुष नहीं है।

मुझ मरणासन्न का उपकार कीजिये और जो पापाहारी उत्तम धर्माक्षर हैं उन्हें मुझसे कहिये। कुमार ने कहा – मैं णमोकार मन्त्र कहता हूँ, तुम इसे मन में ध्याओ और उत्तम पद प्राप्त करो। सर्व जीवों पर उत्तम क्षमा भाव धारण करो और जिससे अनन्त दु:ख नष्ट हो जाते हैं ऐसी अनशन विधि स्वीकारो अर्थात् चारों प्रकार के आहार का त्याग करो। कुमार के ऐसे धर्म प्रिय वचनों को सुनकर कापालिक श्रद्धा और शक्त्यानुसार इस निर्मल अवलम्बन को ग्रहण कर शीघ्र मर गया।

कापालिक मरकर व्यन्तर कुल में उत्पन्न हुआ। वहाँ वह निर्मल वैक्रियक शरीर एवं अष्ट ऋद्धियों से समृद्ध हुआ जैसे रसवादी स्वर्ण रूप गुण की सिद्धि हेतु पारदादि कुधातुओं को इकट्टा करते हैं।

जैसे रस विद्या का जानकार पारद का संचय कर आसक्ति मूलक स्वर्ण ही निर्मित करता है वैसे ही उस कापालिक ने सम्यक् धर्म श्रवण करके भी संसार वर्धक व्यन्तर योनि में ही उत्पन्न होकर तद्योग्य अणिमा-महिमा इत्यादि अष्ट ऋद्‍ि रूपी कुधातु को प्राप्त किया।

कुमार ने बन्धन खोलकर उस पुरुष को शीघ्र ही मुक्त कर दिया। वह पुरुष कुमार के चरणों में

प्रणामकर चला गया। कुमार सागरचन्द्र भी विश्राम हेतु रात्रि में वहीं ठहर गये पश्चात् अपनी जन्मभूमि की ओर चल पड़े।

जिसका वदन श्रृंगार से शोभित हो रहा है ऐसा कुमार सागरचन्द्र अश्व, गज, रथ एवं पैदल सेना सहित मृगांकलेखा रूपी सरोवर के तट की ओर चल पड़ा। अपने नगर में पहुँचकर कुमार ने अपने पिता को अर्जित सम्पत्ति सौंप दी। पुनश्च विरह से जर्जरित मृगांकलेखा के उज्ज्वल भवन की ओर चल पड़े।

मृगांकलेखा के विछोह में जिसने अपनी शोभा छोड़ दी अर्थात् जो शोभा विहीन हो गया था ऐसे चन्द्रवदनी मृगांकलेखा से रहित भवन को कुमार ने देखा। वह भवन वचन और नयन से रहित था अर्थात् न जहाँ पर कोई शब्द सुनाई दे रहा था, न ही कोई नेत्रों का विषय बन रहा था।

शंकित चित्त हो कुमार सोचने लगा – 'क्या वह अपने पिता के घर तो नहीं चली गई? अथवा भाग्य से हताश हो कहीं अन्यत्र तो सुशोभित नहीं हो रही है?

जाकर माता से पूछता है – हे अम्ब! मेरे हृदय के हर्ष रूपी मूल का अंकुर एवं जल प्रवाह को प्रवाहित करने वाली रेखा अर्थात् चन्द्रकान्त मणिरूप मृगांकलेखा कहाँ है?

पुत्र के इस प्रकार के वचनों को सुनकर विध्वंस कत्री, धृष्टा पद्मा माता भयभीत मन से कहती है – हे पुत्र! उसका नाम भी मत ले।

हे वत्स! तुम्हारे जाने के पश्चात् उस स्त्री ने कुल को कलंकित कर दिया। वह गर्विणी गर्भवती हो गई इसलिये मेरे द्वारा निर्वासित कर दी गई।

माता के वचनों को सुनकर कुमार सागरचन्द्र के सिर पर वज्रपात हो गया। वह मूर्च्छित हो पंखहीन पक्षी की तरह पृथ्वी पर गिर पड़ा।

हाहाकार करते हुये परिजन वृन्द कुमार की ओर दौड़ पड़े। नाना विकल्प करते हुये रुदन करने लगे और बड़े-बड़े पंखों से हवा करके कुमार को मूर्च्छा रहित करने लगे। सचैतन्य होकर कुमार बार-बार उच्च एवं करुण स्वर में विलाप करने लगा – हे रमणी! हे मनोहर रमणीक देहवाली मृगांकलेखा! तू कहाँ चली गई।

वह कुमार मृगांकलेखा प्रिया के लिये बेशकीमती मणि, उत्तमोत्तम आभूषण और अत्यन्त शोभायमान देव वस्त्र लाया था।

पुन: माता को पूछने लगा – हे माँ! कह तेरी पुत्रवधू कहाँ तिष्ठती है? बार-बार तनुज के वचनों को सुनकर मौन त्याग कर माता कहने लगी।

मुझ पापिनी ने दोष प्रकट करके क्रोधपूर्वक उसे धाय सहित नगरी से निकाल दिया और उसके माता-पिता ने भी उसका निरादर कर दिया। अथवा एक माँ ने एक माँ को नष्ट कर दिया, मुझ पापिनी ने उसे सदोष देखकर दासी के साथ नगर से निकाल दिया।

हे पुत्र! तेरे परिणय हेतु तुम्हारे मामा की गुणवन्त मृगनयनी, रूपराशि, अत्यन्त दक्ष अनेक सुन्दर कन्याएँ हैं।

कुमार सागरचन्द्र कहता है – हे अम्बे! यह आपकी बुद्धि की चालाकी है, जो आपने उतावली में उत्तम बाला को निर्वासित कर दिया। हे माँ! तुमने मेरी मुद्रा को क्यों नहीं देखा?

श्रेष्ठ नारी रत्न को मन में धारण करता हुआ कुमार चिन्तासागर में डूब गया। हाय! पति ने उसका परित्याग कर दिया। हाय! सासू ने उसे घर से निकाल दिया और माता-पिता भी अपनी पुत्री से विरक्त हो गये। हे सुकुमार बाले! तेरा हृदय तो स्नेह का घर है। हाय! हाय! गर्भस्थ शिशु के भार से आलस्य युक्त देह वाली मेरी प्रिया तू कैसी होगी? रात्रि में शून्य वनों की भूमि पर तू कैसे ठहरती होगी? कुमार अपने सारे इष्ट पुरुषों को दूर कर स्वयं दुःखी होकर वन में चला गया।

जहाँ पर मृग-शत्रुओं/सिंहों ने बहुत से गज यूथों के गण्डस्थल विदीर्ण किये थे। जहाँ भूगत कन्दराओं के द्वार पर सूअर घुर-घुरा रहे थे। जहाँ जंगल में अजगर फुँफकार रहे थे और जहाँ वन में लम्बी-लम्बी आकृतियाँ (पक्ष में शेरनी) घूम रही थी। जहाँ का दुर्भेद्य, दुर्गम गहन अरण्य जंगली महिषा/भैसों से व्याप्त था। वन के इन विचित्र कारणों को देखकर, 'हा कान्ते! तुम कहाँ हो' ऐसा विलाप करता हुआ कुमार पर्वत पर चढ़ गया। मूर्च्छित होकर वह पर्वत के नीचे गिर पड़ा। वहीं पर्वत पर खड़े देव ने उसकी रक्षा कर कुमार को ऊँची चट्टान पर रख दिया।

वह प्रत्यक्ष प्रकट हो हाथ जोड़कर कहने लगा – मैं वही योगी प्रतिसार नामक राजा हूँ (कापालिक)। जिसे आपने मरण के समय पर णमोकार मन्त्र दिया था। आपके द्वारा दिये गये मन्त्र के प्रसाद से मैं व्यन्तर जाति में देव हुआ हूँ। आसन कम्पित होने से मैं यहाँ आया हूँ। साम्य भाव से शीश झुकाकर देव कहने लगा- हे भव्य! मैं जो कुछ कहता हूँ उसे दृढ़ चित्त होकर सुनिये। आप दुःखी मत होइये, आपकी प्रिया अवश्य मिलेगी। शीघ्र ही सिद्धार्थ नगर में उनका संयोग होगा। व्यन्तर देव की ऐसी अमृत सिक्त देव-वाणी को सुनकर कुमार सागरचन्द्र कहता है – 'तुम मेरे परम मित्र हो'।

देव ने कुमार को मृदु वचनों से आश्वासित किया। कुमार को सन्तोष हो जने पर वह देव अपने स्थान पर चला गया। जब कुमार सागरचन्द्र शीघ्रता से चलने लग, तब किसी कौतूहली देव ने मार्ग में विघ्न उपस्थित कर दिया। पर्वत पर काल-सम अन्धेरा छा गया। कड़कड़ करते हुये वृक्षों की सूखी डालियाँ खण्ड-खण्ड हो गिरने लगी। सागरचन्द्र के सामने ही चक्रवात वायु चलने लगी और बहुत सारे अपशकुनों/खोटे निमित्तों ने उसे घेर लिया। उसकी वाम सुलोचना (बाईं आँख) और वाम भुजा फड़कने लगी। कुमार उसी वक्त मन में विचार करता है। हा! मेरा पवित्र मनोरथ भग्न हो गया।

सिद्धार्थपुर में मेरी मृगनयनी की क्या कथा होगी? हाय! हाय! इन खोटे निमित्तों ने मेरी लक्ष्मी का विनाश कर दिया। तत्क्षण उसे सिंह, हाथी तथा जिनकी दाढ़ें अत्यन्त विकराल हैं, ऐसे शूकर दिखलाई देने लगे किन्तु साहसपूर्वक वह सघन वन में प्रविष्ट हो गया।

जिस वन में मृगांकलेखा मिलेगी मैं पुनः उसी वन में पीछे चलता हूँ या तो 'पूर्ण चन्द्रवदनी मृगांकलेखा' मुझे मिलेगी या मैं अपने इस शरीर को यम के मुख में डाल दूँगा।

कुमार हृदय को आनन्द देने वाले प्रिय खड्गरूपी पुरुष के साथ आठों दिशाओं में घूमता हुआ अकेला ही चल पड़ा। अहो! स्नेह बड़ा दुरन्त है।

प्रत्येक वृक्ष से पूछता हुआ, प्रत्येक कन्दराओं और देव-मन्दिरों में देखता हुआ, प्रत्येक वृक्ष के नीचे रोता हुआ, प्रत्येक नगर में गुप्त परामर्श करता हुआ, प्रत्येक नदी तटों के मध्य देखता हुआ, पद-पद पर तरुणियों की मुकुटमणि तरुण प्रिया का स्मरण करता हुआ कहता है - हे सहस्र दल कमल के समान मुख वाली बाले! शशिलेखा मैं तुझे कहाँ देखूँ।

प्रमुख हरिणी को सामने देखकर कहता है - हे मृगी! तू चोरी करने में बड़ी दक्षा मालूम पड़ती है। तू मेरी प्रिया के नेत्रों को चुराकर वन में निवास कर रही है।

रे कमल ! तू 'उसके मुख कमल की शोभाश्री' को अपहृत कर जल-दुर्ग में बस रहा है। यह तो अच्छा ही है कि तुम्हारे केश नहीं है, नहीं तो उसके केशों की शोभा को हरण कर तुम शक्तिधारी (कार्तिकेय) हो जाते। मेरी प्रिया का कर पल्लव निश्चित ही शोभा को प्राप्त नहीं हो रहा होगा? क्योंकि लगता है, रे अशोक! तेरी शिखा के आसक्त पल्लवों ने उसकी शोभा को चुरा लिया है और रे हंसी! तुम मृगांकलेखा की सुन्दर गति को चुराकर मानस सरोवर में चली जाती हो।

अरे रे! चोर चन्द्र! क्यों तू मृगांकलेखा रूपी चकवी का वियोग करता है। क्यों तू दुर्गम नभ मार्ग से उसके निर्मल कपोलों की शोभाश्री को चुरा रहा है।

हे बिम्बौष्ठी लक्ष्मी! तूने सरोवरों से कमलों की पंक्तियाँ चुरा ली अर्थात् तू कमल पत्र के समान गुलाबी अधरों वाली हो गई। अब तो पृथ्वी पर जो मेरी पत्नी रूपी दूसरी लक्ष्मी उत्पन्न हुई है उसे अक्षत खड़ी रहने दे अर्थात् उसे छोड़ दे।

इसी बीच कामरूपी पिशाच से उन्मत्त हेडम्ब नामक राक्षस सागरचन्द्र के समक्ष प्रत्यक्ष प्रकट होकर कौतूहल पूर्वक कहने लगा। हे मूढ़! मृगी और मृगांक (चन्द्रमा) वगैरह से पूछता है? मुझ अकेले से पूछ, 'तेरी वह मृगनयनी प्रिया' मेरे द्वारा यहीं पर निगल ली गई।

राक्षस के ऐसे वचन सुनकर दुर्दान्त कृतान्त के दन्त रूपी यन्त्र के समान भृत्युरूपी काल को सहसा आया हुआ देखकर सागरचन्द्र उसकी ओर दौड़ पड़ा।

नभ मणि चन्द्र उदित हो गया। कुमार तलवार निकालकर सोत्साह आकाश की ओर उछल पड़ा। दोनों का आपस में युद्ध होने लगा। कुमार ने उस अमर पर चित्ताकर्षक प्रहार किया।

तलवार के भग्न हो जाने पर कुमार ने एक वृक्ष को जड़ से उखाड़कर एकाएक राक्षस के सिर पर दे मारा। वह राक्षस तुरन्त दुगुना हो गया।

कुमार ने पुन: मस्तक पर वृक्ष का प्रहार किया वह राक्षस पुन: सागरचन्द्र के सम्मुख दुगुना दिखलाई देने लगा अर्थात् उसका शरीर पहले की अपेक्षा दूना लम्बा हो गया। कुमार अपने चित्त में श्रेष्ठ परमेष्ठी वाचक मन्त्र का स्मरण करने लगा।

उस मन्त्र के प्रभाव से राक्षस का उत्साह नष्ट हो गया। वह विनीत भाव को प्राप्त हो वैसे ही विलीन हो गया जैसे प्रचण्ड सूर्य के प्रताप से हिम पिघल जाता है।

कुमार सिद्धार्थपुर का स्मरण करता हुआ अपनी प्रिया को निहारता हुआ अत्यन्त आकुल होकर मार्ग पर दौड़ता है। आक्रन्दन करता है और अपने इस जन्म की निन्दा करता है। विरहातुर होने से उसका सारा शरीर तपने लगा।

सिद्धार्थपुर का स्मरण करते-करते वहाँ की सरिता और सरोवरों को देखते-देखते सघन तरुवरों के मध्य अपनी पत्नी को खोजते हुये उसका बहुत समय बीत गया। अब उसका साहस और शक्ति क्षीण हो गई।

जिसका मन अब आसाधित हो गया है अर्थात् अब वश में नहीं रहता ऐसा विरह से दु:खी वह सागरचन्द्र विपुल मात्रा में तृण एवं लकड़ियों को इकट्ठा करने लगा है। जैसे ही चिताग्नि प्रज्ज्वलित हुई, वैसे ही वह पर्वत के शिखर पर चढ़ गया और उच्च स्वर से कहने लगा - हे जल, थल, नभ-देवों! हे लोकपाल वन देवता सभी लोग सुनो, मेरी पत्नी आजन्म निर्दोष है। वह पुण्यात्मा दु:खसागर में मारी गई। वह श्रेष्ठ नारी रत्न सुशीला शुद्ध भाव वाली है।

अरण्य क्षेत्र में भटकती हुई उस सती को जीवन-मरण सम्बन्धी सुख भी नहीं मिला। अर्थात् ना तो वह जी सकी न ही मर सकी। मैं उसकी दशा को नहीं जान सका इसीलिये इस विस्तीर्ण पर्वत पर चढ़ आया हूँ। 'मैं इस धगधगाती अग्नि ज्वाला में कूदता हूँ', ऐसा कहकर कूदते हुये उस कुमार को तत्काल वहीं स्थित देव ने पकड़ लिया। देव बोला - हे श्रेष्ठ योद्धा! नर पुंगवों को अपघात मरण शोभा नहीं देता। मैं वहीं देव हूँ। मेरे द्वारा ही कहा गया था कि सिद्धार्थपुर में आपकी प्रिया मिलेगी।

आप परीक्षा करने के लिये यहाँ आये हो। मैं असत्य वचन नहीं बोलता। अरे वह राक्षस तो पापी है। निश्चित ही वहीं सिद्धार्थपुर में आपका पुत्र मिलेगा और वहीं पर चित्रलेखा भी मिलेगी। हे वत्स! सभी का मिलाप शीघ्र ही होगा। कायर मत होइये, हे सुविज्ञ! स्वस्थ होइये। इतना कहकर वह देव अपनी निवास भूमि पर चला गया एवं देव वचनों को श्रवण कर कुमार सागरचन्द्र की टूटी हुई शक्ति स्थिर हो गई अर्थात् वह शक्तिशाली हो गया। मन से मरने की इच्छा को निकाल दिया और आगे निविड़ वन-प्रान्तर में चला जाता है।

मेरा मनुष्य जन्म कृतार्थ हो गया। जो कर्म मुझ जीते हुये के लिये जो प्रिय था वह शुभ कर्म उदित हुआ

अर्थात् मेरा मनोरथ सफल हुआ। पुन: थोड़ी-सी दूर पर्वत पर जब वह गया तो वहाँ उसने विलाप करती हुई एक स्त्री को सुना।

हाय! गुणवन्त सुज्ञानी सागरचन्द्र! हा सखी शशिलेखा!! मैं आप लोगों को इस निर्जन निविडारण्य में कहाँ प्राप्त करूँ? कहाँ देखूँ? कहाँ लखूँ? अहोभाग्य की मारी मुझे मृत्यु ही श्रेष्ठ है।

हा! दिव्य नारी! हाय मेरी सखी! तू पति द्वारा त्यक्त है तथा मेरे साथ माता-पिता के द्वारा निर्वासित है और अब मेरे द्वारा भी छोड़ दी गई हो। हा सखी! तू कहाँ होगी?

हा! चन्द्रलेखा तू तो दु:ख की रेखा हो गई। मुझे मेरा दु:ख नहीं है, मुझे तेरे शरीर सम्बन्धी दु:ख है। हा! सुकुमार बाले! तू गर्भ के भार से युक्त है और इस सघन गहन वन में मेरे द्वारा एकाकी छोड़ दी गई। हाय! हाय!! तूने और मैंने ऐसा क्या निदान किया, जो इस भव में घोरानुघोर दु:ख दे रहा है। जो पूर्वजन्म में एक साथ कर्मोपार्जित किये हैं वे ही इस समय उदय में आ रहे हैं। लोग कहते हैं कि मरण के समय अतितीव्र दु:ख होता है किन्तु मुझमें उससे भी अधिक दु:ख इस समय प्रवर्तित हो रहा है।

हा देव! मेरी मौत भी तो नहीं आ रही है। सच है कर्मशत्रु आजन्म नहीं छोड़ते। कुमार सागरचन्द्र चित्रलेखा के वचनों से सब कुछ समझ गया और उसी पथ की ओर चल पड़ा। चित्रलेखा के निकट आकर अत्यन्त दीन/करुण शब्दों में पूछने लगा - हे भद्रे! कहो मेरी प्रिया कहाँ है? सागरचन्द्र को पाकर चित्रलेखा का आनन्द प्रवर्धमान हो गया, वह तन्द्रा रहित हो गई। उसे इतना हर्ष हुआ जैसे पावस को पाकर मयूर हर्षित होता है अथवा मानों प्रवासी प्रिय पति घर लौट आया हो अथवा रसवादी को रस विद्या सिद्ध हो गई हो अथवा नारायण और बलभद्र स्नेह से सदा से सन्नद्ध हो गये हो।

वह आनन्दित हो पूर्व का सारा वृत्तान्त प्रकाशित करती है। कहती है - सासू और माता ने जब निष्कासित किया तब सघन जंगल में आपके नगर की ओर जाता हुआ एक चित्रगुप्त नामक सार्थवाह हम लोगों का सहाई हुआ। उस सार्थवाह ने करुणापूर्वक कहा- हे पुत्री! हम लोग उज्जयिनी नगरी के राजा के कटक की ओर जा रहे हैं आप लोग भी हमारे साथ चलिये।

हे तात! हम दोनों सार्थवाह के साथ आ रहे थे, मैं पथ भ्रष्ट हो गई अर्थात् मार्ग भूल गई सो मुझे अकेला देख किरात ने पकड़ लिया। वह बेचारा मुझे अपने स्वामी पल्लीपति के पास ले गया और मैं वहाँ चिरकाल तक पाप का फल भोगती रही। जहाँ मूल से उखाड़ी गई लताओं के समान किरातों की पल्ली अर्थात् चोरों का गहन स्थान था वहीं मैंने निवास किया। एक दिन श्रीविजय नामक नृपति ने उन चोरों को बन्दी बना दिया और तभी उन्होंने मेरी दु:ख की बेलि क्षण भर में नष्ट कर दी। मैं कष्टपूर्वक अनुक्रम से रात-दिन अपनी सामर्थ्यानुसार गमन करती हुई यहाँ आई हूँ।

उस चित्रलेखा नारी के वचनों को श्रवणकर सागरचन्द्र ने भी अपना पूर्व वृत्तान्त (मृगांकलेखा से सहवास से लेकर युद्ध से विजयश्री वरण, माता-पिता से मिलन, सती का न मिलना आदि को लेकर

चिताग्नि में कूदते हुये देव द्वारा बचाये जाने तक) प्रकट किया। चित्रलेखा से मिलने पर सागरचन्द्र के सारे हर्ष-विषाद क्षण में नष्ट हो गये।

पुनरपि वह सागरचन्द्र चित्रलेखा के साथ मार्ग में उल्लसित चित्त से वार्त्तालाप करता हुआ सिद्धार्थपुर के निकट पहुँच गया।

वहाँ के कूप, वापी, सरोवर, कमल तालाब, सघन उपवन उत्तम शोभा को धारण करते थे। वहीं पर सुन्दर विविध वर्णों वाली पटकुटी थी। जिस पर कृष्ण, रक्त एवं श्वेत वर्ण की समान ध्वजाएँ लहरा रही थीं। वहाँ पर अनेक महिष/भैंसा, वृषभ एवं ऊँट गर्जना कर रहे थे तथा जहाँ गायों के लिये ऊँचे प्राकार सजे हुये थे। उस पटकुटी में किंकर पुरुषों का समूह जिसकी सेवा कर रहा था ऐसे एक सार्थवाहाधिपति को सागरचन्द्र ने देखा। उसकी शोभा बसन्त ऋतु के समान थी तथा देह दीप्ति बसन्त शोभा से भी अधिक थी। सज्जन पुरुष उत्तम शब्दों द्वारा उसका यशोगान करते हुये नमस्कार कर रहे थे।

सागरचन्द्र उस अनिन्द्य बाल नायक को देखता है तथा उसकी अनुपम शोभा को अनिमेष निहारता है। उसके दर्शन मात्र से सागरचन्द्र को अत्यन्त आनन्द हुआ। इतने में वह बाल नायक सघन जंगल 'जहाँ नाना रंगों वाली ध्वजाओं एवं श्रुद्र घंटिकाओं से अलंकृत ऋषभ जिनेश्वर का उतुंग जिनालय था' में चला गया। मन चिन्तित चिन्तामणि रत्न के समान उस चैत्यालय में कुमार सुरेन्द्रदत्त नित्यार्चन कर चतुर्विध संघ को दान देता है। जहाँ के भविकगण जिनेश को नित्य प्रति नमन करते हैं तथा भृत्य की भाँति गुरु भक्ति में तत्पर है।

परस्पर विनय करते हुये वहाँ के विनयशील प्राणी चतुर्विध संघ से मिलते हैं अर्थात् दर्शन-वन्दन करते हैं। तदनन्तर नायक कुमार सुरेन्द्रदत्त मन में सारभूत धर्म का चिन्तन करता है एवं नन्दीश्वर महापर्व में अष्टाहिन्क का भव्योत्सव करता है।

वह कुमार विद्या, विलास, सुयश: कीर्ति एवं मनुष्य जन्म रूप फल को प्रदान करने वाली तथा अपने कुल धर्म-शोभा एवं गुणानुरूप प्रचुर द्रव्य दान द्वारा महत्ती धर्म प्रभावना करता है। तन, धन, वैभव, भूमि, सिंह, गज, देश, कोष तथा जीवनाभिलाषा ये सर्व पदार्थ तृण के समान तुच्छ हैं; केवल एक धर्म कर्म ही भारी अर्थात् महिमावन्त है। ऐसा सोचकर कुमार सुरेन्द्रदत्त ने महामह पूजा को रचा, जिसे जानकर नगर के सकल नर-नारी आनन्दित हुये एवं कौतुकवश देखने के लिये ऋषभ देवालय को प्राप्त हुये।

जिन चैत्यालय में नगरवासियों द्वारा भव्य गीत गाये जाते हैं, भावपूर्वक नृत्य किया जाता है, उच्च स्वर में सामोद वाद्य बजाये जाते हैं, दान दिया जाता है, जिनेन्द्र ऋषभदेव की महार्चना की जाती है, इस प्रकार सभी अपने पापों को क्षीण करते हैं।

वह मृगांकलेखा भी जिन-वन्दन एवं जिनवर भक्ति निमित्त द्रुत गति से ऋषभ जिनमन्दिर पहुँची। वहाँ वह सुरेन्द्रदत्त को देखती है। उसका हँसता हुआ मुख ऐसा लग रहा था मानों शतदल कमल ही हो। क्या

यह मेरा आत्मीय है अथवा मेरा पुत्र है? अथवा मेरी जाति का है ऐसा विचार ही कर रही थी कि उसके उरोजों में दूध उत्पन्न हो गया।

यदि यह मेरे मन प्रमाण है अर्थात् मेरा पुत्र है तो निश्चित ही इस बालक का मन भी मेरे समान होगा। इसके परिणाम मेरे जैसे ही होंगे अर्थात् जैसे मेरे मन में यह भाव पैदा हो रहा है कि 'यह मेरा पुत्र है' वैसा ही इसके मन में भी 'यह मेरी माता होगी' ऐसा भाव उत्पन्न हो रहा होगा।

'क्या यह मेरी माता होगी?' ऐसा अपने चित्त में चिन्ता करता हुआ कुमार उसे अनिमेष नेत्रों से निहारने लगा। इसी बीच संयोग से एक घटना घटी।

चक्रेश्वरी देवी प्रकट होकर कहती है - हे भद्रे! मृगांकलेखे! यह तुम्हारा वही पुत्र है जो तेरे द्वारा भूमि पर छोड़ा गया था और सुरेन्द्रदत्त से कहने लगी। हे वत्स! संशय में डूबे क्यों बैठो हो? तुझे यह तेरी माता ऋषभ जिनेश्वर के प्रसाद से ही प्राप्त हुई है। सुरेन्द्रदत्त अपनी माता को पाकर माँ के निकट जाकर उनके चरण कमलों में भक्तिपूर्वक प्रणाम करता है। हर्ष से भर गया है कण्ठ जिसका, सजल नेत्र झर रहे हैं जिसके ऐसा पुत्र अपनी माता के चरण कमलों को नेत्र प्रवाह से सींचने लगा। पुत्र के ऐसा करने पर मृगांकलेखा ने सहसा उसे अपने अंक में भर लिया और वृत्तान्त पूछने लगी, पुत्र ने अपनी सारी कथा कह सुनाई। जिसे सुनकर कोयल के समान मधुर है कण्ठ जिसका ऐसी नारी/मृगांकलेखा कहती है - हे पुत्र! उम्र भर जीओ। तुम्हारे मनोरथ नित्य ही प्रवर्धमान हों। पुन: कहती है - हे श्रेष्ठ युवती धनवती तेरे सुयश की रेखा पृथ्वी तल पर सदा ही बढ़ती रहे जो आपने मेरे इस पुत्र को बालपन से लेकर अब तक इतना बड़ा किया। मृगांकलेखा ने पुत्र जन्म पर की जाने वाली बधाइयों को अत्यन्त उत्सवपूर्वक किया एवं पुत्रोत्सव से भी कई गुने अधिक जिनेन्द्र गृह में मंगल गीत गाये।

प्रभु को आशीष कर चक्रेश्वरी बोली - हे सुत! तेरे पिता का मिलाप इसी माह में दानशाला में होगा, सो तू वहीं उनकी प्रतीक्षा कर।

हे पुत्र! तुम उसी स्थान अर्थात् दानशाला में ठहरो। मैं सदा की भाँति जहाँ मेरा आवास है वहीं जाती हूँ, क्योंकि इस समय नगरी में जाकर आपके पिता को वृत्तान्त जताना मेरे लिये असाध्य कार्य है। जब चक्रेश्वरी इस प्रकार के वचन कह रही थी तब मृगांकलेखा की सारी देह रोमांचित हो पुलकित हो गई। कंचुकी के सन्धि समूह टूट गये और सहसा ही उसकी बाईं भुजा और बायाँ स्कन्ध फरकने लगा, उसका वाम नेत्र भी फरकने लगा। फरकता हुआ वह वाम नेत्र ऐसा लग रहा था मानों पति-पत्नी के मिलन को ही कह रहा हो।

अपनी सारी वार्त्ता से बालक को स्वस्थ चित्त कर वह बाला आनन्दित व प्रफुल्लित होती हुई दानशाला की ओर चली गई। इधर कुछ समय के पश्चात् (अष्टाह्निकोत्सव समापन के पश्चात्) बालक सुरेन्द्रदत्त दानशाला में जाकर अत्युत्कण्ठा से अपनी माता से मिलता है। उधर दूसरी घटना घटती है। श्रेष्ठ

सुविज्ञ सागरचन्द्र अपनी प्रिया को नगरी में पूछता, निहारता फिरता है। निहारते-निहारते पत्तन काननों को प्राप्त होता हुआ वहाँ एक बाल नायक को देखता है, मन-ही-मन विचारता है कि यह बालक कोई सामान्य बालक नहीं है, यह तो निश्चित ही कोई राजपुत्र दिखलाई पड़ता है। इसकी अनुपम शोभा है। निसन्देह यह कला-प्रवीण है। लगता है यह देव और गुरु का भक्त है, दीनों का पोषक है। इसके मुख की सुषमा और दीप्ति विकसित कमल की भाँति है। उसे निहारता हुआ मैत्री भाव से उसके निकट जा पहुँचा, सो वह बालक सुरेन्द्रदत्त भी परस्पर बढ़ते हुये स्नेह से अतिशीघ्र उठकर सागरचन्द्र का अभ्युत्थान अर्थात् यथायोग्य विनय करने लगा। कुमार सुरेन्द्रदत्त अपनी आकृति (पिता को देखकर) से जान लेता है कि यह मेरे पिताश्री हैं और सागरचन्द्र अपने मन में मान लेता है कि यह मेरा अपना जाया पुत्र है। तत्पश्चात् सुरेन्द्रदत्त ने सागरचन्द्र से उनका स्थान और क्षेत्रादि पूछा, सागरचन्द्र सुरेन्द्रदत्त से अपना भेद कहने लगा - मेरी जिस नगरी का नाम अवन्ति है, मैं वहीं के श्रेष्ठी का पुत्र हूँ और मृगांकलेखा का प्राण-वल्लभ हूँ। प्राण-प्रिया के वियोग से भटकता हुआ यहाँ आया हूँ। करुणा करके सुरबाला (चक्रेश्वरी देवी) ने मुझे कहा था, हे पुत्र! तुम्हारी मनोहर गुणवन्ती प्रिया सिद्धार्थपुर नगर में है। हम दोनों का संयोग वहीं पर होगा परन्तु हे पुत्र! तुम बाल अवस्था में यहाँ क्यों आये हो? लगता है आपके माता-पिता पत्थर हृदय है; जो तुझ जैसे बालक को विदेश भेजकर निज गृह में रात्रि में सुखपूर्वक शयन करते हैं।

हे पुत्र! अपनी जन्मभूमि, अपने परिजन, अपने कुल और बल और यहाँ आने का कारण कहिये। आपका कौनसा धर्म है? कौनसा मत है? तुम्हारे गुरु की चर्या विधि क्या है? तुम किस देव की आराधना करते हो।

सागरचन्द्र की उक्त वार्त्ता को सुनकर सुरेन्द्रदत्त ने उन्हें अपनी मुद्रा दिखलाई और निश्चित ही ये मेरे पिता हैं, ऐसा जानकर अपना शीश उनके चरण-कमलों में रख दिया है।

अपनी मुद्रा को देखकर सागरचन्द्र सहसा अतीव हर्ष से भर गये और स्वस्थ चित्त सचेत हो पुत्र का आलिंगन करने लगे। पुन: अत्यन्त भक्ति भार से भरे पुत्र ने जो-जो घटा, सारा कह सुनाया। कुमार कहता है मुझे जैसे ही माता मिली ऐसा लगा मानों कोई पर्व ही दृष्टिगोचर हो गया हो। वे माता पश्चात् कनकध्वज राजा के साथ अपने स्थान पर लौट गई। पुत्र अपने तात से अत्यन्त मधुर वाणी में कहता है - हे तात! आप ही इन सकल ऋद्धियों को ग्रहण कीजिये अर्थात् सम्भालिये। अब मुझे क्या करना, मैं तो निर्विकल्प होकर बैठता हूँ। जब पिता-पुत्र दोनों का वार्त्तालाप हो रहा था तब उन दोनों ने आती हुई दो नारियों को देखा। चन्द्रलेखा के साथ वह चित्रलेखा भी आ रही थी। उन दोनों की सुन्दर देहयष्टि तप्त स्वर्ण के समान थी। सागरचन्द्र ने अपनी मृगलोचनी प्रिया को देखा, जो पूर्ण चन्द्रवदनी अत्यन्त सुन्दर एवं दक्षा थी। हर्षातिरेक से भर-भर आया है हृदय जिसका; ऐसी वह धर्म भार्या अपने पति के पाद-पंकजों में गिर पड़ी। जिसने अपने पति और पुत्र का मनोहर मुख देख लिया, ऐसी वह मृगांकलेखा अपने जन्म को कृतार्थ मानती है। उस समय मृगांकलेखा का जो आनन्द बढ़ रहा था उसका वर्णन बृहस्पति भी अपनी वाणी से

करने में समर्थ नहीं थे। उस समय उसे पुत्र और सखी सहित प्रिय वल्लभ के मिलाप से वन सम्बन्धी सारे कष्टों से त्राण मिल गया; क्योंकि एक दूसरे का दर्शन रूप वज्र ही दु:ख समूह रूपी पर्वत पर गिर पड़ा था।

वे जनक-जननी सौन्दर्य में मकरध्वज तुल्य अपने पुत्र सुरेन्द्रदत्त को देखते हैं तो मन में यही विचारते हैं 'हमारा जन्म सफल हो गया'। वे माता-पिता अपने पूर्व शुभ कर्मों का स्मरण करते हैं। वे चारों (सागरचन्द्र, मृगांकलेखा, सुरेन्द्रदत्त और चित्रलेखा) हर्ष रूपी अमृत के पूर से ऐसे भर गये मानों दिन में सूर्य से कमल ने जन्म पा लिया हो अर्थात् कमल वन प्रमुदित हो उठा हो। तदनन्तर मृगांकलेखा और चित्रलेखा दोनों ऐसी सन्तुष्ट हुई मानों आपाद कण्ठ पूर्ण तृप्त हो गई हों। वे दोनों चिरकाल तक पुरातन स्नेह का स्मरण कर रुदन करती रहीं। उन दोनों को पुन: इसी जन्म में जो सुख उत्पन्न हुआ वह महाकवि की वाणी के अगोचर था अर्थात् उसका वर्णन करने में महाकवि भी असमर्थ थे। तदनन्तर वे दोनों अपनी-अपनी कथा पूछती और कहती रही। जिन कर्मों ने उन्हें अनेक स्थानों में भटकाया था। चित्रलेखा के मुख से पति के 'चिताग्नि में दहन' के समाचार सुन मृगांकलेखा स्नेहाभिभूत हो पति के चरणों में लोट गई और दीर्घ नि:श्वास छोड़ती हुई चिरकाल तक रोती रही।

हाय नाथ! स्वामिन्! मेरे कारण अर्थात् मुझे प्राप्त न कर पाने के कारण आपने हुताशन में गिरने का आचरण/उद्यम किया। आपको देखकर ऐसा लगता है मानों सम्पूर्ण पृथ्वी के भयानक सघन वृक्षों के नीचे रात्रि विश्राम करके आपने अपनी भुजाओं से समुद्र तैर लिया हो।

हे प्राण वल्लभ! अग्नि प्रवेश के कारण को तो कहये। यद्यपि आप अत्यधिक विरहातुर थे तथापि नारी के कारण जो कार्य आपने किया वह उचित नहीं है। हे सुयशे! आपका सुयश भूमण्डल पर आनन्दपूर्वक फैलता रहे जिससे सागरदत्त के समस्त कुल का उद्धार हो, इस प्रकार कहती हुई वह सागरचन्द्र द्वारा भुजाओं में धारण कर ली गई अर्थात् सागरचन्द्र ने उसे भुजाओं में कस लिया और सखी सहित वाम अंक प्रदेश में (बाईं ओर) निवेसित बैठा लिया।

सागरचन्द्र कहते हैं - मेरे विरह में तेरे द्वारा जितने दु:ख सहे गये, तेरे विरह के समय मेरे द्वारा सहे गये कष्ट 'तिल तुष मात्र' भी नहीं। हे शशिलेखे! तू पवित्र देव सरिता अर्थात् गंगा नदी है। तूने सागरचन्द्र रूपी समुद्र का संग (पति) पाया है और अपने हिमकर अर्थात् चन्द्रसम पुत्र को निरख कर मेरा मन अत्यन्त आनन्दित हो रहा है।

चक्रेश्वरी देवी के द्वारा कही गई एक माह की अवधि पूर्ण हुई (पति-पुत्र का मिलाप हो गया) मृगांकलेखा का हृदय विहँसित हो रहा है तथा हृदय में जिसकी कोई सीमा नहीं ऐसा असीम हर्ष बढ़ रहा है। जब पाप कर्म खण्डित होते हैं और पुण्य कर्मों का उदय होता है तब ही जीव समग्र सुख-सम्पदाओं को प्राप्त करता है तथा उत्तम देव और मनुष्यों के सुख-भोगों को प्राप्त होता है।

तदनन्तर कनकध्वज नरेश वहाँ आये। उपवन में प्रवेश कर उन्होंने सागरचन्द्र और सुरेन्द्रदत्त का

आलिंगन कर उन दोनों से कुशल वार्त्ता पूछी। परस्पर बढ़ती हुई प्रीति से उन दोनों को शीघ्र ही गज और अश्व पर आरुढ़ कराकर तथा शशिलेखा को पालकी में बैठाकर तत्काल ही चल पड़े। उस समय नगर के अनेक प्रमुख हाटों में महान् विभूति से शोभा की गई अर्थात् उन्हें सजाया गया, बन्दीजनों को प्रचुर दान दिया गया। पुरजनों सहित दोनों ने राजा के समान नगर में प्रवेश किया।

सुन्दर भव्य भवन में उनको ठहराया गया। समादर सहित भोजन वस्त्रादि वस्तुएँ समर्पित की गई। अत्यन्त गौरव सहित अपने स्वामी कनकध्वज के आवास पर एक माह ठहरकर जब सागरचन्द्र वहाँ से चलने लगे तब नृप कनकध्वज ने सुरेन्द्रदत्त सुत को अपनी कन्या सौंप दी। गुणरेखा है सुन्दर अभिधान जिसका, कमल के समान सुन्दर चरण और नयन हैं जिसके, जो स्वच्छ और दक्ष है ऐसी अपनी अंगजा का राजा ने कुमार के साथ पाणिग्रहण कर दिया। उत्तम भोगों के संयोग से रमण करती हुई वे दोनों नारियाँ (मृगांकलेखा एवं गुणरेखा) अपने-अपने स्वामियों के साथ चल पड़ी।

माता-पिता की दर्शनेच्छा से वे सभी अनुक्रम से अपने आवासित देश की ओर आये। सुरेन्द्रदत्त और सागरचन्द्र का आगमन सुनकर अवनिसेन नृपति उनके सम्मुख आया। जो दु:खीजनों के लिये द्रव्य दान में कामधेनु के तुल्य था। सामन्त समूह के साथ नृपति अवनिसेन और श्रेष्ठी सागरदत्त सागरचन्द्र के समीप पहुँचे। सभी के परस्पर आलिंगन और भेंट को देखकर दुर्जनों का अभिमान गलित हो गया। नगरवासी जन विभ्रमपूर्वक उनको देखते हुये अपने-अपने घर लौट आये।

सागरचन्द्र पुत्र और पत्नी सहित अपने आवास को प्राप्त हुये। गृहिणी-प्रमुखा पद्मा पुत्रवधू मृगांकलेखा पर अनुरक्त हो गई अर्थात् उसके प्रति स्नेह दर्शाने लगी। अत्यन्त स्नेह से भर गई है देह जिसकी; ऐसी पुत्रवधू मृगनयनी मृगांकलेखा ने अनुक्रम से अपने भवन में स्थित पुलकित देह वाले सास-श्वसुर के चरणों में नमस्कार किया। सागरचन्द्र ने भी अपने माता-पिता के चरणों में प्रणाम किया पश्चात् उपहार स्वरूप भेंट लेकर राजा से भेंट की और उन्हें भी शीश झुकाकर प्रणाम किया। राजा की प्रसन्नता को प्राप्त कर सागरचन्द्र का चित्त अत्यन्त हर्षित हुआ। उसने सप्त स्थानों पर अपनी विपुल-विभूति समर्पित की।

जिनबिम्ब प्रतिष्ठा कराकर चतुर्विध संघ को दान दिया तथा जिसका कोई प्रमाण नहीं, इतना धन बन्दीजनों द्वारा ढोया गया अर्थात् इतना धन दान दिया गया। सहधर्मियों से वात्सल्य एवं गुणीजनों की सेवा करता हुआ सागरचन्द्र ने विद्वानों द्वारा अनेक ग्रन्थ लिखवाये। वह सागरचन्द्र अति विनय भक्ति भावादि प्रमुख उत्सवों सहित आहार देता हुआ सुशोभित होता था। निश्चित ही जब आनन्दपूर्वक समय बीत रहा था तभी तीर्थ स्थापन कर रथयात्रा निकाली गई। अभिषेक अर्चना और दानादि कर्म प्रति नित्य होने लगे। सागरचन्द्र के गृह से किसी भी दिन कोई भी भृत्य सूना नहीं जाता था अर्थात् ऐसा कोई भृत्य न था जिसे दान न दिया जाता हो। धर्मध्यान में स्थित दम्पत्ति के दिन-रैन बीतने लगें वे एक क्षण के लिये भी प्रमाद का आसरा नहीं लेते थे।

सागरचन्द्र रूपी कल्पतरु है तो उसकी प्रिया मृगांकलेखा कल्पलता के समान थी। इन दोनों के रति-सुख रूपी वृक्ष से पुत्र सुरेन्द्रदत्त रूपी फल उत्पन्न हुआ। वह सागरचन्द्र रूपी कल्पवृक्ष सदा सुयश रूपी सुमनों की सुगन्ध से सुवासित रहता था।

।। इति तृतीय सन्धि समाप्तम् ।।

चतुर्थ सन्धि

अब मैं लोक में मृगांकलेखा की वैराग्य विधि कहता हूँ। जिस तरह उसने सागरचन्द्र सहित तप लक्ष्मी रूपी निधि को प्राप्त किया।

सुरेन्द्रदत्त अवनिपति की सेवा करके दान-सम्मान रूप लाभ को प्राप्त करता है। नरेन्द्र ने सुरेन्द्रदत्त को कला और गुणों में प्रवीण देखकर उसके पिता के प्रीति जनक महान् कार्यों में शेष जो राज्य का सारभूत राज भण्डार था उस नर पुंगव को सौंप दिया। सचमुच ऐसे पुत्र रत्न ही गृहस्थ की धुरा को धारा करते हैं। सच में सिंह जैसे शिशु को जनकर सिंहनी निर्भय और निरुत्तर होकर शयन करती है। गर्दभ जैसे पुत्रों को प्रसूत करने से क्या प्रयोजन? जो नित्य ही अपनी पीठ पर बोझा ढोता फिरता है।

लोक में सुपुत्र की प्राप्ति गहन वन में चन्दन वृक्ष के समान दुर्लभ है। क्या वंश की बुद्धि विट पुरुषों से होती है? अथवा ऊसर भूमि में क्या बीज वंश की वृद्धि हो सकती है? क्या नक्षत्रों का समूह ज्योतिषी चन्द्र हो सकता है अथवा क्या बहुत से दीपों से चन्द्रमा का उदय हो सकता है अथवा बहुत से उदित दीप चन्द्र की बराबरी कर सकते हैं? क्या खद्योतपति की प्रभा सूर्य समान हो सकती है? क्या बहुत से सर्प पक्षीराज गरुड़ की समानता कर सकते हैं? नहीं, वन में एक सिंह ही पर्याप्त है अनेक मृगों की क्या आवश्यकता? क्या नाना केंचुए (कृमि विशेष पेट में पैदा होने वाले कीड़े) मिलकर काले नाग समान हो सकते हैं? क्या अग्नि के एक कण सहित तृण समूह स्थिर रह सकता है? अथवा कर्म समूह विद्यमान रहते हुये क्या कभी सिद्धत्व उत्पन्न हो सकता है? अर्थात् जैसे ये समस्त असमानताएँ परस्पर असम्भावित हैं उसी प्रकार वह मृगांकलेखा का एक अकेला विशुद्ध पुत्र ही पर्याप्त था, सुखप्रद था क्योंकि असन्तुष्ट रखने वाले अनेक पुत्रों से कोई कार्य सिद्ध नहीं होता है।

उस सती का पति महिपति के समान था तथा पुत्र अत्यन्त विनीत था। मन में मान को स्थान नहीं देता था। जो सुभट धन सम्पदा को पाकर दूसरों का सम्मान नहीं करते, मन में अभिमान रखते हैं वे निश्चित ही अज्ञानी हैं, मूर्ख हैं। जो संवर सम्पदा से संयुक्त हैं वे दारिद्रय से अभीत हैं अर्थात् दरिद्रता उनके पास नहीं आती। उन धैर्यवानों को आपत्तियाँ तो स्वप्न में भी रुचिकर लगती हैं। लोक में पुरुषों के जो उत्तम गुण कहे जाते हैं वे सर्वगुण सागरचन्द्र के पुत्र में विद्यमान थे।

नि:सन्देह वह राजकार्य साधन में प्रवीण था तथा गृह भार की धुरा का धारक धन वैभव से भी अदीन/समर्थ था। जिनका पुत्र कल्पवृक्ष जैसा होता है उन माता-पिता को किसी प्रकार की चिन्ता नहीं होती।

एक दिन रात्रि में मृगांकलेखा अपने पति के सम्मुख कहती है – हे नाथ! मेरी गुप्तेच्छा सुनिये। मेरा मन अब विषयों में प्रवृत्त नहीं होना चाहता है अत: व्यर्थ के कार्यों में मनुष्य जन्म निष्फल नहीं करना चाहिये। यह संसार असार है, भोगों में भी कोई सार नहीं है। जन्म, मरण और वार्धक्य ये तीनों असाध्य रोग हैं। यह जीव नित्य ही काल–कवलित हो रहा है तथापि आत्मा और पर–पुद्गल के स्वभाव को नहीं पहचान रहा है। जिस प्रकार सागर सरिता से, राजा पृथ्वी से, अग्नि ईन्धन से और कामी पुरुष स्त्री से कभी सन्तुष्ट नहीं होते उसी प्रकार मन भी इन्द्रिय विकारों से कभी तृप्त नहीं होता, ऐसा जानकर जो दम्पत्ति जिन दीक्षा करते हैं वे ही धन्य हैं। वे संयोग–वियोग तो स्वप्न में ही प्रशंसनीय माने गये हैं वस्तुत: गृहवास और नारी तो बन्धन ही हैं।

हे वल्लभ! मेरे हृदय में सदा ही वैराग्य प्रवर्तित रहता है, अस्तु जिस प्रकार मेरा यह वैराग्य नष्ट न हो ऐसे निर्जन वन में निवास कीजिये तथा दु:खों के लिये जलांजलि दीजिये।

सागरचन्द्र कहता है – हे मृगनेत्री! सुनो, मेरा मन तो यही कहता है कि यह विभूति स्थिर नहीं है। ये पुत्र, कलत्र सभी मेघच्छाया तुल्य क्षण भंगुर है। अखिल संसार यही कहता है कि धर्म के बिना मनुष्य जन्म निष्फल है। दान, दया और दीक्षा इन तीन दकारों से ही पुरातन अशुभ कर्म निर्जीर्ण होते हैं। पूर्व प्रशस्त कर्मोदय से जीव प्रयोजनीय मनोवांछित सुखों को प्राप्त करता है। राजा ऋद्धि और राज सम्पदा को भोगता हुआ संसार से भी उत्तीर्ण हो जाता है।

समता रूपी सूख संयम से ही उत्पन्न होता है और वह संयम मनुष्य जन्म में ही सम्भव है। इस संयम एवं तज्जन्य शम सुख के अभाव में जीव जन्म–जन्म में संकटों को प्राप्त होता है। जो मनुष्य इस रहस्य को जानता है वही बुद्धिमान है।

सागरचन्द्र कहते हैं – हे देवी! मेरी मनोभिलाषा भी यही है कि अब प्रयत्नपूर्वक पंचम गति की साधना की जानी चाहिए। जीव दान से लक्ष्मी, तप से देव सुख तथा ज्ञान अर्थात् बोधि–रत्नत्रय से अन्तिम शिवपद को प्राप्त करते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है। निश्चित ही रत्नत्रय द्वारा शीघ्र ही पुण्य–पाप की शृंखलाएँ टूट जाती हैं और यह जीव आत्म शक्ति से नि:श्रेयस् सुख को प्राप्त करता है। निरहंकारी भव्य जीव अपनी आत्मा की आराधना द्वारा संसार रूपी दु:ख को जलांजलि देते हैं अर्थात् संसार दु:ख से छूट जाते हैं। इसलिये वही धर्मध्यान रूप चारित्र मेरे मन में प्रवर्धित हो रहा है। मैं भोगों से विरक्त होता हुआ उसी रत्नत्रय रूपी बोधि का स्मरण करता हूँ।

हे मृगनयनी! मुझे जब कोई गुरु अथवा ऋषि मिलेंगे तभी तुझ सहित मैं यह उचित कार्य करूँगा अर्थात् जिनदीक्षा स्वीकार करूँगा। हे सजनी! सुन, मैं तुझे अपने हृदय का गुप्त रहस्य प्रकट करता हूँ। अब मेरे मन में अहर्निश संयम भाव बढ़ता ही जा रहा है। इस प्रकार निरन्तर भाव शुद्धिपूर्वक युगल दम्पत्ति मन में विराग भाव का चिन्तन करते हुए अलुब्ध भाव से गृहाश्रम में तिष्ठते हैं। धन–धान्य तथा स्वर्ण को

निस्सार जानते हुये वे निष्काम और वैराग्य भाव से गृह में विराजते हैं। वे तन, यौवन और जीवन ओस-बिन्दुवत् नश्वर है ऐसा मन में विचारते हुये मैथुन सम्बन्धी रति-राग की निन्दा करते हैं।

तदनन्तर अवन्ती नगर के वनोद्यान में केवलज्ञानी अर्हत् देव का आगमन हुआ। जिनका पवित्र नाम युगमन्धर था, जो यश के कोष थे। जो समवसरण श्री से युक्त ऐसे लगते थे मानों वे त्रैलोक्य सूर्य हों। केवली का आगमन सुनकर नरेश्वर द्रुत गति से पुरजनों सहित वन्दनार्थ उद्यान की ओर चल पड़े। जिस प्रकार सूर्य के दर्शन पाते ही कमल विकसित हो जाते हैं उसी प्रकार केवली सूर्य के दर्शन मात्र से प्राणी लोक आनन्दित हो उठा। अत्यन्त हर्ष से भरे हुये सकल नर-नारी पारस्परिक दर्प-भाव को छोड़कर उद्यान की ओर गतिमान हुये।

सागरचन्द्र भी मृगांकलेखा एवं परिजन सहित तन्द्रा छोड़ वन्दनार्थ जाता है। सागरचन्द्र ने मन, वचन और काय तीनों योग से युक्त होकर तीन प्रदक्षिणा तथा मुनि के चरण-कमलों में गिरकर साष्टांग प्रणाम करके इस प्रकार स्तुति करने लगे - हे स्वामिन्! आपके दर्शन से मैं कृतार्थ हो गया। मैंने आपके दर्शन से सम्यग्दर्शन रूपी आत्म वस्तु को प्राप्त कर लिया। आप करुणासागर हैं, जगत्तारक हैं। भवसागर में डूबते जीवों के लिये आप ही जहाज हैं। अज्ञान-तिमिर को नष्ट करने के लिये आप ही तेजस्वी भास्कर हो। शिवकान्त के मुखारविन्द के आप ही तो मधुकर हो।

हे स्वामिन! मेरे नेत्र कृतार्थ हो गये, इन नेत्रों ने आप जैसे मोक्षगामी ऋषि का दर्शन किया। चतुर्गति रूप भव-वन में परिभ्रमण करता हुआ मेरा मनुष्य जन्म आज कृतार्थ हो गया। इस प्रकार केवली भगवान् की स्तुति करके सुविज्ञ सागरचन्द्र अपने योग्य स्थान पर बैठ गया। गणधर देव अपनी वाणी द्वारा धर्मदान करने लगे। अवनिसेन नृप को प्रमुख करके सर्व भव्य जीवों ने सप्त तत्त्व, नव पदार्थों के स्वरूप को समझा। जीव, अजीव आस्रव, पुण्य, पाप, बन्ध, संवर भावों को जाना।

गणधर देव ने जिनेन्द्र, भक्ति, दान, दया, संयम में अनुराग तथा दश प्रकार के धर्मों का व्याख्यान किया। विनय और विवेक ये दोनों रत्नत्रय के हेतु हैं ऐसा कहकर सागार धर्म की स्थिति को भी प्रकाशित किया।

तदनन्तर मृगांकलेखा कहती है - हे स्वामिन्! हम दोनों के स्नेह का अवश्य ही कोई कारण होगा अत: आप मुझसे हमारे भवान्तर कहिये। केवली के सम्मुख क्या असाध्य है। गणधर कहते हैं - भरतक्षेत्र में सिंहपुर नामक विचित्र नगरी है, जहाँ के स्वर्णमय भवन एवं रत्नों से जड़ित हैं। वहाँ हरिषेण नाम का विश्रुत राजा था। उनकी जिनसेना नामक सुन्दर पत्नी के संयोग से अनंगकुमार नामक पुत्र का जन्म हुआ। उसी नगरी में 'काम' नामक सूत्रकण्ठ अर्थात् ब्राह्मण था उसकी ब्राह्मणी रतिसेना नामक सुन्दर पत्नी थी। इन दोनों के अत्यन्त गर्वीला पुत्र उत्पन्न हुआ। हृदय से दर्पवान होने के कारण बाहर से भी उसका नाम कन्दर्प रखा गया।

शास्त्रार्थ करने वाला वह अभिमानी पाप निधि स्वरूप था। कुल का कलंक था। मतवाला रागान्ध था। गुणवान नृप नन्दन अनंगकुमार उसका अत्यन्त समीप का मित्र था। दोनों विरुद्ध स्वभावी होते हुये घुमक्कड़ प्रकृति के थे।

वह मानी, मायावी, बहुविद्या सम्पन्न सुलक्षण होते हुये भी जीवों की रक्षा नहीं करता था तथा पृथ्वी पर जितने भी प्राणी थे उन सबको तृणवत् तुच्छ समझता था।

राजपुत्र के साथ उसका बड़ा स्नेह था। वे दोनों मन से एक तन से पृथक्-पृथक् थे। वे दोनों ही घुमक्कड़ स्वभाव के थे। अस्तु नगरी में रात्रि-दिन घूमते हुये पर नारियों से रमण करते थे। सुन्दर आभूषण-विभूषण, झीने सूक्ष्म वस्त्रों को धारण कर वे दोनों एक साथ नगर की वीथियों में घूमा करते थे। जो इन दोनों को देखते वे सभी इन पर मोहित हो जाते थे और उनका गर्व कोष अभिमान रूपी पर्वत से गिर जाता था।

कुछ समय पश्चात् उसी सिंहपुरी नगरी में एक तपस्वी आया, जो अति कृशकाय, उत्कृष्ट परिणामी एवं राग से अति दूर था। 'शतकीर्ति' नाम का वह ब्रह्मचारी तपस्वी शास्त्रार्थ करने में कुशल एवं पापापहारी था। अति दुर्द्धर, घोर और वीर तप से जिसके अंग तप्त थे जिसके साथ न कोई ग्रन्थ था, न ही शरीर पर कोई वस्त्र था। वह शुद्ध स्वभावी पर स्त्रियों से पराङ्मुख तृतीय दिन दुग्ध मात्र से पारणा करता था। दुग्ध ग्रहण कर वह भोजन और जल का भी त्याग कर देता था। सारे पुरवासी उस तपस्वी के भक्त हो गये। व्याकरण, विद्यालंकार, छन्द, आगम, तर्क का श्रेष्ठ और सुन्दर विचारक यानी ज्ञाता था।

उस तपस्वी के उपदेश श्रवण किये बिना ही बहुत से स्त्री-पुरुष उसके शिष्य हो गये। उसकी कृपा से अनेक पुरुष विद्वान हो गये। निकट ही रहने वाला दर्पशील कषायानुरंजित कन्दर्प उस तपस्वी से झूठा परिहास करता है। वह कहता - रे तपस्वी! प्रतिभासित होता है कि तू सन्धि-समास से रहित है अर्थात् अनभिज्ञ है, तेरी वाणी में शुद्धाक्षर भी नहीं है अर्थात् तू शुद्ध उच्चारण करना भी नहीं जानता फिर यहाँ आकर इस प्रकार गर्व क्यों करता है। वह क्षमाधारी कहता - हाँ हमारे वचन अशुद्ध हैं और अपने मन में किञ्चित मात्र भी विरोध भाव नहीं रखता है।

वह अज्ञानी कन्दर्प ब्राह्मण उस तपस्वी की निन्दा करता हुआ कठोर दृढ़ निधत्ति जैसे पाप कर्मों को बाँधने लगा। कुछ समय पश्चात् उसी नगरी में पद्मदेव नाम था जिसका ऐसा एक ब्राह्मण आया। वह त्रिकाल कुशल और पवित्र भावों से वहाँ रहने लगा। वह निरन्तर अपनी पद्मा नामक प्रणयिनी में अनुक्त रहता था। उस ब्राह्मण दम्पत्ति से एक कन्या उत्पन्न हुई जो अति दक्षा और पूर्ण चन्द्रमुखी थी, जो ऐसी लगती थी मानों दूसरी लक्ष्मी ही हो। उस कमला नामक कन्या के सुन्दर अंग अनंगदेव द्वारा स्पष्ट/छुये हुये थे, जो ऐसे लगते थे मानों मनुष्यों को मारने हेतु फेंके गये भले ही हों। सुन्दर स्वरूप वाली उस कन्या ने हंस की चाल को भी जीत लिया था। वह कन्या ऐसी लगती मानों कोई नाग कन्या अथवा गुणशीला

अप्सरा हो। वह विप्र सुता नवयौवना होने से गर्व मुक्त थी तथा कर्म संयोग से प्रभूत वैभव की स्वामिनी थी।

वह विप्र कन्या कमला अत्यन्त निर्मल, पवित्र और उत्तम चित्त सहित भक्ति भाव पूर्वक उस लोक पूजित तपस्वी की दान–मानपूर्वक महा आराधना करती थी।

उसी सिंहपुरी नगरी में एक तरुण सुन्दर रूपवान रुद्रदत्त नामक ब्राह्मण रहता था, जो क्रियाकर्म का निन्दक था। रात–दिन सप्त व्यसनों में लिप्त रहता था।

सो एक दिन वह विप्र रुद्रदत्त रात्रि में चोर वृत्ति से लुक–छिप कर वहाँ आया, जहाँ शयनागार में विप्रसुता कमला शयन कर रही थी। वह जाग गई और उस रुद्रदत्त के स्नेह से काम पीड़ित हो हर्ष रहित विरहातुर हो दुःखी हो गई। वह कमला कहने लगी – हा विधाता! मेरे साथ तो ऐसा मत कर अर्थात् मुझे संसार में पुनः मत रच। यदि तू पुनः मेरी रचना करता ही है तो मुझे मनुष्य जन्म मत देना; क्योंकि संसार में मनुष्य जन्म में जीव कहीं वियोग को प्राप्त होता है तो कहीं शीघ्र ही पत्नी का मरण हो जाता है। यदि कर्म संयोग से मुझे कोई विज्ञ पुरुष मिल जाये तो मैं शीघ्र ही उसके साथ प्रस्थान कर जाऊँगी।

कमला के ऐसे वचन सुनकर रुद्रदत्त झट से बोला – मैं आपके स्नेह से ही यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। हे मृगाक्षि! कृपाकर मेरे साथ रति–क्रीड़ा सम्बन्धी राग कर, मेरा शरीर कामदेव की पीड़ा से पीड़ित हो रहा है। इस प्रकार एक प्रहर तक दोनों में वार्तालाप होता रहा, पश्चात् उन दोनों का मन ऐसा डोल गया जैसे भारयुक्त नाविक की नौका डोल जाती है। दोनों ने अत्यन्त स्नेह के साथ रति–क्रीड़ा, स्तन मर्दन आदि क्रियाएँ की। पश्चात् वे दोनों त्वरा गति से अपने घर से वैसे ही निकल गये जैसे भय से नष्ट हुये मृग पवन वेग से भाग खड़े होते हैं अथवा जैसे सूर्योदय होते ही अन्धकार भाग जाता है।

नूतन प्रेम की आसक्ति से भग्न हो गया है चित्त जिनका ऐसे वे दोनों मूर्ख बिना जाने ही सुख सहित एक झोपड़ी के किसी कोण में ठहर गये। जिस दिन द्विज कन्या कमला की यह घटना घटी अर्थात् वह रुद्रदत्त के साथ भागी उसी दिन शतकीर्ति नामक तपस्वी नगरवासियों से कहे बिना ही मंगल विहार कर गये। तपस्वी को उसके स्थान पर न पाकर सारी नगरी में महान् अपवाद फैल गया। कमला के माता–पिता रुदन करने लगे। अभिमानी कन्दर्प विप्र लोगों ने रहस्यमय बाते करने लगा 'निश्चित ही शतकीर्ति उस स्त्री को लेकर भाग गया है।'

सज्जनों के मन में स्वयं ही अत्यन्त विषाद और दुःख हुआ। घर–घर में अपयश फैल गया। जो दुर्जन कन्दर्प ब्राह्मण था वह हर्ष रूप जल प्रवाह से पूर्ण रूपेण भर गया अर्थात् अतिशय प्रसन्न हुआ।

'इसीलिये वह कमला इस प्रकार की तपस्वी की सुश्रुषा करती हुई निरन्तर देखी जाती थी।' दोनों का एक जैसा मन था, इसीलिये निःसन्देह ऐसा हुआ।

इस प्रकार कन्दर्प द्विज के वचनानुसार सकल नर–नारी नित्य ही शतकीर्ति की अवहेलना/निन्दा करने लगे तथा सुन्दर धर्म कार्यों से लोगों का मन विरक्त होने लगा।

पृथ्वी पर घूमता हुआ वह लम्पट तपस्वी, मुण्डित शिर, मूढ़ अधर्मी, पापी पापात्मा, अनाचारी, तपस्वी देश में प्रपञ्ची ठगियाँ था ऐसा सभी लोग मानने लगे।

उस अधर्मी कन्दर्प ब्राह्मण को आदि लेकर राजपुत्र अनंगसेन तक सभी लोग नित्य ही शतकीर्ति तपस्वी की निन्दा करने लगे। विज्ञ स्त्री–पुरुष ने अपने आपको मौन रहित कर लिया अर्थात् वे भी निन्दा करने लगे कोई भी चुप न रह सका।

जब तक किसी बात को अपनी आँखों से प्रत्यक्ष न देखो तब तक कानों पर विश्वास करने वाले अथवा कान के कच्चे मत बनो। यदि प्रत्यक्ष देख भी लो तो युक्तायुक्त/श्रेय–अश्रेय का भी विचार कर लेना चाहिये। जैसे कुन्ती के पाँच पुत्रों सहित द्रौपदी को बाहर जाती हुई देखकर एक पामरी तिरस्कारपूर्वक कहती है – यह स्त्री निर्लज्ज है जो पाँचों पुरुषों में आसक्त होकर घूम रही है।

कार्य की गति को जाने बिना श्रेष्ठ पुरुषों को उसके सम्बन्ध में कुछ भी कहना श्रेष्ठ नहीं है। जो व्यक्ति सदा अकथनीय बात को कहता है वह अनर्थदण्ड करता है।

अन्य किसी दिन उसी सिंहपुरी नगर में वही शतकीर्ति तपस्वी स्वयं ही आये। दुष्ट कन्दर्प ने लोगों के साथ शतकीर्ति को लाठियों और मुष्टियों से अतिशय रूप से पीटा।

वह उपशान्त मन वाला होकर वहीं सभी के सम्मुख गिर पड़ा। सबके समक्ष उसने सत्य बात कही और कर्म के फल पर विचार करने लगा। पापोदय से सातवें दिन उस कन्दर्प विप्र की जिह्वा दुर्गन्धित हो गई अर्थात् उसे पूति रोग हो गया। वह दुष्ट मरकर सात बार श्वान हुआ।

बार–बार/हर जन्म में उसकी जिह्वा दुर्गन्धित हो जाती थी। वह बार–बार दुःख कूप में गिरता हुआ कष्ट भोगता रहा। कर्म गति बड़ी विचित्र है। सातवीं बार श्वान मरकर वेश्यापने को प्राप्त हुआ अर्थात् कामलता नामक वेश्या हुआ। कन्दर्प ब्राह्मण जैसा विद्वान पुरुष मरकर वेश्या हो जाता है अत: हे भव्यों! कुल मद, बल मद, विद्या मद एवं राज मद को हृदय में स्थान ही मत दो।

कन्दर्प ने कर्मोदय से नीच कुल में जन्म लिया और अपार कर्म फलों को भोगा। उधर वह अनंगसेन राजकुमार (कन्दर्प का मित्र) भी संसार में परिभ्रमण करता हुआ इसी वेश्या (कन्दर्प के जीव) का भ्राता हुआ।

वह वेश्या कर्म संयोग से सुन्दर, रमणीय, मनहर, रूपवती हुई। उसका मुख पूर्णेन्दु–सम–सुन्दर था। उसके सुन्दर नेत्र मृग जैसे थे तथा उस बाला की गति हंस सदृश थी।

वह तरुण वेश्या जहाँ–जहाँ अपने नेत्रों का वलय विस्तारती थी अर्थात् जहाँ–जहाँ दृष्टि डालती थी; वहाँ–वहाँ अति विषम कामदेव के वाणों का समूह गिर पड़ता था।

कौशाम्बी नगरी के निकट जहाँ अनंगसेना नामक वेश्या रहती थी वही उसकी अत्यन्त रूपवती कामलता नामक पुत्री रहती थी, जो अपने चपल नयन रूपी वाणों से राजा को भी बींध देती थी, उस कोयल कण्ठी के नख रूपी मणि दैदीप्यमान थे। उसका शरीर तप्त स्वर्ण के समान दीप्तिवान् था। वह सुन्दरी ऐसी लगती थी मानों सुरकन्या अथवा नागकन्या हो, उसका उत्तम वेश प्रशंसनीय एवं धन्य था।

उस कौशाम्बी नगरी में जिनदास नामक सेठ रहते थे। जो नित्य जिनेन्द्रार्चन एवं पंच परमेष्ठी का ध्यान करते थे। उनकी यौवन सम्पन्न विमला प्रिया ने अतिशय रूपवन्त अनंगरुचि नामक पुत्र को जन्म दिया। वह पुत्र कमल दल के समान सुन्दर नेत्र वाला अति निपुण, कला और गुण में प्रवीण था। विद्या, बल और वैभव से वह ऐसा बलशाली था जैसे समुद्र के जल में विचरती मीन बलवती हो जाती है। जिस-जिस मार्ग से वह सुन्दर कुमार अनंगरुचि जाता था, उसे देखने हेतु युवतियों का समूह उसके पीछे-पीछे दौड़ पड़ता था। वह वणिक पुत्र ऐसा लगता था मानों कामदेव हो अथवा अमरपति इन्द्र हो। उसकी भुजाएँ अतिदीर्घ थी। वह सौभाग्यशाली व्याकरण, छन्द, काव्य और सिद्धान्त के सारभूत सर्वगुणों का ज्ञाता था।

वह गुरुभक्ति में तत्पर धर्म में संलीन था, तरुणावस्था में ही उसका राग एवं कषाय भाव क्षीण था, जो पर-स्त्रियों से पराङ्मुख था। शास्त्रार्थ करने में पृथ्वी पर जिसकी मनीषा अति पवित्र थी, जो क्षमा गुणी था तथा भोगों से रहित था, उसी तपस्वी (शतकीर्ति) का जीव ही यह अनंगरुचि के रूप में उत्पन्न हुआ। द्विज कन्या कमला के कारण वह निरपराधी शतकीर्ति तापस कूटा-पीटा जाता हुआ भी कुपित नहीं हुआ था। उसने यह सोचते हुये कि 'दूसरों के दोष विचारने वाला पुरुष मूर्ख होता है, वह भले ही श्रेष्ठ वैश्य का गृहमण्डन/तिलक भी क्यों न हो, किन्तु क्रोधी होने से दीन-हीन ही होता है, मौन धारण कर लिया।

उस तपस्वी ने स्वार्जित सामर्थ्य से सुविधि तप किया तथा कारुणिक भक्ति द्वारा श्रावक कुल प्राप्त किया। एक दिन वह अनंगरुचि अपने पैरों से पैदल ही मार्ग में आठों दिशाओं को निहारते हुये चल रहा था कि उसके द्वारा वह पूर्ण सुन्दरी कामलता (कन्दर्प का जीव) देखी गई। देखते ही उसके मन में प्रमोद उत्पन्न हो गया। पुरातन कर्म बीज के उदित होने से वह कुमार उस सुन्दरी कामलता में सरागावस्था को प्राप्त हुआ। जब दोनों की परस्पर दृष्टि मिली तब शीघ्र ही वणिक पुत्र कामदेव के वाणों से पीड़ित हो गया। वेश्या के उत्तम रूप को देखकर व्याकुल शरीर वाला वह कुमार उसके चरणों में गिर पड़ा।

आनन्दपूर्वक दोनों वेश्यालय में प्रविष्ट हुये तथा रतिरस के विलासी उन दोनों ने एक-दूसरे को स्पर्श किया। बढ़ते हुये स्नेह से उन दोनों को एक पल का अन्तर एक वर्ष के वियोग जैसा प्रतीत होता था। जैसे चन्दन वृक्ष की संगति से अन्य वृक्ष भी चन्दनत्व को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् सुरभित हो जाते हैं, वैसे ही कुमार की संगति से वह रूपी सुन्दरी जिनधर्म में स्थिर मन वाली हो गई। विकारों को छोड़कर उसने श्रावक के व्रत धारण कर लिये और निरन्तर अपने निस्सार वेश्या जन्म की निन्दा करने लगी। तीन मकारों मद्य, माँस, मधु सहित पंच-उदम्बर फलों का भी उसने परित्याग कर दिया। अब वह पवित्रा रात्रि भोजन भी नहीं करती थी।

उसने पंचाणुव्रत अंगीकार कर लिये तथा जीवन पर्यन्त के लिये उसने अपनी इन्द्रियों को दण्ड अर्थात् मन-वचन-काय को अशुभ व्यापार से नियन्त्रित कर लिया। उस सती ने अन्य पुरुष का भी त्याग कर उत्तम शील को मन में स्वीकृत कर सुन्दर काम-भाव का निवारण कर दिया।

कुलवन्ती नारियों की तरह वह सदैव अपने भवन में ही ठहरती थी तथा अपने पति अनंगरुचि के साथ रमण करती थी। पश्चात् परिजन मण्डली में मेल न होने के कारण वैश्य पुत्र अनंगरुचि ने उस गुणवती का पाणिग्रहण कर परित्याग कर दिया।

वैश्य पुत्र अनंगरुचि के संसर्ग से वह बाला जिनधर्म में निश्चल चित्तवाली हो गई थी। अहो! जीवों का गति बड़ी विचित्र है।

काललब्धिवश किरात जैसा क्रूर प्राणी भी उत्तम संगति से दयावन्त हो जाता है। सिंह जैसा क्रूर जीव संयम धारण कर लेता है और वेश्या जैसी स्त्रियाँ शील धारण कर लेती हैं।

यह जीव निगोद से निकलकर मनुष्य हो मोक्ष चला जाता है। चारित्र मार्ग पर चलकर अभव्यसेन जैसा ऋषि भी ग्रैवेयक पहुँच जाता है।

सम्यग्दर्शन के अभाव में ऋषिजन भी चतुर्गति रूप घर को नहीं छोड़ते हैं तथा सम्यग्दर्शन जिन्हें प्राप्त हो गया है वे आचरण से युक्त हो ईशत्व प्राप्त कर लोक शिखर पर जा विराजते हैं।

कामलता वेश्या की माता अनंगसेना मन में कषाय करके पुत्री के साथ निदान भाव करती है कि इस कुलटा स्त्री ने कुल रीति अर्थात् वेश्यावृत्ति की परम्परा को विनष्ट कर दिया है अत: क्षणैक में वह ईर्ष्या से जल उठती है और क्षण भर में निज चित्त में धर्म धारण करती है। इस तरह विकल्प करती हुई अनंगसेना वेश्या यम की अतिथि हो गई। संसारी जीवों के अन्तर्हित रहस्यों का भेद कोई नहीं जानता। किसी एक दिन उस उत्तम कामलता वेश्या ने सरोवर में क्रीड़ा की, पश्चात् उसी सरोवर तट पर परस्पर क्रीड़ा/रमण करते हुये विशाल नेत्र वाले हंस मिथुन को देखकर उसने कुमति विचारी अर्थात् उसके मन में खोटा विचार उत्पन्न हुआ।

उसने छलपूर्वक नर हंस को पकड़कर पीला कर दिया, जिसे देखकर हंसी किञ्चित् भयभीत हो गई। कुंकुमादि सुगन्धित द्रव्य विशेष से पंजरित अर्थात् रक्त पीत वर्णों से मिश्रित देह वाले उस हंस को कोई भी भ्रान्ति वश यह नहीं मानता था कि यह 'मराल' है। वह हंस बाला अपने पति हंस को न पाकर करुण स्वर में रोती हुई बार-बार मूर्च्छित हो जाती है, विरह-ज्वाला से काँप गया है सर्वांग जिसका ऐसी वह मराली इक्कीस घड़ी तक नि:श्वास छोड़ती हुई आक्रन्दन करती है किन्तु हंसी की दम्पत्ति सम्बन्धी कि यह 'मेरा पति हंस है' ऐसी मति भ्रम हो जाने से वह अपने प्रिय हंस के पास नहीं जाती; उससे दूर-दूर ही भागती है।

हंसी की ऐसी दशा देखकर हंस सरोवर के मध्य जल में चला गया, क्षण भर में उसका वर्ण चन्द्र के

समान धवल हो गया जिसे देख दोनों परस्पर मिल गये और स्नेहपूर्वक मिथुन क्रिया में संलग्न हो गये और उस वेश्या ने उस हंस नर के कारण हँसी-हँसी में कर्म बाँध लिया। पश्चात् उसने धर्म को धारण किया और शुभ भाव सहित समाधि मरण कर प्रथम स्वर्ग में इन्द्राणी के रूप में उत्पन्न हुई और जिनधर्म में संलग्न हो गई। वह इन्द्र की परम सन्तोषकारी सर्व देवियों में शिरोमणि अत्यन्त प्रिय थी। इन्द्र के साथ सुखपूर्वक भोग-विलासों में अनुरक्त होकर उसने पूर्णायु को प्राप्त किया अर्थात् आयु पूर्ण की।

पश्चात् प्रथम स्वर्ग से च्युत होकर वह धनसार श्रेष्ठी की पूर्णचन्द्रमुखी, अतिशय बुद्धिमती, तप्त स्वर्ण के समान उज्ज्वल देह और सुन्दराकृति वाली धर्मपुत्री तू सती मृगांकलेखा हुई है।

'कन्दर्प' नामक ब्राह्मण कामलता वेश्या की अवस्था में शील को प्राप्त कर उसी के प्रभाव से विजय की रेखा स्वरूप मृगांकलेखा हुआ तथा राजपुत्र अनंगकुमार जो कन्दर्प का मित्र था, जिसने अपने मित्र के कथन पर तपसी शतकीर्ति को पापी समझा था, वह संसार में भ्रमण करता तेरी सखी यह चित्रलेखा हुआ।

हे पुत्री! तूने तपस्वी को जो दूषण लगाया था उसी पाप के फलस्वरूप तुझे भी कलंकित होना पड़ा। तेरे (कन्दर्प) स्नेह के कारण इस चित्रलेखा (अनंगकुमार राजपुत्र) ने तपस्वी शतकीर्ति को दूषण लगाकर जो पाप बुद्धि की थी, उसके फलस्वरूप तेरे साथ यह चित्रलेखा भी दुःख को प्राप्त हुई।

हे मृगांकलेखा! तूने इक्कीस घड़ी तक हंसिनी को हंस से पृथक् करके दुःख में स्थापित किया था, इसी कारण तुझे तेरे पति से इक्कीस वर्ष के वियोग का दुःख प्राप्त हुआ है।

वह जो क्षमाधारी शतकीर्ति तपस्वी था वह वणिक पुत्र, अनंगरुचि फिर देव और मनुष्य भव प्राप्त करके तेरा पति वणिक पुत्र सागरचन्द्र हुआ है और इसी सागरचन्द्र को ही कामलता वेश्या के साथ रतिराग सम्बन्धी अधिकार प्राप्त हुआ था।

जो जीव जैसा कर्म करता है, वह स्वयं ही अपने कर्मों के विविध विपाकों को नष्ट कर विविध प्रकार के धर्म का पालन कर समीचीन प्रयत्नों के द्वारा मोक्ष प्राप्त करता है।

वह जो वेश्या की माता जिनेसना थी वह पूर्व निदान के कारण भ्रमण करके मृगांकलेखा के भर्ता की माता पद्मा कहलाई।

इस प्रकार भवान्तर श्रवणकर सागरचन्द्र और मृगांकलेखा ने राजा अवनिसेन एवं पुरजनों के साथ केवली युगमन्धर की दिव्य वाणी से धर्म के माहात्म्य को सुना।

नृपति को प्रमुख करके सभी नर-नारीजन धर्मोपदेश श्रवण कर ऋषि वर्ग के चरण-कमलों में प्रणाम कर अपने-अपने स्थान लौट गये।

सती मृगांकलेखा ने अपने पति के साथ जन्म और मृत्यु को जलांजलि देने वाले श्रेष्ठ संयम को धारण कर लिया और वे दोनों सज्जन पुरुषों के लिये संसार समुद्र से पार उतारने वाले श्रेष्ठ दान देने लगे अर्थात् रत्नत्रय का उपदेश देने लगे।

वे भव्य श्रेष्ठी सुत सागरचन्द्र अपने शरीर द्वारा तप करके शिवपुर चले गये और मृगांकलेखा अत्यन्त निन्दनीय स्त्री पर्याय को छोड़कर उत्तम देव हुई। वह सुन्दरी मनुष्य जन्म पाकर निर्वाण पद को प्राप्त करेगी।

इस संसार में शील ही सबसे बड़ा है, इसी शील से सारे कार्य सधते हैं। शील के द्वारा जीव इहलोक और परलोक में सुख प्राप्त करता है ऐसा श्री मुनिराज कहते हैं।

सती मृगांकलेखा का यह पुनीत चरित्र चिरकाल तब जब तक गगन में सूर्य और चन्द्र प्रकाशित हैं तब तक पृथ्वी पर प्राणियों के लिये आनन्दप्रद, मंगलकारी तथा धर्म प्रसंग में वृद्धिकर एवं हितकारी होवें।

।। इति चतुर्थ सन्धि समाप्तम् ।।

*****

सती मुण्डिका

11

सती राजकुमारी मुण्डिका

काशी देश की वाराणसी नगरी में सोमवंशीय राजा जितारि रहता था, उसकी रानी का नाम कनकचित्रा था और पुत्री का नाम मुण्डिका था। वह प्रतिदिन मिट्टी खाती थी जिससे धीरे-धीरे अत्यधिक रोग से ग्रस्त हो गयी। राजा के मंत्री का नाम सुदर्शन था और उसकी स्त्री का नाम सुदर्शना था। एक समय वृषभश्री आर्यिका ने सम्बोधित कर मुण्डिका को जैनी बना लिया। सत्पुरुषों का यह स्वभाव है कि वे परोपकार करते हैं। तदनन्तर निरतिचार श्रावक के व्रतों का पालन करती हुई मुण्डिका व्रत के माहात्म्य से निरोग तथा रूपवती हो गयी। उस समय आर्यिका ने कहा कि हे पुत्री! जो निर्दोष व्रत का पालन करता है वह स्वर्ग और मोक्ष का पात्र होता है, रूप और नीरोगता की क्या बात है? तत्पश्चात् व्रत का माहात्म्य सुनकर वह विशेष रूप से धर्म में आदर सहित हो गयी।

एक समय जितारि राजा ने पुत्री को नीरोग देख विवाह के निमित्त राजकुमार बुलाये और पुत्री के आगे विवाह के लिये सभी राजकुमार स्वयंवर में दिखलाये। परन्तु उसके मन में कोई भी रुचिकर नहीं लगा, पश्चात् राजपुत्र अपने स्थान पर चले गये।

एक समय तुण्डदेश के चक्रकोट नामक नगर में राजा भगदत्त रहता था। वह दानशूर, रूप सौन्दर्य आदि गुणों से सहित तथा समस्त वस्तुओं से परिपूर्ण था, परन्तु जाति से हीन था। उसकी रानी का नाम लक्ष्मीपति, मंत्री का नाम सुबुद्धि और उसकी स्त्री का नाम गुणवती था। उस भगदत्त ने मुण्डिका की याचना की।

राजा जितारि ने कहा कि हे कुजात! जो कन्या मैंने उच्च कुलीन उत्तम राजपुत्रों को नहीं दी है, अरे भगदत्त! वह कन्या तुझ पापी दासी पुत्र के लिये कैसे दूँगा? उसने कहा – हे राजन्! गुण होना चाहिये जन्म में क्या रखा है? जैसा कि कहा है –

(रेशमी वस्त्र कीड़ों से उत्पन्न होता है, सुवर्ण पाषाण से निकलता है, दूर्वा मिट्टी में पैदा होती है, चमरी रुह गाय के बालों से उत्पन्न होती है, कमल कीचड़ से जन्म लेता है, चन्द्रमा समुद्र से प्रकट होता है, नीलकमल गोबर से उद्भूत होता है, अग्नि काष्ठ से उत्पन्न होती है, मणि साँप के फण से उपलब्ध होती है और गोरोचन गाय के पित्त से प्रकट होता है।) ठीक है गुणी मनुष्य, पुण्य के उदय से प्रसिद्धि को प्राप्त होते हैं अत: जन्म से क्या होता है?

और भी कहा है –(गुण सर्वत्र पूजे जाते हैं, पिता का वंश निरर्थक है।) देखो, लोग वासुदेव–कृष्ण को नमस्कार करते हैं परन्तु उनके पिता वसुदेव को नहीं।

जितारि ने कहा – तुम गुणवान् हो तो भी तुम्हें बिल्कुल नहीं दूँगा।

जैसा कि कहा है – अरे कुक्कुर! यदि तू किसी मूर्ख द्वारा रत्नों की माला से अलंकृत कर दिया गया है तो मात्र गजराज को विदारण करने की क्रीड़ा करने वाले सिंह के साथ क्यों विरोध करता है?

तदनन्तर भगदत्त ने कहा कि हे राजन्! यदि तुम्हें राज्य से प्रयोजन है तो कन्या देओ अन्यथा राज्य और कन्या दोनों को बलपूर्वक प्राप्त कर लूँगा।

जितारि ने कहा – युद्ध में तुम्हारी अभिलाषित सभी वस्तु दूँगा अन्यथा नहीं। यह वचन सुन तीव्र क्रोध कर भगदत्त जितारि के ऊपर चढ़ पड़ा। तदनन्तर सुबुद्धि मंत्री ने कहा – हे भगदत्त! युद्ध की समस्त सामग्री इकट्ठी करके चलना है अन्यथा नाश ही होता है। जैसा कि कहा गया है –

(जो मनुष्य अपना बल जाने बिना युद्ध के सम्मुख चल देता है वह अग्नि में शलभ के समान नाश को प्राप्त होता है।)

(जिस प्रकार राजा सेवकों के बिना शोभा को प्राप्त नहीं होता और सूर्य किरणों से रहित होने पर सुशोभित नहीं होता उसी प्रकार बलवान् मनुष्य अकेला सुशोभित नहीं होता किन्तु समुदाय से बलवान् होता है।) जैसा कि तृणों से रस्सी बनाने पर हाथी बाँधा जाता है। कहा भी है –

ऐसा जानकर राजा को बुद्धिमान्, कुलीन, शूरवीर, समर्थ भक्त और कुल परम्परा से आये हुये लोगों को सेवक बनाना चाहिये।

भगदत्त राजा ने सुबुद्धि मंत्री से कहा! तुमने जो कहा है वह सब कुछ सत्य है। इसलिये हितेच्छु के वचन स्वीकृत करना चाहिये अन्यथा अनर्थ होता है। पश्चात् सब सामग्री एकत्रित कर शुभ मुहूर्त में उसने प्रस्थान करने का उद्योग किया।

इसी अवसर पर लक्ष्मीमति रानी ने कहा कि हे नाथ! व्यर्थ ही दुराग्रह क्यों किया जाता है? जहाँ दोनों की समानता हो वहीं विवाह और मित्रता आदि होती है अन्यथा नहीं। अतएव अयुक्त कार्य नहीं करना चाहिये। कहा भी है –

(जो मनुष्य न करने योग्य कार्यों में उद्योग करता है वह कील को उखाड़ने वाले वानर के समान मरण को प्राप्त होता है।)

भगदत्त ने कहा – हे मूर्ख! पुरुष–पुरुष के अन्तर में कारण है। जितारि ने मेरे सामने कहा था कि युद्ध के बीच सब कुछ दिया जाता है। यदि आज वैसा नहीं करता हूँ – उस पर चढ़ाई नहीं करता हूँ तो अन्य राजाओं के लिये मैं भी मान्य नहीं रहूँगा।

मनुष्य विज्ञान, शूरवीरता, वैभव तथा अन्य गुणों से युक्त होकर यदि क्षण भर के लिये भी जीवित रहते हैं तो सत्पुरुष उसे ही जीवित रहने का फल कहते हैं। वैसे तो कौआ भी चिरकाल तक जीवित रहता है और बलि-चढ़ोत्तरी को खाता है।

तदनन्तर बड़ी भारी तैयारी से निकल कर लगातार कई पड़ावों द्वारा भगदत्त जितारि के देश की सीमा पर पहुँच गया। लक्ष्मीमति रानी ने विचार किया कि जो होनहार है वह होगा परन्तु प्रस्थान के समय शुभ शकुन हुये थे जैसे दही, दूर्वा और अक्षतों का पात्र, जल से भरे हुये कलशों पर रखी हुई डंठल सहित कमलिनी, प्रसूता स्त्री और वीणा आदि दर्शनीय पदार्थ आगे आये हैं।

किसी गुप्तचर ने आकर जितारि राजा के आगे कहा - हे देव! भगदत्त राजा की सेना आ गयी है। तब गर्व से युक्त राजा ने कहा - अरे रंक! पृथिवी पर वह कोई वीर है जो मेरे ऊपर चढ़ाई कर सके। मेरा जितारि नाम है - मैं शत्रुओं को जीतने वाला सचमुच का जितारि हूँ। जैसा कि कहा है -

पृथिवी लोक के मध्य ऐसा न देखा गया है और न सुना गया है कि मृग सिंह पर चढ़ाई करते हैं, चन्द्रमा और सूर्य राहु पर आक्रमण करते हैं अथवा चूहे बिलावों पर चढ़ते हैं।

क्या साँप गरुड़ पर, गधे कुत्ते पर, प्राणी समूह यमराज पर और कौए बाज पक्षी पर आक्रमण करते हैं?

ठीक कहा है कि जब तक सूर्य उदित नहीं होता है तभी तक अन्धकार रहता है। इस प्रकार राजा जितारि जब तक कहता है तब तक गुप्त रूप से आकर भगदत्त राजा ने वाराणसी नगर घेर लिया। आये हुये भगदत्त का कोलाहल सुनकर जितारि बड़ी तैयारी से चतुरङ्ग सेना के साथ बाहर निकला। निकलते समय उसे अपशकुन हुये। जैसा कि कहा है -

अकाल वृष्टि, पृथिवी कम्पन, वज्रपात और भयंकर उल्कापात ये सब अनिष्ट अपशकुन प्रकट हुये मानों मित्र के समान उसे युद्ध से रोकने के लिये ही प्रकट हुये थे।

इस अवसर पर सुदर्शन मंत्री ने कहा - हे देव! कन्या देकर सुख से रहा जाये। जैसा कि कहा है -

बुद्धिमान् जन एक ग्राम का त्याग कर देश की, कुल का त्याग कर एक ग्राम की, एक व्यक्ति का त्याग कर कुल की और पृथिवी का त्याग कर अपने आपकी रक्षा करते हैं।

जितारि ने कहा - हे श्रेष्ठ मंत्रियों! भय किसलिये करते हो? मेरी तलवार का प्रहार सहन करने के लिये कौन समर्थ है? जैसा कि कहा है -

इस लोक में ऐसा कौन पुरुष है जो शिर पर वज्रपात को सह सके, ऐसा कौन मनुष्य है? जो भुजदण्डों के द्वारा अपार समुद्र को तैर सके? ऐसा कौन है? जो अग्नि शय्या पर सुख की नींद का सेवन करता हो और क्या ऐसा भी कोई है जो एक-एक ग्रास के द्वारा निरन्तर कालकूट विष का सेवन करता हो ।।367।।

पश्चात् अनुपम तैयारी से युक्त शत्रु सेना को देखकर मंत्री ने फिर कहा – हे देव! बहुत बड़ी सेना आयी है क्या किया जाये? जितारि ने कहा – हे मंत्री! पराक्रम से सिद्धि और विजय होती है बहुत सामग्री से नहीं। जैसा कि कहा है –

सूर्य के रथ को एक ही चक्र है, घोड़े नागपाश से बद्ध हैं तथा गिनती के सात ही हैं, मार्ग आलम्बन रहित–निराधार आकाश है और सारथी भी चरणों से रहित–अनुरूप है फिर भी वह प्रतिदिन अपार आकाश के अन्त को प्राप्त होता है। इससे जान पड़ता है कि महापुरुषों की क्रियासिद्धि उनके पराक्रम में रहती है उपकरण सहायक सामग्री में नहीं।

अगस्त्य ऋषि का जन्मस्थान घट था, ग्रह समूह ही उनका परिवार था, भोजपत्र उनका वस्त्र था, वन में उनका निवास था, कन्दमूल भोजन था, शरीर अस्वस्थ था और स्वभाव के शान्त थे फिर भी उन्होंने अपार समुद्र को पी लिया। इससे सिद्ध होता है कि महापुरुषों की क्रियासिद्धि–कार्य की सफलता उनके पराक्रम में रहती है उपकरणों में नहीं।

महादेव जी काम के शत्रु हैं, शीतल शरीर को धारण करने वाला चन्द्रमा उसका मंत्री है, वसन्त ऋतु सामन्त है, पुष्प बाण हैं, स्त्रियाँ सेना है और स्वयं अनङ्ग–शरीर रहित हैं फिर भी वह तीन लोक को जीत लेता है। इससे जान पड़ता है कि महापुरुषों की क्रियासिद्धि उनके पराक्रम में रहती है उपकरणों में नहीं।

शेषनाग स्वयं तिर्यञ्च योनि का है, हाथ पैरों से रहित है, विशाल शिर से सहित है, स्वभाव से ही उसमें आलस्य भरा हुआ है, और वायु रूप ग्रास के भक्षण में निरत रहता है अर्थात् वायु ही उसका भोजन है फिर वह इस विश्व को फण की मणि पर धारण कर रहा है। इससे ज्ञात होता है कि महापुरुषों की क्रियासिद्धि उनके पराक्रम में रहती है उपकरण में नहीं।

पश्चात् भगदत्त ने दूत के लक्षणों से युक्त दूत भेजा। दूत का लक्षण यह है – जो बुद्धिमान हो, वचन बोलने में चतुर हो, दूसरों के हृदय को देखने वाला हो, गम्भीर हो और सत्यवादी हो वही दूत का लक्षण है। भगदत्त ने ऐसा दूत भेजा। क्योंकि– पहले दूत भेजना चाहिये पश्चात् युद्ध की घोषणा करनी चाहिये। उसका कारण यह है कि दूत के द्वारा सबल और निर्बल सेना का बोध हो जाता है।

तदनन्तर उस दूत ने जितारि राजा के आगे जाकर कहा कि हे राजन्! मुण्डिका को देकर और महा मण्डलेश्वर भगदत्त नरेन्द्र की सेवा कर कुछ सुख से राज करो अन्यथा विनाश ही होगा।

जैसा कि कहा है–अनुचित कार्य का प्रारम्भ करना, आत्मीयजनों के साथ विरोध करना, बलिष्ठ पुरुषों के साथ ईर्ष्या करना और स्त्रियों का विश्वास करना ये मृत्यु के चार द्वार हैं।

जितारि राजा ने कहा – अरे दीन! क्या कहता है? युद्ध में मेरे आगे ये खड़े नहीं होंगे अथवा जो होना हो वह हो किन्तु 'मैं पुत्री नहीं दूँगा' अपनी इस प्रतिज्ञा को सर्वनाश होने पर भी नहीं छोडूँगा। महापुरुष जिसे स्वीकृत कर लेते हैं उसे छोड़ते नहीं हैं। जैसा कि कहा है –

सूर्यवंश में उत्पन्न हुये राजा हरिश्चन्द्र ने चाण्डाल की सेवा की, अद्भुत पराक्रम के धारक रामचन्द्र जी ने सघन कन्दरा का सेवन किया और चन्द्रवंशीय भी आदि उत्तम राजाओं ने रंक के समान दीनता की। इससे सिद्ध है कि पुरुषों ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने के लिये क्या-क्या नहीं अंगीकृत किया है? अर्थात् सभी कुछ किया है।

शंकरजी अब भी कालकूट विष को नहीं छोड़ रहे हैं, कमठ अब भी अपनी पीठ पर पृथिवी को धारण कर रहा है और समुद्र अब भी दुस्सह बड़वानल को धारण कर रहा है सो ठीक है क्योंकि पुण्यात्मा जन स्वीकृत बात का अच्छी तरह पालन करते हैं।

उस समय ऐसा कहकर क्रोध से परिपूर्ण जितारि ने दूत को मार डालने के लिये योद्धाओं को आज्ञा दी, पश्चात् मंत्री ने विचार किया कि दूत को मारना अनुचित है। विचार कर उसने कहा भी - हे राजन्! दूत के मारने से मंत्री सहित राजा नरक को जाता है। राजा से ऐसा कहकर मंत्री ने दूत को बाहर निकाल दिया। तदनन्तर दूत ने आकर राजा भगदत्त के आगे कहा - हे देव! जितारि अपनी भुजाओं के बल से कुछ भी नहीं गिनता है। पश्चात् भगदत्त सेना को सजा कर युद्ध के लिये चल पड़ा। इधर जितारि भी सम्मुख होकर खड़ा हो गया। उस समय क्या-क्या हुआ सो सुनो -

दिग्मण्डल भय से चलायमान हो गया, समुद्र अत्यन्त व्याकुल हो उठा, पाताल में शेषनाग चकित रह गया, पर्वत काँप उठे, पृथिवी घूम गयी और बड़े-बड़े साँप भयंकर विष को उगलने लगे। सेनापति की सेना निकलते ही यह सब अनेक प्रकार के कार्य हुये।

भगदत्त की सेना को विजयी देख मंत्री ने कहा कि हे जितारि राजन्! देखो, अपनी सेना में भय छा गया है इसलिये वह खड़ी नहीं रह सकेगी। राजा ने कहा कि हे मंत्री! कायर क्यों हो रहे हो?

दोनों प्रकार से लाभ है विजयी होने पर इस लोक में सुख और मरने पर परलोक में सुख होगा। कहा भी है -

सुभट यदि विजयी होता है तो उसे लक्ष्मी प्राप्त होती है और मरता है तो देवाङ्गना मिलती है। शरीर क्षणभंगुर है अत: रण में मरण होने की क्या चिन्ता है?

मंत्री ने फिर कहा - हे राजन्! मनुष्य यदि जीवित रहता है तो सैकड़ों कल्याणों को देख सकता है मरने पर क्या साध्य है? अर्थात् कुछ भी नहीं। पश्चात् जितारि किसी तरह लौट कर चला गया। जाते समय राजा जितारि ने कहा कि भाग्य ही प्रमाण है - वही बलवान् है, क्योंकि-जहाँ वृहस्पति नायक था, वज्र शस्त्र था, देव सैनिक थे और स्वर्ग किला था, नारायण की कृपा थी और ऐरावत हाथी था, वहाँ इस प्रकार के आश्चर्यकारक बल से सहित होने पर भी इन्द्र युद्ध में दूसरों से पराजित हो गया इससे जान पड़ता है कि निश्चय से देव ही शरण है व्यर्थ के पौरुष को धिक्कार हो।

भगदत्त, जितारि के पीछे लग गया तब सुबुद्धि मंत्री ने उसे यह कहते हुये मना कर दिया कि हे भगदत्त! यह उचित नहीं है।

जैसा कि कहा है –

भागते हुये भयभीत शत्रु का बलवान् मनुष्य को पीछा नहीं करना चाहिये क्योंकि मरण का निश्चय कर वह कभी शूरता को प्राप्त हो सकता है।

इन सभी वृत्तान्त को देख सुनकर मुण्डिका ने हृदय में श्री जिनेन्द्र देव का स्मरण किया और समय की मर्यादा के साथ आहार पानी का त्याग करके णमोकार मंत्र का उच्चारण करती हुई गहरे कूप में गिर पड़ी। उसके सम्यक्त्व के प्रभाव से जल स्थल हो गया, उसके ऊपर रत्नों का घट और उसके बीच में सिंहासन प्रकट हो गया। उस सिंहासन पर वह मुण्डिका सीता के समान स्थित हो गयी। देवों ने पञ्चाश्चर्य किये।

इधर राजा भगदत्त ने गोपुर को तोड़कर सभी नगर को लूटना प्रारम्भ कर दिया। जब भगदत्त राजा जितारि के भवन में प्रवेश करने लगा तब देवता ने उसे कील दिया।

इसी अवसर पर किसी पुरुष ने राजा भगदत्त के आगे मुण्डिका का सभी समाचार कह सुनाया। उसे सुनकर और प्रत्यक्ष देखकर वह मद रहित हो विनयपूर्वक मुण्डिका के चरणों में गिर पड़ा और कहने लगा– हे बहिन! मैंने जो किया है वह अज्ञानता से किया है उस सबको क्षमा करो। इत्यादि कहकर उसने धर्मसूचक हाथ देकर जितारि को भी बुलवा लिया। आये हुये जितारि के सामने भी उसने उसी प्रकार कहा। तदनन्तर जो अपने हृदय में वैराग्य की भावना भा रहा था ऐसे भगदत्त ने कहा कि जिनेन्द्र प्रणीत समीचीन धर्म प्राणियों का क्या–क्या हित नहीं करता है? क्योंकि कहा है –

यह धर्म संसार रूपी समुद्र से पार करने वाला पुल है और कर्म रूपी सघन वन को जलाने के लिये अग्नि है। इस प्रकार धर्म ही सहायक है। जैसा कि कहा है – धर्म के प्रभाव से समस्त समृद्धि प्राप्त होती है, धर्म के प्रभाव से संसार में प्रसिद्धि होती है, धर्म के प्रभाव से अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं और धर्म के प्रभाव से अपने वंश की वृद्धि होती है।

तदनन्तर अपने पुत्र के लिये राज्य देकर भगदत्त, जितारि तथा मुण्डिका आदि ने जिन दीक्षा ले ली और भी बहुत जीवों को धर्मलाभ हुआ।

*****

सती सोमा

सती सोमा

कुरूजाङ्गल देश के हस्तिनापुर में राजा भूभोग रहते थे, उनकी रानी का नाम भोगवती था। वहीं राजसेठ गुणपाल था जो परम धार्मिक और अत्यधिक सम्यग्दृष्टि था उसकी स्त्री का नाम गुणवती था। उसी नगर में सोमदत्त नाम का एक अत्यन्त दरिद्र ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री का नाम सोमिल्ला था जो अत्यन्त पतिव्रता थी। उन दोनों के सोमा नाम की पुत्री थी। एक समय ज्वर से पीड़ित होकर सोमिल्ला मर गयी। उसके शोक से सोमदत्त बहुत दु:खी हुआ। शोकरूपी अग्नि से अत्यन्त दग्ध होता हुआ वह कहीं भी प्रीति को प्राप्त नहीं होता था। एक समय वह रोता हुआ वन में बैठा था कि किन्हीं मुनिराज ने उसे देख लिया तथा उससे कहा – हे पुत्र! किसलिये दु:ख करते हो? उसने दु:ख का कारण कह दिया, मुनिराज ने फिर कहा – अरे पुत्र! जो जीव उत्पन्न होता है उसका मरण तो निश्चित ही होता है इसलिये बहुत भारी प्रयत्न करने पर भी यह पापी काल उसे कवलित कर ही लेता है। बातचीत के प्रसंग में मुनिराज ने फिर कहा – हे पुत्र! तुझे इस लोक तथा परलोक में धर्म ही हितकारी है अन्य नहीं।

जैसा कि कहा है –

धर्म का प्रभाव–धर्म से परभव में देव गति प्राप्त होती है। शुभ शुक्लध्यान प्राप्त होता है और शुक्लध्यान से संसार का क्षय होता है। इसलिये ज्ञानी जन को उस उत्कृष्ट शुक्लध्यान के विषय में यत्न करना चाहिये और सदा उसी की सेवा करना चाहिये, जो कि व्याधि रूपी रोग को नष्ट करने वाला है, हितकारी है, संसार से निस्तरण करने वाला है, संसार को नष्ट करने वाला है और मोक्ष के द्वार पर लगे हुये कपाटों को तोड़ने वाला है।

और भी कहा है –

धर्म से अच्छे कुल में जन्म होता है, शरीर में सामर्थ्य रहती है, सौभाग्य, आयु और धन प्राप्त होता है। निर्मल यश, विद्या, धन–संपत्ति और लक्ष्मी धर्म से ही प्राप्त होती है। वन से तथा महासागर से धर्म ही रक्षा करता है, वास्तव में अच्छी तरह उपासना किया हुआ धर्म स्वर्ग और मोक्ष को देने वाला है।

इस प्रकार मुनि के वचन सुनकर उसने शोक छोड़ दिया तथा उपशम भाव को प्राप्त होकर श्रावक हो गया। वह यथाशक्ति दान भी करने लगा। जैसा कि कहा है –

थोड़ी वस्तु भी दान के योग्य होती है, दान के विषय में महान् अभ्युदय की अपेक्षा नहीं करनी पड़ती है क्योंकि इच्छानुसार शक्ति कब और किसके होगी?

इस प्रकार वह अपना समय व्यतीत करने लगा। एक दिन उस गुणपाल सेठ ने 'यह श्रावक दरिद्र है' यह जान अपने घर ले जाकर उसका सम्मान किया। वह सेठ उसका सब प्रकार से निर्वाह करता था। ऐसा कहा भी है – महापुरुषों की संगति से गुणवान् और पूज्य कौन नहीं होता है? कहा भी है –

गुणों के जानने वालों के पास गुण होते हैं और निर्गुण के पास जाकर वे गुण दोष हो जाते हैं जैसे नदियाँ अत्यन्त मधुर जल को धारण करती हैं परन्तु समुद्र को प्राप्त कर वे ही नदियाँ अपेय हो जाती हैं अर्थात् खारी हो जाने से उनका पानी पीने योग्य नहीं रहता है।

और भी कहा है –

गुणी मनुष्य के पास रहने वाला गुणहीन मनुष्य भी लोक में पूज्य हो जाता है जैसे–निर्मल नेत्र का संसर्ग पाकर अंजन सुन्दरता को प्राप्त हो जाता है।

महापुरुषों की संगति किसकी उन्नति का कारण नहीं है? अर्थात् सभी की उन्नति का कारण है क्योंकि गंगा में प्रविष्ट हुआ गलियों का पानी देवों के द्वारा भी वंदनीय हो जाता है।

एक समय रोग से पीड़ित सोमदत्त ने अपना मरण निकट जानकर गुणपाल सेठ को बुलाकर कहा – हे सेठ जी! आपकी सहायता से मुझे कुछ भी दुःख का अनुभव नहीं हुआ, श्रावक धर्म की अच्छी तरह आराधना की परन्तु इस समय परलोक को जाते हुये मुझे एक चिन्ता है। वह यह है कि बेटी सोमा श्रावक ब्राह्मण को छोड़कर अन्य को नहीं दी जाये। ऐसा कहकर अपनी पुत्री को गुणपाल के हाथों में देकर वह स्वयं संयम पूर्वक मर गया और मरकर स्वर्ग को गया। कहा भी है –

विद्या, तप, धन, शूरता, कुलीनता, आरोग्य, राज्य, स्वर्ग और मोक्ष – सब कुछ धर्म से प्राप्त होता है।

गुणपाल सोमा को अपनी पुत्री के समान पालन करने लगा। तदनन्तर उसी नगर में रुद्रदत्त नाम का धूर्त ब्राह्मण रहता था। जैसा कि धूर्त का लक्षण कहा गया है –

जिसका मुखकमल कमल की कलिका के आकार का है, वचन चन्दन के समान शीतल है और हृदय कैंची से संयुक्त है, वह धूर्त है, यह तीन प्रकार से धूर्त का लक्षण है।

वह प्रतिदिन जुआ खेलता था। एक दिन वह सोमा क्रीड़ा के लिये मार्ग में जा रही थी कि जुवारियों ने उसे देख लिया। रुद्रदत्त ने उन जुवारियों से पूछा कि यह किसकी पुत्री है? उन्होंने कहा कि सोमदत्त की पुत्री है। पिता ने मरण काल में गुणपाल के हाथ में दी थी। वह पुण्यशाली गुणपाल अपनी पुत्री के समान इस कुमारी का पालन करता है। जुवारियों के वचन सुनकर रुद्रदत्त कहने लगा कि मैं इससे विवाह करूँगा। उन्होंने कहा – अरे अज्ञान से असंबद्ध बात क्यों बोलता है? दीक्षित आदि ब्राह्मणों ने विवाह करने के लिये इसकी याचना की है परन्तु सेठ जैन ब्राह्मण को छोड़कर अन्य को नहीं देता है। तू तो जुवारियों का शिरमौर सर्वश्रेष्ठ जुवारी है अत: तेरे द्वारा कैसे प्राप्त की जा सकती है? तदनन्तर उसके वचन सुन रुद्रदत्त

ने बड़े अभिमान से कहा, अहो! मेरी बुद्धि की कुशलता को देखो। यदि मैं इसे न विवाहूँ तो पशुओं के बीच मेरी गिनती करना। इस प्रकार की प्रतिज्ञा कर वह अन्य देश को चला गया। वहाँ वह किसी मुनि के पास माया रूप से ब्रह्मचारी हो गया। देव वन्दना आदि की क्रिया को करके वह पुन: उसी नगर में वापिस लौट आया और गुणपाल के द्वारा निर्मापित चैत्यालय में ठहर गया। उसका आगमन सुन गुणपाल चैत्यालय आया और ब्रह्मचारी को इच्छाकार करके बैठ गया। ब्रह्मचारी ने 'दर्शन विशुद्धि हो' यह आशीर्वाद दिया। सेठ ने कहा – यह धन्य है, इसके दिन धर्म ध्यान पूर्वक व्यतीत होते हैं। सेठ ने पूछा हे प्रभो! आपकी जन्मभूमि कहाँ है किसके शिष्य हैं और कहाँ से आये हैं? ब्रह्मचारी ने कहा कि मैं आठ उपवास करने वाले जिनचन्द्र भट्टारक का शिष्य हूँ तथा तीर्थंकर भगवान के पंचकल्याणकों के स्थानों की वंदना कर इस समय शान्ति, कुन्थु और अरहनाथ भगवान की वन्दना के लिये आया हूँ। सेठ ने कहा – यह धन्य है, इसके दिन धर्म ध्यान से निकल रहे हैं। जैसा कि कहा है –

पृथ्वी किससे सुशोभित– जो देवों की पूजा करता है, दया करता है, सत्य वचन बोलता है, सज्जनों की संगति को छोड़ता है, दान देता है और गर्व को छोड़ता है, इस प्रकार जिसके दिन व्यतीत होते हैं उसी के जन्म, जीवन और कुल को हम धन्य मानते हैं और उसी के द्वारा यह पृथ्वी सुशोभित है।

गुणपाल ने उस ब्रह्मचारी से पुन: पूछा – हे प्रभो! आपकी जन्मभूमि कहाँ है? उसने कहा – इसी नगर में सोम शर्मा ब्राह्मण रहता था, उसकी स्त्री का नाम सोमिल्ला था, मैं उन दोनों का पुत्र रुद्रदत्त हूँ, पिता व माता की मरणावस्था देखकर शोक से तीर्थयात्रा के लिये चला गया था। वाराणसी में जिनचन्द्र भट्टारक ने संबोधित कर मुझे ब्रह्मचारी बना दिया। अब मुझे गोत्र से तथा देश से क्या प्रयोजन है? कुल तथा गोत्र वंश से क्या मतलब है, संसार में किसकी कौन वस्तु नित्य है? अर्थात् कोई भी नहीं। इसलिये मेरा धर्म ही शरण है जिससे कि सब पदार्थों की सिद्धि होती है। जैसा कि कहा है –

यह धर्म धन के प्रेमी मनुष्यों को धन देने वाला है, काम के इच्छुक मनुष्यों को काम देने वाला है, सौभाग्य के अभिलाषी मनुष्यों को सौभाग्य देने वाला है और क्या, पुत्र के चाहने वालों को पुत्र देने वाला है, राज्यार्थियों को राज्य देने वाला है अथवा अनेक विकल्पों से क्या प्रयोजन है? वह कौन सी वस्तु है जो मनुष्य के लिये नहीं देता है? अर्थात् सभी वस्तुओं को देता है। प्रमुख बात यह है कि धर्म, स्वर्ग और मोक्ष को भी देता है।

बहुत प्रकार से प्रशंसा कर सेठ ने फिर भी कहा – हे ब्रह्मचारी जी! आपने ब्रह्मचर्य व्रत कुछ अवधि के साथ लिया है या बिना अवधि का? उसने कहा – अवधि के साथ लिया है परन्तु स्त्रियों के ऊपर मेरी इच्छा नहीं है क्योंकि स्त्रियाँ विषम विष हैं।

स्त्री कैसी– जैसा कि कहा–कण्ठ में स्थित कालकूट भी जिस शम्भू का कुछ भी नहीं कर सका वे शम्भू भी स्त्रियों द्वारा अत्यधिक बाधा को प्राप्त हुये हैं, यह ठीक ही है क्योंकि स्त्रियाँ विषम विष हैं।

स्त्री के द्वारा पैर ताडित हुआ अशोक वृक्ष विकसित हो जाता है, मुख की मदिरा से सींचा गया बकुल का वृक्ष शोक छोड़ देता है, आलिंगन को प्राप्त हुआ कुरवक खिल उठता है और देखा हुआ तिलक वृक्ष कलिकाओं से युक्त हो जाता है।

सत्यता, शुद्धता, शास्त्र ज्ञान, धन, सुख और लोक प्रतिष्ठा, मनुष्यों की इतनी वस्तुएँ स्त्रियों के प्रसंग से नष्ट हो जाती हैं।

सेठ ने कहा – हे विभो! मेरे घर ब्राह्मण की पुत्री है उससे आप विवाह कर लीजिये, श्रावक जानकर आपके लिये देता हूँ। सेठ के वचन सुनकर उसने कहा – विवाह से संसार में पतन होता है इसलिये मुझे विवाह से प्रयोजन नहीं है। दूसरी बात यह है कि स्त्री के समागम से मेरे द्वारा अभ्यस्त शास्त्र भी चला जाता है। नष्ट हो जाता है।

जैसा कि कहा गया है –

स्त्रियों की सेवा में वशीकरण, अञ्जन, तंत्र और अनेक प्रकार के मंत्र तथा यंत्र सभी कुछ व्यर्थ हो जाते हैं।

तदनन्तर सेठ ने बहुत भारी आग्रह के साथ पुत्री का विवाह कर दिया। विवाह के बाद दूसरे दिन हाथ में कंकण बाँधे हुये रुद्रदत्त जुवारियों के स्थान पर गया और जुवारियों के आगे कहने लगा – अरे जुवारियों! मैंने सोमा के साथ विवाह करने की जो प्रतिज्ञा की थी वह बुद्धि बल से पूर्ण हो गयी है। यह सुनकर जुवारियों ने रुद्रदत्त की प्रशंसा की।

तदनन्तर वह अपनी पहले वाली स्त्री कामलता वेश्या जो कि वसुमिश्रा वेश्या की पुत्री थी, उसके घर फिर से रहने लगा। रुद्रदत्त का हाल सुन व देखकर लज्जित सोमा ने विचार किया – अहो! मेरे कर्मों का यह स्वभाव है, जो उपार्जित किया है वह कैसे जा सकता है? यह सब समाचार सुनकर सेठ ने सोमा के आगे कहा – हे पुत्री! विरोध मत करो, यह कलियुग का स्वभाव है। जैसा कि कहा है –

जो होने वाला है वह निरन्तर बिना प्रयत्न के भी होता है और जो नहीं होने वाला है वह बहुत भारी प्रयत्न से भी नहीं होता है। इस प्रकार जब प्राणियों का संसार विधाता के वशीभूत होकर चल रहा है तब विवेकी जन को क्या शोक करना है।

निश्चय से चन्द्रमा में कलंक होता है, पुष्पराज के साथ में काँटे होते हैं, समुद्र का जल अपेय होता है, पण्डितजन में निर्धनता होती है, प्रियजन का वियोग होता है, सुन्दर रूप में सौभाग्य होता है, धनाढ्य में कृपणता होती है और रत्न में भी दोष उत्पन्न करने वाला दुर्देव होता है ।।266।। वेश्याव्यसन में आसक्त मनुष्यों की सच्ची प्रवृत्ति होना दुर्लभ है।

जैसा कि कहा गया है – विटमनुष्य – सत्य, शौच, शील, संयम और नियम का भार छोड़कर वेश्या स्त्री के घर में प्रवेश करते हैं।

जिस प्रकार कुठार के द्वारा लता छिद जाती है उसी प्रकार वेश्या के द्वारा तप, व्रत, विद्या, कुलीनता, दम और दया शीघ्र छिद जाते हैं – नष्ट हो जाते हैं।

फिर भी कहा है –

बड़े बड़े पुरुषों के भी अच्छे कार्य अनेक विघ्नों से युक्त होते हैं और खोटे कार्य में प्रवृत्ति करने वाले पुरुषों के गणेश कहीं चले जाते हैं अर्थात् उनके कार्य में विघ्न नहीं आते हैं।

सोमा ने कहा – हे पिताजी! मेरे मन में कुछ भी नहीं है। जुवारी का यह स्वभाव है! जैसा कि कहा है –

चोर में सदा सत्य नहीं रहता, शूद्रा स्त्री के पति में पवित्रता नहीं होती, मदिरा पीने वाले में मित्रता नहीं होती और जुवारी में तीनों नहीं रहते।

दूसरी बात यह है कि पिताजी! मैं कलियुग के स्वभाव को जानती हूँ।

जैसा कि कहा गया है –

असत्य बोलने में चतुराई, चोरी में बुद्धि, सत्पुरुषों का भी अपमान करना, अविनय में बुद्धि रखना, धर्म के विरुद्ध चलना, गुरुओं से छल करना, सामने सुन्दर और मीठी बात करना तथा पीछे विघात करना ये सब कलियुग रूपी महाराज की विभूतियाँ हैं।

इस समय कलिकाल चल रहा है, कलियुग में सत्य मनुष्य दुर्लभ है, अनेक चोरों के समूह पृथ्वी को लूट रहे हैं, आर्य समाज नष्ट हो रहे हैं, प्रदेश करों के भार से नष्ट हो गये हैं, राजा विषय लम्पट और तृष्णा से युक्त हो गये हैं, पिता पुत्र का विश्वास नहीं करता है, सचमुच ही जगत अत्यन्त कष्टमय हो रहा है।

और भी कहा है – यह कुलीन तथा गुणवान् है ऐसा समझकर दुर्जनों का भी विश्वास नहीं करना चाहिये, क्योंकि मलयागिरि चन्दन में भी उठी अग्नि जलाती ही है।

ये अत्यन्त स्नेही हैं ऐसा समझकर क्षुद्र मनुष्यों में विश्वास मत करो, क्योंकि इन सिद्धार्थों–कृतकार्यों पक्ष में सरसों का स्नेह प्रेम पक्ष में तेल भी आँसू गिरा देता है।

यह सीधा है और पक्षवान् पंखों से युक्त अनेक सहायकों से युक्त है ऐसा समझकर बाण में तथा दुर्जन में प्रीति मत करो, क्योंकि प्राय: सरलता रूप गुण से युक्त बाण और मनुष्य, फल–अग्रभाग और कार्य सिद्धि के द्वारा हृदय को विदीर्ण कर देता है।

सेठ ने कहा – हे पुत्री! अज्ञान से जो मैंने किया है वह सब सहन करने योग्य है। ऐसा कहकर तथा बहुत भारी धन देकर उसने कहा – हे पुत्री! दान पूजा आदि करो जिससे उत्तम गति होती है। कहा भी है–

दान से गौरव प्राप्त होता है न कि धन के संग्रह से। देखो दान देने वाले मेघों की स्थिति ऊँची है और संचय करने वाले समुद्रों की स्थिति नीची है अर्थात् दान के प्रभाव से मेघ ऊपर आकाश में रहते हैं और संचय के प्रभाव से समुद्र नीचे पृथ्वी पर पड़े हुये हैं।

यह दानी मनुष्य, त्याग और भोग के प्रभाव से जीवित रहता हुआ भी स्वर्गीय जैसे सुख को भोगने वाला है और मरकर भी स्वर्ग के सुख को भोगता है परन्तु हे पुत्री! कृपण मनुष्य भोग और दान से रहित होने के कारण नारकी होता है।

सैकड़ों प्रयासों से प्राप्त तथा प्राणों से भी गुरुतर धन की एक ही गति होती है – दान देना अथवा नष्ट होना।

कंजूस मनुष्य यह जानता है कि चक्रवर्ती आदि सभी मनुष्य इस धन को छोड़कर चले गये हैं फिर भी वह धन के लिये यत्न करता है।

और भी कहा है –

लक्ष्मी का फल दान है, शास्त्र पढ़ने का फल शान्ति धारण करना है, हाथ का फल देव पूजा है, धर्म का फल दूसरों की पीड़ा दूर करने में पुरुषार्थ करना है, जीवन का फल क्रीड़ा प्राप्त करना है, वाणी का फल सत्य बोलना है, जगत् का फल सुखोपभोग करना है, सम्पन्नता का फल प्रभाव को उत्पन्न करना है और भव्य जीवों की बुद्धि का फल संसार में शान्ति किस प्रकार हो, ऐसा विचार करना है, क्योंकि ऐसी बुद्धि ही विभूति के लिये होती है।

गुणपाल सेठ के द्वारा कहे हुये इन पूर्वोक्त वचनों को सुनकर सोमा ने उस धन से जिन मन्दिर बनवाया प्रतिष्ठा करवायी और प्रतिष्ठा के पश्चात् चौथे दिन यथायोग्य आदर के द्वारा चातुर्वर्ण संघ की पूजा की तथा सबको सम्मानित किया।

पश्चात् दूसरे दिन नगर के अन्य मनुष्यों, वसुमित्रा वेश्या, उसकी पुत्री कामलता तथा रुद्रदत्त आदि को भोजन के लिये निमन्त्रित किया और उन सबको भी सोमा ने यथायोग्य आदर से सम्मानित किया।

जैसा कि कहा है –

घर आये हुये शत्रु को भी सौम्य दृष्टि, मधुर वचन, उठकर खड़े होना, आसन तथा शक्ति के अनुसार भोजन और पान देना चाहिये।

सज्जन–गुणहीन जीवों पर भी दया करते हैं, क्योंकि चन्द्रमा चाण्डाल के घर पर से चाँदनी को हटाता नहीं है।

सोमा के घर आयी हुई वसुमित्रा वेश्या ने सोमा का रूप देखकर अपना सिर धुना। वह विचार करने लगी – अहो! सोमा ऐसी सुन्दरी है। यदि रुद्रदत्त किसी तरह इसमें आसक्त हो जायेगा तो हम लोगों का जीवन कैसे चलेगा? इसलिये किसी उपाय से अवश्य ही अपनी पुत्री की यह सौत मारने के योग्य है।

ऐसा निश्चय कर तथा घर आकर वसुमित्रा ने एक महान् भयंकर साँप बुलाया, उसे फूलों के साथ एक घड़े में रक्खा और सोमा के घर जाकर वह घड़ा सोमा के हाथ में दे दिया। साथ में कहा– हे पुत्री! इन फूलों

से देवपूजा करना चाहिये। सोमा के पुण्य महात्म्य से साँप भी पुष्पमाला हो गया। तदनन्तर भोली भाली सोमा ने देव पूजा की। यह आश्चर्य देख वसुमित्रा कुट्टिनी आश्चर्य को प्राप्त हुई कि मैंने घड़े में साँप रखा भी था या नहीं।

पश्चात् सोमा ने वसुमित्रा, कामलता और रुद्रदत्त इन तीनों को भोजन, वस्त्र तथा आभूषणों आदि से सम्मानित किया। तदनन्तर सोमा ने आशीर्वाद देकर वह माला कामलता के कण्ठ में डाल दी। परन्तु डालते ही वह माला साँप हो गई। साँप ने उसे कण्ठ में डस लिया जिससे वह पृथ्वी पर गिर पड़ी। पश्चात् अपनी पुत्री की वैसी अवस्था देख वसुमित्रा कुट्टिनी ने रोकर साँप को घड़े में रख राजा के आगे कहा – हे देव! गुणपाल की पुत्री सोमा ने मेरी पुत्री कामलता को मार डाला है। पश्चात् राजा ने क्रुद्ध हो सोमा को बुलवाया।

सोमा राजा के पास गयी। राजा ने पूछा – रे दुष्टे! तूने बिना कारण ही कामलता को क्यों मार डाला? सोमा ने कहा – देव! मैंने नहीं मारा। मैं जैनी हूँ, जैन धर्म दया से युक्त है, जीवों का घात करने से प्राणियों को नरकादि का दुःख होता है और जीवों की रक्षा करने से स्वर्गादि का सुख होता है। इसलिये सुख के इच्छुक मनुष्य को सूक्ष्म जीव का भी घात नहीं करना चाहिये, स्थूल जीव की तो बात ही क्या है?

जैसा कि कहा है –

पाप से दुःख और धर्म से सुख होता है यह समस्त जनों में अत्यन्त प्रसिद्ध है इसलिये सुख के इच्छुक मनुष्य को पाप छोड़कर सदा धर्म का आचरण करना चाहिये।

तदनन्तर राजा ने पूछा कि यदि तूने नहीं मारा है तो क्या हुआ, सब सच कहो, पश्चात् सोमा ने पहले का समस्त वृत्तान्त राजा के आगे कह दिया। तदन्तर राजा ने वसुमित्रा के मुख की ओर देखा तब कुट्टिनी ने घड़े में रखा हुआ साँप राजा के आगे दिखा दिया। पश्चात् राजा ने सोमा के आगे कहा – रे वाचाले! यह क्या है? उसने कहा – हे प्रजापाल! घड़े के भीतर पुष्पमाला है न कि साँप। राजा ने कहा तो निकालो। उसने फूलों की माला निकाली और राजा आदि को दिखलायी। तदनन्तर राजा की आज्ञा से वही माला वसुमित्रा ने ली तो साँप बन गयी। जब सोमा उसे लेती तब पुष्पमाला हो जाती और जब कोई अन्य लोग लेते तो साँप बन जाती। इस प्रकार राजा आदि के मन में बड़ा चमत्कार हुआ। तदनन्तर राजा तथा अन्य सभासदों ने आग्रह कर कामलता वेश्या को जीवनदान देने के लिये सोमा से प्रार्थना की। इन सबके वचन सुनकर जिनेन्द्र भगवान् की स्तुति कर समस्त सुर असुरों के नायक सर्व सुखदायक श्री जिनेन्द्र देव को हृदय कमल में विराजमान कर उसने अपने हाथ से कामलता का शरीर छुआ जिससे वह विष रहित होकर खड़ी हो गयी। ठीक ही है श्री जिनेन्द्र देव के स्तवन से क्या-क्या सिद्ध नहीं होता है? जैसा कि कहा है –

जिनेन्द्र भगवान् की स्तुति करने पर विघ्नों के समूह, शाकिनी, भूत और सर्पादि के विषजन्य सर्व दुःख नष्ट हो जाते हैं तथा विष निर्विषता को प्राप्त हो जाता है।

तदनन्तर कामलता को विष रहित देख आश्चर्य से परिपूर्ण राजा ने अभयदान देकर वसुमित्रा कुट्टिनी से पूछा – यह क्या है? मेरे आगे सत्य कहो। वसुमित्रा ने कहा – हे देव! यह सब मेरी कुचेष्टा है, सोमा निर्दोष है, इस प्रकार उसने पहले का सभी समाचार राजा के आगे कह दिया। इस प्रकार धर्म का प्रभाव देखकर राजा ने, दर्शक मनुष्यों ने तथा देवों ने उस सोमा की पूजा की। इसके अतिरिक्त देवों ने पञ्चाश्चर्य किये। पश्चात् आश्चर्य से परिपूर्ण हृदय वाले लोगों ने कहा – अहो! धर्म से क्या-क्या नहीं होता है? तदनन्तर भूभोग राजा ने, गुणपाल ने तथा अन्य बहुत लोगों ने जिनचन्द्र भट्टारक के समीप तप ग्रहण कर लिया, कोई श्रावक हो गये, कोई भद्र परिणामी हो गये। रानी भोगावती ने, गुणपाल की स्त्री गुणवती ने, सोमा ने तथा अन्य अनेक स्त्रियों ने श्रीमती आर्यिका के समीप तप ग्रहण कर लिया। रुद्रदत्त, वसुमित्रा और कामलता ने श्रावक का व्रत ग्रहण किया।

*****

सती जिनदत्ता

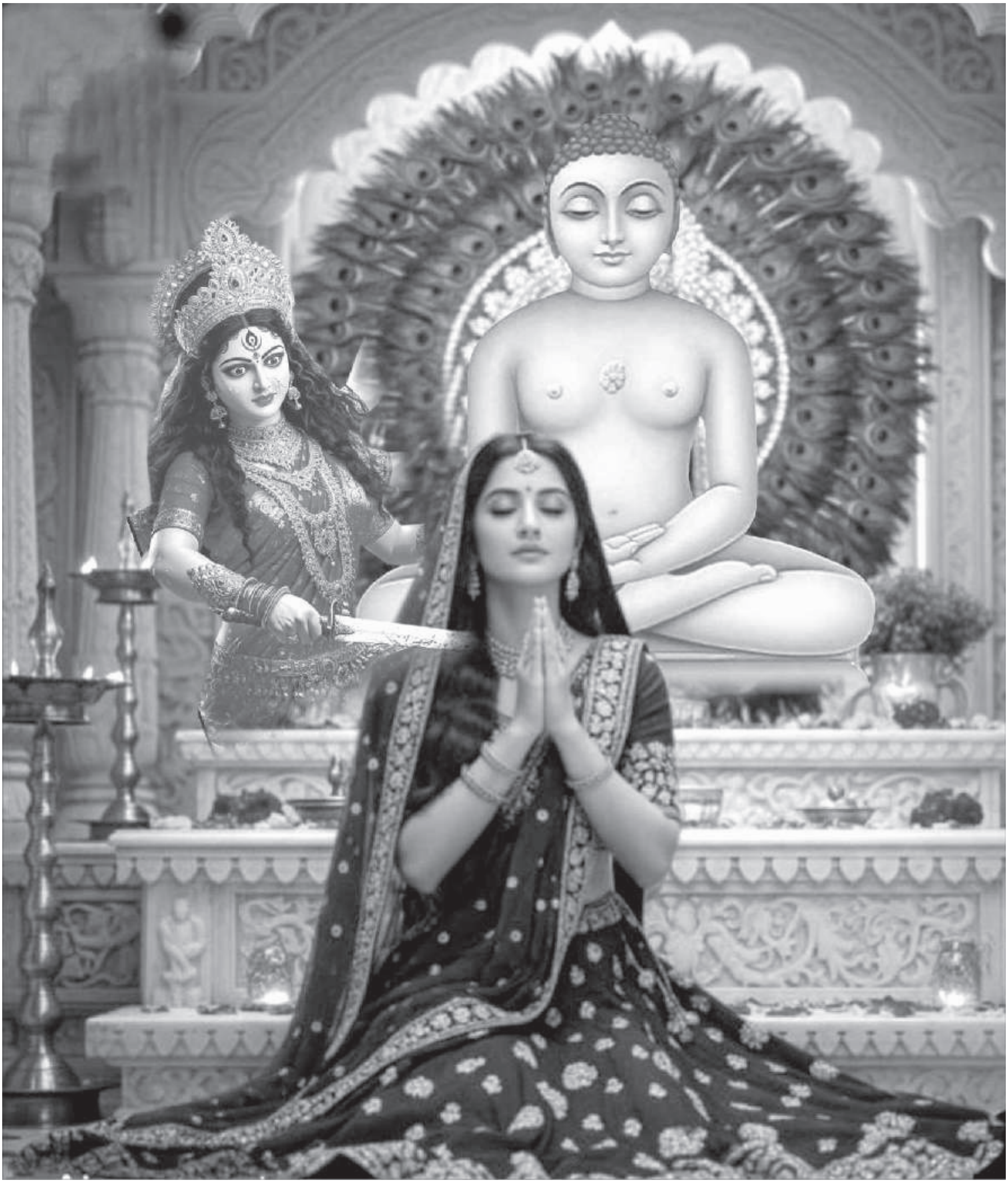

13

सती जिनदत्ता

मगध देश के राजगृह नगर में राजा संग्रामशूर राज्य करते थे। उसकी रानी का नाम कनकमाला था। उसी नगर में सेठ वृषभदास रहता था, जो महान् सम्यग्दृष्टि था, पञ्च परमेष्ठी के गुणों की भक्ति से सहित था, परम धार्मिक था और संपूर्ण (पाँच शुभ) लक्षणों से सहित था।

जैसा कि कहा है –

जो योग्य पात्र में त्याग वाला हो, गुण में राग करने वाला हो, भोग में परिजनों के साथ रहता हो, शास्त्र में ज्ञाता हो और युद्ध में योद्धा हो वही पञ्च लक्षणों – पाँच गुणों को धारण करने वाला पुरुष है।

उस सेठ की स्त्री का नाम जिनदत्ता था। वह जिनदत्ता भी परम धार्मिक, सम्यक्त्वादि गुणों सहित, दक्षता आदि गुणों के समूह से मूर्तिमति लक्ष्मी के समान तथा समस्त शुभ लक्षणों से युक्त थी। जैसा कि कहा है –

जो आज्ञाकारिणी हो, संतुष्ट हो, दक्ष हो, साध्वी हो, पतिव्रता हो तथा विदुषी हो। इन्हीं गुणों से युक्त स्त्री लक्ष्मी ही है इसमें संशय नहीं है।

जिनदत्ता यद्यपि इस प्रकार के गुणों से विशिष्ट थी परन्तु वन्ध्यात्व नामक दोष से दूषित थी, किसी भी उपाय से उसके पुत्र नहीं होता था। एक दिन अवसर पाकर तथा हाथ जोड़कर उसने अपने पति से कहा– हे स्वामिन्! पुत्र के बिना कुल सुशोभित नहीं होता है तथा वंश का विच्छेद भी हो जायेगा इसलिये सन्तान की वृद्धि के लिये दूसरा विवाह करने के योग्य है। जैसा कि कहा है –

यौवन, सौन्दर्य, प्रेम और आभूषणों का समूह सब कुछ, एक पुत्र के बिना भूसी के समान है।

हाथी मद से, पानी कमलों से, रात्रि पूर्ण चन्द्रमा से, वाणी व्याकरण से, नदियाँ हँस–हँसिनियों के युगलों से, सभा विद्वानों से, स्त्री शील से, घोड़ा वेग से, मन्दिर नित्य प्रति होने वाले उत्सवों से, कुल सत्पुत्र से, राजा से पृथ्वी और धर्मात्माओं से तीनों लोक सुशोभित होते हैं।

रात्रि का दीपक चन्द्रमा है, प्रभात का दीपक सूर्य है, तीन लोक का दीपक धर्म है और कुल का दीपक उत्तम पुत्र है और भी कहा है–संसरण–पञ्च परावर्तन से थके हुये जीवों के लिये विश्राम की भूमियाँ तीन हैं – पुत्र, स्त्री और सत्संगति। मिथ्यादृष्टि लोग भी ऐसा कहते हैं कि पुत्र के बिना गृहस्थ की गति नहीं है। जैसा कि कहा है–पुत्र रहित मनुष्य को गति नहीं होती, उसे स्वर्ग तो प्राप्त होता ही नहीं है, इसलिये पुत्र का मुख देखकर पश्चात् भिक्षुक–संन्यासी हुआ जाता है।

सेठ ने कहा – हे भद्रे! तुम्हारा कहना यद्यपि सत्य है तथापि असत्य है। यह शरीर भी पर है, सभी वस्तुओं को अनित्य देखकर जो भोगों का अनुभव करता है वह विवेक से शून्य ही है। फिर सेठ ने कहा कि मेरे सत्तर वर्ष पूर्ण हो चुके हैं–विवाह किया जाता है तो लोक में मोह की महिमा, हँसी और विरुद्धता होगी।

जैसा कि कहा गया है –

शरीर को ग्रसने के लिये यमराज ने यह इच्छा कर रक्खी है परन्तु वह महोदय से अन्तरित हो रही है। जो मनुष्य इस शरीर को नित्य मानते हुये व्यर्थ ही विषयों में मोहित हो रहे हैं वे विवेक से शून्य हैं।

रोग होने पर शरीर को आभूषणों से सजाना, शोक रहते हुये भी भोगों में निमग्न रहना, दरिद्रता होने पर भी घर में रहना और अवस्था पक जाने–वृद्धावस्था आ जाने पर भी स्त्री समागम करना यह सब परस्पर विरुद्ध बातें हैं। इन्हें जानता हुआ भी मनुष्य, जिससे प्रेरित हो इन्हें करता है वह महान् मोहरूपी मल्ल समस्त तीनों लोकों को जीतता है।

स्त्री ने कहा–हे स्वामिन्! यदि भोगों के राग के वशीभूत हो ऐसा अपराध किया जाता है तो वह हँसी का कारण होता है परन्तु सन्तान वृद्धि के लिये ऐसा करना दोष नहीं है। इस प्रकार स्त्री के कहने पर सेठ ने बड़ी कठिनाई से दूसरा विवाह करना स्वीकृत कर लिया।

उसी नगर में अपने पिता के भाई जिनदत्त और उनकी स्त्री बन्धुश्री की कनकश्री नामक पुत्री (चचेरी बहिन) थी। सेठानी ने उसे अपनी सपत्नी बनाने के लिये याचना की। परन्तु दोनों ने कहा दिया कि सौत के ऊपर पुत्री नहीं दी जाती है। जिनदत्ता ने कहा – भोजन का समय छोड़कर मैं कनकश्री के घर नहीं आऊँगी, जिन मन्दिर में ही रहूँगी, ऐसी शपथ कर उसने कनकश्री की याचना की। उसके माता–पिता ने उसे दे दिया और शुभ मूहूर्त में विवाह हो गया।

तदनन्तर जिनदत्ता सेठानी, धीरे–धीरे घर का सब भार सपत्नी के हाथ में छोड़ कर दिन रात धर्म में तत्पर रहने लगी। वह घर की चिन्ता नहीं करती थी। कालक्रम से कनकश्री के पुत्र हो गया। इस प्रकार जिनदत्ता जिन मन्दिर में रहने लगी और दम्पत्ति अपने घर में सुख से रहने लगे।

एक दिन कनकश्री अपनी माता के घर (मायके) गयी। माता ने उससे पूछा कि हे पुत्री! अपने पति के साथ सुख का अनुभव करती हो या नहीं? पुत्री ने कहा मात! मेरा पति मेरे साथ वार्तालाप भी नहीं करता है कामभोग की तो बात ही क्या है? दूसरी बात यह है कि मुझे सपत्नी के ऊपर विवाह के सुख की बात क्यों पूछती हो? मुझे तिल तुषमात्र भी सुख नहीं है, जिनदत्ता ने मेरे पति को सब प्रकार से वश में कर रक्खा है। वे दोनों दम्पत्ति सदा के लिये महल/मंदिर में रहते हैं, वहीं सुख का अनुभव करते हैं, मध्याह्न काल तथा संध्या समय भोजन करने के लिये आते हैं। मैं अकेली दुर्बल शरीर होकर रात्रि में भाग्य की निन्दा करती रहती हूँ। यह सब मिथ्या समाचार कनकश्री ने मायाचार से अपनी माता के आगे कहा।

तदनन्तर बन्धुश्री ने कहा कि रति स्वरूप मेरी इस पुत्री को छोड़कर मन्दिर में जरा जर्जरित वृद्धा स्त्री का सेवन करता है। इसीलिये कामी मनुष्य उचित कार्य को नहीं जानता है। जैसा कि कहा है –

क्या कुवलय–नीलकमल के समान नेत्रों वाली देवाङ्गनाएँ थी जिससे इन्द्र ने अहिल्या नामक तापसी स्त्री का सेवन किया। ठीक ही है क्योंकि हृदय रूपी कुटी में कामाग्नि के प्रज्वलित रहते हुये विद्वान् होकर भी उचित और अनुचित को कौन जानता है? उसे लज्जा भी नहीं है जैसा कि कहा है – संसार से विरक्त हो दीक्षा लेने के लिये विन्ध्याटवी की ओर जाने वाली किसी पुरुष की ओर उसकी पूर्व प्रेमिका काम विह्वल दृष्टि से देख रही है उसे संबोधित करने के लिये विरक्त पुरुष कहता है कि कामीजन न लज्जित होता है, न किसी को देखता है, न हित की बात सुनता है और न गुरुजन, आत्मीयजन अथवा अन्य जनों की अपेक्षा करता है। हे कमल पत्र के समान विशाल नेत्रों को धारण करने वाली भद्रे! तुम आगे जाओ, मेरे नेत्रों का राजमार्ग तो विन्ध्याटवी की ओर जा रहा है – मैं संसार की मोह ममता से विरक्त हो दीक्षा लेने के लिये विन्ध्याटवी की ओर जा रहा हूँ।

अहो! कामदेव की महिमा आश्चर्यकारक है। वह महान् विद्वान् को भी विडम्बित कर देता है। जैसा कि कहा है –

कामदेव, कलाकुशल मनुष्य को क्षण भर में विकल कर देता है, पवित्र मनुष्य की हँसी उड़ाता है, विद्वान की विडम्बना करता है और धीर–वीर पुरुष को नीचा कर देता है।

हे पुत्री! बहुत कहने से क्या? यह पापिनी जिनदत्ता जिस उपाय से मरेगी वह उपाय मैं करती हूँ। इस प्रकार पुत्री के मन में संतोष उत्पन्न कराकर उसे पति के घर (ससुराल) भेज दिया। उस कनकश्री ने उस ढंग से दोषों का उद्घाटन किया जिससे कि माता के मन में जिनदत्ता के ऊपर ईर्ष्या का भाव उत्पन्न हो गया, वह मन में वैर बाँध कर रह गयी।

एक समय, जो अनेक अवधूतों से सहित था, जिसका शरीर हड्डियों के आभूषणों से विभूषित था, जो त्रिशूल, डमरू तथा नूपुर आदि से युक्त था तथा जिसकी आकृति अत्यन्त भयंकर थी ऐसा एक कापालिक नाम का योगी भिक्षा के लिये बन्धुश्री के घर आया। बन्धुश्री ने ऐसे योगी को देखकर मन में विचार किया कि अहो! मैंने अनेक कापालिक देखे परन्तु इसका जैसा महात्म्य है वैसा नहीं दिखाई देता। इसके पास मेरे कार्य की सिद्धि हो जायेगी ऐसा निश्चय कर उसने अपना कार्य कराने के लिये उसे अनेक जलेबियों सहित भिक्षा दी। यह ठीक ही कहा गया है कि लोक में तभी तक किसी की कीर्ति होती है जब तक दान होता है।

पश्चात् बन्धुश्री ने कापालिक से कहा कि हे योगिन्! तुम मेरे घर भिक्षा के लिये नित्य ही आया करो। कापालिक ने भी बन्धुश्री का कहना स्वीकृत कर लिया। इस तरह वह योगी सदा बन्धुश्री के घर आने लगा। जैसा कि कहा है –

संसार में कार्य के लिये ही कोई किसी की सेवा करता है परमार्थ से कोई किसी का प्रिय नहीं है। दूध का क्षय देखकर बछड़ा स्वयं ही माता को छोड़ देता है।

इस प्रकार प्रतिदिन वह बन्धुश्री योगी के लिये भिक्षा देने लगी। एक दिन उसकी भक्ति देखकर योगी ने मन में विचार किया कि अहो! यह तो माता है, इसका कुछ उपकार करूँगा। जैसा कि कहा है –

पिता, यज्ञोपवती करने वाला, विद्या देने वाला, अन्न देने वाला और भय से रक्षा करने वाला ये पाँच पिता माने गये हैं।

और भी कहा है – राजपत्नी, गुरु पत्नी, मित्र पत्नी, पत्नी की माता और अपनी माता, ये पाँच माताएँ मानी गयी हैं।

तदनन्तर योगी ने कहा – हे माता! मुझे महा विद्या की सिद्धि है, तुम्हारा जो प्रयोजन हो मैं वैसा करूँगा। पश्चात् रोती हुई बन्धुश्री ने गद्‌गद् कण्ठ से उस कापालिक से सभी हाल कह दिया। अधिक क्या कहा जाय? उसने यहाँ तक कह दिया कि यह पापिनी जिनदत्ता तेरे द्वारा मारने योग्य है। तुम्हारी बहिन का घर में निवास जिस तरह हो सके उस तरह तुम्हें करना चाहिये। तब योगी ने कहा – हे माता! तुम स्थिर होओ – निश्चिंत रहो, मुझे जीवों को मारने में कोई शंका नहीं है। आज मैं कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के दिन श्मशान में विद्या सिद्ध कर निश्चित ही जिनदत्ता को मार डालूँगा और अपनी बहिन कनकश्री को सुखी करूँगा।

यदि ऐसा नहीं कर सका तो अग्नि में प्रवेश करूँगा। योगी के ऐसा कहने से बन्धुश्री अपने कार्य की सिद्धि समझ हर्षित हुई।

कापालिक भी ऐसी प्रतिज्ञा कर तथा कहकर चतुर्दशी के दिन पूजा की सामग्री लेकर श्मशान गया। वहाँ अपने स्थान पर पहुँचकर वह एक मुर्दा ले आया तथा पूजा कर उसके हाथ में तलवार बाँध कर बैठ गया। बैठ कर उसने उस मुर्दे की बड़ी पूजा की, मंत्र का जाप किया, पश्चात् वेताली महाविद्या की आराधना कर उसका आह्वान किया। मंत्र के प्रभाव से वह वेताली विद्या शीघ्र ही मृतक के शरीर में प्रत्यक्ष हो गयी – दिखाई देने लगी। उसने कहा – हे कापालिक! जिस कार्य के वश मेरी आराधना की है वह कार्य कहो। योगी ने कहा – हे महामाये! जिन मन्दिर में स्थित, कनकश्री की सौतन जिनदत्ता को मार डालो। कापालिक के वचन सुनकर विद्या ने कहा – 'तथास्तु' – जैसा आपने आदेश दिया है वैसा ही करूँगी। तदनन्तर हर्ष से किल–किल शब्द करती हुई वह विद्या जिनदत्ता के पास गयी। ज्योंही वह जिन मन्दिर में देखती है त्योंही उसने उस जिनदत्ता को देखा जो कि प्रोषध व्रत लिये थी, जिसका चित्त सम्यक्त्व की भावना से युक्त था, जो कायोत्सर्ग से खड़ी थी तथा पञ्च परमेष्ठी के पदों का नमस्कार मंत्र का उच्चारण करने में उद्यत थी। वह वेताली विद्या यद्यपि अत्यन्त शक्तिशालिनी थी तथा धर्म के माहात्म्य से उसका कुछ भी कर सकने के लिये समर्थ नहीं हो सकी।

जैसा कि कहा है –

जिसके हृदय में सम्यक्त्व रूपी देव निवास करता है उसके नाम से सिंह, शृगाल, हाथी, अग्नि, पानी, भयंकर सर्प, विष, समुद्र, स्थल, गर्त, मणिधारी सर्प, चोर, दास, ग्रह, शाकिनी, राग और शत्रु तुल्य उत्कृष्ट आपत्तियाँ विलीन हो जाती हैं।

तदनन्तर वह विद्या तीन प्रदक्षिणाएँ देकर तथा लौटकर श्मशान में चली गयी। उस भयंकर विद्या को देखकर योगी भाग गया। पश्चात् उस मृतक शरीर में स्थित विद्या को देखकर योगी ने पुन: उसे प्रेरित किया। उसके द्वारा प्रेरित विद्या जिनदत्ता के पास पुन: गयी परन्तु पहले के समान जब कुछ भी करने में समर्थ नहीं हो सकी तब अट्टहास करके वापिस आ गयी। ऐसा तीन बार हुआ, चौथी बार अपने मरण के भय से योगी ने कहा – हे महा भैरवी! कनकश्री और जिनदत्ता के बीच जो दुष्टा हो उसे शीघ्र मार डालो।

तदनन्तर वह वेताली भयंकर शब्द करती हुई जब घर में आयी तब उसने शरीर शुद्धि की चिन्ता के लिये उठी हुई कनकश्री को देखा। पश्चात् कापालिक की आज्ञा का स्मरण कर तथा शुद्ध सम्यक्त्व तप और शील आदि गुणों से युक्त, देव और गुरु की भक्त जिनदत्ता का पराभव करने में अपने आपको असमर्थ जानकर उस विद्या ने प्रमाद युक्त कनकश्री को तलवार से मार डाला और खून से लिप्त शरीर को धारण करने वाली वह विद्या श्मशान में कापालिक के आगे आकर खड़ी हो गयी। योगी ने उसका विसर्जन किया जिससे वह अपने स्थान पर चली गयी। कापालिक भी अपने स्थान पर चला गया। ठीक है होनहार का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। जैसा कि कहा है –

जिनके गर्भ में आने के छह माह पहले से इन्द्र किंकर के समान हाथ जोड़े फिरता था, जो स्वयं सृष्टि के सृष्टा थे और जिनका पुत्र भरत निधियों का स्वामी था वे भगवान् वृषभदेव भी क्षुधातुर होकर लगातार छह माह तक पृथ्वी पर भ्रमण करते रहे सो ठीक है क्योंकि दुष्ट विधि दुर्देव की चेष्टा का उल्लंघन इस जगत् में कोई नहीं कर सकता।

प्रात:काल संतुष्ट चित्त से युक्त बन्धुश्री अपनी पुत्री के पास गयी। शय्या पर खण्डित शरीर वाली पुत्री को देखकर रोती हुई राजा के पास गयी। राजा ने उससे पूछा कि हे भद्रे! तुम इस प्रकार क्यों रो रही हो? उसने कहा – हे देव! मेरी पुत्री कनकश्री को उसकी सौत जिनदत्ता ने मार डाला है। यह बात सुनकर राजा ने कुपित होकर दम्पत्ति को पकड़ने और घर की रक्षा करने के लिये सैनिक भेजे। परन्तु वे सभी सैनिक पुण्य देवी के द्वारा कील दिये गये। मन्दिर जाने वाले स्त्री पुरुषों से यह वृत्तान्त सुनकर जिनदत्ता ने कहा कि उपार्जित कर्म किसी के द्वारा नहीं लाँघे जा सकते।

जैसा कि कहा है –

जिस देश में, जिस काल में, जिस मुहूर्त में और जिस दिन में जो हानि, वृद्धि, यश तथा लाभ लिखा है वह अन्यथा नहीं होता।

कायोत्सर्ग को पूरा कर वह विचार करने लगी कि अहो! यह कलंक मेरे लिये ही आया है। पूर्वभव में जो किया वह अन्यथा नहीं हो सकता।

ऐसा विचार कर उसने उपसर्ग दूर करने के लिये शासन देवी के निमित्त फिर से कायोत्सर्ग किया तथा दोनों प्रकार का संन्यास लेकर वह मन्दिर में खड़ी हो गयी। उसके कायोत्सर्ग से आकृष्ट होकर शासन देवी ने कहा कि हे बेटी! तुम स्थिर रहो, तुम्हारा उपसर्ग विलीन हो जायेगा और श्री जैन धर्म की प्रभावना होगी ऐसा मानकर तुम धर्मध्यान में तत्पर रहती हुई स्थिर रहो। ऐसा कहकर शासन देवी चली गयी। जिनदत्ता भी नमस्कार मंत्र का बार-बार उच्चारण करती हुई समाधि लेकर खड़ी रही।

इधर यह हो रहा था उधर शासन देवी के द्वारा प्रेरित योगी नगर के मध्य कह रहा था कि हे नगरवासी लोगों! सुनो, बन्धुश्री ने आग्रह कर मेरे द्वारा प्रेरित वेताली विद्या के द्वारा अपनी पुत्री को मरवा डाला है – ऐसा निश्चय करना चाहिये। कनकश्री मात्सर्य से सहित तथा दुष्ट अभिप्राय से युक्त थी, इसलिये मार डाली गई है, इस विषय में विकल्प नहीं करना चाहिये। देवता और योगी के वचन सुनकर राजा तथा लोगों ने कहा – जिनदत्ता निरपराध साध्वी स्त्री है। तदनन्तर शासन देवी ने सुवर्ण रत्न तथा वस्त्र आदि के द्वारा जिनदत्ता की पूजा की तथा उसकी जय जयकार की। सब लोगों से शुद्धता की बात कही। इसी अवसर पर देवों ने नगर के मध्य पञ्चाश्चर्य किये। यह सब देखकर राजा ने कहा – बन्धुश्री दुष्टा है अत: उसे गधे पर चढ़ाकर निकाल देना चाहिये। बन्धुश्री ने कहा – मैंने अज्ञान से ऐसा किया है मुझे प्रायश्चित दिलाया जावे। राजा ने कहा – इस दोष का प्रायश्चित कहीं सुना नहीं है।

जैसा कि कहा है –

मित्रद्रोही, कृतघ्नी, स्त्री की हत्या करने वाला और चुगलखोर इन चारों का प्रायश्चित हमने नहीं सुना है।

तदन्तर बन्धुश्री निकाल दी गयी। उसने कहा – अहो! अत्यधिक पुण्य और पाप का फल इसी लोक में शीघ्र ही दिख जाता है।

जैसा कि कहा है – तीन वर्ष, तीन माह, तीन पक्ष अथवा तीन दिन में अत्यन्त उग्र पुण्य और पाप का फल इसी लोक में प्राप्त हो जाता है।

इस बन्धुश्री ने अत्यन्त उग्र पाप का फल तत्काल देख लिया, ऐसा सभासदों ने कहा।

तदनन्तर राजा ने मन में विचार किया – श्री जैन धर्म को छोड़कर अन्य धर्म की इतनी महिमा दिखाई नहीं देती। ऐसा निश्चय कर वह जिन मन्दिर में गया और समाधिगुप्त मुनि तथा सेठ और सेठानी को नमस्कार कर बैठ गया।

तदनन्तर राजा ने कहा – हे मुनिराज! आज धर्म के द्वारा इन दम्पत्तियों – सेठ और सेठानी का उपसर्ग दूर हुआ है। मुनिराज ने कहा – हे राजन्! जो कुछ इष्ट है वह सब धर्म से प्राप्त होता है। मुनिराज ने फिर

भी कहा – हे राजन्! इस संसार में धर्म को छोड़कर सभी कुछ अनित्य है अतएव धर्म को धारण करना चाहिये।

जैसा कि कहा है –

उत्तम कुल में जन्म, नाना प्रकार की विभूति, प्रियजनों के समागम से होने वाली सुख की परम्परा, राजवंश में गौरव और निर्मल यश..... ऐसा धर्मरूपी वृक्ष का फल होता है।

धन पैर की धूलि के समान है, यौवन पहाड़ी नदी के वेग के तुल्य है, मनुष्य पर्याय पानी की बूँद के समान चंचल है और जीवन फेन के सदृश है... ऐसा जानकर जो दृढ़ बुद्धि होता हुआ स्वर्ग के आगल को खोलने वाला धर्म नहीं करता है वह मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है एवं दीर्घ संसारी है।

तदनन्तर राजा ने पूछा – हे भगवन्! वह धर्म किस प्रकार का है? पश्चात् मुनिराज ने कहा – हिंसादि से रहित है? जैसा कि कहा है –

हे भव्य! यदि तुझे सुख की इच्छा है तो प्राणियों की हिंसा मत कर, पुण्य को धारण करने वाली सत्य वाणी बोल, चोरी का सर्वथा त्याग कर, आदरपूर्वक परस्त्री का संग छोड़, इष्ट सामग्री में इच्छा का परिमाण कर, क्रोधादि दोषों का त्याग कर और जैन मत में अत्यधिक प्रीति कर।

तदनन्तर संग्रामशूर राजा ने अपने पुत्र सिंहशूर के लिये राज्य देकर समाधिगुप्त आचार्य के पास दीक्षा ले ली। वृषभदास सेठ ने विरक्त चित्त अन्य अनेक लोगों के साथ अपने अपने पदों पर अपने पुत्रों को रख दीक्षा ग्रहण कर ली। रानी कनकमाला, जिनदत्ता सेठानी तथा अन्य अनेक स्त्रियों ने जिनमति आर्यिका के समीप दीक्षा ले ली। कोई सम्यग्दर्शन में, कोई श्रावक के व्रत में स्थित हुये और कोई भद्र परिणामी हुये। मुनि ने कहा हे पुत्र! तुमने अच्छा किया, सब वस्तुओं में भय है, एक वैराग्य ही भय रहित है जिसे आपने ग्रहण किया है। जैसा कि कहा है – भोग में रोग का भय है, सुख में क्षय का भय है, धन में अग्नि और राजा का भय है, दास में स्वामी का भय है, विजय में शत्रु का भय है, कुल में कुलटा स्त्री का भय है, मान में मलिनता आने का भय है और शरीर में यमराज मृत्यु का भय है परन्तु आश्चर्य है कि यह वैराग्य अभय है–भय से रहित है।

*****

सती
सुरसुन्दरी

14

सती सुरसुन्दरी

एक समय गरमी की मोसिम थी, दुपहर का समय था, सन सन कर 'हवा चल रही थी, विद्यार्थियों को छुट्टी मिली थी। कई खेलने कूदने में मस्त थे और कई मीठी नींद ले रहे थे।

एक दस बरस की सुन्दर बालिका फूल चुनती हुई बैठ गई। बैठी ही बैठी नींद लेने लगी।

स्कूल में वहाँ सबसे बड़ी आयु का एक लड़का था जो पढ़ने लिखने में भी होशियार था। इसलिये गुरुजी ने उसको सबका मुखिया बना रक्खा था।

नींद लेती हुई बालिका की साड़ी के पल्ले कुछ बंधा हुआ था। एक लड़की ने कौतुहल से गाँठ खोली, तो सात कौड़ियाँ निकलीं। सबने सलाह की, बात स्थिर हुई। तदनुसार उन कौड़ियों का मिष्टान्न आया। चने या बेर बराबर, जितना भी हिस्से में आया, सबने प्रसन्न होकर खाया। बालिका का हिस्सा भी एक तरफ रख दिया था।

बालिका जागी । उस मुखिया लड़के ने दौड़कर उसका भाग उसके सामने रख दिया और कहा- सुरसुन्दरी, तुम्हारे लिए तुम्हारे भाग की मिठाई अलग रख छोड़ी थी। लो खाओ और पढ़ना शुरू करो।'

सुरसुन्दरी ने आंखें मलते मलते पूछा- 'आज मिठाई किसने बांटी है ?'

उसने हंसते हुए उत्तर दिया- 'तुम्हीं ने।'

सुरसुन्दरी क्रोध करके बोली- ''जाओ, झूठे कहीं के। सच कहो अमरकुमार ! आज मिठाई किसने मंगवाई ?''

अमरकुमार ने उसी तरफ हंसते हुआ कहा 'सच कहता हूं, यह तुम्हारी ही कृपा का फल है।'

सभी विद्यार्थी हंस पड़े। सुरसुन्दरी को उनका व्यवहार अच्छा न लगा। सुरसुन्दरी अपना स्वर पहले से जरा तीव्र करके बोली- 'ये क्या खिलर लगा रखी है? जाओ, मैं न खाऊंगी।'

अमरकुमार जबर्दस्ती हंसी रोककर बोला- 'आप नाराज क्यों होती है? आपकी साड़ी के पल्ले जो सात कौडियाँ बंधी थी उन्हीं की, पल्ले से खोलकर हमने मिठाई मंगवाई है।'

सुरसुन्दरी के दिल में इस बात का बड़ा दुःख हुआ कि, उन लोगों ने उसकी असावधानी में कौड़ियाँ खोलकर, उसको पूछे बिना, उनकी मिठाई मंगवा ली। उसका मिजाज बहुत गरम हो गया। उसने कहा- 'चोर कहीं का। बड़ा धन्ना सेठ आया है ? दूसरे के पैसों पर तागड़धिन्ना? किस गुरु ने इस तरह चोरी

करना सिखाया ? किसने औरों की जेबें काटकर मिठाई बाँटना बताया ? किसने ऐसी उदारता का पाठ पढ़ाया ? तेरी अकल कहां मारी गई थी ? सबका मुखिया बना है ! क्या ऐसी गिरहकटी के ही लिए ? माँ बाप तेरी इस बात को सुनेंगे तो कहेंगे– 'अच्छा कपूत जन्मा !' गुरुजी सुनेंगे तो कहेंगें– 'सब परिश्रम पानी में गया।'

सुरसुन्दरी की बातें सुनकर अमरकुमार की भौंह भी चढ़ गई। वह बोला– 'बड़ी राजाजी की लड़की हुई है। सात कौड़ियाँ क्या चीज हैं? इन्हीं के लिए ऐसी घबरा रही है मानों हाथों की दौलत लुट गई है।'

सुरसुन्दरी कड़ककर बीली' ये लाखों से भी ज्यादा थी, उनसे तो मैं राजा का राज लेती।'

अमरकुमार कुछ उत्तर देना चाहता था; परन्तु इतने में ही गुरुजी आ गये। अमरकुमार को विवश अपनी जीभ रोकनी पड़ी। सुरसुन्दरी को जबर्दस्त अपने मुँह पर लगाम लगानी पड़ी।

थोड़ी देर में सुदसुन्दरी सारी बाते भूल गई; परन्तु अमर–कुमार के हृदय से सुरसुन्दरीके शब्द नहीं हटे कि, मैं सात कौड़ी में राज लेती। उसने स्थिर किया कि, अवकाश मिलते ही मैं अपमान का बदला लूंगा।

जम्बूद्वीप गोलाकार है। इसका घेरा तीन लाख योजन है। इसी में चम्पा नामकी एक सुन्दर रम्य, धनधान्यपूर्ण नगरी थी। इसके अंदर रहने वाले सभी सुखी थे। उस नगरी के राजा का नाम रिपुमर्दन था। वह अपने देशवासियों का हितैषी था। सारी प्रजा उससे प्रेम करती थी। न्यायी ऐसा था कि धनी, निर्धन, अधिकारी, अधिकृत सभी को एक दृष्टि से देखता था। अपनी भुजाओं के जोर से उसने अपना राज्य बहुत बढ़ा लिया था। वह जैसा वीर था वैसा ही क्षमावान भी था ।

'शक्तानां भूषणं क्षमा'

'क्षमा बलवानो ंका भूषण है।' इस कहावत को वह, बराबर चरितार्थ करता था। शत्रु जब शरण में आ जाता तब उसके लाख अपराध भी वह क्षमा कर देता था।

इसके इन्द्राणी के समान सुन्दर रति सुन्दरी नामकी रानी थी। जैसी वह रूपवती थी वैसी ही वह गुणवती भी थी। धर्म में उसकी पूर्ण श्रद्धा थी। चम्पापुरी के नृप रिपुमर्दन के हृदय का चह प्रकाश थी।

इनके एक बालिका थी उसका नाम सुरसुन्दरी था।

इसी नगर में एक साहूकार रहता था जिसका नाम धनावह था। वह पूर्ण जीवन के सुखोपभोगों को भोगता था; परन्तु साथ ही संयमी भी था। जैसी सुख भोगने में उसकी रति थी वैसी ही धर्मध्यान में उसकी मति थी। धर्मध्यान में समय पर लग जाने के कारण वह सबका शिरोमणि समझा जाता था। वह अपने स्वजन–संबंधियों का हितैषी था, दुखियों का आराम था, असहायों का सहारा था और गरीबों के लिये दाता कर्ण था। उसके द्वार पर आशा लेकर आया हुआ कोई निराश होकर नहीं गया।

उसके धनवती नाम की स्त्री थी। उसे देखकर देवांगनाओं का ध्यान आ जाता था। कइयों को तो यह भ्रम हो जाता था कि, यह कोई देवांगना ही तो स्त्री का रूप धारण करके नहीं आई है।

उनके एक पुत्र था। उसका नाम था अमरकुमार । सुन्दर मुख, गौर वर्ण, चंचल नेत्र, आयु लगभग बारह बरस ।

दोनों ने गुरुजी के पास से पूर्ण विद्या प्राप्त की। उन्होंने जीव, कर्म, तत्त्व, पदार्थ, नय आदि का भी पूर्ण रूप से अध्ययन किया।

एक दिन सुरसुन्दरी अपनी माता के साथ पौषधशाला में साध्वीजी के दर्शनार्थ गई। साध्वीजी ने सुरसुन्दरी को पढ़ी लिखी समझकर और धार्मिक ज्ञान अच्छा है यह जानकर उससे पूछाः- ' सम्यक्त्त क्या है?'

सुरसुन्दरी ने उत्तर दिया 'जीवादि नौ पदार्थों का जिसको ज्ञान है वह सम्यक्त्वी है और भावपूर्वक जो इनपर श्रद्धा करता है वह भी सम्यक्त्वी है।'

प्रश्न-जो जानता है मगर श्रद्धा नहीं रखता वह सम्यक्त्वी है या नहीं ?

उत्तर-श्रद्धा बिना ज्ञान निकम्मा है। श्रद्धा होती है तभी जीव सम्यक्त्वी होता है।

प्रश्न- सम्यक्त्व का और भी कोई लक्षण है?

उत्तर- है। यथार्थ स्वरूप पर ज्ञानपूर्वक श्रद्धा करने का नाम सम्यक्त्व है।

प्रश्न- यथार्थ स्वरूप किसका?

उत्तर-देव, गुरु और धर्म का ।

प्रश्न-तुम इनका स्वरूप जानती हो ?

उत्तर-जो अठारह दोष रहित वीतराग और हित का उपदेश देने वाले होते हैं वे सच्चे देव होते हैं। जो इन्द्रिय-जयी धर्म-शास्त्रों की आज्ञानुसार उपदेश और आचरण करने वाले होते हैं, वे सच्चे गुरु होते हैं। और जो जीवों को दुर्गति से बचाता है, जो दया का उपदेश देता है, अहिंसा जिसका प्राण है वही धर्म है।

साध्वीजी, सुरसुन्दरी की बातें सुनकर प्रसन्न हुई और रानी से कहने लगी- 'रानी, तुमने रत्न उत्पन्न किया है। इसको किसी सच्चे जौहरी के हाथ ही सौंपना। देखना किसी कौव्वे की चोंच में यह रत्न न चला जाय ।

रानी ने हाथ जोड़कर कहा- मेरा रत्न अबोल चकाकौंध दिलाने वाला ही नहीं है। उसके मुह में जबान है, शरीर के अन्दर चेतना शक्ति है और दूसरों को अपने अनुसार बनाने की कला है। यदि आपकी दया होगी तो वह कौवे को भी राजहंस बना लेगी। चाहिए बस आपका आशीर्वाद !'

दोनों की पढ़ाई समाप्त हो गई तब गुरुजी उन्हें लेकर राजा के पास गये । राजा ने भरे दरबार में दोनों की परीक्षा ली। परीक्षा में दोनों पास हुए। दोनों ने सौ में से सौ नम्बर पाये। राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने गुरुजी को धन देकर सन्तुष्ट किया। अमरकुमार के पिता ने भी उन्हें बहुत सा धन दिया ।

सुरसुन्दरी अब पूर्ण यौवना हो गई थी। उसका अंग प्रत्यंग सुगठित था। उसका लाल शरीर एवं उसके तेजपूर्ण तीव्र कटाक्ष यौवन के साम्राज्यकी जयपताका उड़ा रहे थे।

सुरसुन्दरी की माता ने एक दिन रिपुमर्दन से कहा- 'लड़की अब सयानी हो गई है शीघ्र ही इसका ब्याह कर देना चाहिए।'

रिपुमर्दन ने उत्तर दिया- 'मुझे भी इसी चिन्ता के मारे आजकल नींद नहीं आती मगर किया क्या जाय? इसके योग्य कोई वर नहीं दीखता । राजहंसिनी और कौवे का क्या मेल ? सिंहनी और बकरे का क्या साथ ? हस्तिनी और गधे से क्या सम्बन्ध?'

दोनों थोड़ी देर चुप रहे, किसी की जवान में शब्द नहीं था। रानी राजा के मुख की ओर देख रही थी और राजा आकाश की ओर टक लगाये था। अन्त में रानी ने इस मौन को तोड़ा, -

'मेरे ध्यान में एक वर आया है।'

राजा ने उत्सुक्ता के साथ पूछा- 'कौन? रानी ने जवाब दिया- 'अमरकुमार ।'

राजा ने आश्चर्य के साथ कहा - 'वणिक पुत्र!'

रानी ने कहा- 'हाँ! क्या वह योग्य नहीं है?'

राजा थोडी देर कुछ सोचता रहा, यथोचित वीरता उसमें कहां से आयगी ?' फिर बोला- 'क्षत्रिय-

'अवकाश मिलने पर वीरता भी आ जाती है। और उसको लड़ने भी कहाँ जाना है? राजा रक्षक है, प्रजा को क्या चिन्ता है?

'अगर प्रजा निश्चित हो जाय, यदि प्रजा वीरता के काम न कर सके, यदि प्रजा के पुरुष अपनी बहू-बेटियों की इज्जत बचाने की शक्ति भी न रखते हों, प्रजा केवल पराश्रित सुख भोग में ही लीन हो जाय तो समझना चाहिए कि, वह प्रजा शीघ्र ही नष्ट हो जायगी, उसका राजा अपने प्राण देकर भी उसे नष्ट होने से बचा न सकेगा।'

बहुत सोच-विचार के बाद दोनों ने यही स्थिर किया कि, अमरकुमार के साथ सुरसुन्दरी का ब्याह कर दिया जाय ।

अमरकुमार के पिता धनवाह बुलाये गये। राजा ने उनका बड़ा आदर सत्कार किया और अपने मन की बात कही।

धनवाह सशंक दृष्टि से राजा की ओर देखने लगा। यह देख राजा मुस्कराया और बोला 'तुम ऐसे

भाव क्यों दिखा रहे हो मानों तुम्हें कोई मधुर स्वप्न आया है। मैं सचमुच ही सुरसुन्दरी के साथ अमरकुमार का विवाह करना चाहता हूँ। लड़का गुणी है, विद्वान है और सुरसुन्दरी का सहपाठी एवं बालपन का मित्र है। वह सर्वथा हमारी लड़की के योग्य वर है।'

धनवाह के आश्चर्यदर्शक भाव मिट गये थे। उसने हाथ जोड़कर कहा– 'प्रभो ! मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। लक्ष्मी को अपने घर में आते देखकर कौन मूर्ख ना कहेगा, सरस्वती को अपनी पुत्रवधू के रूप में पाकर किसका हृदय न नाच उठेगा? मुझे स्वीकार है। 'शुभस्य शीघ्रम' की कहावत को चरितार्थ करने के लिए हमें शीघ्र ही ब्याह का दिन निश्चित कर लेना चाहिए।'

धूमधाम के साथ विवाह कार्य सम्पन्न हुआ। सब रीतियाँ पूर्ण हुयी। माता ने आंसू बहाते हुये और पिता ने रुद्ध हृदय के साथ अपनी कल्पवेली के समान प्रेम से पाली हुई कन्या को दूसरे के स्वभाव से अपरिचित, व्यक्ति के हाथ में सौंप दिया।

प्रभात का समय था। सूर्य अभी उदय नहीं हुआ था। स्वच्छ आकाश मंडल में स्थिर तारे बगीचे में खिले हुए दुपहर के विकसित किन्तु धूप के कारण मुर्झाए हुए पुष्पों की भांति मलिन हो रहे थे। पक्षियों ने मधुर एवं कोमल स्वरों में प्रभातियाँ गाना प्रारम्भ कर दिया था। सुरसुन्दरी और अमरकुमार अपनी छत पर बैठे हुए आलस्य मिटा रहे थे और समुद्र की ओर एकटक देख रहे थे।

देखते ही देखते उन्हें समुद्र की सतह पर श्वेत हंसों की भांति अपने पालरूपी पक्षों के द्वारा उड़कर आता हुआ नौका समूह दिखाई दिया। वे एकटक उसकी ओर देखते ही रहे। थोड़ी देर में तो वह अन्यान्य ऊंची हवेलियों की आड़ में हो गया। जहाज बन्दरगाह पर पहुँचे। तोपों की जहाजों के सुरक्षित पहुंचने की सूचना व्यंजक ध्वनि हुई।

ये जहाज सुरसुन्दरी के श्वसुर धनवाह के थे। विदेशों से कमाई करके आज ही लौटकर आये थे। आज अमरकुमार का सारा दिन जहाजों का माल उतरवाने, उनकी जांच करने और व्यवस्थित रूप से रखने के काम में बीता। यह कार्य वह आगे भी करता था, परन्तु आज न जाने क्यों उसके दिल में एक नवीन ही भावना का उदय हुआ। वह भावना स्पष्ट होकर यही कह रही थी, अमरकुमार! स्वयं कुछ कमाई न करके बाप की कमाई पर ही जीवन बिताना कायरता है। उठ, तू भी अपनी देखरेख में जहाजों का लंगर उठा विदेशों में जाकर कुछ कमाई कर ।

संध्या के समय अमरकुमार ने अपने पिता से जहाज लेकर विदेश जाने की बात कही। धनवाह को दुःख भी हुआ और सुख भी। दुःख इसलिए कि, इकलौती संतान उससे बिछुड़ना चाहती है। सुख इसलिए कि उसका सुपूत अपने बाप-दादों के धंधे में कदम रखना चाहता है और पहले की कमाई में अभिवृद्धि करना चाहता है। बहुत हां, ना के बाद पिता ने अमरकुमार को आज्ञा दी।

वर्षाऋतु बीत चुकी थी। सर्दी का मोसिम प्रारंभ हो गया था। अमरकुमार विदेश जाने वाला है इसलिए जलयात्रा की तैयारियां होने लगीं।

अमरकुमार ने कहा- 'प्रिये। मैं विदेशों में व्यापार के लिये जाऊंगा। तुम आनंद के साथ धर्म-ध्यान में अपना समय बिताना और मुझे अपने आनंद के समाचार देती रहना। मैं भी तुम्हारे पास जल्दी-जल्दी समाचार भेजा करूंगा।'

सुरसुन्दरी ने कातर दृष्टि से अपने पति की ओर देखा। थोड़ी देर देखती रही। उसकी आंखों में आंसू थे। उसने भर्राई हुई आवाज में कहा- 'मैं अकेली कैसे रहूंगी ?'

अमरकुमार ने थोड़ा मुस्कुरा दिया, वाणी से कोई उत्तर नहीं दिया; परन्तु उस मुस्कुराहट द्वारा उसने बता दिया कि सुरसुन्दरी को अकेले ही रहना पड़ेगा।

सुरसुन्दरी हृदय को कड़ा करके बोली- 'प्राणनाथ! आपके बिना मैं दिन न निकाल सकूगी। मेरे हास्य विलास आनंद उल्लास सभी आपके पीछे चले जायेंगे। सर्वत्र उदासी छा जायगी, अंधकार हो जायगा। यदि कभी धर्मशरण से, धर्मज्ञान में रत रहने से, तत्त्वज्ञान विवेचन से मन उल्लासित होगा, हंसी की मधुर रेखाएं मुख पर फूट उठेंगी तो लोग मेरे सिर कलंक लगायेंगे । शास्त्रों में भी कहा है कि शय्या, आसन, भोजन, द्रव्य, राज्य, रमणी और घर इन सात पदार्थों को कभी सूने नहीं छोड़ना चाहिए। यदि ये सूने रहते हैं तो इन पर दूसरा अधिकार कर लेता है। अतः नाथ! मैं तो आपके साथ ही चलुगी।'

अमरकुमार कुछ देर तक सोचता रहा पश्चाताप प्रेमपूर्वक उसने मौन भाषा में सुरसुन्दरी को साथ चलने की अनुमति दे दी।

सुरसुन्दरी का संदेह इस मौन भाषा से न टूटा। उसके कानों ने स्वीकारता के शब्द सुनना चाहा। इसलिए उसने अमरकुमार के मुख की ओर सन्दिग्ध दृष्टि से देखते हुए पूछा- 'तो मुझे साथ ले चलोगे न? अमरकुमार ने हंसते हुये कहा- 'हाँ।'

जहाज बन्दरगाह में तैयार खड़े अमरकुमार की प्रतीक्षा कर रहे थे। सुरसुन्दरी अपने माता पिता से मिली, उनकी आज्ञा लेकर जब वह वापिस रवाना हुई तब माता ने कहा- 'बेटी, संसार में नारी के लिए पति से बढ़कर और कोई नहीं है। पति के हृदय को प्रफुल्लित रखना ही स्त्री का सबसे बड़ा कर्तव्य है।' पति की भूल को न देख उसके गुणों में लीन होना और उसकी दुर्बलताओं को अपनी शक्ति से, अपने प्रेम से और अपने आचरण से मिटा देना ही नारी का आदि धर्म है। इस कर्त्तव्य से इस धर्म से कभी मत डिगना। धर्म क्रियाएं निरंतर करना और संकट पढ़ने पर विशेष रूप से मन, वचन, काय के योगों को सब तरह से रोक कर 'भगवान स्मरण करना। यह दुःख से छुड़ायगा।

सुरसुन्दरी ने सास ससुर के चरणों में शिर नवाया। ससुर आशीर्वाद देकर चला गया। सास ने उसके मस्तक पर प्रेम के साथ हाथ रक्खा, उसे उठाया और कहा- 'पुत्री! मैं तुझे क्या उपदेश दूं? तू स्वयं शिक्षिता है, सब कुछ समझती है। तो भी तुझे दो शब्द कहना चाहती हूँ। मैं आज अपना हृदय का लाल अपनी आँखों का तारा तेरे भरोसे रवाना करती हूं। वह आज तक मुझे छोड़कर कभी नहीं रहा। अतः

उसको जब जब मेरी याद आवे, व्याकुल हो, तब तब तुम उसे ढाढस बंधवाया और उसके शरीर एवं मन का यत्न करना। इसी में तुम दोनों का सुख है।'

पिता ने पुत्र को यात्रा का शुभ शकुन सूचक नारियल हाथ में देते हुए कहा- 'बेटा! वन में विचरण करने वाले साहसी सिंह की भांति अपनी इन्द्रियों को सदा वश में रखना; देश, काल और परिस्थिति के अनुसार आचरण करना। सवेरे ब्रह्म मुहूर्त में सूर्योदय के पहले उठना और पंचपरमेष्ठी का जाप करना। अपने नौकरों के साथ कभी कठोरता का व्यवहार न करना। उनसे भूल हो जाय तो प्रेमपूर्वक उन्हें बताकर क्षमा कर देना। अपना बलाबल देखकर किसी से युद्ध या संधि करना। सदा सावधान रहना । संतोष न छोड़ना। शाम, दाम, दण्ड, भेद जैसे हो सके वैसे अपना काम कर लेना। अपनी कुशलता के समाचार भेजते रहना । देख, बहू को किसी प्रकार का कष्ट न हो इस बात का सदा ध्यान रखना।'

अमरकुमार और सुरसुन्दरी अपने जहाज के कमरे में जा बैठेः। तोपों की गर्जना के साथ जहाज के बेड़े ने लंगर उठाया। बेड़ा समुद्र की छाती फाड़ता हुआ मार्ग पूर्ण करने लगा। धनावह आदि जहाज दिखते रहे तब तक बन्दरपुर खड़े एकटक उनकी ओर देखते रहे।

जहाज सिंहलद्वीप टापू में पहुंचे। इस टापू के सिवा दूसरी जगह बहुत दूर तक कोई टापू नहीं आता था। तीन चार दिन तक जहाज अनन्त जलराशि पर ही तैरते रहेंगे, इसलिए जहाजों ने सिंहल द्वीप में लंगर डाले। फल फूलों से परिपूर्ण उस टापू को देखकर सबके मन में वहां दो चार दिन रहने की इच्छा हुई। मगर मालूम हुआ कि, वहां पहाड़ में एक मानवभक्षी राक्षस रहता है। रात के समय बाहर निकलता है और जिस मनुष्य को पाता है उसी को भक्षण कर जाता है। यह जान कर सबने वहाँ रहने का विचार छोड़ दिया। सबके सब जल्दी जल्दी पानी भरले और हो सके उतने फल फूल लेकर जहाजों में रख लेने के काम में लगे ।

अमरकुमार और सुरसुन्दरी भी जाकर एक वृक्ष के नीचे सघन वृक्ष राशि के बीच हरी हरी दूब के ऊपर बैठ गये। दोनों बातें करने लगे। बाल्य जीवन की बातें-विद्यालय के आनंद उल्लास एक एक करके सबका वर्णन होने लगा। सुरसुन्दरी को बातें करते करते नींद आने लगी। वह अपने पति की गोद में सिर रखकर लेट गई; लेटते ही मीठी नींद लेने लगी ।

वार्तालाप के सिलसिले में अमरकुमार को सुरसुन्दरी की वह बात याद आई जो सुरसुन्दरी ने, उसके पल्ले से सात कौडियाँ खुलवा लेने पर, तिरस्कार के साथ अमरकुमार को कही थी कि, सात कौड़ी में तो मैं राज्य लेती ।

बचपन में इस तिरस्कार का बदला न ले सका था। आज उसे तिरस्कार का बदला लेने की सूझी। उसने क्रोधपूर्वक मन ही मन कहा- 'अभिमानिनी? आज मैं तिरस्कार का बदला लूंगा और तेरे अभिमान को चूर्ण करूंगा।'

उसने धीरे से उसका सिर एक पत्थर पर रख दिया और उसके पल्ले सात कौड़ियाँ बांध कुछ लिख दिया ।

अमरकुमार चला। चला मगर उसके पैर नहीं उठते थे । विवेक आकर उसको इस दुष्ट काम के लिए फटकारता था। वह कहता था– मूर्ख! बाल्यक्रीड़ा के खेल और उसके अविचारी कथन का यह बदला? मुग्धा बाला के अनन्त विश्वास और प्रेम के परिवर्तन में ऐसी विश्वासघातकता! यह नीचता! हज़ारों. मनुष्यों के सामने सदा जिसकी रक्षा की प्रतिज्ञा की थी; जिसको सुखी बनाने का अभिवचन दिया था उस प्रतिज्ञा का वह पालन ? उस वचन का यह निर्वाह?'

अमरकुमार ने कहा– 'सच है। अज्ञान और अजान में कही हुई बात का विचार क्या ? नहीं मुझे यह क्षुद्र कार्य नहीं करना चाहिए। अगर मैं इसे छोड़कर चला जाऊँगा तो उसके प्राण नहीं बचेंगे।'

अमरकुमार वापिस सुरसुन्दरी के पास गया। उसके सिरपर हाथ रक्खा, मगर उसकी आँख न खुली। दुर्भाग्य का भयंकर विपाक उदय में आने वाला था फिर उसकी नींद क्यों खुलती?

अमरकुमार को फिर बाल्यावस्था की घटना और उस अवसर पर की हुई प्रतिज्ञा याद आई। उसके मन में फिर से दुर्दमनीय दुर्बुद्धि का दौर आरम्भ हुआ ।

उसने सोचा–जो जैसा करता है उसे उसका प्रतिफल मिलता ही हैं। संसार में घात का प्रतिघात होता ही है। प्रकृति, बच्चे, वृद्ध या जवान किसी के साथ रियायत नहीं करती। अग्नि जलाती ही है, पानी भिगोता ही है, नीम कडुआ लगता ही है। क्योंकि यही इनका स्वभाव है। तब कर्मफल दिये बिना कैसे छूट सकते हैं? इसका भविष्य जो होगा सो होगा। मुझे अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनी ही चाहिए। इस अभिमानिनी का दर्प चूर्ण करना ही श्रेष्ठ है।

जैसे समुद्र में ज्वार आता है और चट्टान से टक्कर खाकर पानी वापिस लौट जाता है वैसे ही विवेक ज्ञानसागर की एक उत्ताल तरंग उठी और सबको अपने में समा लेने के लिये आगे बढ़ी, परन्तु सुरसुन्दरी के बुरे कर्मों के उदय की ओर अमरकुमार के दुष्ट विचार की चट्टान से टकराकर वापिस लौट गई। अमरकुमार अपनी पत्नी, राजसुता, माता पिता की आंखों का तारा, सास–ससुर की प्रियवधू को अकेली भयानक वन में छोड़कर चला गया।

जब अपने जहाजों से थोड़ी दूर रहा तब रोने–चिल्लाने लगा, हाय सुरसुन्दरी ! मैं अब तेरे बगैर अकेला कैसे रहूंगा? माता पिता को जाकर क्या कहूंगा? सास ससुर को कैसे मुंह दिखाऊंगा? लोग जमा हो गये। उनके पूछने पर अमरकुमार ने बहा– 'राजसुता को राक्षस मारकर खा गया है।' सबने यह बात मान ली। धीरे–धीरे, अमरकुमार को धीरज बंधाकर सब अपनी अपनी जगह पर जा बैठे। अमरकुमार ने भी अपने जहाज पर सवार होकर जहाज चलाने का हुक्म दिया । पाल तान दिये गये और जहाजों के लङ्गर उठा लिए गये। अनुकूल वायु पाकर बेड़ा तेजी के साथ आगे की ओर बढ़ा ।

सुरसुन्दरी जागी, उठी, आंखें मीच, आलस छोड़ा और इधर–उधर देखने लगी। कोई दिखाई नहीं दिया। बैठी थी खड़ी हो गई और वृक्षों में यहां वहां खोजने लगी; मगर अमर–कुमार कहीं नहीं दिखा। वह घबराई, भय से ह्दय धडकने लगा, सुहावनी दृश्नराशी, सुगंधित लताएं और हरी हरी दूब उसे भयानक दिखाई देने लगीं। वह समुद्र की ओर तेजी के साथ चली भागी।

मगर किनारे पर जहाज कहां थे? दूर अति दूर जहाजों का बेडा उसे जाता हुआ दिखाई दिया। वह एक टक उसकी ओर ताकती रही। बेडा धीरे–धीरे अदृश्य हो गया।

सुरसुन्दरी के ह्दय पर मानों वज्र गिरा। वह एक हाय करके भूमि पर जा पडी। हाय! जिसके सिर ठनकने से सारी चंपापुरी व्याकुल हो उठती थी, वही राजसुता सुरसुन्दरी आज मूर्च्छित पडी है और उसकी सुश्रुषा करने वाला कोई भी नहीं है। यही कर्म की गति है! इसीलिए महापुरुषों ने संसार को असार बताया है।

जहाँ कोई सहायक नहीं होता वहाँ प्रकृति मददगार बनती है। मन्द पवन ने बहकर सुरसुन्दरी को जगाया। मगर यह जागृति उसके लिए भयंकर थी। वह नाथ! नाथ! पुकार कर रोने लगी। मगर कौन इस पुकार का उत्तर देता? कौन उसके आँसू पोंछता? वहाँ मनुष्य तो क्या पशु पक्षी भी न थे। थे मात्र वृक्ष और लताएँ। वे क्या उत्तर देते? तो भी उन्होंने अपनी मौन भाषा में सुरसुन्दरी को आश्वासन दिया, धीरज बन्धाया, अपने आश्रय में रखने की उत्सुकता बताई और पुरुषों की तरह कृतघ्न नहीं बनने का अभिवचन दिया ।

सुरसुन्दरी ने आँचल से आंसू पोंछे। पल्ला छोड़ते समय उसको गाँठ नजर आई। उसने खोली। सात कौड़ियों निकलीं। कौड़ियों के नीचे पल्ले पर लिखा था–'सात कौड़ी में राज्य लेकर रानी बनो।'

इस वाक्य का एक एक अक्षर और इन कौड़ियों का एक एक स्वरूप उसके ह्दय में तपे हुए लोहे की सलाख की तरह चुभने और उसे जलाने लगा। उसकी आँखों का पानी सूख गया, उसका सोया हुआ क्षत्रियत्व जाग उठा। उसने घृणा से उन अक्षरों की ओर देखा और कहा–'यही मेरे प्रेम और आत्मत्याग का बदला! आखिर तोता चश्मा बनिये की जात ही है न! छिः! माता ने मुझे कहाँ ढकेल दिया! मैं जान बूझकर उस बचपन के चोर के फन्दे में कहाँ फंस गई ! मैंने क्यों अपने आपको इसके हाथ सौंप दिया?'

क्रोध से उसको ह्दय जलने लगा। वह जल्दी–जल्दी समुद्र के किनारे टहलने लगी ।

सूर्य ढल चुका था। ठण्डी हवा चल रही थी। वृक्ष झूमते हुए साँय साँय करके सुरसुन्दरी को कुछ सुना रहे थे। मगर क्रोधाभिभूत सुरसुन्दरी ने एक शब्द भी न सुना ।

वह एक वृक्ष के सहारे बैठ गई। धीरे धीरे उसका क्रोध घटने लगा। उसका मन प्रकृतिस्थ हुआ। शनैः शनैः उसके सामने उसका नारी रूप आ खड़ा हुआ। उसका विवेक ज्ञान जागृत हुआ ।

यह बोली छिः! सुरसुन्दरी! नारी होकर तेरे ये भाव ! पुरुष का धर्म कठोरता है तो नारी का धर्म

कमनीयता और कोमलता है। पुरुष का कार्य निर्दयता है तो स्त्री का धर्म दया है। पुरुष का धर्म लूटना है तो स्त्री का धर्म सर्वस्व दान है। इन विरोधी गुणों के बिना नारी का वास्तविक रूप कैसे प्रकट हो सकता है ? जो पति स्नेह और आदर करता है उससे तो भक्ति और प्रेम सभी स्त्रियाँ करती हैं। यह तो एक साधारण बात है।

'स्त्री का वास्तविक रूप तो उसी समय प्रकट होता है जब स्त्री अपने निर्दय-पति की मार खाकर भी उन पैरों की पूजा करती है, जो उसके पीठ पर छाती पर या अन्यत्र निर्दयतापूर्वक गिरते हैं। इसी से उसका वास्तविक नारीरूप, पत्नीरूप, देवीरूप, जगजनरक्षिणी रूप प्रकट होता है। मैं भी नारी हूँ। वास्तविक अर्थ में नारी रहूँगी।'

गाल पर हाथ देकर थोड़ी देर सोचती रही। उसका क्षत्रिय भाव फिर जाग उठा, मैं क्षत्रिय सन्तान हूँ। इस प्रत्तारणा का बदला लूंगी; जरूर लूंगी। मगर उनकी तरह विपत्ति में डालकर नहीं, उनको विपत्ति से बचाकर। माना कि स्त्री का धर्म क्षमा है; आत्मदान है; परन्तु स्त्री जाति को तुच्छ समझकर पुरुष उनके साथ जो क्षुद्र व्यवहार करते हैं वह तो सर्वथा असह्य है: स्त्रियों के सद्‌गुणों का दुरुपयोग है...। हाँ, तो सात कौड़ियों से राज लेकर रानी बनना होगा और अपना नारी तेज दिखाकर उन्हें सन्मार्ग पर लाना होगा।

संध्या हो गई। सूर्य छिप गया। धीरे धीरे अन्धकार बढ़ने लगा । अन्धकार के साथ ही साथ सुरसुन्दरी के हृदय में भी भय बढ़ने लगा। उसने सीखा था कि, पंचपरमेष्ठी मन्त्र सारे दुःखों को दूर करने वाला है, इसलिए उसने एक मन से इसी मन्त्र का जाप प्रारम्भ किया। उसका भय जाता रहा; वह मन्त्र जाप में तल्लीन हो गई।

अचानक दूर से किसी पत्थर के फटने की आवाज आई। सुरसुन्दरी ने आंखें खोलीं। सामने की एक पहाड़ी फटी हुई और एक भयंकर मूर्ति उसमें से निकलती हुई दिखाई दी। उसका हृदय फिर भय से कांप उठा। थोड़ी देर तक एकटक उस मूर्ति की तरफ देखती रही। वह भयंकर मूर्ति जब उसे अपनी ओर आते हुए दिखाई दी तब उसने अपना रक्षाकवच नवकार मन्त्र फिर से जपना प्रारम्भ किया; एक-चित्त होकर जपने लगी ।

राक्षस धीरे-धीरे सुरसुन्दरीके पास आया । उसके पास आकर भी उसे भक्षण करने की प्रवृत्ति न हुई। भयानक निर्दय जीव के हृदय में भी नवकार मन्त्र के प्रभाव से दया का स्रोत फूट निकला । उसने अपना स्वर जितना हो सकता था उतना कोमल करके कहा-'बेटी! तू कौन है ? यहां क्यों आई है? कैसे आई है?'

बेटी सम्बोधन और कोमल स्वर में न जाने क्या जादू है कि वह तत्काल ही सुनने वाली को अपने वश में कर लेता है। सुरसुन्दरी ने आदि से अन्त तक अपनी सारी कथा कह सुनाई । सुनकर उसने कहा-'कोई चिन्ता नहीं बेटी। आनन्द से यहीं रहो और समय बिताओ ।

सुरसुन्दरी वहीं रहने लगी। फल फूल खाती, झरणों के मधुर जल का पान करती और अहर्निश नवकार मन्त्र का स्मरण और पति के कल्याण की भावना में निमग्न रहती ।

कई महीने बीत गये। एक दिन किसी साहूकार के जहाज इस टापू में आकर पानी लेने के लिए ठहरे। जहाजों के स्वामी सेठ ने सुरसुन्दरी को देखा, उसे उस स्थान की अधिष्ठात्री देवी समझा, प्रणाम किया और तब हाथ जोड़कर वह सामने खड़ा हुआ ।

सुरसुन्दरी ने अति कोमल कंठ में कहा- 'पिता! मैं मानवी हूं, देवी नहीं।'

सेठ बड़ा अप्रतिभ हुआ। थोड़ी देर चुप खड़ा रहा। फिर बोला- 'मानवी होकर तुम यहां कैसे आई और कैसे जीवित हो?'

सुरसुन्दरी ने अपनी सारी कथा कह सुनाई। सुनकर सेठ को दुःख, आश्चर्य और लोभ तीनों हुए। वह थोड़ी देर ललचाई आंखों से सुरसुन्दरी की ओर ताकता रहा, फिर बोला-'तब तुम यहां आनंद में हो ? तुम्हें फिर से मनुष्य-समाज में जाने की इच्छा नहीं?'

सुरसुन्दरी के हृदय में बड़ा आन्दोलन उठा। वह कुछ क्षण पृथ्वी की ओर देखती रही। फिर जरा सिर उठाकर बोली-'इस भयानक वन में, खग-मृग-विहीन इस भयंकर जंगल में अपने माता पिता से दूर होकर, कुटुम्ब कबीले से बिछुड़कर और खासकर अपने प्राणधन के वियोग में कौन रमणी सुखी रह सकती है ? तो भी विश्वासघातक मानव समाज में और खासकर पुरुष समाज के साथ में रहने से तो मुझे बड़ी ही घृणा हो गई है। पुरुष समाज विचारी अचलाओं की इसी तरह प्रतारणा किया करता है।।

सेठ ने बहा- 'पांचों अंगुलियां समान नहीं होतीं। इसी तरह समस्त पुरुष समाज भी विश्वासघातक नहीं होता । तुम मेरे साथ चलो। मैं तुम्हें तुम्हारे घर पहुंचा दूंगा।'

सुरसुन्दरी थोड़ी देर सोचती रही, जाना उचित है या अनुचित ? इसी की मीमांसा में लगी रही। अन्त में उसने जाना ही स्थिर किया। कारण उसे सात कौड़ी में राज लेने का उद्योग करना था।

सेठ ने उसे विचार मग्न देखकर पूछा- 'क्या विचार है ?'

सुरसुन्दरी ने कहा- 'मैं तुम्हारे साथ चलूंगी। मुझे किसी मनुष्यों के टापू में उतार देना। मैं अपने देश में जब तक मेरे स्वामी न मिलेंगे तब तक न जाऊंगी (मनोगत) और उनसे तब भेंट करूंगी जब मैं उनके कथनानुसार सात कौड़ियों के सहारे राज ले लूंगी। अपनी संतान समझकर मेरे साथ व्यवहार करने की और मुझे एकांत में रहने देने की स्वीकारता दो और धर्म को साक्षी देकर अपना वचन पालने की प्रतिज्ञा करो तो मैं तुम्हारे साथ चल सकती हूँ।'

सेठ ने सभी कुछ स्वीकार किया। प्रतिज्ञा भी की और मन ही मन हंसता हुआ सुरसुन्दरी को अपने जहाजों पर ले गया ।

जवानी भी हो, सौन्दर्य भी हो और एकांतवास भी हो, ऐसी दशा में कौनसा पुरुष होगा जिसका मन सुन्दर स्त्री को देखकर विचलित न होता होगा?

सेठ के मन में तो पहले ही पाप था। अब उसकी वासना, सुरसुन्दरी को अपने वश में पाकर और भी प्रबल हो उठी। तो भी वह उस वासना को तीन-चार दिन दबाये रहा। वह रोज सुरसुन्दरी के पास उसकी कुशलवार्ता पूछने जाता, वासना पूर्ण आंखों से एकटक उसकी ओर देखता और उसे पृथ्वी की ओर ताकती हुई देखकर वापिस लौट जाता।

वासना दुर्दमनीय हो गई। कामदेव की ज्वाला से तन बदन जलने लगा। उसने स्थिर किया कि आज उससे अपनी बनने के लिए कहना और यदि नहीं माने तो बलात्कार करना।

सेठ सुरसुन्दरी के पास पहुँचा और धीरे-धीरे जाकर उसके पास बैठ गया। सुरसुन्दरी को आश्चर्य एवं भय हुआ। उसने उसके चेहरे की ओर देखा। सेठ के हार्दिक विकारों के लक्षण उसके चहरे पर दिखाई दिये।

सुरसुन्दरी अपनी जगह से उठी और सेठ को प्रणाम कर दूर जा खड़ी हुई।

सेठ ने कहा- 'राजसुता बैठो। खड़ी क्यों हो गई? प्रसन्न तो हो न?'

सुरसुन्दरी ने पैर के अंगूठे से जमीन कुरेदते हुए उत्तर दिया- 'प्रभु की दया से आनंद है।'

सेठ थोडी देर इधर उधर करके बोला- 'राजसुता! मेरी एक प्रार्थना है। क्या स्वीकृत होगी?'

सुरसुन्दरी ने मन ही मन कहा- 'यह दुष्ट प्रवृत्ति प्रकाश का श्रीगणेश है, (प्रत्यक्ष में बोली) मैं किस योग्य हूँ जो आपकी बात पूरी कर सकूँ ?

सेठ-आप सब कुछे करने का सामर्थ्य रखती हैं।

सुरसुन्दरी - (मनमें) क्या कहना चाहते हैं सुनूं तो। (प्रकट) कहिये।'

सेठ-क्या तुम यह नहीं समझ सकतीं कि मैं तुम्हें अपने जहाज में क्यों लाया हूँ?

सुरसुन्दरी- दया करके सुरक्षित स्थान में पहुँचाने के लिए।

एक विद्रुप-व्यंजक हंसी हंसकर सेठ बोला- वाह! ऐसी भोली बातें करती हो, मानों तुम दुधमुंही बच्ची हो। अच्छा सुनो, मैं तुम्हें अपनी-हमेशा के लिए अपनी बनाने के लिए लाया हूँ।'

सुरसुन्दरी-मैं तो हमेशा आपकी पुत्री रहूंगी ही।

सेठ के हृदय में मानों किसी ने छुरी मार दी। वाह झुंझलाकर बोला 'पुत्री नहीं, अपनी बीवी बनाने के लिए।'

सुरसुन्दरी ने घृणा से कहा-'छिः! कैसी अधर्म की बातें करते हो? क्या इसीलिए आश्वासन देकर, प्रतिज्ञा कर मुझे लाये हो?'

ही ही करके सेठ हंसा और बोला– 'मछुआ मछली को क्या किसी मधुर जल के स्रोत में छोड़ देने के लिए पकड़ता है? शिकारी क्या चिड़िया को एक जंगल से ले जाकर, दूसरे जंगल में छोड़ने के लिए, जाल बिछाता है? सुन्दर उद्यान में से आम और अनार क्या फैंक देने के लिए चुने जाते हैं? उस समय की प्रतिज्ञा एक जाल था। उस जाल को बिछाये बिना क्या यह चिड़िया उसमें फँसती और क्या मैं इस रूप–सुधा को अपने काम में आने के लिए न लाकर जंगल में सुखने के लिए छोड़ आता?'

सुरसुन्दरी क्रोध से तमतमा उठी और गर्जकर बोली– 'चुप!' अपनी वणिक सुलभ वाकपटुता दिखाते हुए सेठ बोला –'सब कार्य चुपचाप ही तो होगा।'

सुरसुन्दरी का सारा शरीर क्रोध से कांप रहा था। उसकी जबान से पूरे शब्द नहीं निकल पाते थे। उसका क्षत्रियत्व फुंकार उठा था। उसकी आखों से भीषण दीप्ति निकल रही थी। वह बोली– 'चाण्डाल! जबान बंद कर। अगर एक शब्द भी आगे बोला तो......।' आगे शब्द न निकले ।

साहूकार भी क्रुद्ध हो उठा। बैठा था खड़ा हो गया और अपनी राक्षस–काय को लेकर सुरसुन्दरी के सामने जा खड़ा हुआ और कहने लगा–'नादान औरत! जानती नहीं हो कि, इस समय तुम मेरे कब्जे में हो। तुम्हें चाहिए कि तुम मेरा हुक्म मानो । अहसान मानना और मेरी इच्छाओं के सामने तुम्हें सिर झुकाना चाहिए सो तो एक तरफ रहा। उल्टे अपनी जान बचाने वाले पर गुर्राती हो। ऐसी कृतघ्नता! देखो। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम चुपचाप मेरी इच्छा के अनुसार चलो और मेरे साथ जीवन का सुख उठाओ। अन्यथा ध्यान रखो कि, मुझे जबर्दस्ती अपनी इच्छा पूर्ण करनी होगी।'

सुरसुन्दरी ने कहा– 'नालायक, सोती सिंहनी को न जगाः नहीं तो वह तुझे कुचल देगी; तेरा सिर विदारण कर देगी; तेरी इस भैंसे सी देह को मिट्टी में मिला देगी। एक पतिव्रता क्षत्राणी के सामने ऐसी बातें करना अपनी मौत को पुकारना है। सावधान!'

सेठ–वाह! ये नाजुक हाथ मुझे मिट्टी में मिलाने के लिए।

ओह! यह सुकोमल शरीर मुझे कुचलने की कोशिश करे; यही तो मैं भी चाहता हूँ। सुरसुन्दरी! ये सब बातें व्यर्थ हैं। सुख मनाओ और जीवन को सफल करो। तुम्हारी चिल्लाहट यहां कुछ काम न देगी। भीम–बलधारी मेरे हाथों से तुम्हें बचाने का सामर्थ्य किसी में भी नहीं है।'

सुरसुन्दरी ने अपने आंचल में से छुपी हुई एक छुरी खींच ली और गरज कर कहा–'दुष्टात्मा! देख! क्षत्राणी की रक्षिका, सती की मर्यादा की ढाल, स्त्री धर्म का कवच और दुष्ट दलनीं दानवी यह मेरी छुरी तेरे भीमबल हाथों से मेरी रक्षा करेगी। सावधान! यदि एक कदम भी आगे बढ़ायगा तो अपने को पृथ्वी में धूल चाटते पायेगा। सावधान!'

बनिया छुरी देखकर डर गया। वह दो कदम पीछे हठ गया । धीरे–धीरे पीछे हटता हुआ कमरे के दरवाजे के पास जा पहुंचा। झट से बाहर निकल गया। बाहर से दरवाजा बन्द कर बोला 'देखें कैसे मेरी आज्ञा का अनादर करोगी?' वह बाहर से साँकल लगाकर चला गया।

सुरसुन्दरी अकेली रह गई। उसे अपनी वास्तविक स्थिति का भान हुआ। वह सोचने लगी, अब क्या करना चाहिए? असहाय अबला! नाथ! रक्षा करो! अशरणशरण, शरण दो! हाय। अब कैसे मैं अपने सतीत्व-रत्न को इस लुटेरे से बचाऊं? आह! दुनियाँ में पुरुष कितने नीच और विश्वासघातक होते हैं? माता बहिन बेटी का जिन्हें खयाल नहीं; अपनी प्रतिज्ञा का जिन्हें विचार नहीं; अपने धर्म का जिन्हें ध्यान नहीं; वे क्या पुरुष हैं? छिः! इनसे तो सांप ही अच्छा है। वह कभी विश्वासघात तो नहीं करता। इसी से तो लोग कहते हैं कि-'सौंता सांप भी नहीं खाता ।'

हाँ तो एक उपाय है- आत्महत्या। आत्महत्या के विचार से उसका कलेजा काँप गया। कौन स्वयं मरने की इच्छा करेगा और फिर आत्महत्या करना भी घातक है। तो किया क्या जाय? आत्महत्या विशेष घातक है या शील-भंग? शील-भंग के विचार ने उसकी अजब दशा कर दी। वह दृढ़ता से छुरी पकड़, इधर उधर टहलने लगी।

'नहीं। समुद्र में कूद पड़ना ही अच्छा है। दुष्ट मेरे मृतक शरीर को छुए यह भी पाप है। शील-रक्षा करना आत्म-रक्षा से लाख गुना अच्छा है। यदि आत्मघात पाप है तो वह पाप का अन्धेरा शीलरक्षा के अनन्त तेजोमय प्रकाश में अलोप हो जायगा। ओह! जीवन जाय, पति मिलने की इच्छा नष्ट हो, माता-पिता के दर्शनों की अभिलाषा खण्ड-खण्ड हो जाय, सात कौड़ी में राज लेकर पति प्राप्त करने के मनोरथ सदा के लिए मिट्टी में मिल जाय, मगर मेरा शील अखण्ड रहे! मेरा सत कायम रहे। मेरे सतीत्व पर कोई दाग न लगे। प्रभो! मेरे शील की रक्षा हो! शील! शील!! शील!!!'

सुरसुन्दरी ने कोठड़ी की खिड़की खोलो। अनन्त समुद्र बाहर दिखाई दिया। उसने नवकार मन्त्र का जाप किया, पतिपद-पदा का ध्यान किया और झट पट काछा मारकर वह समुद्र में कूद पड़ी। हा! राक्षसी पुरुष-प्रकृति! तेरे अत्याचार से स्तिनी अचलाएं यों आत्मघात करती होंगी?

साहूकार थोड़ी देर में तीन चार आदमियों सहित वापिस आया, मगर वहां सुरसुन्दरी नहीं थी। उसने चारों तरफ देखा कहीं कुछ नहीं था, खिड़की से बाहर दृष्टिपात किया; समुद्र की उत्ताल तरंगों में सुरसुन्दरी डूबू तिरूं स्थिति में पड़ी थी। उसने नाविकों को आज्ञा दी, 'तत्काल ही किश्ती उतारकर उसकी रक्षा करो।'

खलासी अभी नौका उतार भी नहीं पाये थे कि, बड़े जोर की आंधी उठी। समुद्र क्षुब्ध हो गया। पहाड़ के तुल्य ऊंचीर तरंगें उठने लगीं। इस तूफान में नौका स्थिर न रह सकी, उलट गयी और पापी साहूकार के साथ अनेक निरपराध प्राणियों को भी उसने अतल जल में विलीन कर दिया। सती के अपमान का बदला हाथों हाथ मिल गया ।

आयुष्य कर्म जब तक समाप्त नहीं हो जाता तब तक जीवन-डोरी नहीं टूटती । सुरसुन्दरी की आयु अभी बाकी थी, उसे अभी संसार के दुःख सुख देखने थे, इसलिए उसके हाथ में टूटे जहाज की लकड़ी का एक तख्ता आ गया और उसी के सहारे वह तैरने लगी- समुद्र के थपेड़ों में बहने लगी ।

सुरसुन्दरी दुःख के स्वभाव से अपरिचित राजसुता -आज अनन्त समुद्र में तैर रही है; कहीं किनारा नहीं दीखता, हाथ पैरों की शक्ति क्षीण हो रही है, तो भी आशा नहीं छूटत्ती। वह जीवन की रक्षा करना चाहती है, उसे जीवन को सार्थक बनाना है, स्वामी की बांधी हुई सात कौड़ियां अब भी उसके पल्ले बंधी हुई हैं, उसे उन्हीं सात कौड़ियों से राज्य प्राप्त करके अपने स्वामी का दर्शन करना है।

इसी आशा को लेकर वह जहां तक बल था, हाथ पैर मारती रही, अंत में निर्बलता और अत्यंत थकान के कारण उसे मूर्च्छा आ गई और वह समुद्र की तरंगों में डूबने निकलने लगी।

एक जहाज उधर होकर आगे जा रहा था। उसके स्वामी ने सुरसुन्दरी को देखा। उसने तत्काल ही आदमियों को भेजकर उसे निकलवा लिया। वैद्य ने उसको देखकर कहा कि, अभी प्राण बाकी हैं। जहाज के स्वामी की दासियों ने उसको सूखे कपड़े पहनाये और वैद्य की सूचना के अनुसार वे उसकी शुश्रूषा करने लगीं।

उसकी मूर्च्छा टूटी। उसने आंखें खोलीं; अपने को जहाज के एक सुन्दर कमरे में देखा; अपने आपको अपरिचित स्त्रियों से घिरा पाया; क्षीण स्वर में पूछा- 'मैं कहाँ हूँ?'

दासियों ने कहा- 'कोई चिंता नहीं है बहन! तुम सुरक्षित स्थान में हो।'

सुरसुन्दरी ने फिर से आँखें बंद कर लीं। उसे धीरे-धीरे एक एक करके सारी बातें याद आई । उसने पूछा-'मैं समुद्र में गिरी थी, मुझे वापिस किसने निकाला?'

एक दासी ने कहा-'हमारे मालिक ने आपको निकलवाया है।'

समुद्र की सतह पर जहाज पाल उड़ाता हुआ चला जा रहा था; सूर्य अस्त हो चुका था; उसकी पिछली लालिमा से जहाज के पाल और समुद्र का जल लाल हो रहे थे। सुरसुन्दरी अब स्वस्थ हो गई थी। वह प्रतिक्रमण करने के लिए आसन बिछाकर बैठना चाहती थी इसी समय जहाज के स्वामी ने उस कमर में आकर प्रवेश किया। सुरसुन्दरी ने प्रणाम कर कहा- 'मैं प्रतिक्रमण करने बैठती हूं।'

जहाज का स्वामी बोला - 'सुरसुन्दरी ! इस आयु में यह वैराग्य क्या काम का है? मनुष्य जन्म बड़ी कठिनता से मिलता है। इसको यों हीं उदासीनता के साथ, एक वैरागी की तरह, एक दरिद्री की भांति, एक कैदी की नाई, खो न देना चाहिए। इसका सार आनंद, उल्लास, भोग और प्रेम का आदान प्रदान है।

प्रतिक्रमण की आवश्यकता पाप करने के बाद, भोग भोगने के पश्चात् इन्द्रियों की शक्ति का ह्रास होने के बाद, जीवन पूर्ण लालसा नष्ट हो जाने की स्थिति में होती है। अभी नहीं। पापरूपी मैल के चढ़े बिना, प्रतिक्रमण रूपी साबुन से धोओगी किसे?'

सुरसुन्दरी ने कहा- 'मैं तुमसे उपदेश सुनना नहीं चाहती।'

'तब मेरी आज्ञा सुनना चाहती हो?'

कुछ भी नहीं।

'प्राण बचाया उसका यह बदला? एक तुच्छ सी बात भी प्राण के बदले में नहीं दे सकती?'

'मूर्ख! जिससे स्त्री का जीवन है, जिसके कारण स्त्री सिर ऊंचा करके चल सकती है, जिसके कारण गृह स्वर्ग है, जिसके कारण स्त्री देवी कहलाती है, जिसके कारण उसे सर्वोपरि स्थान मिला है, जिसके प्रभाव से सारा संसार स्त्री की महत्ता को मानता है, और उसके सामने सिर झुकाता है उसी शील को, उसी सतीत्व को, उसी पति की धरोहर को, तू चाहता है और उसे तुच्छ बात बताता है! तुझे धिक्कार है।'

'यदि तू सीधी तरह से न मानेगी तो मुझे बल-प्रयोग करना पड़ेगा।'

सुरसुन्दरी हँसी और कहने लगी- 'विश्वासघातक पुरुषों को अपने बल का बड़ा घमण्ड रहता है और वही घमण्ड उनका सर्वनाश करता है।'

'रावण ने सीता पर बल अजमाया; सतीत्व के वक्ष से टकराकर वह चूरचूर हो गया; दुर्योधन ने बलात् द्रौपदी की लाज लेनी चाही, उसी की खुद लाज जाती रही; कीचक ने सैरंध्री का सदब लूटना चाहा; मगर वह खुद लुट गया-हमेशा के लिए संसार से उठ गया। अभी थोड़े ही दिन की बात है; इसी अबला के पास से, एक सेठ, इसके पति की धरोहर छीनना चाहता था, वह समुद्र के अतल जल में सदा के लिए विलीन हो गया। अब तेरी बारी है। तू भी अपना जोर आजमा और देख कि, क्या परिणाम होता है?'

सती की आँखों से भयंकर ज्योति निकल रही थी। उसके प्रभाव को जहाज का स्वामी न सह सका, उसको भय लगा। वह थोड़ी देर खड़ा कुछ सोचता रहा। फिर मन ही मन कुछ स्थिरकर उसे यह कहकर चला गया 'अच्छी बात है।'

उसने सुरसुन्दरी को बेच उससे धन कमाना स्थिर किया। उस जमाने में सोवन कुल नाम का नगर बड़ा दुराचारी समझा जाता था। धन वैभव से परिपूर्ण नगर के लोगों में प्रायः दुराचार विशेष ही होता है। सौ में से नन्यानवें उदाहरणों में दुराचार प्रवृत्ति का कारण धन ही होता है।

जहाज के स्वामी ने जहाज के लंगर सोवन कुल के किनारे डलवाये । अनेक प्रकार के कौशल करके उसने सुरसुन्दरी को वहीं एक वेश्या के हाथ बेच दिया। वेश्या ने सुरसुन्दरी का रूप देख कर जहाज के स्वामी को मुंह मांगे पैसे दिये ।

सरसुन्दरी को वेश्या के घर में ये अभी एक घण्टा भी नहीं बीता था कि, सारे शहर में ये समाचार फैल गये। कई मनचले रईस और साहुकार अपने रइकों, टमटमों, बग्घियों और रथों पर सवार हो होकर आने लगे और सुरसुन्दरी की रूप-सुधा का पान कर जाने लगे।

सुरसुंदरी सब कुछ समझ गई थी। उसकी आँखों से चौधार आँसू बहने लगे। हाय! बेचारी एक दुःख से छूटते ही दूसरे दुःख में जा गिरती है। भाग्य का यह विचित्र खेल है।

वेश्या ने सुरसुन्दरी को उदासीनता छोड़कर आनन्द से रहने और सुख-भोग करने का उपदेश दिया। हायरे! मुख भोग! जहाँ देखो वहीं तू इस देवी के लिए कालरूप होकर आ खड़ा होता है ! जो तुझे चाहते हैं उनसे तू भागता है और जो तेरा त्याग करते हैं उनके पीछे बुरी तरह से लगता है: अगर वे तेरा अनादर करते हैं तो तू उन्हें आमरण कष्ट देता है। यह तेरी कैसी नीचता है?

सुरसुन्दरी ने सोचकर मन स्थिर किया कि मीठे शब्दों द्वारा इससे बोलना चाहिए और यहां से निकल भागने का कोई मार्ग तलाश करना चाहिए। वह बोली- 'माँ! मेरी तबीयत बहुत खराब हो रही है; मेरा चित्त ठिकाने नहीं है। मुझे दो चार दिन अराम लेने दो।'

सुरसुन्दरी एकान्त में बैठी हुई सोच रही थी कि, अब कैसे यहां से छुटकारा हो, उसी समय एक नवयुवती उसके पास आई और कड़ी दृष्टि ने उसकी ओर ताकती हुई बोली- 'जान पड़ता है तू अपना यह अलौकिक सौन्दर्य लेकर यहां हमें लूटने आई है, मुझे भोग से वंचित करने आई है, मगर ध्यान रख कि, हम तुम्हें कभी यहाँ चैन से रहने न देंगी, तुझे इस बुरी तरह से मारेंगे। कि तू जनम-जनम तक न भूलेगी।'

सुरसुन्दरी ने कहा 'नहीं मैं यहां रहने नहीं आई हैं-मैं जबर्दस्ती इस नरक में ढकेल दी गई हूं. मेरे शरीर में इस घर की वायु तीरसी चुभती है. मुझे जान पड़ता है मानों में आग की भट्टि में पड़ी सुन रही हैं। इस भट्टी से निकलने का कोई यत्न नहीं है। हाय ! यदि तुम अपनी भलाई के लिए भी मुझे यहां से - निकाल सकती, यदि इस नरक से निकालकर किसी शेर के सामने भी डाल सकती, तो मैं तुम्हारा बड़ा उपकार मानती।'

सुरसुन्दरी कहती रो पड़ी। नवयुवती को आश्चर्य हुआ। उसने प्रश्न किया-क्या तुम अपने रूपयौवन का सुख उठाना नहीं चाहती?'

सुरसुन्दरी ने उत्तर दिया- 'यदि हो सके तो मैं उसे सदा के लिए नष्ट कर देना चाहतो हूँ। यदि तुम दया करोगी तो तुम्हारा कल्याण होगा।'

नवयुवती को सुरसुन्दरी की दशा पर कुछ दया आई। साथ ही उसने यह भी सोचा कि, यदि यह यहां से निकल जायगी तो यहां पर मेरा आदर और अधिकार अक्षुण्ण रहेगा, अन्यथा यह उन पर अधिकार कर लेगी।

यह नवयुवती वेश्या के घर में सबसे अधिक रूपवती थी; परन्तु सुरसुन्दरी के सामने उसका रूप पतंगे कासा था; इसीलिए उसने सुरसुन्दरी को वहां से निकाल देना ही उचित समझा। उसने कहा- 'यदि तुमको यहां से निकल ही भागना है तो पिछली रात को तैयार रहना। मैं सब प्रबन्ध करके तुमको यहां से दूर पहुंचा दूंगी।'

सुरसुन्दरी ने कहा– 'मैं तुम्हारी यावज्जीवन कृतज्ञ रहूंगी।' नवयुवती चली गई।

पिछली रात के सन्नाटे में किसी ने आकर उस कमरे के किंवाड़, जिसमें सुरसुन्दरी आकाश पाताल की बातें सोच रही थी, धीरे से खटखटाये ।

सुरसुन्दरी ने दरवाजा खोल दिया। नवयुवती अन्दर आई । उसके हाथ में एक रस्सा था। बह बोली देखो, तुम अपनी रक्षा चाहती हो तो इसके सहारे उत्तर जाओ। सदर दरवाजे होकर जाना कठिन है। गली के नाके पर तुम्हें एक रथ खड़ा मिलेगा । तुम उसमें बैठ जाना। रथवान तुम्हें सुरक्षित स्थान में पहुँचा देगा।'

सुरसुन्दरी रस्से के सहारे उतरकर चली गई। नवयुवती ने एक शांति की श्वांस लिया ।

सुरसुन्दरी जाकर रथ में बैठ गई। रथ चला। सूर्य निकलने तक वह बहुत दूर जंगल में पहुंच गया। रथ थमा। सारथी ने कहा– 'नीचे उतर आओ।'

सुरसुन्दरी ने रथ से निकलकर सामने एक काले क्लूटे मोटे ताजे आदमी को खड़ा देखा। वह भयभीत दृष्टि से उसकी ओर देखने लगी ।

सारथी इस रूपराशिको देखकर मुग्ध हो गया । उसके हृदय में वासना का सर्प फुकार उठा। उसने कहा– 'डरो नहीं। मैं तुम्हें नहीं मारूंगा। मुझे तुम्हें मार डालने के लिए कहा गया है, परन्तु मैं तुम्हें सुख से रक्खूंगा । रथ में बैठ जाओ। मैं तुम्हें अपने घर ले चलूगा।'

सुरसुन्दरी 'अच्छा' कहकर रथ के पीछे की तरफ गई और उधर से समुद्रकी ओर भागी। सारथी ने उसे भागते देखा। वह उसे पकड़ने के लिए दौडा। करीब था कि, वह उसे पकड़ ले इतने में ही उसको एक ठोकर लगी और वह गिर पड़ा। सुरसुन्दरी एक चट्टान पर जा चढ़ी। सारथी उठकर वहाँ तक पहुँचे इतने में सुरसुन्दरी नवकार मंत्र का जाप करती हुई समुद्र में कूद पड़ी । सहस्रों मगरमच्छो ंसे परिपूर्ण उस स्थान में सुरसुन्दरी कब तक रहती ? एक मच्छ उसको निगल गया। हाय सुरसुन्दरी! मगर सुरसुन्दरी का जीवन तो अभी शेष है। उसे तो सात कौड़ी के सहारे राज्य लेना है।

जिस मच्छ ने सुरसुन्दरी को निगला था वही मुच्छ एक घीवर के जाल में कुछ ही देर बाद फंस गया। धीवर ने मच्छ का पेट चौरा। सुरसुन्दरी मूर्छित दशा में अंदर से निकल आई। घीवर की स्त्री ने उसे सचेत किया। धीवर ने इस देव–दुर्लभरूप की मूर्ति को ले जाकर राजा को भेंट किया ।

राजा ने उसकी आद्योपांत कथा सुनकर उसे अपने अंतपुर में भिजवा दिया ।

सुरसुन्दरी को देख, उसके स्वर्गीय रूप के साथ अपने रूप की तुलना कर राजमहिषी को ईर्ष्या हो आई। उसने सोचा, यदि यह अंतपुर में रहेगी तो मेरा सौभाग्य–सुख लूट लेगी, मेरे प्राणनाथ को यह अपने वश में कर लेगी। अत: किसी भी तरह से हो इसे अपने मार्ग से दूर करना चाहिए।

महिषी ने अपने मनोभाव दबाकर, सुरसुन्दरी को अपने पास बिठाया, उसकी पीठ पर हाथ फेरा

और पूछा- 'बहिन! तुम कौन हो? कहां की रहनेवाली हो? यहाँ कैसे आई हो? आकार प्रकार से तो तुम उच्च कुल की मालूम होती हो।'

ऐसे प्रेम-परिपूर्ण शब्द कई दिनों से उसे सुनने को नहीं मिले थे। उसका हृदय भर आया। उसकी आंखों से अश्रुधारा बह चली ।

कोमल स्त्री-हृदया महिषी को भी दया आ गई। अहा! कैसा भोला चेहरा है। उसने आंचल से सुरसुंदरी के आंसू पोंछे और कहा 'बहिन! तुम सब बातें कहो। मैं यथासाध्य तुम्हारी सहायता करूंगी।'

सुरसुंदरी ने अपनी सारी कथा शुरू से आखिर तक कह सुनाई। उसे सुनकर राजमहिषी को दुःख हुआ। उसने कहा-'बहन! यहां भी तेरे शील को लूटने का प्रयत्न हुए बिना नही रहेगा। अतः यदि तुम अपनी भलाई चाहती हो तो यहां से जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी, चली जाओ। मैं तुम्हें किसी न किसी तरह अंतपुर से निकाल दूंगी।'

सुरसुंदरी वहां से निकलकर भागी। भयानक वन में भागी जा रही है। रस्ता छोड़ दिया है; क्योंकि रस्ते रस्ते जाने से वापिस पकडे जाने का भय है। पैरों में कांटे और कंकर चुभते हैं। उनसे रक्त निकलता है। पैर लहू लुहान हो गये हैं। कर्म की गति विचित्र है। भगवान ऋषभदेव को एक बरस तक आहार न मिला; महावीर स्वामी के कानों में कीलियाँ ठुकीं, आमरण कष्ट हुआ; प्रतापी पाण्डवों को वन वन भटकना पड़ा, मर्यादा-पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र को अनेक कष्ट झेलने पडे, महासती सीता को लंका में असह्य कष्ट उठाने पड़े और अन्त में लोगों ने उन पर कलंक लगाया। ये सब कर्म ही के खेल थे। आज सुरसुन्दरी भी उसी कर्म की मारी ऐसी विपत्ति उठाती हुई चली जा रही है।

वह चलते-चलते थककर गिर पड़ी। भूख प्यास और थकान के मारे वह इतनी कातर हो गई कि, उसे अपने तन बदन की भी सुध न रही।

उस समय कोई विद्याधर विमान में बैठकर उधर से जा रहा था। उसने सुरसुन्दरी को इस दशा में पडे देखा। उसने तत्काल ही विमान ठहराकर सुरसुन्दरी को अपने विमान में बिठा लिया और फिर वह अपने घर की तरफ चला।

शील पवन के लगने से तथा थोड़ी देर के आराम से सुरसुन्दरी को होश आया। उसने विमान में अपने व एक पुरुष के सिवा और किसी को न देखा। वह समझी यह फिर नई आपत्ति है। बह नीचे कूद पड़ने की इच्छा से उठने का प्रयत्न करने उगी; परंतु उससे उठा न गया। विद्याधर ने उसे चेत में देखकर कहा- 'बहन! अभी उठने का प्रयत्न न करो। तुम्हारा शरीर बहुत शिथिल हो रहा है।'

सुरसुन्दरी ने कहा- 'मैं किसी पुरुष के साथ जाना नहीं चाहती। मुझे उतार दो; नहीं तो मैं यहां से कूद पड़ूंगी।'

विद्याधर बोला- 'बहिन, मैं नहीं समझ सकता कि तुम्हें पुरुषों से ऐसी घृणा कयों है?'

सुरसुन्दरी उत्तेजित हो उठी और कहने लगी– 'विश्वासघातक, दुराचारी, धर्माधर्म विचारहीन, प्रतिज्ञा का भंग करने वाले और बकरी के समान स्त्री को शेर की तरह अपना भक्षण समझने वाले पुरुषों से जितना दूर रहा जाय उतना ही अच्छा है।'

विद्याधर बोला – 'बहिन, मैं प्रभु को साक्षी रख प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं तुम्हें अपनी सगी बहन के सिवा और कुछ नहीं समझूंगा। तुम विश्वास करो और अपनी सारी कथा आद्योपांत सुनाओ ।'

सुरसुन्दरी ने उसे धर्मात्मा समझकर अपनी सारी कथा सुनाई। सुनकर विद्याधर की आंखों में आंसू आ गये। उसने कहा– 'कोई भय नहीं है बहन! अब तुमको कोई दुःख नहीं होगा।'

विद्याधर और सुरसुन्दरी ने नन्दीश्वर द्वीप की यात्रा की। लौटते समय वे मुनि महाराज के दर्शनार्थ एक जगह उतरे। धर्मोपदेश श्रवण करने के बाद सुरसुन्दरी ने पूछा– 'मैं कब अपने पति की आज्ञा का पालन कर सकूंगी और कब मुझे उनके दर्शन होंगे? कहाँ होंगे?

मुनि ने संक्षेप में उत्तर दिया – 'बेनाट द्वीप में तुझे तेरा स्वामी मिलेगा!'

सुरसुन्दरी और विद्याधर मुनि को नमस्कार कर विद्याधर के राज में गये।

विद्याधर और उसकी पत्नियां सुरसुन्दरी का बड़ा आदर-भक्ति करते थे ! सुरसुन्दरी आनन्द से अपना समय बिताती थी। उसने वहाँ रहकर तीन चार विद्याऐं भी विद्याधर के पास से सीख लीं। जब उसकी साधना पूरी हुई, विद्याओं पर पूर्ण अधिकार हो गया तब उसने विद्याधर से कहा – 'बन्धु! यहाँ रहते मुझे बहुत दिन हो गये। अब मुझे 'अपना कार्य साधन करने के लिये बेनाट द्वीप में जाना है। वहाँ पहुंचा देने की कृपा और कीजिये।'

विद्याधर बोला– 'बहिन! यह राज तुम्हारा ही है। यहीं रहो। मैं तुम्हारे स्वामी को भी खोज लाऊँगा। तुम्हारे जाने से हमारा घर शून्य हो जायगा।'

सुरसुन्दरी ने कहा– 'बन्धु! मुझे भी इस घर को छोड़कर जाते दुःख होता है, परन्तु स्वामी के बिना यहाँ रहना इससे भी ज्यादा दुःखदायी है अतः कृपाकर मुझे बेनाट द्वीप पहुंचा दीजिये।'

सुरसुन्दरी बेनाट द्वीप में आई और रूप परिवर्तिनी विद्या के द्वारा पुरुष बनकर रहने लगी।

उसने सात कौड़ियों के चने खरीदे। उन्हें लेकर वह शहर के बाहर जा बैठी। पहले दिन उसको तीन कौड़ियों का मुनाफा रहा। दूसरे दिन भी इसी तरह चने लेकर गई तो पांच कौड़ियों का मुनाफा हुआ ।

धीरे-धीरे उसका व्यापार बढ़ा। अब उसने एक पानी का घड़ा भी रखना शुरू कर दिया। गरमी की ऋतु थी। लकड़हारे लकड़ियों का गट्टा लेकर जब आते थे तब शहर से दो माईल दूर एक जगह वे विश्राम लेने के लिए गट्ठे उतारते थे। वहीं विमलवाहन (सुरसुन्दरी ने अपना नाम विमलवाहन रक्खा था) बैठता था। लकड़हारों को वह पानी पिलाता और वे उसके बदले में उसके पास लकडी का टुकडा निकालकर डाल देते। इस तरह शाम तक उसके पास पांच सात गट्ठों जितनी लकड़ियाँ जमा हो जातीं।

अब उसने लकडी का व्यापार शुरू कर दिया। वहीं कम कीमत में लकडी के गड्ढे खरीद लेता और गाड़ियों में भरकर वहां से शहर में अपनी दुकान पर भेज देता। उसको खूब मुनाफा होने लगा। थोडे ही दिनों में वह एक अच्छा धनी व्यापारी समझा जाने लगा।

वहां रहते हुये उसको कई बरस हो गये। एक बार कहीं से एक चोर आया और विद्याबल द्वारा चोरियां करने लगा। सारे शहर में हाहाकार मच गया, पुलिस सिर मारकर रह गई मगर उसे कोई न पकड़ा सका। इससे उसका इतना हौसला बढ़ गया कि वह एक दिन राजा भी उठा ले गया। राजा ने ढिंढोरा पिटवाया कि, जो कोई चोर को पकड़कर लायेगा और राजसुता को छुड़ायेगा उसे राजसुता कन्या को सहित आधा राज्य दूंगा ।

कई लोगों ने चोर को पकड़ने का प्रयत्न किया, परन्तु कोई भी कृतकार्य नहीं हुआ। अन्तमें विमलवाहन ने बीड़ा उठाया। रात में बैठकर पर विद्याहारिणी, शतहस्ती बलदायिनी और अदृश्य का रिणी विद्या का स्मरण किया। विद्याएँ सधी हुई थीं ही। उनका आश्रय लेकर वह चोर को पकड़ने चला।

विमलवाहन चोर के गुप्त स्थान में, अदृश्यकारिणी विद्या द्वारा अदृश्य होकर पहुंचा। वहाँ उसने चोर को कैद किया और राजसुता को तथा चोर को राजा के सामने उपस्थित किया । राजा की घोषणा के अनुसार विमलवाहन के साथ राजसुता का ब्याह कर दिया और अपना आधा राज्य भी सौंप दिया।

विमलवाहन ने आधा राज्य लेकर सबसे पहले बंदरगाह का प्रबंध किया। उसने आज्ञा दे दी कि किसी भी जहाज के स्वामी को हमारे सामने उपस्थित किये बिना शहर में न आने दिया जाय और कर वसूल करने में शिथिलता न हो ।

कार्य इसी तरह चलता रहा। एक दिन अनेक स्थानों की मुसाफरी करके अमरकुमार के जहाज बेनाट के किनारे आ लगे । माल का कर चुकाकर जब वह शहर में जाने को तैयार हुआ तब आदमियों ने उसे रोका और कहाः 'पहले तुम्हें हमारे राजा के पास चलना होगा।'

'मुझे राजा के पास तो जाना ही है।' कहकर अमरकुमार ने चलने को कदम उठाया।'

सिपाही ने रोककर कहा:- 'हमारे नवीन महाराज की यही आज्ञा है कि शहर में जाने से पहले जहाज का स्वामी उनके सामने पेश किया जाय।'

विवश हो उसे सिपाही के साथ विमलवाहन के पास जाना पड़ा। विमलवाहन ने उसे देखा। एकदम चौक पड़ा। उसके हृदय में अजब उथलपुथल प्रारंभ हुई। हाय! यहीं वह मुख है। कैसा सुख गया है! गाल पिचक गये है, आंखें गढ़े में धंस गई हैं। होठों पर मधुर हास्य नहीं हैं; आंखों में चमक नहीं है; उलाट तेजहीन हो गया है। हाय! यही क्या मेरे स्वामी का मुख है? हृदय, धीरज रख ।

अमरकुमार के अंतःकरण में भी एक आंदोलन उठ खड़ा हुआ। यह वही मुख तो है, नेत्र भी वे ही हैं; नासिका भी वही है, अधरों की मंद मुस्कान भी वही है। मगर ! मगर ! यह तो पुरुष है। हाय मेरी यह क्या दशा हो गई है? मुझे सब जगह वही वह क्यों दिखाई देती है? वह मुख तो भुलाए नहीं भूलता।

नहीं! ओह! कितनी यातना है? मेरे ही कारण, हां! हां मेरे ही कारण वह मुख सदा के लिए राक्षस के पेट में विलीन हो गया। ओह! भगवान कैसे इस भयानक पाप से मेरा उद्धार होगा?

उसकी आंखों से दो चार आंसू की बून्दें टपक पड़ीं। विमलवाहन ने भी उन्हें देखा । उसका अन्तःकरण शीघ्र ही यह निश्चय करने के लिये व्याकुल हो रहा था कि, यह अमरकुमार ही है या कोई और?

विमलवाहन की आज्ञा से वहां एकांत हो गया। अमरकुमार से, विमलवाहन ने बैठने का इशारा... किया। वह बैठ गया। विमलवाहन ने पूछाः- 'आप कहां के रहने वाले हैं? आपका मुख ऐसा मलिन क्यों हो रहा है?'

अमरकुमार के हृदय में यह प्रश्न तीरसा चुभा। क्या उत्तर देता कि इस दशा का क्या कारण है? जो उसके जागते का -दर्शन और निद्रा का स्वप्न हो रही थी; जिसके बिना उसका सारा जीवन, सारा हृदय भयानक श्मशानवत् हो रहा था; अन्तःकरण में भीम स्वर से हाहाकार उठ रहा था उसी को, हाय! उसी को, मैं राक्षस के आहार के लिए छोड़ आया हूं, यही दुःख है, इसी दुःख से मेरी यह दशा हो गई है।

विमलवाहन के मन की दशा भी ठीक न थी, तो भी उसने जबर्दस्ती उसको रोक रक्खा था। उसने फिर पूछाः- 'सेठ! बताओ! तुम्हारी इस दशा का कारण क्या है? यदि हो सका तो मैं तुम्हारे उस कारण को हटाऊँगा, तुम्हारी सहायता करूँगा!'

अमरकुमार भर्राई हुई आवाज में बोलाः- 'असंभव! महाराज! असंभव! मेरे दुःखका कारण मिटाना असंभव है! जिसको मैंने मूर्खतावश राक्षस के उदरस्थ होने के लिए छोड़ दिया, वही मेरी लाडली सुरसुन्दरी ! वही मेरी जीवन की ज्योति! रिपुमर्दन नृपसुता! वही मेरी आत्मा का नूर! सेठ धनावह की प्यारी वधू! हाय! अब कहां है? नहीं, चली गई! वह हमेशा के लिये मुझे छोड़कर चली गई! नहीं महाराज असंभव है ! सर्वथा असंभव है......।'

विमलवाहन अमरकुमार की दशा देख उसकी बातें सुन उसे पहचान दूसरे कमरे में चला गया था।

'नहीं सर्वथा संभव है!' कहती हुई सुरसुन्दरी आकर अमरकुमार से लिपट गई।

आह ! कैसा स्वर्गीय सुख है। बारह बरस के बाद आज बिछड़े हुए हृदय पुनः मिले हैं। दोनों एक दूसरे से चिपककर बहुत देर तक रोते रहे। अन्त में अमरकुमार ने उसके आँसू पोंछकर कहा 'प्रिये! अपराध मेरा अक्षम्य है तो भी मुझे क्षमा करो।'

सुरसुन्दरी ने रोते रोते कहा- 'नाथ ! फिर कभी ऐसी परीक्षा में मत डालना। आपकी आज्ञानुसार सात कौड़ियों द्वारा प्राप्त किया हुआ राज्य आपको अर्पण है।'

बेनाट के राजा गुणपाल ने सारा समाचार जानकर अपनी कन्या गुणसुन्दरी का पाणिग्रहण जो विमलवाहन के साथ कराया था। उसका विवाह अमरकुमार के साथ कर दिया। राज्य में गुणपाल और अमरकुमार की दुहाई दी। फिर इसके बाद अमरकुमार और सुरसुन्दरी चम्पापुरी में आये। वहाँ आनन्द से गृहस्थ धर्म को पालते हुए अपना काल बिताने लगे। एक दिन मुनिराज के उपदेश का सुनकर संसार से विरक्ति हो गई। दीक्षा का धारण कर लिया और अन्त में तपस्या करते हुए समाधि मरण को प्राप्त किया। आगे वह नियम से मुक्ति रूपी लक्ष्मी का वरण करेंगे।

*****

सती पद्मश्री

15

सती पद्मश्री

अङ्ग देश के चम्पापुर नगर में राजा धाड़िवाहन रहता था। उसकी रानी का नाम पद्मावती था। उसी नगर में एक वृषभदास नाम का सेठ रहता था जो महान् सम्यग्दृष्टि तथा समस्त गुणों से सम्पन्न था, उसकी स्त्री का नाम भी पद्मावती था, उन दोनों के पद्मश्री नाम की अत्यधिक रूपवती पुत्री थी। पद्मश्री का चित्त जिनधर्म से युक्त था तथा वह अनेक गुणों को धारण करने वाली थी। उसी नगर में एक बुद्धदास नाम का दूसरा सेठ रहता था जो बौद्ध धर्म के बीच प्रसिद्ध दानी था, उसकी स्त्री का नाम बुद्धदासी था, उन दोनों के बुद्धसंघ नाम का पुत्र था। वह बुद्धसंघ एक दिन अपने मित्र कामदेव के साथ कुतूहलवश जैन मन्दिर गया। वहाँ उसने देव पूजा करती हुई परमरूपवती पद्मश्री को देखा, पद्मश्री यौवनवती थी, रूप और लावण्य से सम्पन्न थी, मधुर वचन बोलने वाली थी, कुम्भ के समान स्थूल स्तनों से युक्त थी, बिम्बाफल के समान लाल-लाल ओठों से सहित थी और चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख से सुशोभित थी। पद्मश्री के ऐसे रूप को देखकर नीच बुद्धसंघ काम से अन्धा हो गया। वह बड़े कष्ट से अपने घर पहुँचा और पहुँच कर शय्या पर पड़ा रहा। पुत्र को चिन्तित देख माता ने कहा कि हे पुत्र! किस कारण तुझे भोजनादिक नहीं रुच रहा है तथा बड़ी चिन्ता दिखायी दे रही है, कारण कहो।

तदनन्तर लज्जा छोड़कर बुद्धसंघ ने कहा कि हे माँ! जब मैं वृषभदास सेठ की पुत्री पद्मश्री को विवाह लूँगा तभी मेरा जीवन रहेगा, अन्यथा नहीं। ऐसा सुनकर बुद्धदासी ने अपने पति के आगे पुत्र का समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। पश्चात् पिता ने भी कहा -

हे पुत्र! मद्य-माँस का आहार करने वाले हम लोगों को वह वृषभदास चाण्डाल के समान देखता है, वह तुम्हें यह कन्या कैसे दे देगा? इसीलिये प्राप्त होने योग्य वस्तु के विषय में ही विद्वानों द्वारा आग्रह किया जाता है अन्य वस्तु में नहीं।

दूसरी बात यह भी है-जिनका समान शील होता है, जिनका समान कुल होता है और जिनमें गुणों की समानता होती है उन्हीं की निश्चित मित्रता होती है।

पुत्र ने कहा - अधिक कहने से क्या प्रयोजन है? उसके बिना मैं जीवित नहीं रह सकता। पिता ने कहा- अहो! काम का माहात्म्य विषम है, कामाग्नि से प्रदीप्त मनुष्य अमृत के सेवन से भी शान्त नहीं होता है। जैसा कि कहा है-कामाग्नि से संतापित मनुष्य, मेघ समूह के द्वारा सींचे जाने पर भी तथा जलराशि के द्वारा डुबाये जाने पर भी संतोष को नहीं छोड़ता है।

मनुष्य तभी तक प्रतिष्ठा को धारण करता है, मन तभी तक चञ्चलता को छोड़ता है और समस्त तत्त्वों से देदीप्यमान सिद्धान्त सूत्र हृदय में तभी तक अत्यधिक रूप से स्फुरित रहता है जब तक क्षीरसागर की लहरों के समान सुशोभित स्त्रियों के कटाक्षों से ताड़ित होकर अत्यधिक चञ्चलता को धारण नहीं करता है।

माता ने कहा – यह मूर्ख है, सभी कार्य सुसाध्य हैं परन्तु मूर्ख का चित्त सुसाध्य नहीं है जैसी कि कहावत है – पृथिवी पर सभी काम अच्छी तरह साध्य हैं परन्तु मूर्ख का हृदय साध्य नहीं है।

जैसा कि कहा है –

मगर के मुख के भीतरी दाँढ़ रूप अंकुरों से मणि को बलपूर्वक निकाला जा सकता है, तरङ्गवली से व्याप्त समुद्र को तैरा जा सकता है और क्रुद्ध सर्प को भी फूल की तरह सिर पर धारण किया जा सकता है परन्तु हठी मूर्ख मनुष्य के चित्त की आराधना नहीं की जा सकती ।।388।। जिसका जो स्वभाव होता है वह उसे सैकड़ों शिक्षा के वचनों से भी नहीं छोड़ता है। पिता ने फिर कहा कि हे पुत्र! स्थिर रहो–धीरज धरो, तुम्हारा काम क्रम से करूँगा। जैसा कि कहा है–वामी की शिखर क्रम से बढ़ती है, विनय के द्वारा विद्या क्रम से ग्रहण की जाती है, छल के द्वारा शत्रु क्रम से नष्ट किया जाता है और तप के द्वारा मोक्ष क्रम से प्राप्त किया जाता है।

इस प्रकार कह कर पिता पुत्र दोनों बड़े छल से जैन हो गये। उनका जैनपन देखकर वृषभदास सेठ अत्यन्त सन्तुष्ट होकर कहता है कि अहो! ये धन्य हैं जो मिथ्यात्व को छोड़कर सन्मार्ग में लग गये। एक धर्म के धारक होने से वृषभदास सेठ बुद्धसंघ के साथ परस्पर भोजनादिक करने लगा जिससे बुद्धदास के साथ उसकी बड़ी मित्रता हो गयी।

जैसा कि कहा है –

देता है, लेता है, गुप्त बात कहता है, पूछता है, भोजन करता है और भोजन कराता है ये छः प्रीति के लक्षण हैं।

एक दिन उस वृषभदास सेठ ने बुद्धदास को अपने घर पर भोजन के लिये निमंत्रित किया। भोजन के समय बुद्धदास ने भोजन नहीं किया। वृषभदास ने कहा–हे बुद्धदास! भोजन क्यों नहीं कर रहे हो? उसने कहा–यदि मेरे पुत्र के लिये अपनी पुत्री देओ तो भोजन किया जायेगा अन्यथा नहीं।

वृषभदास ने कहा–अहो, मित्र जिनके घर आते हैं वे धन्य हैं और विशेष तुम्हारे जैसे अतएव हम धन्य हैं। अवश्य ही तुम्हारे पुत्र के लिये पुत्री दूँगा। तदनन्तर शुभ दिन में विवाह हो गया और पद्मश्री को लेकर बुद्धसंघ अपने घर चला गया। विवाह के बाद पिता–पुत्र दोनों फिर से बुद्ध के भक्त हो गये। यब सब देख सुनकर सेठ ने अत्यन्त खिन्न होकर कहा – अहो! गूढ़ छल को कोई नहीं जानता है।

कहा भी है–अच्छी तरह किये हुये कपट के अन्त को ब्रह्मा भी नहीं प्राप्त कर सकता है। देखो, विष्णु के रूप में तन्तुवाय राजकन्या का सेवन करता रहा।

और भी कहा है –

जो दुष्ट अभिप्राय वाला मनुष्य धन की आशा से अविश्वास के क्रीड़ागृह स्वरूप मायाचार को करता है वह पड़ते हुये बहुत भारी अनर्थ को उस तरह नहीं देखता है जिस तरह कि दूध पीता हुआ बिलाव पड़ते हुये डंडे को नहीं देखता है।

पश्चात् वृषभदास सेठ ने बुद्धदास और बुद्धसंघ को बुलाकर कहा तथा व्रतभङ्ग का दोष दिखाया।

जैसा कि कहा है –

गुरु को साक्षीपूर्वक लिया हुआ व्रत प्राणान्त का अवसर आने पर भी नहीं छोड़ना चाहिये क्योंकि व्रतभङ्ग दुःख के लिये होता है परन्तु प्राण जन्म-जन्म में प्राप्त होते रहते हैं।

परन्तु उन दोनों के चित्त में कुछ नहीं लगा। वृषभदास सेठ कर्मोदय का विचार कर चुप बैठा रहा।

एक समय बुद्धदास का गुरु जो पद्मसंघ था उसने पद्मश्री से कहा – हे पुत्री! सब धर्मों के मध्य में बौद्धधर्म ही सबसे श्रेष्ठ धर्म है अन्य नहीं। पद्मश्री ने कहा – हे पद्मसंघ! सन्मार्ग को छोड़कर नीच मार्ग की ओर मेरा मन कैसे प्रवृत्त हो सकता है? जैसा कि कहा है –

जिस प्रकार मृग का माँस खाने वाले सिंह भूखे होने पर भी तृण नहीं खाते, इसी प्रकार कुलीन मनुष्य कष्ट से युक्त होने पर नीच कार्यों का आचरण नहीं करते हैं।

और भी कहा है-देव तथा गुरु के समीप लिये हुये व्रतों को जो छोड़ता है वह इस लोक तथा परलोक में दुःखी होता है। व्रतहीन मनुष्य निरन्तर सौभाग्यहीन, धन-धान्यादि से रहित, भयभीत और दुःखी होता है।

जो काम हितकारी हो उसका आचरण अवश्य करना चाहिये। लोगों के कहने से क्या होता है? जैसा कि कहा है –

अपना हित स्वयं करना चाहिये बहुत बोलने वाले मनुष्य क्या कर लेंगे, क्योंकि ऐसा कोई उपाय नहीं है जो सब लोगों को संतुष्ट करने वाला हो।

पद्मश्री के यह वचन सुन पद्मसंघ चुपचाप अपने घर चला गया।

इस प्रकार समय व्यतीत होने पर कुछ समय बाद पद्मश्री के पिता वृषभदास सेठ ने अपनी मृत्यु का समय निकट जान चतुर्विध संघ की साक्षीपूर्वक समस्त जीवों से क्षमा माँगी, 'मेरे पाप मिथ्या हों' यह कहकर अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्म – इन चार की शरण को प्राप्त किया, पाप स्थानों का मन, वचन, काय से त्याग किया, आहार का त्याग किया और पञ्च नमस्कार मंत्र का स्मरण करते हुये, प्राण त्याग कर स्वर्ग प्राप्त किया। इस दुःख से पद्मश्री अत्यन्त दुःखी हो गयी, श्वसुर पक्ष के लोग विधर्मी होने से तथा इसके अकेली रह जाने से उसका तिरस्कार करने लगे परन्तु वह दृढ़चित्त रही और उसने जिनधर्म नहीं छोड़ा।

एक समय अवसर पाकर बुद्धदास ने कहा कि हे वधु! मेरे गुरु ने तुम्हारे पिता का जन्म कहा है – उन्होंने कहा है कि वृषभदास मरकर वन के मध्य हिरण हुआ है। यह वचन सुन मन में बहुत भारी क्रोध कर पद्मश्री ने मायापूर्ण वचन कहा कि यदि आपके गुरु ऐसे ज्ञाता हैं तो मैं अवश्य ही बौद्धव्रत ग्रहण करती हूँ। पद्मश्री का इस प्रकार का वचन सुन बुद्धदास ने हर्षित होते हुये कहा कि हे वधु! प्रात:काल पहले हमारे गुरुओं के लिये भोजन देओ पश्चात् बौद्ध धर्म धारण करो। पद्मश्री ने बुद्धदास की बात स्वीकार कर ली। दूसरे दिन उसने बौद्ध साधुओं को भोजन के लिये निमन्त्रण दिया, वे सभी साधु हर्षित होकर आ गये।

तदनन्तर उन सब साधुओं को अपने घर के भीतर बड़े आदर से आसनों पर बैठाया और सब की पूजा की। इधर घर के बाहर रखे हुये उन साधुओं के बायें पैर का एक-एक जूता उसने चेटी के द्वारा गुप्त रूप से उठवा लिया और उनके सूक्ष्म टुकड़े कर उनका शाक बनाया तथा हींग आदि से बघारकर और भोजन के मध्य रखकर सब साधुओं को उनका भोजन करा दिया। भोजन के बाद पद्मश्री ने सब की प्रशंसा की और कहा कि मैं आज कृतार्थ हो गयी, मेरा जन्म सफल हो गया, गन्ध लेपन तथा पान आदि सब कुछ देकर उसने कहा कि मैं प्रात:काल बौद्ध धर्म ग्रहण करूँगी। बौद्ध साधुओं ने 'तथास्तु' कहकर स्वीकृति दी।

उन सभी गुरुओं ने जब जाने लगे तब अपना बायें पैर का जूता नहीं देखा। सब जगह देखने पर भी जब उन्हें नहीं दिखा तब उन्होंने सेवकों आदि से पूछा। सेवकों ने भी कहा कि हम लोग शपथपूर्वक कहते हैं कि हम आपके जूतों को नहीं जानते हैं। इससे कोलाहल हो गया और बुद्धदास आदि सभी लोग आ गये, उस कोलाहल को सुनकर पद्मश्री ने कहा कि आप लोग तो ज्ञानी हैं, तीनों काल की बात को जानने वाला आपका ज्ञान देदीप्यमान है इसलिये आप समस्त वस्तुओं को दीपक के समान प्रकट कर देते हैं फिर जूतों की बात ही क्या? अत: अपने ज्ञान से देखिये – जूते कहाँ हैं? साधुओं ने कहा कि ऐसा ज्ञान नहीं है। पद्मश्री ने पुन: कहा – हे पूज्य जनों! आप लोग, 'कोड़ी तो जुटा नहीं सकते हैं, नांदिया का बयाना कैसे लिया जाता है' इस कहावत को सिद्ध कर रहे हैं। साधुओं ने कहा – यह कैसे? पद्मश्री ने कहा कि आप लोग अपने पेट में स्थित जूतों को जानने के लिये तो समर्थ नहीं हैं फिर उत्तम समाधि मरण के द्वारा स्वर्ग को प्राप्त करने वाले हमारे पिता की तिर्यञ्च गति को कैसे जानते हैं? पद्मश्री के व्यंङ्गपूर्ण वचन सुनकर साधुओं ने रोष सहित कहा कि रे बकने वाली! इस प्रकार का उद्दण्डतापूर्ण वचन किस प्रमाण से कहती है? पद्मश्री ने कहा कि अपनी बुद्धि से, परन्तु आप लोग उत्तम साधु हैं अत: आपको क्रोध करना उचित नहीं है, क्योंकि क्रोध के कारण मनुष्य तप से भ्रष्ट हो जाता है और उसकी सुगति का नाश हो जाता है। जैसा कि कहा है –

क्रोध, दूसरों को संताप करने वाला है, क्रोध, सबको उद्वेग करने वाला है, क्रोध वैर को उत्पन्न करने वाला है और क्रोध सुगति को नष्ट करने वाला है।

बौद्ध साधुओं ने कहा अरी पापिन्! दुरात्मन्! जूते क्या हम लोगों के पेट में हैं? उसने कहा कि ऐसा ही है, इसमें संदेह नहीं है। साधुओं ने कहा कि यदि नहीं होंगे तो क्या किया जायेगा? पद्मश्री ने कहा कि जो आप लोगों के जी में रुचे। बौद्धों ने कहा कि मस्तक मुड़ा कर घर से निकाल देंगे। उसने कहा – ऐसा

हो, परन्तु यदि जूते पेट में होंगे तो आप लोगों को सब धर्मों में प्रमुख तथा सुगति को देने वाला जैन धर्म स्वीकृत करना होगा। उन्होंने कहा – ऐसा हो। पश्चात् मैंनार (कोई फल विशेष) का फल देकर उसने सबको वमन कराया। जिससे अपनी अपनी वान्ति के बीच चमड़े के सूक्ष्म खण्ड देखकर लज्जित होते हुये क्रोध सहित अपने स्थान पर चले गये।

तदनन्तर उन बौद्ध गुरुओं ने अपने समुदाय को इकट्ठा कर तथा बुद्धदास को बुलाकर कहा कि हे घोर पापी! तेरे उपदेश से हम लोगों ने भोजन का निमन्त्रण माना था परन्तु तूने अपनी वधू की ओर से हम लोगों का वह अवाच्य कार्य कराया। बुद्धदास ने कहा कि हे पूज्य! यह कार्य मैंने बिल्कुल ही नहीं कराया है। बौद्ध गुरुओं ने कहा कि यदि ऐसा है तो इस पद्मश्री को अपने घर से निकाल दो, अन्यथा तुम्हारे सब कुटुम्ब का नाश हो जायेगा। यह सुन घबड़ाये हुये बुद्धदास ने सब कुछ छीनकर पद्मश्री को घर से निकाल दिया, उसके स्नेह से बुद्धसंघ भी उसके साथ निकल गया। तदनन्तर पद्मश्री ने बुद्धसंघ से कहा कि हे स्वामिन्! हम दोनों हमारी माता के घर चलें। बुद्धसंघ से कहा कि भिक्षाटन कर लूँगा परन्तु श्वसुर के घर नहीं जाऊँगा, इस नगर में रहते हुये मेरा मान भङ्ग होगा।

क्योंकि कहा है –

प्राण त्याग देना अच्छा है परन्तु मानभङ्ग करना अच्छा नहीं है क्योंकि मृत्यु से तो क्षण भर के लिये दु:ख होता है परन्तु मानभंग से प्रतिदिन दु:ख होता है। जहाँ सम्मान हो उसी स्थान पर रहना चाहिये, मान रहित स्थान को छोड़ देना चाहिये, देवों के साथ मान रहित होकर विमान भी बैठने को मिले तो उसे छोड़ देना चाहिये।

बन्धुओं के बीच धनहीन जीवन व्यतीत करना सत्पुरुषों के लिये अच्छा नहीं लगता। जैसा कि कहा है – जो वन व्याघ्र और गजेन्द्रों से भरा हुआ है,जिसमें वृक्ष ही घर है, पत्र तथा फल आदि का भोजन प्राप्त होता है, घास फूस ही शय्या है और वृक्षों के जीर्णशीर्ण वल्कल ही वस्त्र होते हैं ऐसा वन अच्छा है परन्तु बन्धुओं के मध्य धनहीन जीवन बिताना अच्छा नहीं है।

और भी कहा है – उत्तम मनुष्य वे हैं जो अपने गुणों से प्रसिद्ध होते हैं, मध्यम वे हैं जो पिता के गुणों से प्रसिद्धि पाते हैं, अधम वे हैं जो मामा के गुणों से प्रख्यात होते हैं और अधमाधम वे हैं जो श्वसुर के गुणों से प्रसिद्ध होते हैं।

ऐसा विचार कर बुद्धसंघ पद्मश्री के साथ दूसरे देश को चल पड़ा। गाँव के बाहर उसे एक बनिजारा सेठ मिल गया। वह बनिजारा भी पद्मश्री का रूप देखकर राग से अन्धा हो गया, तदनन्तर बनिजारे सेठ ने अपना कार्य बनाने के लिये बुद्धसंघ को बहुत सम्मान दिया और भोजन के लिये आमंत्रित किया, पश्चात् बुद्धसंघ सेठ की प्रार्थना से उसके उतरने के स्थान पर जा बैठा। सेठ ने दो खण्ड वाली हण्डी में भोजन बनवाया। एक खण्ड में विषमिश्रित और दूसरे में विषरहित। जब भोजन तैयार हो गया तब सेठ ने बुद्धसंघ को बुलावा भेजा। तदनन्तर सेठ और बुद्धसंघ एक ही बर्तन में भोजन करने के लिये बैठे। जिसे

पहले से ही संकेत कर दिया था ऐसे पुरुष ने बर्तन में पृथक्-पृथक् अन्न परोसा! उस अन्न को पृथक्-पृथक् देख बुद्धसंघ को शंका हो गयी इसलिये उसने दोनों अन्नों को इकट्ठा कर दिया-मिला दिया। जिससे परस्पर का विष मिश्रित अन्न खाकर वे दोनों मूर्च्छा को प्राप्त हो गये। जैसा कि कहा है -

दूसरे के कष्ट से हर्षित होने वाला दुष्ट मनुष्य, अपने मरण को भी नहीं गिनता है, सिर रहित धड़, युद्धस्थल में हजारों योद्धाओं का नाश होने पर भी प्राय: नाचता रहता है।

अपने स्वामी का शोक करती हुई पद्मश्री ने किसी तरह रात्रि व्यतीत की। प्रात:काल बुद्धदास ने लोगों के मुख से अपने पुत्र के मूर्च्छित होने का समाचार सुना तो वह बहुत भारी शोक करता हुआ वहाँ आकर बोला कि अरी डायन! तूने मेरे पुत्र को खा लिया और इस सेठ को भी। बहुत कहने से क्या प्रयोजन है? तेरे धर्म में शक्ति है तो मेरे पुत्र को खड़ा कर और इस सेठ को भी अन्यथा तेरा निग्रह करूँगा - ऐसा कहकर वह उसके पादमूल में पुत्र को रखकर रोता हुआ बैठ गया।

पद्मश्री ने विचार किया कि अहो! मेरा जो कर्मोदय आया है वह किसके द्वारा रोका जा सकता है? ऐसा निश्चय कर उसने हाथ जोड़कर कहा कि यदि मेरे मन में जिनधर्म का निश्चय है, यदि मैं पतिव्रता हूँ और यदि मैंने रात्रिभोजनादिक का त्याग किया है तो हे शासन देवता! मेरा पति जीवित हो जाय और यह सेठ भी। तदनन्तर शासन देवी ने उसके व्रत के माहात्म्य से सभी को जीवित कर दिया। पश्चात् यह देख नगर के समस्त आबाल गोपाल लोगों ने पद्मश्री की प्रशंसा की। अहो, यह धन्य है कि जो ऐसा रूप और ऐसी अवस्था के रहते हुये भी इसमें साधुता और धर्मज्ञता विद्यमान है, यह बड़ा आश्चर्य है। क्योंकि कहा है -यदि राजा, राजनीति में निपुण और धर्मात्मा है तो क्या आश्चर्य की बात है और यदि ब्राह्मण, वेदशास्त्र में निपुण तथा पंडित है तो इसमें भी क्या आश्चर्य है किन्तु रूप और तारूण्य से युक्त स्त्री यदि साध्वी है तो आश्चर्य है। इसी प्रकार निर्धन मनुष्य यदि पाप नहीं करता है तो आश्चर्य है।

यह आश्चर्य देख लोगों ने पद्मश्री की पूजा की। देवों ने भी पञ्चाश्चर्य कर उसका सम्मान किया। उसका प्रभाव देखने के लिये राजा भी नगरवासियों के साथ आ गया। बुद्धदास, बड़े उत्साहपूर्वक बुद्धसंघ के साथ पद्मश्री को नगर के मध्य ले आया। धर्म के उस प्रत्यक्ष फल को देखकर बुद्धदास का कुटुम्ब जैन धर्म में अनुरक्त हो गया। यह सब प्रत्यक्ष रूप से देख सुनकर राजा धाडिवाहन वैराग्य में तत्पर होता हुआ कहने लगा कि अहो! जिनधर्म को छोड़ कर अन्य धर्मों से समस्त इष्ट की प्राप्ति नहीं होती है, इसलिये इसे स्वीकृत करना चाहिये। तदनन्तर अपने पुत्र नवविक्रम को राज्य पर स्थापित कर धाडिवाहन राजा ने अन्य अनेक जनों के साथ यशोधर मुनि के पास तप ग्रहण कर लिया। बुद्धदास और बुद्धसंघ आदि भी श्रावक हो गये। कितने लोग भद्र परिणामी हो गये। बौद्ध साधु जैन बन गये। रानी पद्मावती, बुद्धदासी, वृषभदास सेठ की स्त्री पद्मावती तथा पद्मश्री आदि ने सरस्वती आर्यिका के समीप तप ग्रहण कर लिया।

*****

सती वृषभसेना

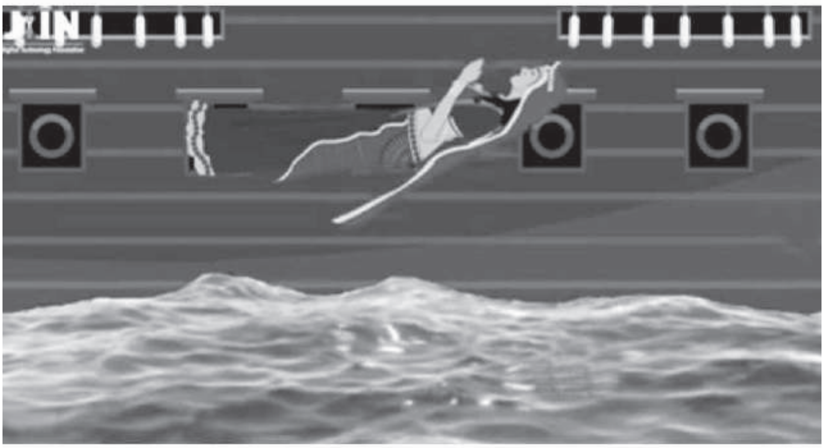

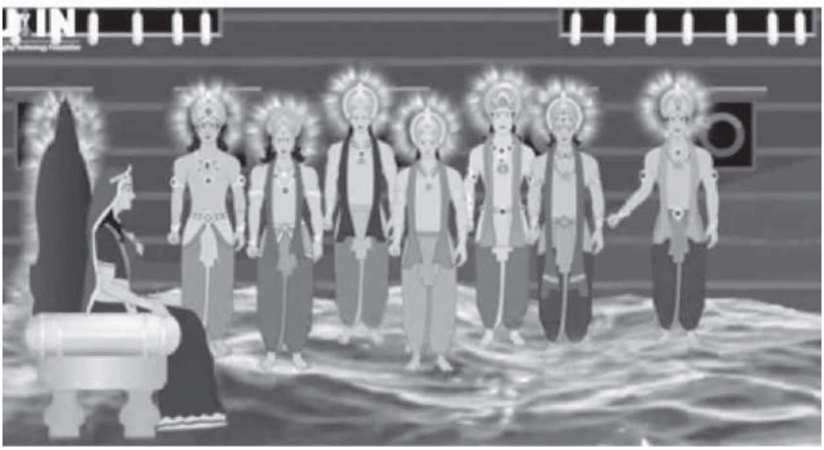

16

सती वृषभसेना

भारत के कावेरी नामक नगर के राजा का नाम उग्रसेन था। वे प्रजापालक तथा राजनीति के बड़े विद्वान् थे। इसी नगर में धनपति नाम का एक सेठ रहता था। इसकी पत्नी धनश्री माने लक्ष्मी थी। धनश्री की एक देवकुमारी-सी पुत्री उत्पन्न हुई, जिसका नाम वृषभसेना रखा गया। एक दिन की घटना है कि वृषभसेना की धाय रूपवती उसे स्नान करा रही थी। एक महारोगी कुत्ता उस गड्ढे में गिर पड़ा जिसमें वृषभसेना के स्नान करने का पानी इकट्ठा हो गया था। जब कुत्ता पानी से बाहर हुआ तो बिल्कुल निरोग दिख पड़ा। रूपवती चकित हो गई। उसने समझ लिया कि वृषभसेना असाधारण लड़की है। उसने जल की परीक्षा के लिए थोड़ा सा जल अपनी माँ की आँखों में डाल दिया। उसकी माँ की आँखें वर्षों से खराब थीं। उसका भी रोग जाता रहा। अब रूपवती का सारा सन्देह दूर हो गया। इस रोग को नाश करने वाले जल के प्रभाव से रूपवती की बड़ी प्रसिद्धि हुई। वह इसी जल से असाध्य से असाध्य रोगों की चिकित्सा करने लगी।

उग्रसेन और मेघपिंगल की पुरानी शत्रुता थी। एक बार उग्रसेन ने अपने मन्त्री को मेघपिंगल पर चढ़ाई करने की आज्ञा प्रदान की। मेघपिंगल ने यह योजना की कि जिनकूपों से शत्रु सेना में पीने के लिए जल आता था, उसमें विष डलवा दिया। बहुत सी सेना मर गई और जो सैनिक बचे वे भाग खड़े हुए। जिन लोगों को विष का असर हुआ था उन्हें रूपवती ने उसी जल से आराम किया। यह हाल सुनकर उग्रसेन को बड़ा क्रोध हुआ। उसने स्वयं आक्रमण किया किन्तु उन्हें भी जहर मिला हुआ जल पीना पड़ा। उग्रसेन की तबियत बहुत बिगड़ गई। उन्हें रूपवती के जल का प्रभाव मालूम था उन्होंने एक आदमी को सेठ के यहाँ जल लाने के लिए भेजा। उसी समय रूपवती जल लेकर राजा के यहाँ पहुँची। जल के स्पर्श से ही राजा रोगमुक्त हो गये। उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। जल के सम्बन्ध में पूछने पर रूपवती ने सब बातें बतला दीं। राजा ने धनपति सेठ को बुलाया और आदर-सत्कार कर वृषभसेन से विवाह की इच्छा प्रकट की। धनपति ने उत्तर दिया-महाराज मुझे विवाह कर देने में कोइ आपत्ति नहीं किन्तु आपको अष्टाह्निक पूजा करनी पड़ेगी और अभिषेक करना पड़ेगा। पिंजरे के पशु-पक्षी तथा जेल के कैदियों को छोड़ना पड़ेगा। उग्रसेन ने शर्त स्वीकार कर ली और उन्हें कार्य में भी परिणत कर दिया।

बड़ी धूमधाम से वृषभसेना का विवाह हुआ। उसे पटरानी होने का सौभाग्य मिला। उग्रसेन भी अन्य रानियों की अपेक्षा वृषभसेना से अधिक प्रेम करने लगे, किन्तु वृषभसेना का समय पूजा अभिषेक में ही

अधिक व्यतीत होता था। वह साधुओं को चारों प्रकार के दान देती और व्रत, तप, शील, संयमादिक का यथासाध्य पालन करती थी। बनारस का राजा पृथ्वीचन्द्र, उग्रसेन के यहाँ कैद था। वृषभसेना के विवाह के समय भी उसकी मुक्ति न हुई। पृथ्वीचन्द्र की पत्नी नारायणदत्ता को आशा थी कि उसके पति छोड़ दिये जायेंगे, पर उसकी आशा सफल न हो सकी। पर अपने मन्त्रियों की राय से उसने दूसरी ही युक्ति सोची। नारायणदत्ता ने वृषभसेना के नाम से बनारस में कई दानशालायें बनवा दीं। वहाँ स्वदेशी और विदेशी सबको समान रूप से भोजन मिलने लगा। थोड़े ही दिनों में दानशालाओं की प्रसिद्धि हो गई। दूर-दूर के ब्राह्मण भोजन के लिए आने लगे। जब यह संवाद वृषभसेना को मिला तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। पता लगाने पर असली रहस्य खुला। वृषभसेना ने उग्रसेन से प्रार्थना कर उसी समय पृथ्वीचन्द्र को छुड़वा दिया। पृथ्वीचन्द्र ने कृतज्ञता स्वीकार की। पहले उल्लेख किया जा चुका है कि मेघपिंगल से उग्रसेन की शत्रुता थी। अब उग्रसेन ने पृथ्वीचन्द्र को उस पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। मेघपिंगल डर गया, क्योंकि वह पृथ्वीचन्द्र से कई बार हार मान चुका था। उसने लड़ना उचित न समझा। अत: उग्रसेन की शरण में आ गया।

एक दिन दरबार में उग्रसेन यह घोषणा की कि आज की आने वाली भेंट का आधा हिस्सा वृषभसेना को और आधा मेघपिंगल को दिया जाएगा। उस दिन भेंट में बहुमूल्य वस्तुओं के अतिरिक्त दो कम्बल प्राप्त हुआ। राजा ने अपनी घोषणा के अनुसार आधा-आधा द्रव्य और एक-एक कम्बल मेघपिंगल और वृषभसेना के यहाँ भिजवा दिये। संयोग से मेघपिंगल की रानी यही कम्बल ओढ़कर वृषभसेना के महल मे आयी। वृषभसेना के पास भी ऐसा ही कम्बल था। वह भूल से अपना कम्बल वहीं छोड़ वृषभसेना का कम्बल ओढ़कर लौट आयी। कुछ दिनों के बाद मेघपिंगल को दरबार में जाना पड़ा। वह वृषभसेना का कम्बल ओढ़े चला गया। राजा ने कम्बल पहचान लिया। उनकी आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। वे सोचने लगे कि वृषभसेना का कम्बल इसके पास कैसे गया? उग्रसेन ने क्रोधित होने का कारण मेघपिंगल की समझ में न आया। वहाँ से हट जाना ही उसके लिये उचित था। वह एक तेज घोड़े पर सवार होकर दूर निकल गया। इस प्रकार मेघपिंगल को भागते देखकर राजा का सन्देह और भी बढ़ा उन्होंने मेघपिंगल को पकड़ लाने के लिए कुछ तेज सवारों को दौड़ाया, इधर वृषभसेना को समुद्र में फिकवाने की आज्ञा दे दी। निर्दोष वृषभसेना को अपनी पवित्रता पर पूर्ण विश्वास था। वह परमात्म प्रेम में लीन हो गई। उस समय वृषभसेना की तेजस्विता को एक सिंहासन पर बिठाकर पूजा की और जय-जयकार मनाया। जब वृषभसेना के शील का माहात्म्य उग्रसेन को मालूम हुआ तो उन्हें महान् पश्चाताप हुआ। उन्होंने वृषभसेना के समक्ष जाकर क्षमा माँगी और महल में चलने की प्रार्थना की। यद्यपि वृषभसेना प्रतिज्ञा कर चुकी थी कि इस कष्ट से मुक्त होने पर योगिनी बनकर आत्महित करूँगी, पर स्वयं महाराज लिवाने आये तो उसने महल में एक बार जाकर दीक्षा लेने का निश्चय किया।

रास्त में गणधर मुनिराज के दर्शन हुए। वृषभसेना ने उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। उसने मुनि से

पूर्वजन्म का हाल पूछा। मुनि ने बतलाया कि पूर्वजन्म में ब्राह्मण की लड़की थी। तेरा नाम नागश्री था। तू इसी राजघराने में झाड़ू दिया करती थी। एक दिन मुनिदत्त नाम के मुनिराज कोट के अन्दर एक पवित्र गढ़े में ध्यान कर रहे थे। उस वक्त ने तूने मूर्खता से कहा ओ नंगे ढोंगी! उठ यहाँ से, मुझे झाड़ू देने दे। मुनि तो ध्यानमग्न थे उन्होंने तेरी बातों पर ध्यान न दिया। तुझे और क्रोध हुआ। तूने कूड़े-करकट से मुनि को ढंक दिया। यद्यपि तू उस समय मूर्ख थी, पर तूने वह काम बुरा किया। सच्चे निर्ग्रन्थ साधु सदा पूजने योग्य होते हैं। उन्हें कष्ट देना उचित नहीं। प्रात:काल जब राजा उधर से निकले तो उनकी दृष्टि गढ़े पर पड़ी। मुनि के साँस लेने से कूड़ा नीचे ऊँचे हो रहा था। उन्हें सन्देह हुआ उन्होंने कूड़े को हटाया तो मुनि दिख पड़े। मुनि शीघ्र ही गढ़े से निकाले गये। तूने बड़ा यत्न किया, औषधि आदि से भरपूर सेवा की। उसी फल से इस जन्म में धनपति सेठ की पुत्री हुई और तूने औषधिदान किया था उसके फल से तुझे सर्वोपरि औषधि प्राप्त हुई कि तेरे स्नान के जल से कठिन से कठिन रोग नष्ट हो जाते हैं। मुनि पर कूड़ा डालने से मुनि को जो कष्ट हुआ, उससे तुझे इस जन्म में झूठा कलंक लगा। मुनि द्वारा पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनकर वृषभसेना का वैराग्य और भी बढ़ गया, उसने स्वामी से क्षमा माँगकर मुनि द्वारा योगदीक्षा ग्रहण कर ली। जिस प्रकार वृषभसेना ने औषधिदान से सर्वोपरि औषधि प्राप्त की उसी प्रकार सत्पुरुषों को उचित है कि वे रोगियों का सदा उपचार करते रहे। औषध-दान महापुण्य का कारण होता है।

*****

सती नीली

17

सती नीली

जिनभगवान के चरणों को, जो कि कल्याण के करने वाले हैं, नमस्कार कर श्रीमती नीली सुन्दरी की मैं कथा कहता हूँ। नीली ने चौथे अणुव्रत ब्रह्मचर्य की रक्षाकर प्रसिद्धि प्राप्त की है।

पवित्र भरत वर्ष में लाटदेश एक सुन्दर और प्रसिद्ध देश था। जिनधर्म का वहाँ खूब प्रचार था। वहाँ की प्रजा अपने धर्मकर्म पर बड़ी दृढ़ थी। इससे इस देश की शोभा को उस समय कोई देश नहीं पा सकता था। जिस समय की यह कथा है, तब उसकी प्रधान राजधानी भृगुकच्छ नगर था। यह नगर बहुत सुन्दर और सब प्रकार की योग्य और कीमती वस्तुओं से पूर्ण था। इसका राजा तब वसुपाल था और वह जिससे अपनी प्रजा सुखी हो, धनी हो, सदाचारी हो, दयालु हो, इसके लिए कोई बात का कष्ट न हो इसलिए सदा प्रयत्नशील रहता था।

यहीं एक सेठ रहता था। उसका नाम था जिनदत्त। जिनदत्त की शहर के सेठ साहूकारों में बड़ी इज्जत थी। वह धर्मशील और जिनभगवान का भक्त था। दान, पूजा, स्वाध्याय आदि पुण्यकर्मों को वह सदा नियमानुसार किया करता था। उसकी धर्मप्रिया का नाम जिनदत्ता था। जैसा जिनदत्त धर्मात्मा और सदाचारी था, उसकी गुणवती साधवी स्त्री भी उसी के अनुरूप थी और इसी से इनके दिन बड़े ही सुख के साथ बीतते थे। अपने ग्रहस्थ सुख को स्वर्ग सुख से भी कहीं बढ़कर इन्होंने बना लिया था। जिनदत्ता बड़ी उदार प्रकृति की स्त्री थी। वह जिसे दुखी देखती उसकी सब तरह सहायता करती और उनके साथ प्रेम करती। इसके सन्तान में केवल एक पुत्री थी। उसका नाम नीली था। अपने माता-पिता के अनुरूप ही इसमें गुण और सदाचार की सृष्टि हुई थी। जैसे सन्तों का स्वभाव पवित्र होता है, नीली भी उसी प्रकार बड़े पवित्र स्वभाव की थी।

इस नगर में एक और वैश्य रहता था। उसका नाम समुद्रदत्त था। वह जैनी नहीं थी। इसकी बुद्धि बुद्ध उपदेशों को सुन-सुनकर बड़ी मुट्ठी हो गई थी। अपने हित की ओर कभी इसकी दृष्टि नहीं जाती थी। इसकी स्त्री का नाम सागरदत्ता था। इसके एक पुत्र था। उसका नाम था सागरदत्त। सागरदत्त एक दिन अचानक जिनमन्दिर में पहुँच गया। इस समय नीली भगवान् की पूजाकर रही थी। वह एक तो स्वभाव से ही बड़ी सुन्दरी थी। इस पर अपने अच्छे-अच्छे रत्न, जड़ें गहने और बहुमूल्य वस्त्र पहन रखे थे। इससे इसकी सुन्दरता और भी बढ़ गई थी। वह देखने वालों को ऐसी जान पड़ती थी, मानो कोई स्वर्ग की देव-बाला भगवान् की खड़ी-खड़ी पूजा कर रही है। सागरदत्त उसकी भुवनमोहिनी सुन्दरता को देखकर मुग्ध

हो गया। काम ने उसके मन को बैचेन कर दिया। उसने पास ही खड़े हुए अपने मित्र से कहा–यह है कौन? मुझे तो नहीं जान पड़ता कि यह मध्यलोक की बालिका हो। यह तो स्वर्गबाला है या नागकुमारी अथवा विद्याधर कन्या, क्योंकि मनुष्य में इतना सुन्दर रूप होना असम्भव है।

सागरदत्त के मित्र प्रियदत्त ने नीली का परिचय देते हुए कहा कि यह तुम्हारा भ्रम है, जो तुम ऐसा कहते हो कि ऐसी सुन्दरता मनुष्यों में नहीं हो सकती। तुम जिसे स्वर्ग बाला समझ रहे हो वह न स्वर्ग बाला है, न नागकुमारी और न किसी विद्याधर वगैरह की पुत्री है, किन्तु मनुष्यनी है और अपने इसी शहर में रहने वाले जिनदत्त सेठ के कुल की एकमात्र प्रकाश करने वाली उसकी नीली नामक कन्या है।

अपने मित्र द्वारा नीली का हाल जानकर सागरदत्त आश्चर्य के मारे दंग रह गया। साथ ही काम ने उसे हृदय पर अपना पूरा अधिकार किया। वह घर पर आया सही, पर अपने मन को वह नीली के पास ही छोड़ आया। अब वह दिन–रात नीली की चिन्ता में घुल–घुलकर दुबला होने लगा। खाना–पीना उसके लिए कोई आवश्यक काम नहीं रहा। सच है, जिस काम के वश होकर श्रीकृष्ण लक्ष्मी द्वारा, महादेव गंगा द्वार और ब्रह्मा उर्वशी द्वारा अपना प्रभुत्व, ईश्वरपना खो चुके तब बेचारे साधारण लोगों की तो कथा ही क्या कही जाय?

सागरदत्त की हालत उसके पिता को जान पड़ी। उसने एक दिन सागरदत्त से कहा–देखो, जिनदत्त जैनी है, वह कभी अपनी कन्या को अजैनी के साथ नहीं ब्याहेगा। इसलिए तुम्हें यह उचित नहीं कि तुम अप्राप्य वस्तु के लिए इस प्रकार तड़फ–तड़फकर अपनी जान को जोखिम में डालो। तुम्हें यह अनुचित विचार छोड़ देना चाहिए। यह कहकर समुद्रदत्त ने पुत्र के उत्तर पाने की आशा से उसकी ओर देखा। पर जब सागरदत्त उसकी बात का कुछ भी जवाब न देकर नीची नजर किये ही बैठ रहा तब समुद्रदत्त को निराश हो जाना पड़ा। उसने समझ लिया कि इसके दो ही उपाय है। या तो पुत्र के जीवन की आशा से हाथ धो बैठना या किसी तरह सेठ की लड़की के साथ इसको ब्याह देना। पुत्र के जीने की आशा को छोड़ बैठने की अपेक्षा उसने किसी तरह नीली के साथ उसका ब्याह कर देना ही अच्छा समझा। सच है, सन्तान का मोह मनुष्य से सब कुछ करा सकता है इस सम्बन्ध के लिए समुद्रदत्त के ध्यान में एक युक्ति आई। वह यह कि इस दशा में उसने अपना और पुत्र का जैनी बन जाना बहुत ही अच्छा समझा और वे बन भी गये। अब से वे मन्दिर जाने लगे, भगवान् की पूजा करने लगे, स्वाध्याय, व्रत, उपवास भी करने लगे। मतलब यह कि थोड़े ही दिनों में पिता–पुत्र ने अपने जैनी हो जाने का लोगों को विश्वास करा दिया और धीरे–धीरे जिनदत्त से भी इन्होंने अधिक परिचय बढ़ा लिया। बेचारा जिनदत्त सरल स्वभाव का था और इसीलिए वह सभी को अपना सा ही सरल स्वभावी समझता था। यही कारण हुआ कि समुद्रदत्त का चक्र उस पर चल गया। उसने सागरदत्त को अच्छा पढ़ा लिखा, खूबसूरत और अपनी पुत्री के योग्य वर समझकर नीली को उसके साथ ब्याह दिया। सागरदत्त का मनोरथ सिद्ध हुआ। उसे नया जीवन मिला। इसके बाद थोड़े दिनों तक तो पिता–पुत्र ने अपने को ढोंगी वेष में रक्खा, पर फिर कोई प्रसंग लाकर वे पीछे बुद्धधर्म के मानने वाले हो गये।

सच है, मायाचारियों-पापियों की बुद्धि अच्छे धर्म पर स्थिर नहीं रहती। यह बात प्रसिद्ध है कि कुत्ते के पेट में घी नहीं ठहरता।

जब इन पिता-पुत्र ने जैन धर्म छोड़ दिया तब इन दुष्टों ने यहाँ तक अन्याय किया कि बेचारी नीली का उसके पिता के घर जाना-आना भी बन्द कर दिया। सच है, पापी लोग क्या नहीं करते। जब जिनदत्त को इनके मायाचार का यह हाल जान पड़ा तब उसे बहुत पश्चाताप हुआ, बेहद दुःख हुआ वह सोचने लगा-क्यों मैंने अपनी प्यारी पुत्री को अपने हाथों से कुएं मे ढकेल दिया? क्यों मैंने उसको काल के हाथ में सौप दिया? सच है दुर्जनों की संगति से दुःख के सिवा कुछ हाथ नहीं पड़ता। नीचे जलती हुई अग्नि भी ऊपर की छत को काली कर देती है।

जिनदत्त जैसा कुछ किया उसका पश्चाताप उसे हुआ। पर इससे क्या नीली दुखी हो? उसका यह धर्म था क्या? नहीं। उसे अपने भाग्य के अनुसार जो पति मिला, उसे ही वह अपना देवता समझती थी और उसकी सेवा में कभी रत्तीभर भी कमी नहीं होने देती थी उसका प्रेम पवित्र और आदर्श था। यही कारण था कि वह अपने प्राणनाथ की अत्यन्त प्रेमपात्र थी। विशेष इतना था कि नीली ने बुद्धधर्म के मानने वालों के यहाँ आकर भी जिनधर्म को नहीं छोड़ा था। वह बराबर भगवान् की पूजा, शास्त्र, स्वाध्याय, व्रत, उपवास आदि पुण्यकर्म करती थी, धर्मात्माओं से निष्टकपट प्रेम करती थी और पात्रों को दान देती थी। मतलब यह कि अपने धर्म कर्म में उसे खूब श्रद्धा थी और भक्तिपूर्वक वह उससे पालती थी। पर खेद है कि समुद्रदत्त की आँखों में नीली का यह कार्य भी खटका करता था। उसकी इच्छा थी कि नीली भी हमारा ही धर्म पालने लगे और इसके लिए उसने यह सोचकर कि बुद्ध साधुओं की संगति से या दर्शन से उनके उपदेश से यह अवश्य बुद्धधर्म को मानने लगेगी। एक दिन नीली से कहा-पुत्री, तू पात्रों को तो सदा दान दिया ही करती है, तब एक दिन अपने धर्म के ही अनुसार बुद्ध साधुओं को भी तो दान दे।

नीली ने श्वसुर की बात मान ली। पर उसे जिनधर्म के साथ उनकी यह ईर्षा ठीक नहीं लगी और इसीलिए उसने कोई ऐसा उपाय भी अपने मन में सोच लिया, जिससे फिर कभी उससे ऐसा मिथ्या आग्रह न किया जाय, उसके धर्मपालन में किसी प्रकार की बाधा न दी जाय। फिर कुछ दिनों बाद उसने मौका देखकर कुछ बुद्ध साधुओं को भोजन के लिए बुलाया, वे आये। उनका आदर-सत्कार भी हुआ। वे एक अच्छे सुन्दर कमरे में बैठाये गये इधर नीली ने उनके जूतों को एक दासी द्वारा मँगवा लिया और उसका खूब बारीक बूरा बनवाकर उसके द्वारा एक किस्म की बहुत ही बढ़िया मिठाई तैयार करवाई। इसके बाद जब वे साधु भोजन करने को बैठे तब और व्यंजन-मिठाईयों के साथ वह मिठाई भी उन्हें परोसी गई सबने उसे बहुत पसन्द किया। भोजन समाप्त हुए बाद में जब जाने की तैयारी हुई, तब वे देखते हैं तो जूते के जोड़े नहीं है। उन्होंने पूछा-जोड़े कहाँ गये? भीतर से नीली ने आकर कहा-महाराज, मैने सुना है कि साधु लोग बड़े ज्ञानी होते हैं? तब क्या आप अपने ही जूतों का हाल नहीं जानते हैं? और यदि आपको इतना ज्ञान नहीं तो मैं बतला देती हूँ कि जूते आपके पेट में है। विश्वास के लिए आप उल्टी कर देखें। नीली की बात

सुनकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने उल्टी करके देखा तो उन्हें जूतों के छोटे-छोटे बहुत से टुकड़े देख पड़े। इससे उन्हें बहुत लज्जित होकर अपने स्थान पर आना पड़ा।

नीली की इस कारवाई से, अपने गुरुओं के अपमान से समुद्रदत्त, नीली की सासु, ननद आदि को बहुत ही गुस्सा आया पर भूल उनकी जो नीली द्वारा उसके धर्म विरुद्ध कार्य उन्होंने करवाना चाहा। इसलिए वे अपना मन मसोसकर रह गये, नीली से वे कुछ नहीं कह सके। पर नीली की ननद को इससे संतोष नहीं हुआ। उसने कोई ऐसा ही छल कपटकर नीली के माथे व्याभिचार का दोष माढ़ दिया। सच है, सत्पुरुषों पर किसी प्रकार का ऐब लगा देने में पापियों को तनिक भी भय नहीं रहता। बेचारी नीली अपने पर झूठ-मूठ महान् कलंक लगा सुनकर बड़ी दुखी हुई। उसे कलंकित होकर जीते रहने से मर जाना ही उत्तम जान पड़ा वह उसी समय जिनमन्दिर में गई और भगवान् के सामने खड़ी होकर उसने प्रतिज्ञा की, कि मैं इस कलंक से मुक्त होकर ही भोजन करूँगी, इसके अतिरिक्त मुझे इस जीवन में अन्न पानी का त्याग है। इस प्रकार वह सन्यास लेकर भगवान के सामने खड़ी हुई उनका ध्यान करने लगी। इस समय उनकी ध्यान मुद्रा देखने के योग्य थी। वह ऐसी जान पड़ती थी मानो सुमेरु पर्वत की स्थिर और सुन्दर जैसी चूलिका हो। सच है, उत्तम पुरुषों को सुख या दुःख में जिनेन्द्र भगवान् ही शरण होते हैं, जो अनेक प्रकार की आपत्तियों के नष्ट करने वाले और इन्द्रादि देवों द्वारा पूज्य है।

नीली की इस प्रकार दृढ़ प्रतिज्ञा और उसके निर्दोष शील के प्रभाव से पुरदेवता का आसन हिल गया। वह रात के समय नीली के पास आय और बोली-सतियों की शिरोमणि, तुझे इस प्रकार निराहार रहकर प्राणों को कष्ट में डालना उचित नहीं सुन, मैं आज शहर के बड़े-बड़े प्रतिष्ठित पुरुषों को तथा राजा को एक स्वप्न देकर शहर के सब दरवाजे बन्द कर दूँगी। वे तब खुलेंगे जब कि उन्हें कोई शहर की महासती अपने पावों से छुएगी सो जब तुझे राजकर्मचारी यहाँ से उठाकर ले जाय तब तू उनका स्पर्श करना। तेरे पाँव के लगते ही दरवाजे खुल जाएँगे और तू कलंक मुक्त होगी यह कहकर पुरदेवता चले गए और सब दरवाजों को बन्द कर उसने राजा वगैरह को स्वप्न दिया।

सवेरा हुआ कोई घूमने के लिए, कोई स्नान के लिए और कोई किसी काम के लिए शहर के बाहर जाने लगे। जाकर देखते हैं तो शहर बाहर होने के सब दरवाजे बन्द हैं सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। बहुत कुछ कोशिश की गई, पर एक भी दरवाजा नहीं खुला। सारे शहर में शोर मच गया। बात ही बात में राजा के पास खबर पहुंची। इस खबर के पहुंचते ही राजा को रात में आये हुए स्वप्न की याद हो उठी। उसी समय एक बड़ी भारी सभा बुलाई गई राजा ने सबको अपने स्वप्न का हाल कह सुनाया। शहर के कुछ प्रतिष्ठित पुरुषों ने भी अपने को ऐसा स्वप्न आया बतलाया। आखिर सबकी सम्मति से स्वप्न के अनुसार दरवाजों का खोलना निश्चित किया गया शहर की स्त्रियाँ दरवाजों को स्पर्श करने को भेजी गई। सबने उन्हें पाँवों से छुआ,पर दरवाजों का कोई नहीं खोल सकी। तब किसी ने, जो कि नीली के सन्यास का हाल जानता था, नीली को उठा ले जाकर उसके पावों का स्पर्श करवाया। दरवाजे खुल गये। जैसे वैद्य सलाई के द्वारा

आँखों को खोल देता है उसी तरह नीली ने अपने चरण स्पर्श से दरवाजों को खोल दिया। नीली के शील की बहुत प्रशंसा हुई। नीली कलंक मुक्त हुई। उसके अखण्ड शील प्रभाव को देखकर लोगों को बड़ी प्रसन्नता हुई। राजा तथा शहर के और–और प्रतिष्ठित पुरुषों ने बहुमूल्य वस्त्राभूषणों द्वारा नीली का खूब सत्कार किया और इन शब्दों में उसकी प्रशंसा की **हे जिनभगवान के चरण कमलों की भौंरी, तुम खूब फूलो फलो। माता, तुम्हारे शील का महात्म्य कौन कह सकता है।** सती नीली अपने धर्म पर दृढ़ रही, उससे उसकी बड़े–बड़े प्रतिष्ठित पुरुषों ने प्रशंसा की। इसलिए सर्वसाधारण को भी सती नीली का पथ ग्रहण करना चाहिए।

जिनके वचन सारे संसार को उपकार करने वाले हैं, जो स्वर्ग के देवों और बड़े–बड़े राजा महाराजाओं से पूज्य हैं और जिनका उपदेश किया हुआ पवित्र शील–ब्रह्मचर्य स्वर्ग तथा परम्परा मोक्ष का देने वाला है, वे जिनभगवान् संसार में सदा काल रहें और उनके द्वारा कर्म–परवश जीवों को कर्म पर विजय प्राप्त करने का पवित्र उपदेश सदा मिलता रहे।

*****

सती प्रभावती

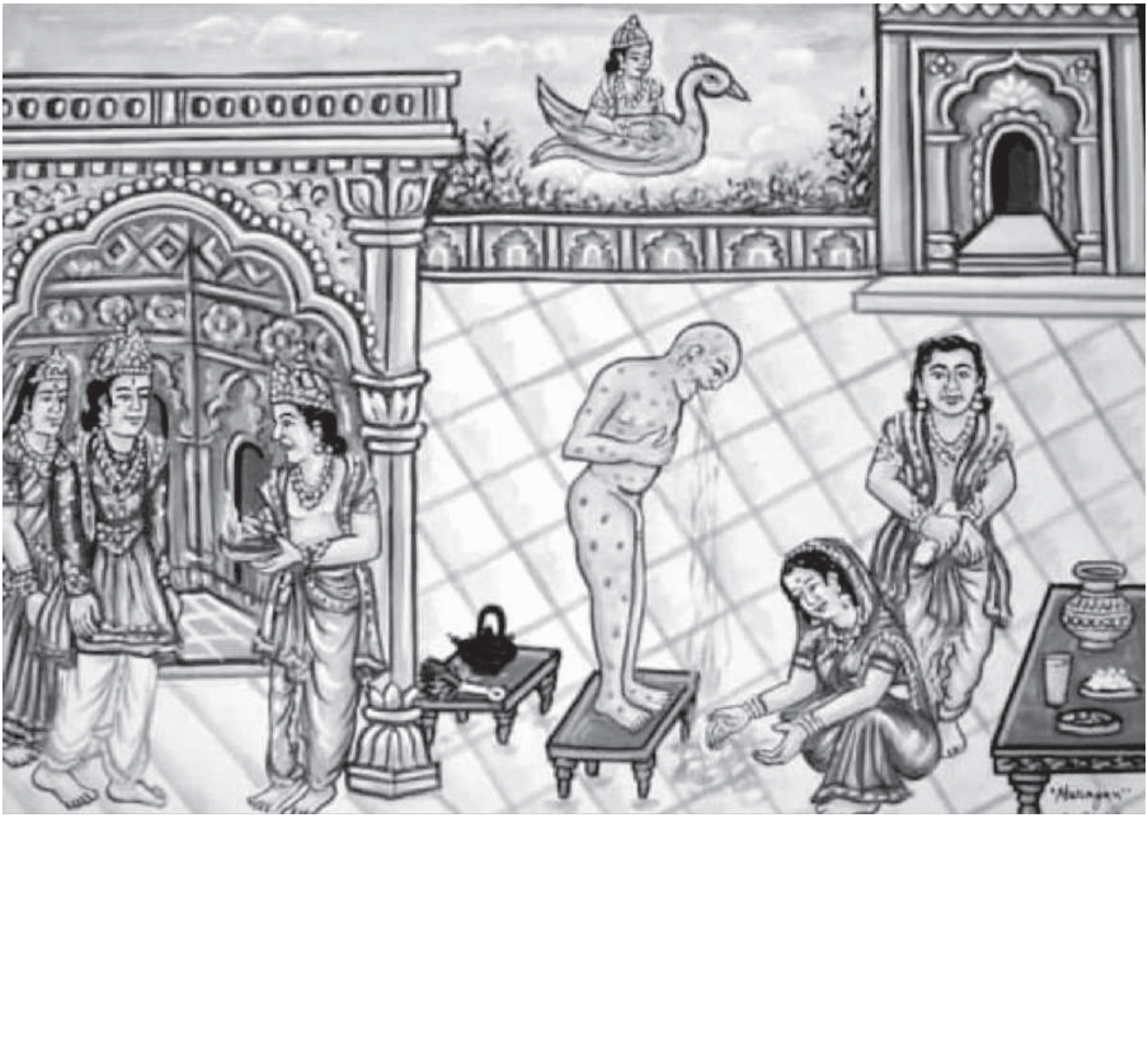

18

सती प्रभावती

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में सिन्धु नामक सुन्दर देश है जो वन प्रान्तों और बगीचों से शोभित है उसमें वैशाली नगरी है जो धन–धान्य से सम्पन्न, हरियाली से परिपूर्ण जहाँ के लोग धर्मपरायण है, धर्मात्मा है, ज्ञानी है, नीति से सम्पन्न है। वहाँ का नरेश धर्मवत्सल था तथा प्रजा को अपने पुत्र–पुत्रीवत् मानता था ऐसे प्रजावत्सल राजा चेटक नामक अतिशय प्रसिद्ध विनीत और जिनेन्द्र देव का अतिशय भक्त राजा उस राज्य का पालक था, प्रजापति था, सही कहाँ कि जिस नगर में राजा स्वयं ही धर्मी है। धर्मात्मा है, जिनधर्म अनुयायी हो वहाँ की प्रजा भी धर्मात्मा होती है।

राजा चेटक की धर्म में अनुराग करने वाली धर्मप्रेमी, सुन्दर सुभद्रा रानी थी। उन दोनों के दश पुत्र हुए जो कि धनदत्त, धनभद्र, उपेन्द्र, सुदत्त, सिंहभद्र, सुकुम्भोज, अकम्पन, पतङ्गक, प्रगञ्जन और प्रभास नाम से प्रसिद्ध थे तथा उत्तम क्षमा आदि दश धर्मों के समान जान पड़ते थे। इन पुत्रों के सिवाय सात ऋद्धियों के समान सात पुत्रियाँ थी। प्रियकारिणी, मृगावती, सुप्रभा, प्रभावती, चेलनी, ज्येष्ठा और सबसे छोटी चन्दना थी।

विदेहा देश के कुण्ड नगर में नाथवंश के शिरोमणि एवं तीनों सिद्धियों से सम्पन्न राजा सिद्धार्थ राज्य करते थे। पुण्य के प्रभाव से प्रियकारिणी उन्हीं की रानी हुई थी वत्सदेश की कौशाम्बी नगरी की चन्द्रवंशी राजा शतानीक रहते थे मृगावती नाम की दुसरी पुत्री उनकी स्त्री हुई। दर्शाण देश के हेमकच्छ नामक नगर के स्वामी राजा दशरथ थे जो कि सूर्यवंशरूपी आकाश के चन्द्रमा के समान जान पड़ते थे। सूर्य की निर्मलता के समान सुप्रभा नाम की तीसरी पुत्री उनकी रानी हुई थी।

चौथी पुत्री प्रभावती जिसके सतीत्व के कारण उनका दुसरा नाम शीलवती प्रसिद्ध हुआ उनका विवाह कच्छदेश के रौरव नामक शहर के राजा जो कि सम्यग्दृष्टि थे, दानी थे, विचारशील थे जिनेन्द्र भगवान के सच्चे भक्त थे और न्यायी थे। ऐसे उद्दायन राजा के साथ (संग) हुआ। जिनके सम्यक्त्व की परीक्षा लेने के लिए सौधर्म स्वर्ग से वासव नामक देव आया क्योंकि एक दिन सौधर्म स्वर्ग में सम्यग्दर्शन का और उसके आठ अंगों का वर्णन चल रहा था तो उसमें निर्विचिकित्सा अंग का पालन करने से उद्दायन राजा की प्रशंसा की इन्द्र के मुंह से एक मध्यलोक के मनुष्य की प्रशंसा सुनकर वासव नामक देव उनकी परीक्षा लेने के लिए रौरव नामक नगर में एक कोढ़ी मुनिवेश बनाकर भिक्षा के लिये दोपहर ही को उद्दायन के महल में गया।

उसके शरीर में कोढ़ गल रहा था, उसकी वेदना से उसके पैर इधर-उधर पड़ रहे थे सारे शरीर पर मक्खियाँ भिनभिना रही थी और शरीर विकृत हो गया था। उसकी यह हालत होने पर भी जब राजद्वार पर पहुँचा और महाराज उद्धायन की उस पर दृष्टि पड़ी तब वे उसी समय सिंहासन से उठकर आये और बड़ी भक्तिपूर्वक हर्ष के साथ राजा ने मुनि का नवद्या भक्तिपूर्वक पड़गाहन किया और प्रासुक आहार कराया। राजा आहार कराकर निवृत्त हुए कि इतने में उस कपटी मुनि ने अपनी माया से महादुर्गन्धित वमन कर दिया। उसकी असह्य दुर्गन्ध के मारे सभी भाग गये और राजा रानी मुनि की सम्हाल करने को वही रह गये रानी मुनि का शरीर पोछने को उसके पास गई कपटी मुनि ने उस बेचारी पर भी महा दुर्गन्धित उच्छाट कर दी। राजा और रानी ने इसकी कुछ परवा न कर उलटा इस बात पर बहुत पश्चाताप किया कि हमसे मुनि की प्रकृति विरूद्ध न जाने क्या आहार दे दिया गया जिससे मुनिराज को इतना कष्ट हुआ हम लोग बड़े पापी है इसीलिये तो ऐसे उत्तम पात्र का हमारे यहाँ निरन्तराय आहार नहीं हुआ। सच है जैसे पापी लोगों को मनोवांछित देने वाला चिन्तामणि रत्न और कल्पवृक्ष प्राप्त नहीं होता, उसी तरह सुपात्र के दान का योग भी पापियों को नहीं मिलता है। इस प्रकार अपनी आत्म निन्दा कर और प्रमाद कर बहुत-बहुत खेद प्रकट कर राजा रानी ने मुनि का सब शरीर जल से धोकर साफ किया। उनकी इस प्रकार अचल भक्ति देखकर देव अपनी माया समेटकर बड़ी प्रसन्नता के साथ बोला-राजराजेश्वर, सचमुच ही तुम सम्यग्दृष्टि हो, महादानी हो। निर्विचिकित्सा अंग के पालन करने में इन्द्र ने जैसी तुम्हारी प्रशंसा की थी, वह अक्षर-अक्षर ठीक निकली, वैसा ही मैंने तुम्हें देखा। वास्तव में तुम ही ने जैन शासन का रहस्य समझा है। यदि ऐसा न होता तो तुम्हारे बिना और कौन मुनि दुर्गन्धित उच्छाट अपने हाथों से उठाता? राजन्! तुम धन्य हो, शायद ही इस पृथ्वी मण्डल पर इस समय तुम सरीखा सम्यग्दृष्टियों में शिरोमणि कोई होगा? इस प्रकार उद्दायन की प्रशंसा कर देव अपने स्थान पर चला गया और राजा फिर अपने राज्य का सुखपूर्वक पालन करते हुए दान, पूजा, व्रत आदि में अपना समय बिताने लगे।

एक बार राजा उद्दायन म्लेच्छ देश में निवास करने वाले शत्रुओं के ऊपर आक्रमण करने के लिए गया था और इधर प्रभावती की जो मन्दोदरी धाय थी उसने हिन्दू दीक्षा ले ली। वह बहुत सी साध्वियों के साथ आकर रौरवपुर के बाहर ठहर गई और उसने अपने आने की सूचना करने के लिए प्रभावती के पास किसी स्त्री को भेजा। उसने जाकर प्रभावती से कहा कि तुम्हें देखने के लिए साध्वी मन्दोदरी यहाँ आकर नगर के बाहर ठहर गई है। यह सुनकर प्रभावती बोली कि उनसे मेरे निवास स्थान में आने के लिए कह दो। तब उसने वापिस जाकर मन्दोदरी से प्रभावती का सन्देश कह दिया। इसे सुनकर रानी के अपने सन्मुख न आने से उसे क्रोध उत्पन्न हुआ। वह उसी क्रोध के आवेश में प्रभावती के महल पर पहुँची। प्रभावती उसे नमस्कार न करके अपने आसन पर बैठी रही और इसी अवस्था में मन्दोदरी के लिए आसन दिलाया। तब मन्दोदरी बोली कि हे पुत्री पूर्व में मैं तेरी माता थी और इस समय तपस्विनी हूँ मेरे लिए तू प्रणाम क्यों नहीं करती? इसके उत्तर में प्रभावती ने कहा कि मैं समचीनी मार्ग में स्थित हूँ, किन्तु तुम कुमार्ग में प्रवृत्त हो,

इसलिए मैं तुम्हें नमस्कार नहीं कर रही हूँ। इस पर मन्दोदरी बोली कि क्या महादेव के द्वारा प्ररूपित मार्ग समीचीन नहीं? प्रभावती ने कहा कि नहीं, तब उन दोनों के बीच में बहुत विवाद हुआ अन्त में प्रभावती उसे निरुत्तर करके जीत लिया। इससे वह मन ही मन क्रोधित होकर चली गई। तब उसने प्रभावती के सुन्दर रूप को चित्रपट के ऊपर लिखकर (उतारकर) उसे उज्जयिनी के राजा चण्डप्रद्योतन के लिए दिखलाया। उसको देखकर चण्डप्रद्योत उसके ऊपर आसक्त हो गया। उसे यह ज्ञात ही था कि उसका पति उद्दायन अभी वहाँ नहीं है। इसलिए वह समस्त सेना के साथ रौरवपुर में जा पहुँचा उसने वहाँ नगर के बाहर पड़ाव डालकर रानी के पास एक अतिशय चतुर मनुष्य को भेजा। उसने जाकर प्रभावती के आगे अपनी स्वामी गुण, रूप एवं सौन्दर्य की खूब प्रशंसा की। उसे सुनकर प्रभावती ने कहा कि मुझे तुम्हारे स्वामी के गुण आदि से कुछ भी प्रयोजन नहीं है, उद्दायन राजा के सिवा अन्य सब जन मेरे लिए पिता के समान हैं। यह कहकर उसने उस दूत को महल से निकाल दिया। फिर उसने अपने यहाँ अन्य पुरुषों के आगमन को रोक दिया और भीतरी सैन्य को सुसज्जित करते हुए गोपुर द्वारों को बन्द कर दिया। वह स्वयं दुर्ग के ऊपर स्थित हो गई। तब वह चण्डप्रद्योतन नगर को अपने अधिकार में करने के लिए प्रयत्न करने लगा। युद्ध को सुनकर प्रभावती अपने देवपूजा भवन (चैत्यालय) में चली गई। वहाँ वह जब यह उपद्रव नष्ट हो जाएगा तब ही मैं शरीर आदि के विषय में प्रवृत्ति करूँगी, अन्यथा नहीं, यह प्रतिज्ञा करके स्थित हो गई। इसी समय कोई देव आकाश मार्ग से जा रहा था। उसका विमान प्रभावती के ऊपर आकर रूक गया। इससे उसे प्रभावती के ऊपर आए हुए उपसर्ग का परिज्ञान हुआ। तब उसने मन के चिन्तन से ही नगर के बाहर स्थित चण्डप्रद्योतन के रूप को ग्रहण कर लिया। साथ ही उसने विक्रिया से सेना का भी निर्माण कर लिया। पश्चात् वह दुर्ग के भीतर स्थित सैन्य को माया से नष्ट करके उसके भीतर पहुँच गया। फिर उसने देवपूजा भवन में जाकर प्रभावती के सामने अनेक प्रकार की कामोत्पादक पुरुष की चेष्टाएँ की। परन्तु वह उसके चित्त को विचलित नहीं कर सका। तब उसने जब माया को दूरी करके प्रभावती की पूजा करते हुए यह घोषणा कर दी कि वह शीलवती है। अन्त में स्वर्गलोक को वापिस चला गया। तत्पश्चात् नगर में वापिस आने पर जब यह समाचार राजा उद्दायन को ज्ञात हुआ तब उसे अतिशय हर्ष हुआ। फिर अपने राज्य का सुखपूर्वक पालने करते हुए दान, पूजा, व्रत आदि में अपना समय बिताने लगे।

इसी तरह राज्य करते-करते उद्दायन का कुछ ओर समय बीत गया। एक दिन वे अपने महल पर बैठे हुए प्रकृति की शोभा देख रहे थे कि इतने में एक बड़ा भारी बादल का टुकड़ा उनकी आँखें के सामने से निकला। वह थोड़ी ही दूर पहुँचा होगा कि एक प्रबल वायु के वेग ने उसे देखते-देखते नामशेष कर दिया। क्षणभर में एक विशाल मेघखण्ड की यह दशा देखकर उद्दायन की आँखे खुली। उन्हें सारा संसार ही अब क्षणिक जान पड़ने लगा। उन्होंने उसी समय महल से उतरकर अपने सुकीर्ति नामक पुत्र को बुलाया और उसके मस्तक पर राजतिलक करके आप भगवान वर्द्धमान के समवशरण में पहुँचे और भक्ति के साथ भगवान की पूजा कर उनके चरणों के पास ही उन्होंने जिनदीक्षा ग्रहण कर ली, जिसका इन्द्र, नरेन्द्र, धरणेन्द्र आदि सभी आदर करते है।

साधु होकर उद्दायन राजा ने खूब तपश्चर्या की, संसार का सर्वश्रेष्ठ पदार्थ रत्नत्रय प्राप्त किया। इसके बाद ध्यान रूपी अग्नि से घातियाँ कर्मों का नाश कर उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया। उसके द्वारा उन्होंने संसार के दु:खों से तड़पते हुए अनेक जीवों को उबारकर अनेकों को धर्म के पथ पर लगाया और अन्त में अघातियाँ कर्मों का भी नाश कर अविनाशी अनन्त मोक्षपद प्राप्त किया।

उधर उनकी शीलवती रानी सती प्रभावती ने भी जिनदीक्षा ग्रहण कर तपश्चर्या करने लगी और अन्त में समाधिपूर्वक शरीर को छोड़कर ब्रह्म स्वर्ग में जाकर देव हुई। इस प्रकार सब अवस्था वाली स्त्री भी जब शील के प्रभाव से दोनों लोकों में पूज्य हुई तब दूसरा भव्य जीव भी पूज्य अवश्य होगा।

*****

सती मदनरेखा

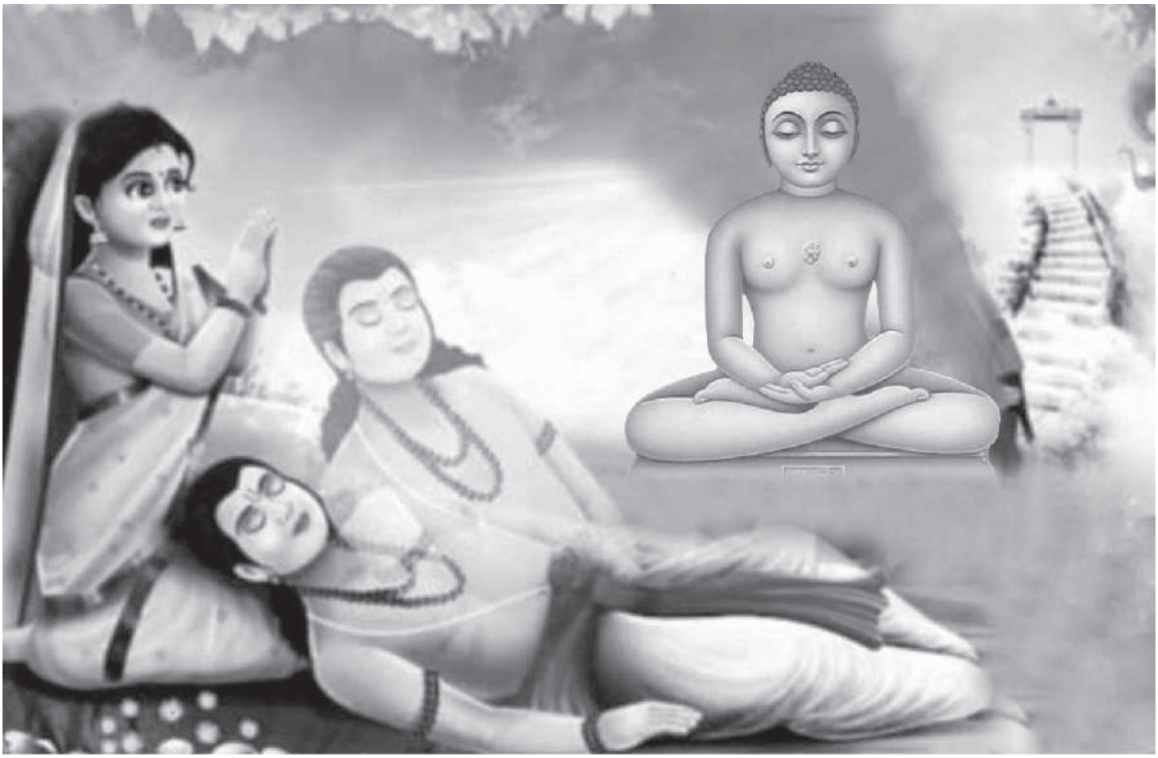

19

सती मदनरेखा

अपने शील की रक्षा के लिए मानव को परिस्थिति देखकर विवेकपूर्वक बुद्धि से काम लेना चाहिए। यदि वह भावुकता में आकर शील रक्षा के लिए अनुकूल उपाय नहीं करता है तो उसके शील की रक्षा नहीं हो सकती है और ऐसी स्थिति में नारी के शील की रक्षा होना तो अत्यन्त दुष्कर ही हो जाती है क्योंकि पुरुष बलात्कार कर सकता है। अत: नारियों को पुरुष की दृष्टि एवं उसकी चेष्टाओं को अच्छी तरह से समझना चाहिए ताकि शील पर आपत्ति आने के पहले ही वह सावधान हो सके। जिस प्रकार सती मदनरेखा ने अपने जेठ (पति के बड़े भाई) के द्वारा भेजे गये वस्त्राभूषणों से ही जान लिया था कि वह मुझे अपनी बनाना चाहता है। यह जानकर उसने सावधानी से अपने शील की रक्षा की थी।

एक नगर के न्यायप्रिय, गुणज्ञ राजा अपने पुत्रों युगबाहु और युगवीर के साथ रहते थे। दोनों पुत्र विनयवान, धर्मप्रिय एवं आज्ञाकारी थे। आपस में दोनों का प्रेम राम-लक्ष्मण के प्रेम का अनुसरण करता था। उनकी खेलने, खाने व सोने आदि की क्रियाएँ साथ-साथ होती थीं। राजा ने अपनी वृद्धावस्था निकट देख अपने बड़े पुत्र को राज्यपद एवं छोटे पुत्र को युवराज पद देकर दीक्षा ग्रहण कर ली।

एक दिन रति के रूप को भी पराजित करने वाली, देवांगना के समान सुन्दर, युगवीर की पत्नी मदनरेखा स्नान कर झरोखे में खड़ी अपने बालों को सुखा रही थी। उसी समय राजा युगबाहु की दृष्टि उस पर पड़ी और भ्रमर के समान काले बालों के बीच चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख देख उसका हृदय काम के बाणों से बिंध गया। उसका हृदय काम की आग में जलने लगा। किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो वह उसकी प्राप्ति के लिए तड़फने लगा। कामज्वर से सन्तापित हो उसने भोजनादि क्रियाएँ छोड़ दीं। वह अर्धमृतक के समान शय्या पर पड़ गया। राजा की यह दशा देख मित्रों आदि ने चिन्तित हो पूछा- ''स्वामिन्! आपकी चिन्ता का क्या कारण है? बार-बार आग्रह करने पर राजा ने निर्लज्ज होकर अपने मन की बात कह दी। राजा के मुख से ऐसी निकृष्ट बात सुनकर मित्र बोले- राजन्! छोटे भाई की पत्नी तो पुत्री के समान होती है। आप उसके लिए पिता के समान हैं। क्या पिता तुल्य आपको उसके साथ इस प्रकार सोचना उचित है? आप तो प्रजापालक हैं यदि आप ही ऐसा अनुचित कार्य करेंगे तो प्रजा का क्या होगा? यदि बाड़ ही खेत को खाने लगे तो खेत की रक्षा कौन करे? यदि रक्षक ही भक्षक बन जाये तो किसकी शरण में जावे? हे स्वामिन्! आप नरक के महान् कष्टों को देने वाले, संसार में यशकीर्ति को नष्ट कर देने वाले इस निकृष्ट विचार को छोड़ दीजिये, ऐसी हमारी आपके चरणों में सविनय प्रार्थना है।''

इस प्रकार के अमृत तुल्य हितकारी वचन भी राजा को मदनज्वर के कारण विषतुल्य कटुक लगे। वह अत्यन्त क्रोधित हो बोला– ''इस समय मुझे उपदेश की नहीं, सहायता की आवश्यकता है। तुम लोग मेरे मित्र नहीं, शत्रु हो। चले जाओ यहाँ से, मुझे तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं।'' राजा के इस प्रकार वचन सुनकर भी उन्होंने उसे बार–बार समझाने की कोशिश की। परन्तु अन्त में राजा की उग्रता एवं हठ को देख सभी मित्रगण चले गये परन्तु एक लोभी मित्र वहीं रुक कर सांत्वना देते हुये राजा की इच्छापूर्ति का उपाय सोचने लगा। दोनों मित्रों ने मदनरेखा की मन:स्थिति जानने के लिए बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से एक थाल भरकर दूती के साथ भेजा। दूती सामग्री लेकर मदनरेखा के पास पहुँची और बोली– ''स्वामिनी! महाराज ने आपके लिए ये वस्त्राभूषण भेजे हैं, इन्हें स्वीकार कीजिये।'' मदनरेखा को रहस्य समझने में देर नहीं लगी। उसने स्पष्ट शब्दों में कहा– ''दूती! जाओ! अपने महाराज से कह दो कि मुझे आपके छोटे भाई से प्राप्त सामग्री में सन्तोष है। मुझे इनकी किंचित् मात्र भी आवश्यकता एवं इच्छा नहीं है। आपने ये वस्त्राभूषण भेजकर व्यर्थ ही क्यों कष्ट किया?''

दूती के द्वारा रानी के इस सन्देश को सुनकर राजा ने सोचा कि छोटे भाई युगवीर के रहते वह कभी मुझ पर प्रसन्न नहीं हो सकती। अत: छोटे भाई को मरवाने का विचार कर उसने उसे बुलाकर उसके सामने निकट देश स्थित पराक्रमी बलशाली राजा के साथ युद्ध का प्रस्ताव रखा और बोला– ''भाई! मैं युद्ध के लिए जा रहा हूँ। तुम कुशलतापूर्वक प्रजा की रक्षा करना।'' बड़े भाई से युद्ध में जाने की बात सुनकर युगवीर बोला– ''भाई! मेरे रहते आप युद्ध में नहीं जा सकते। आप मुझे आज्ञा दें तथा आशीर्वाद दें कि मैं शीघ्र ही शत्रु को परास्त कर विजय प्राप्त करूँ।'' युगबाहु (राजा) तो यह चाहता ही था। अत: बाहरी दिखावे शुभ शकुन के साथ उसे युद्ध के लिए विदा कर दिया तथा ''मन में यह वापस न लौटे'' इस प्रकार की दुर्भावना करने लगा।

भाई की अनुपस्थिति में कामान्ध राजा मदनरेखा की प्राप्ति के लिए एक दिन अर्द्धरात्रि में उसके महल में जा पहुँचा तथा दरवाजा खटखटाने लगा। मदनरेखा की निद्रा भंग हुई। वह सावधान हो बोली– ''आप कौन हैं एवं असमय में यहाँ किस कारण से आये हैं?'' राजा बोला– मेरी रानी! मैं युगबाहु राजा हूँ एवं तेरे विरह की अग्नि में झुलसता हुआ प्रेम की प्यास बुझाने आया हूँ। मैं तुझसे प्रेम की भीख माँगता हूँ। तू मेरी इच्छा पूरी कर। मैं तुझे पटरानी बनाऊँगा। तू शीघ्र ही दरवाजा खोल। राजा के ऐसे व्रज से भी कठोर वचन सुनकर वह अपनी शीलरक्षा का उपाय सोचने लगी। राजा पुन: पुन: प्रलोभन देकर प्रार्थना करने लगा तथा उसे अपने वश में न होती देख दरवाजा तोड़ने के लिए तत्पर हुआ। तब मदनरेखा ने गम्भीर शब्दों में कहा– ''राजन्! आप मेरे पिता तुल्य हैं। आप नरक के गर्त में पटकने वाले इन दुर्विचारों को छोड़कर शीघ्र ही अपने स्थान पर लौट जाइये।'' राजा ने उसके शब्दों को नहीं सुना। उसने दरवाजे पर लात मारी तो वह जोर से चिल्लाई। उसकी चीख सुनकर पास के कमरे में सोई हुई सास की निद्रा खुल गई। वह बाहर आई। उसे देखते ही राजा भय से तत्काल वहाँ से चम्पत हो गया।

कुछ दिनों बाद युवराज युगवीर युद्ध में विजयश्री पाकर लौटा। दिल में दुःखी होते हुये राजा ने बाह्य में उसका जोर-शोर से स्वागत किया। मदनरेखा ने भी अपने पति को अपने साथ घटी घटना सुना दी एवं सावधान रहने की प्रार्थना की परन्तु भाई के स्नेह में डूबे युगवीर को इस बात का विश्वास नहीं हुआ। उसने कहा- ''नारियों का हृदय शंकालु होता है। मेरा भाई ऐसा कभी नहीं कर सकता। तुम इस बात पर कोई विचार नहीं करो, सुख से रहो।'' पति की बात सुन मदनरेखा चुप हो गई।

इधर राजा युगबाहु के मन में युगवीर के जीवित लौट आने का दुःख सताने लगा। वह उसे मारने का विचार कर अर्द्धरात्रि में युवराज के महल में आया और उसकी कुशल पूछकर बोला- ''भाई! मुझे जोर की प्यास लगी है।

युगवीर अपने भाई की स्नेह भरी वाणी सुन पानी लेने के लिए जैसे ही नीचे झुका, राजा ने तत्काल उसका सिर काट डाला एवं रक्तरंजित तलवार लेकर भाग गया। मदनरेखा ने धैर्यपूर्वक सिर और धड़ को मिलाकर णमोकार मंत्र सुनाते हुये अपने पति को सम्बोधित किया, जिससे वह वैर भाव को छोड़कर स्वर्ग में देव हुआ। मदनरेखा भी अपने शील की रक्षार्थ गुप्त द्वार से जंगल में भाग निकली। कंकड़-पत्थर, काँटों से उसके पैर छिल गये फिर भी वह भागती रही और भागते-भागते एक भयानक जंगल में पहुँची। वहाँ पशुओं से भयभीत हो अपनी रक्षा के लिए वह एक गुफा में गई। वहाँ उसे प्रसव की भयंकर वेदना हुई और कुछ ही समय में उसने एक सुन्दर पुत्र रत्न को जन्म दिया।

कुछ दिनों के बाद एक दिन अपनी साड़ी के एक पल्ले को फाड़कर वृक्ष की डालियों से बाँध झूला बनाकर बच्चे को सुलाकर स्वयं स्नान के लिए एक सरोवर पर गई तो वहाँ एक मदोन्मत्त हाथी ने उसे सूँड़ में उठाकर आकाश में उछाल दिया। उसी समय आकाशमार्ग से जाते हुये एक विद्याधर ने उसे आकाश मार्ग में ही झेल लिया। वह उसके अद्भुत रूप को देखकर कामासक्त हो गया और कहने लगा- ''प्रिये! मुझे अपना दास स्वीकार करो तथा मेरी इच्छा पूरी करो।'' वह सोच रही थी मैं बच गई, अब मेरा शील सुरक्षित रहेगा लेकिन वह तो कुएँ से निकल कर खाई में गिर पड़ी थी। फिर भी वह मन में जिनेन्द्र भगवान् से शील सुरक्षा की प्रार्थना करती हुई बोली- ''भाई! तुम कौन भले पुरुष हो जो तुमने भयानक जंगल में मेरी रक्षा की।'' वह बोला- ''तुम मुझे भाई न कहो भरतार कहो तथा मेरे हृदय की दाह शांत करो।'' उसे एक युक्ति सूझी वह बोली- ''प्रथम आप बताइये कि आपका इधर आना कैसे हुआ? आप कहाँ जा रहे थे? विद्याधर ने यह सोचकर कि मेरे कार्य की सिद्धि होने वाली है, कहा कि मेरे पिता ने जिनदीक्षा ग्रहण की है। उनके दर्शनार्थ मैं जा रहा था परन्तु मार्ग में तुम जैसी स्त्री रत्न को देखकर अब वहाँ जाने की इच्छा नहीं है'' मदनरेखा बोली- ''ठीक है, आप जिस कार्य के लिए निकले हैं पहले उसे कर लें जिससे मुझे भी मुनिराज (आपके पिताजी) के दर्शनों का लाभ मिल जायेगा। आगे की बात बाद में सोचेंगे।'' मदनरेखा की बात सुनकर वह राजी हो गया। दोनों मुनिराज के दर्शन को गये। मुनिराज ने अपने ज्ञान से विद्याधर के मन की बात जान ली तथा अब्रह्म के दोषों को विस्तृत रूप से वर्णन किया, जिससे उसने वासना से विरक्त

हो अपने मानसिक दोषों का प्रायश्चित लिया। मदनरेखा ने जैनेश्वरी दीक्षा लेकर मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति की। इधर युगबाहु ने खोटे परिणामों के कारण नरक की यात्रा की, वह अनेक कष्टों का पात्र हुआ।

इसी प्रकार अनेक नारियों ने अपनी चतुराई से अपने शील की रक्षा की है। उनमें से एक अन्य नारी की कथा इस प्रकार है-

नारी की चतुराई

एक नगर में एक श्रेष्ठी अपने परिवार सहित रहते थे। उनके परिवार में कुल चार ही सदस्य थे- सेठ, सेठानी, पुत्र एवं पुत्रवधू। एक दिन सेठजी ने यात्रा का विचार किया और वे सेठानी के साथ यात्रा के लिए निकल गये। अब घर में पुत्र एवं पुत्रवधू ही रह गये। योग की बात एक दिन पुत्र भी किसी आवश्यक कार्य से आठ दिन के लिए कहीं बाहर चला गया। जिस दिन सेठ पुत्र बाहर गया, उसी दिन शिकार खेलने के लिए जाते हुये राजकुमार की दृष्टि सेठ की पुत्रवधू पर पड़ी और वह काम से विह्वल हो गया। कामबाण काँटे के समान पैर से सिर तक बड़ी तेजी से चुभने लगे, उसके शरीर में दाह उत्पन्न हो गया। वह राजकुमार खाना-पीना, सोना, बोलना सब भूल गया। उसका मन बार-बार उसकी प्राप्ति के उपाय सोचने लगा। कहा भी है-

तन टूटे मन उछले, देखत कामिनी अंग।
दाह देह में होत है, भोजन में रुचि भंग।।

राजकुमार की यह दशा देखकर मित्रों आदि ने परस्त्री पाप के बारे में अनेक प्रकार से समझाया लेकिन राजकुमार ने किसी की नहीं सुनी। अन्त में, एक दुष्ट मित्र ने अपने मित्र की इच्छापूर्ति के लिए एक दासी को कुछ वस्त्राभूषण देकर भेजा और कहलवाया कि ''हे रूपसुन्दरी! आपसे राजकुमार एकान्त में मिलना चाहते हैं।'' धर्म संस्कारों से संस्कारित बहू उस गुप्त रहस्य को समझ गयी। उसने मन में सोचा- ''यदि मैं इसकी बात ठुकराती हूँ अथवा इस दासी का तिरस्कार करती हूँ तो वह राजकुमार है, राजा का पुत्र है। वह चाहे तो राजसत्ता के बल से मेरे साथ बलात्कार करके मुझे शीघ्र भ्रष्ट कर सकता है। अत: मुझे कुछ युक्ति से काम लेना चाहिए।'' इस प्रकार गम्भीरता से विचार कर बोली- ''दासी, अपने राजकुमार से बोल देना कि मैं आपसे आज से ठीक सातवें दिन मिल सकती हूँ।'' दासी ने राजकुमार को खबर सुना दी। राजकुमार सातवें दिन की प्रतीक्षा करने लगा। बहू ने उसी दिन अपनी ही रूप-आकृति के सदृश अन्दर से पोली (खाली) एक पुत्तलिका बनवाई और स्वयं ने जुलाब लेना प्रारम्भ कर दिया। वह खूब खाती और साथ में जुलाब ले लेती जिससे उसको कई बार शौच (दस्त) होता, वह पूरे शौच (मल) को एकत्र करके पुतली में भरती जाती। कई बार शौच होने के कारण उसका शरीर सूखकर काँटा हो गया, ठीक सातवें दिन राजकुमार के इंतजार में मलिन (गंदी) साड़ी पहनकर वह दरवाजे पर झाड़ू लगाने लगी।

राजकुमार आया और उसने पूछा- ''क्यों दासी! तुम्हारी मालकिन कहाँ है?'' वह झाड़ू लगाती हुई

बोली– ''चलिये, मैं आपको अपनी मालकिन के पास ले चलती हूँ।'' यह कहकर वह राजकुमार को उसे कमरे में ले गई जहाँ पर वह पुतली रखी थी। वह बोली– ''यह मेरी मालकिन है।'' राजकुमार बोला– ''अरे! यह तो नकली पुतली है। असली मालकिन कहाँ है?'' बहू ने (असली मालकिन ने) गम्भीरता से उत्तर दिया, ''असली मालकिन तो मैं ही हूँ जिसे देखकर आप मोहित हुये थे, उसे मैंने इस पुतली में भर दिया है।'' यह कहकर उसने पुतली को खोल दिया, चारों तरफ कमरे में शौच फैल गया और भयंकर दुर्गन्ध आने लगी। इस दृश्य को देखकर राजकुमार का विवेक जाग्रत हो गया। उसने बहू के चरणों में गिरकर क्षमा माँगी और भविष्य में ऐसा अपराध नहीं करने की प्रतिज्ञा की।

इसी सन्दर्भ में 'नर्मदा सुन्दरी' की कथा भी प्रचलित है। उसने राजा से अपने शील की रक्षा के लिए पागल के समान चेष्टाएँ कीं। वह गन्दे दुर्गन्धित कीचड़ के गड्ढे में कूदकर जोर-जोर से चिल्लाने लगी– ''अरे! सब लोगों! देखो, इस गड्ढे में कितनी सुगन्ध आ रही है। इसका पानी कितना मधुर है। तुम सब इसको पीओ तथा इस सुगन्धित पदार्थ का अपने शरीर पर लेप करो। आओ, तुम सब इसमें स्नान करो आदि-आदि।'' इस प्रकार चिल्लाते हुये उसने उस कीचड़ को पूरे शरीर पर लगा लिया कभी वह कहती– ''मैं रानी हूँ, मैं देवी हूँ, मैं इन्द्राणी हूँ, तुम सब मेरी पूजा करो।'' इस तरह कई दिनों तक उसकी पागलपन की चेष्टा को देखकर राजा ने उसे देश से निकाल दिया। इस प्रकार उसके शील की रक्षा हुई।

वर्तमान पंचमकाल में भी ऐसी चतुर नारियाँ हैं जो अपने शील की रक्षा में तत्पर रहती हैं एवं अपनी चतुराई से अपने कार्य की सिद्धि कर लेती हैं।

*****

सती नागला

20

सती नागला

सेठानी रेवती के भवदेव एवं भावदेव नामक दो पुत्र थे। भवदेव ने बालपने में ही अपने पिता के साथ दीक्षा धारण कर ली। कुछ वर्षों के पश्चात् पिता की समाधि हो जाने पर भवदेव मुनिराज विहार करते हुये अपनी देह की जन्मभूमि की तरफ आये। उन्हीं दिनों वहाँ भावदेव के विवाह का कार्यक्रम चल रहा था। भावदेव नागला नामक धर्मनिष्ठ कन्या के साथ विवाह करके लौट रहा था। रास्ते में उन्हें अपने भाई मुनि भवदेव के दर्शन हुये और उनके उद्‌बोधन से भावदेव को संसार से विरक्ति आ गई, परन्तु वह अपने मन में सोचने लगा इसने मेरे साथ विवाह किया और अपने माता-पिता को छोड़कर मेरे साथ यहाँ आयी, अगर में दीक्षा लूँगा तो इसका निर्वाह कैसे होगा? यह अपने मन में क्या सोचेगी, ऐसा विचार कर वही अपनी नवविवाहिता पत्नी के मोह में मोहित हो रागवश दीक्षा लेने से पीछे हट रहा था तब नवविवाहिता नागला ने अपने पति के मन की बात भाँप ली और दीक्षा लेने की भावना देखकर बोली- ''आप यदि अपने कल्याण पथ पर अग्रसर होना चाहते हैं तो मैं आपके पथ में कंटक नहीं बनूँगी। मेरी ओर से दीक्षा लेने की सहर्ष स्वीकृति है।'' यह सुनकर भावदेव ने मुनि दीक्षा ले ली। मुनि बनने के पश्चात् भी उसका मन बार-बार नागला की चिन्ता में व्यग्र रहने लगा। उसने मुनि अवस्था के बारह वर्ष इसी प्रकार पत्नी की चिन्ता में बिता दिये। एक दिन मुनि भावदेव अपने गुरु भवदेव से अपनी जन्मभूमि की ओर विहार की आज्ञा लेकर विहार करते हुये और अपने मन में नागला के साथ गृहस्थी बसाने का विचार करते हुये अपनी जन्मभूमि के बाहर स्थित बगीचे में आये। वहाँ जिन चैत्यालय में गये जहाँ धर्मगोष्ठी करने वाली अनेक महिलाओं को देखा जो परस्पर धर्मचर्चा कर रही थीं। उन्होंने एक स्त्री (नागला) से नागला नामक स्त्री के बारे में पूछा तो नागला समझ गयी कि वे पूर्व में (मुनि बनने के पहले) मेरे पति थे और इनको दीक्षा लेने के बाद भी मेरी चिन्ता अभी तक सता रही है। इसलिये मैं इनका निश्चित रूप से धर्म में स्थितिकरण करूँगी। इसी विचार से अनेक युक्तियों से स्वयं नागला ने मुनि भावदेव को समझाया और उनका स्थितिकरण किया। जिससे वे पुन: वन में गुरु के निकट जाकर प्रायश्चित लेकर आत्मकल्याण में संलग्न हो गये। अत: वासना से अपने चित्त को बचाने के लिए कभी स्त्री को पुरुष एवं पुरुष को स्त्री सम्बन्धी विषयभोगों का चिन्तन नहीं करना चाहिये।

स्वदारसन्तोष व्रतधारी को भी अपनी विवाहिता पत्नी को छोड़कर अन्य का चिन्तन कभी नहीं करना चाहिये तथा अपनी पत्नी या अपने पति के साथ भोगे गये भोगों का असमय में या पर्व आदि दिनों में तथा जिस दिन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना है, उन दिनों में भी विचार नहीं करना चाहिये क्योंकि भोगों की स्मृतियाँ एवं अनागत भोगों को भोगने का विचार भी वासना को उत्पन्न करने वाला होता है।

सती प्रियंगु सुन्दरी

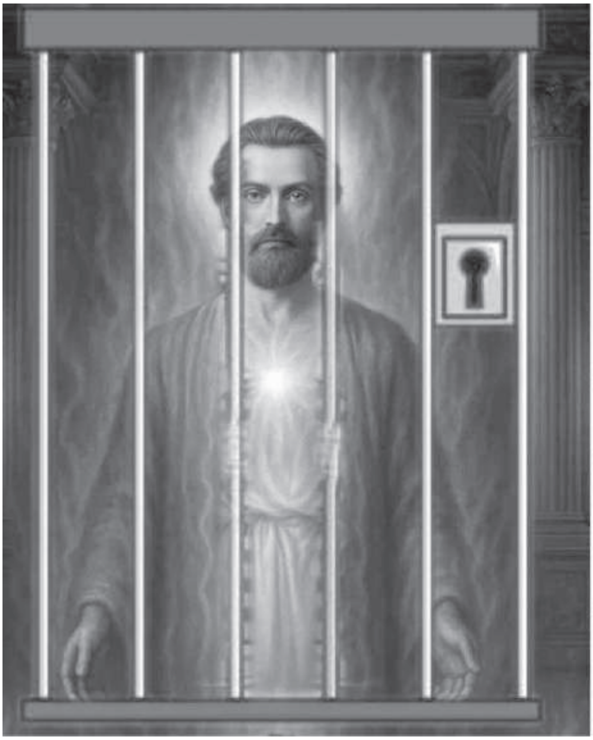

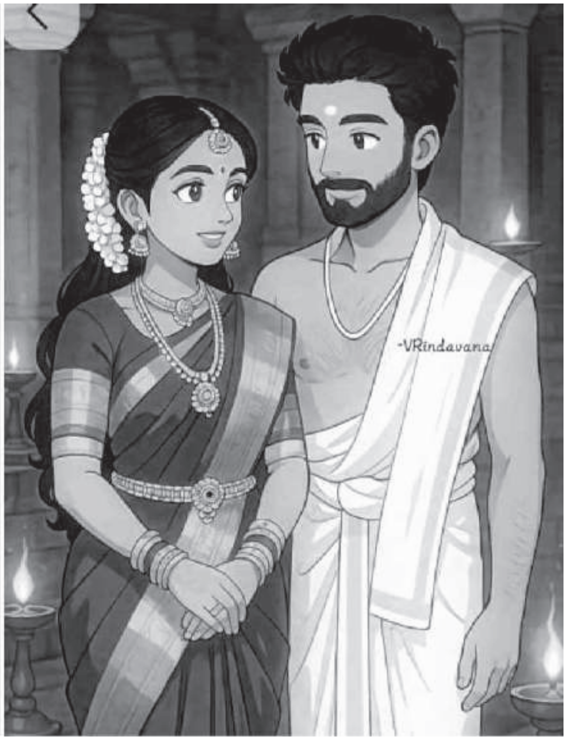

21

सती प्रियंगुसुन्दरी

कांपिल्य नगर के राजा नरसिंह के मंत्री सुमति का पुत्र कडारपिंग एक दिन कुबेरदत्त सेठ की सर्वांग सुन्दर प्रियंगुसुन्दरी पत्नी को देख आसक्त हो गया। सुमति मंत्री ने पुत्र का हाल जानकर कामवासना को मन में धिक्कारा किन्तु पुत्र के मोह में आकर प्रियंगुसुन्दरी को प्राप्त करने के लिए उसके पति कुबेरदत्त को उसने द्वीपान्तर भेजना चाहा। प्रियंगुसुंदरी बुद्धिमती थी। उसने ताड़ लिया और अपने पति को समझाया कि यह कामी कडारपिंग की करतूत एवं सुमति मंत्री का षड्यंत्र है। अत: आप द्वीपान्तर जाने का केवल दिखावा करो, आगे की बात मैं सम्हाल लूँगी। कडारपिंग कुबेरदत्त को द्वीपांतर गया समझ रात के समय प्रियंगुसुंदरी के पास आया। उसने (प्रियंगुसुंदरी ने) पाखाने के कमरे को साफ कराके गड्ढे के ऊपर बिना निवार के एक पलंग पर चादर बिछा दी, प्रियंगुसुंदरी ने आये हुये कडारपिंग को उक्त पलंग पर बैठने को कहा। जैसे ही वह पापी बैठने लगा वैसे ही धड़ाम से अत्यन्त दुर्गंधमय पाखाने के मैले में जा पड़ा। अब कडारपिंग को बहुत पश्चाताप हुआ। उसने निकालने के लिए सुन्दरी से बहुत प्रार्थना की किन्तु पाप का फल भोगने के लिए उसने उसे नहीं निकाला। छह माह व्यतीत होने पर कुबेरदत्त ने द्वीपान्तर से आने का बहाना किया। राजा और मंत्री ने उसे जो जल्फ पक्षी लाने को कहा था। सेठ ने पाखाने से कडारपिंग को निकालकर राजा के समक्ष उपस्थित किया तथा वास्तविक सब वृत्तान्त कह सुनाया। राजा ने उस पापी को प्राणदण्ड दिया। कडारपिंग मरकर नरक में गया।

*****

सती रानी सिंहिका

22

सती रानी सिंहिका

राजा सुकौशल के पौत्र नघोष अयोध्या का राज्य नीतिपूर्वक कर रहे थे। एक बार राजा नघोष अपनी सिंहिका नामक रानी को अयोध्या में छोड़कर उत्तर दिशा के राजा को जीतने के लिए निकले। इधर राजा को युद्ध में जाते देख दक्षिण दिशा के राजा ने बहुत बड़ी सेना लेकर अयोध्या पर चढ़ाई कर दी। शस्त्र विद्या और शास्त्र विद्या दोनों में निपुण महाप्रतापिनी रानी ने बड़ी फौज लेकर दक्षिण दिशा के राजा से युद्ध किया तथा विजयपताका लहराते हुये नगर में प्रवेश किया। इधर राजा नघोष भी विजयश्री लेकर पुन: अयोध्या लौटे और जब रानी का पराक्रम सुना तो अत्यन्त कुपित हुये तथा मन में विचार करने लगे कि कुलीन स्त्रियाँ अखण्ड शील का पालन करने वाली होती हैं। उन्हें इस प्रकार की धृष्टता नहीं करनी चाहिए। ऐसा निश्चय कर वे रानी सिंहिका से उदास हुये और उसे पटरानी पद से हटा दिया।

एक बार राजा के शरीर में मदादाह ज्वर हुआ। अनेक कुशल वैद्यों ने नाना औषधियों से उपचार किया परन्तु किंचित् भी स्वास्थ्य लाभ नहीं हुआ। जब राजा के दाह रोग की जानकारी रानी सिंहिका को प्राप्त हुई तो वह बहुत चिन्तित हुई। अपनी शुद्धता और राजा के आरोग्य के लिए रानी ने पुरोहित, मंत्री आदि सामन्तों को बुलाकर जल देते हुये कहा– ''यदि मैं मन, वचन और काय से पतिव्रता हूँ, पवित्र हूँ तो इस जल के सिंचन से राजा दाहज्वर रहित होवें।'' जल का सिंचन करते ही राजा का शरीर दाहज्वर से रहित, हिम के समान शीतल हुआ और आकाश में शब्द गूँजने लगे ''शीलवती पतिव्रता रानी सिंहिका धन्य हो! धन्य हो!!'' आकाश से पुष्पवृष्टि हुई। राजा ने रानी को शीलवती जानकर पुन: पटरानी पद पर आसीन किया। देखो! जिस दाहज्वर को रसयुक्त अनेक महान् औषधियाँ भी दूर नहीं कर सकीं, वह दाह शील के प्रभाव से सामान्य जल से भी नष्ट हो गया तथा देवों द्वारा पुष्पवृष्टि आदि आश्चर्य उपस्थित हुये। अत: हर प्राणी को इस शील को उत्तम रत्न समझ सावधानी से इसकी रक्षा करनी चाहिये।

श्रीमन्दिर के शिखर पर चढ़े हुये कलश की भाँति ब्रह्मचर्य मानव जीवन की अन्तिम ऊँचाई है। जिसका अर्थ है– समस्त इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण और मन, वचन एवं काय द्वारा लोलुपता से मुक्ति। इस महान् व्रत की रक्षा से मनुष्य स्त्री के लिए प्रिय, सुन्दर शरीर का धारक, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, वीर्य और सुख का अद्वितीय सागर तथा मुक्तिरूपी वधू के मुख के लिए रत्नमय दर्पण स्वरूप होता है। लोक में राजा ब्रह्मचर्य के तेज से प्रजा की रक्षा करता है।

आचार्य अकलंक देव ने कहा है कि ब्रह्मचर्य मानव की स्वच्छन्द वृत्तियों पर अंकुश है। जहाँ यह है वहाँ जीवन है क्योंकि निरंकुश व्यक्ति का विकास 'खरविषाणवत्' है।

पृथ्वी पर अन्य सब व्रतों से रहित भी एक ब्रह्मचर्य व्रत प्रशंसनीय है और उसके बिना सत्पुरुषों का समस्त व्रतों का समूह भी प्रशंसनीय नहीं होता है। आचार्य महाराज कहते हैं– उस ब्रह्मचर्य का पालन करो जो सारभूत है, श्रेष्ठ गुणों को देने वाला है, संसार से पार करने वाला है, स्वर्ग और मुक्ति का हेतु है तथा दुःख रूपी सागर को लाँघने के लिए सेतु (पुल) है। तुम उस ब्रह्मचर्य की सेवा करो जो संसार समुद्र से तारने वाला है, सुखकर है, देवों के द्वारा पूजित है, मुक्ति का द्वार है, अपार पुण्य को उत्पन्न करने वाला है, धीर मनुष्यों द्वारा सेवित है, सम्यग्दर्शन–सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप गुणों का उत्तम पात्र है, अत्यन्त पवित्र है एवं लोक और परलोक सम्बन्धी सुखों का घर है तथा इससे श्रेष्ठ अन्य कुछ नहीं है। ब्रह्मचर्य पालन से पवित्र बुद्धि वाला मनुष्य आश्चर्यकारी ऐश्वर्य, उदारता, शूरवीरता, धीरता, सुन्दरता और बल को प्राप्त होता है। ब्रह्मचर्य की रक्षा करने से मनुष्य स्त्री के लिए प्रिय, सुन्दर शरीर का धारक, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, बल तथा सुख का अद्वितीय सागर तथा मुक्ति रूपी वधू के मुख के लिए रत्नमय दर्पण स्वरूप होता है।

जिनके शरीर में सब लोगों के लिए अत्यन्त प्रिय ऐसा निर्मल शील सुशोभित होता है उनके लिए अग्नि जल के समान, समुद्र नहर के समान, मेरु लघु शिला के समान, सिंह मृग के समान, सर्प माला समूह के समान और विषरस अमृत के समान शीघ्र ही आचरण करने लगता है। जो शील को धारण करते हैं उनकी व्याघ्र, सर्प, जल और अग्नि आदि की विपत्तियाँ क्षय को प्राप्त होती हैं। उनके अनेक प्रकार के कुशल मंगल समुल्लसित होते हैं, सुख निकटता को प्राप्त होता है, कीर्ति विस्तृत होती है, धर्म संचय को प्राप्त होता है, पाप नष्ट होता है और स्वर्ग तथा मोक्ष के सुख प्राप्त होते हैं। आचार्य महाराज उपदेश करते हैं कि धन्य है उन महापुरुषों को जिनका मन विषयों से स्वप्न में भी आलीढ़ नहीं हुआ तथा काम के बाण आदि स्त्रियों के कटाक्षों से स्पष्ट नहीं हुआ है।। इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्राचीन काल में ऐसे–ऐसे महापुरुष हो चुके हैं, जिनकी प्रशंसा किसी प्रकार शब्दों से नहीं की जा सकती है, जिनके जीवन में वह पराक्रम, धैर्य और मनोज्ञयता थी जो बड़े–बड़े साधुओं में भी न मिले। वे महान् आत्माएँ गृहस्थी के कीचड़ में फँसी हुई थीं, लेकिन फँसे हुये भी निम्नलिखित पंक्तियाँ चरितार्थ करती थीं–

गेही पे गृह में न रचे ज्यों, जल से भिन्न कमल है।
नगर–नारी को प्यार यथा, कादे में हेम अमल है।।

उन्होंने देवांगनाओं के समान अपनी सुन्दर पत्नियों के साथ रहते हुये भी असिधारा व्रत का अखण्ड रूप से पालन किया। उन्होंने अपने मन से भी ब्रह्मचर्य का खण्डन नहीं किया था। बड़े आश्चर्य की बात

है, उन्होंने ऐसा कैसे किया था? सामान्यत: कोई व्यक्ति सोच सकता है क्या? क्या कभी ऐसा हो सकता है कि विवाह करे एक साथ नहीं अनेक के साथ, फिर भी अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे। हाँ, यह कार्य दु:साध्य अवश्य है लेकिन असंभव नहीं है। क्योंकि ''मन के जीते जीत है, मन के हारे हार'' जिसने अपने मन को जीत लिया है, वे तीन लोक को जीतने में समर्थ होते हैं। जिसने स्त्री एवं शरीर के दोषों का अच्छी तरह विचार कर लिया है, जिसे ब्रह्मचर्य के गुणों, लाभों का सुष्टु रूप से ज्ञान हो गया है, वह उस रूप से इस कार्य को करने में समर्थ हो सकता है।

*****